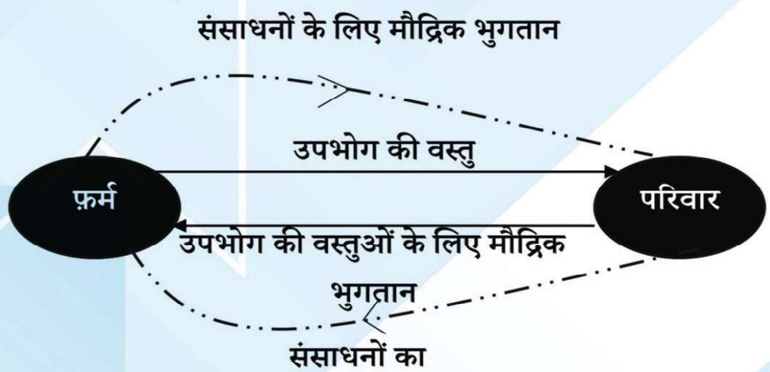
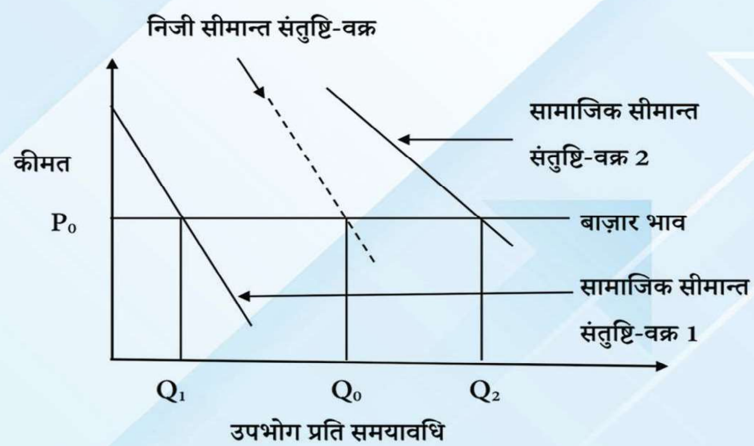
इकाई आधारित अर्थशास्त्र

(माइक्रोइकनौमिक्स/व्यष्टि अर्थशास्त्र)

राजेन्द्र चौधरी



अर्थव्यवस्था का गोलाकार प्रवाह



निजी एवं सामाजिक संतुष्टि में अंतर का प्रभाव

Intellectual Foundation(India)

<ख़ाली पृष्ठ>

इकाई आधारित अर्थशास्त्र

(माइक्रोइकनौमिक्स/व्यष्टि अर्थशास्त्र)

राजेन्द्र चौधरी

लेखक संपर्क सूत्र: rajinderc@gmail.com
इस पुस्तक का पीडीएफ निशुल्क उपलब्ध है.
इस पुस्तक के प्रकाशन से लेखक को प्राप्त होने वाली सारी आय सामाजिक कार्यों के लिए काम करने वाली संस्थाओं को दी जायेगी.

प्रकाशक:
इन्टलैक्चुयल फॉउन्डेशन (इण्डिया)
समीप दुर्गा गैस ऐजन्सी, मॉडल टाऊन, रोहतक (हरियाणा)
फ़ोन: 01262-315734
ई-मेल: ifipub@gmail.com
वैबसाईट:www.ifipub.com

वितरक:
हैप्पी बुक डिप्पो,
मॉडल टाऊन, एवं स्टूडेंटस एक्टिविटी सैंटर, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा) -124001
फ़ोन: 9896254118
ई-मेल: hbdrohtak@gmail.com
वैबसाईट:www.hbdrtk.com

मुद्रक: आकांक्षा प्रिंटिंग प्रेस, गोहाना रोड, रोहतक (हरियाणा)

ISBN 978-93-81818-84-8

प्रथम संस्करण: जून 2024

मूल्य: 250 रुपए

Ikai Aadharit Arthshastr (Microeconomics/Vyashti Shastr)
Rajinder Chaudhary, rajinderc@gmail.com
Published by: Intellectual Foundation (India), Rohtak
Printer: Aakanksha Printing Press, Gohana Road, Rohtak (Haryana)
ISBN 978-93-81818-84-8
First edition: June 2024
Price: Rs 250

विषय-सूची

भूमिका

हिंदी में क्यों? अंग्रेज़ी में ख़राब पुस्तकों के साथ-साथ अर्थशास्त्र की कई उच्च स्तरीय पुस्तकें भी उपलब्ध हैं परन्तु दुर्भाग्य से हिंदी में ऐसा नहीं है. अर्थशास्त्र की हिंदी की जिन किताबों में तथ्यात्मक चूक नहीं होती, उन में भी कई बार दोहराव बहुत होता है. यह अतिरिक्त दोहराव याद करने में भले ही सहायक हो परन्तु सोचने-विचारने की क्षमता को कुंद कर सकता है. इसके अलावा, बहुत बार हिंदी की किताबों की भाषा भी बोलचाल की भाषा से बहुत अलग होती है. इस कारण इन को समझना मुश्किल हो जाता है. अंग्रेज़ी में अर्थशास्त्र की अधिकांश उच्च स्तरीय किताबों के लेखक भी विदेशी हैं. इस लिए इनके उदाहरण भी विदेशी होते हैं.

अंग्रेज़ी माध्यम से पढ़ने के कारण एम.ए. की पढ़ाई तक मुझे भाषा सम्बन्धी दिक्कतों का अहसास नहीं था. इसका अहसास मुझे एम. फिल. करने के लिए पूना के प्रतिष्ठित संस्थान, गोखले इंस्टिट्यूट ऑफ़ पॉलिटिक्स एंड इकनौमिक्स, में दाखिला लेने पर हुआ. एक दिन दोपहर में सो रहा था कि किसी ने मेरा दरवाजा खटखटाया. चार-पांच एम.ए. के छात्र दरवाज़े पर थे. उन्होंने मुझ से पूछा कि क्या मेरे पास अंग्रेज़ी-हिंदी शब्द कोष है. मैंने कहा कि मेरे पास तो अंग्रेज़ी से अंग्रेज़ी का शब्दकोश है. वे निराश हो कर जाने लगे, तो मैंने पूछा कि बताओ तो शब्द क्या है. मैं देख कर आप को हिंदी में समझा दूंगा. उन्होंने अर्थशास्त्र की अंग्रेज़ी की किताब मेरे सामने करते हुए कहा कि हम ने अपने-अपने सारे शब्दकोश देख लिए परन्तु किसी में भी यह शब्द नहीं है. मैंने किताब में उन द्वारा चिह्नित शब्द को देखा. वह शब्द था मानचेस्टर. जब मैंने उन्हें बिना अपना शब्दकोश खोले, तुरंत बता दिया कि यह इंग्लैंड के एक शहर का नाम है, तो उन के चेहरे का रंग उतर गया. वे ठगा हुआ महसूस कर रहे थे. वे इतने निराश थे कि किताबें पटक कर फ़िल्म देखने चले गए (1983 में फ़िल्म देखने के लिए थिएटर में जाना पड़ता था).

मैं तो गोखले संस्थान में एम.फिल. करने गया था परन्तु वहाँ की एम.ए. शायद देश की सब से मुश्किल अर्थशास्त्र की एम.ए. हो. स्कूल की तर्ज़ पर हर शनिवार को टैस्ट होता था. 14 में से 6 अंक दे कर अध्यापक 'बहुत अच्छा' भी लिख देते थे. स्पष्ट था कि गोखले संस्थान में एम.ए. में दाखिला लेने वाले ये छात्र प्रतिभाशाली थे. राष्ट्रीय स्तर की प्रवेश परीक्षा के आधार पर वहाँ दाखिला मिलता था. ऐसा ही एक प्रतिभाशाली छात्र पढ़ते हुए अंग्रेज़ी के एक शब्द पर अटका तो उस ने अपना शब्दकोश देखा. वहाँ वह शब्द न पा कर वह पड़ोसी मराठी भाषी के पास गया. .उस के शब्दकोश में भी यह शब्द न मिलने पर, दोनों दूसरे मराठी माध्यम के छात्र के पास गए. अंग्रेज़ी भाषी सहपाठी के पास जाने की तो उनकी हिम्मत ही नहीं हुई. जब छात्रावास के सब मराठी भाषी छात्रों के पास भी समस्या का निदान नहीं हुआ, तब वे मेरे पास आये थे. भाषा के डंडे का मुझे उस दिन एहसास हुआ. फिर एक दिन, जब चंडीगढ़ से कोई आया और उस के साथ मैं हिंदी/पंजाबी बोल पाया तो गले में राहत सी महसूस हुई.

तब से मुझे यह लगने लगा था कि शिक्षण मातृ भाषा में ही होना चाहिए. पढ़ाने के दौरान हिंदी में अच्छी किताबों की कमी का अहसास हुआ. उस कमी को दूर करने का यह छोटा सा प्रयास है. उच्चतर एवं नवीनतम शोध के लिए अर्थशास्त्र के अंग्रेज़ी के साहित्य को पढ़ना ही पड़ेगा. अंग्रेज़ी पढ़ना समझना उतना मुश्किल नहीं है जितना अंग्रेज़ी लिखना और बोलना. आशा है हिंदी में अर्थशास्त्र की यह किताब बुनियादी जानकारी दे कर ऐसी नींव खड़ी कर देगी, जिस पर खड़े हो कर अंग्रेज़ी में उपलब्ध नवीनतम शोध को भी समझा जा सकेगा.

किस के लिए है यह किताब? स्कूल से ले कर कालेज एवं विश्वविद्यालय तक के अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए यह किताब उपयोगी होगी. आम तौर पर अर्थशास्त्र की पढ़ाई की शुरुआत स्कूल, कालेज अथवा एम.ए., किसी भी स्तर पर हो सकती है. इस लिए जिस ने स्कूल अथवा कालेज में अर्थशास्त्र न भी पढ़ा हो, वह भी एम.ए. अर्थशास्त्र में दाखिला ले सकता है. इस लिए अर्थशास्त्र की कुछ सामग्री स्कूल, कालेज एवं एम.ए., तीनों स्तर पर पढ़ाई जाती है. इस लिए स्कूल से ले कर स्नातकोत्तर तक के छात्रों के लिए एक ही किताब उपयोगी हो सकती है. यह किताब किसी एक परीक्षा या किसी एक बोर्ड अथवा विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम को ध्यान में रख कर नहीं लिखी गई है. लगभग सभी विश्वविद्यालयों/बोर्डों के अर्थशास्त्र के प्रारंभिक पाठ्यक्रम में काफ़ी हद तक समानता होती है. इस लिए

स्कूल/कालेज/विश्वविद्यालय के प्रारंभिक पाठ्यक्रम का बड़ा हिस्सा इस में शामिल है. स्कूली छात्र कुछ सामग्री को छोड़ सकते हैं एवं स्नातकोत्तर छात्र अतिरिक्त सामग्री के लिए अन्य किताबों का प्रयोग कर सकते हैं. मैंने आम तौर पर एम.ए. एवं एम.फिल. की कक्षाएं ही पढ़ाई हैं एवं पढ़ाते हुए प्रस्तुत सामग्री का प्रयोग किया है.

इस किताब से छात्र अपने पाठ्यक्रम या रुचि के अनुसार अध्यायों का चयन कर सकते हैं. अतिरिक्त/गणितीय या उच्च स्तर की सामग्री को पृष्ठ के नीचे पाद टिप्पणी के रूप में या ऐसे [] कोष्ठकों के बीच डाला है. प्रारंभिक तौर पर ऐसी सामग्री को बिलकुल छोड़ा जा सकता है या एक नज़र डाल कर छोड़ा जा सकता है परन्तु उच्च कक्षा के छात्रों को तो सारी सामग्री देखनी चाहिए. यह प्रयास भी है कि छात्रों के अलावा यह किताब हर उस व्यक्ति को अर्थशास्त्र की बुनियादी जानकारी दे सके जो यह जानना-समझना चाहता है कि वस्तुओं की कीमतों का निर्धारण कैसे होता है. मूंगफली की तुलना में बादाम महँगा क्यों होता है अथवा सफ़ाई कर्मचारी और सफेदपोश कर्मचारी के वेतन-दर में इतना अंतर क्यों? अर्थशास्त्र के भी कई पक्ष हैं. यह पुस्तक इस के एक पक्ष पर ही केन्द्रित है, जो पहले अध्याय में स्पष्ट हो जाएगा.

गणित बहुत उपयोगी शास्त्र है परन्तु बहुत से लोग इस का नाम सुन कर ही डर जाते हैं. हालाँकि हमारा यह मानना है कि किसी वस्तु से डर तब तक ही लगता है जब तक हम उस को समझ न लें. उच्चतर अर्थशास्त्र की कई विधाओं में गणित का बहुत प्रयोग होता है. आम तौर अर्थशास्त्र में शोध के लिए भी गणित का काफ़ी प्रयोग होता है. इस लिए अर्थशास्त्र में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए गणित का प्रयोग ज़रूरी हो जाता है. लेकिन इस पुस्तक में हम गणित का प्रयोग कम से कम करेंगे. गणित के प्रयोग वाले हिस्सों को अलग से चिह्नित करेंगे ताकि गणित न जानने वाले उन हिस्सों पर ज़्यादा समय न लगाएँ. लेकिन गणित से डरें नहीं, अपितु इसको समझने का प्रयास करें.

हर अध्याय के अंत में, प्रश्नों से पहले, उस अध्याय के मूल बिन्दुओं को चिह्नित किया गया है. इन को पढ़ते हुए अध्याय की दोहराई हो जाएगी. अगर इन में से कोई बात आप के ध्यान में नहीं है या स्पष्ट नहीं है, तो अध्याय के सम्बन्धित हिस्सों को फिर से पढ़ें. अर्थशास्त्र की पढ़ाई भवन निर्माण की तरह है. अगर नींव कमज़ोर रह जाएगी तो भवन ही कमज़ोर रह जाएगा. इस लिए अर्थशास्त्र को समझने के लिए यह ज़रूरी है कि किसी अध्याय को छोड़ कर आगे बढ़ने की बजाय क्रमबद्ध तरीके से आगे बढ़ें (हालाँकि स्कूल स्तर के विद्यार्थी उन अध्यायों को छोड़ सकते हैं जो उन के पाठ्यक्रम में न हों). ऐसा न करने वाले को अर्थशास्त्र मुश्किल लगेगा परन्तु पढ़-समझ कर क्रमबद्ध रूप से आगे बढ़ने वाले को अर्थशास्त्र आसान एवं रोचक लगेगा. अध्याय के अंत में दिए गए प्रश्नों के अलावा अध्याय के बीच में भी कुछ प्रश्न उठाये गये हैं या पाठक को कुछ करने को कहा गया है. इन को अनदेखा न करें; न ही इन को पढ़ कर आगे बढ़ जाएँ. इन को पढ़ कर रुकें एवं विचार करें. अगर प्रश्न पूछा गया है तो उस का उत्तर सोचें और फिर आगे बढ़ें. अगर कुछ करने को कहा गया है तो उसे करें, तभी आगे बढ़ें. **यह किताब आप के अपने सोचने-समझने का स्थान नहीं ले सकती. यह तो बस उस प्रक्रिया में आप की सहायक हो सकती है.**

इस किताब में विषय से सम्बन्धित हर प्रश्न का उत्तर आप को लिखा नहीं मिलेगा परन्तु इस पुस्तक की सामग्री में उस का उत्तर छिपे होने की पूरी संभावना है. परीक्षा के लिए भी यह किताब उपयोगी साबित होगी परन्तु **यह किताब पका पकाया उत्तर रटने वाले के लिए नहीं है. यह किताब सोच विचार कर ख़ुद उत्तर ढूंढने वालों के लिए है.** अध्यापक आप के सहायक हो सकते हैं परन्तु आप उन पर सोचने, विचार करने एवं आप को उत्तर बताने की ज़िम्मेदारी न डालें. अच्छा अध्यापक ऐसा नहीं करेगा.

इस पुस्तक को आसान बनाने का पूरा प्रयास किया गया है. यह भी प्रयास किया गया है कि ज़्यादातर बोलचाल की हिन्दी का प्रयोग हो. इस लिए इस पुस्तक का नाम 'व्यष्टि अर्थशास्त्र' न रख कर इकाई आधारित अर्थशास्त्र रखा है. परन्तु ध्यान रहे कि कोई भी पाठ्य पुस्तक सामान्य दैनिक अखबार या कहानी जितनी आसान नहीं हो सकती; जो एक बार पढ़ कर और कई बार तो मात्र सरसरी निगाह मार कर या शीर्षक पढ़ कर समझ आ जाए. अगर पाठ्य पुस्तक को आप को कोई नई बात सिखानी है, ऐसी बात, जिस को सीखने पर आप को बी.ए., एम.ए. की उपाधि दी जाएगी, तो निश्चित तौर ऐसी पुस्तक समाचार पत्र की तरह एक बार में सरसरी नज़र डाल कर नहीं समझी जा सकती. इस को समझने के लिए, एक समय पर ही, एक से अधिक बार पढ़ना पड़ सकता है (परीक्षा से पहले दोहराना इस के अलावा होगा). आम तौर पर एक अध्याय को एक ही समय पर तीन बार पढ़ना चाहिए. एक बार मुख्य तौर पर यह जानने के लिए कि इस

अध्याय की विषय-वस्तु क्या है. पहली बार पढ़ते हुए अगर पूरी बात समझ नहीं आ रही, तो भी आगे बढ़ा जा सकता है. कई बार आगे की सामग्री से पिछली बात भी समझ आ जाती है. दूसरी बार बहुत ध्यान से हर तर्क, हर बात को समझने का प्रयास करना चाहिए. फिर भी हो सकता है कि कोई बात पूरे प्रयास के बाद भी समझ में न आये. तब उसे चिह्नित कर के आगे बढ़ जाएँ. फिर तीसरी बार पढ़ें एवं एक बार उन बिन्दुओं पर विशेष ध्यान दें जो अब तक समझ में नहीं आए. **अच्छे विद्यार्थी की किताब साफ़ सुथरी नहीं होती; उस में जगह-जगह वाक्यों के नीचे रेखा खींची होती है और हाशिये पर अपनी टिप्पणियां होती हैं.**

इस पुस्तक को वही पढ़ें जिन की अर्थशास्त्र के प्रश्नों में रुचि हो. इसे पढ़ें विषय को समझने के लिए. विषय समझ आ जाएगा तो परीक्षा भी अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होगी, डिग्री की भी और जीवन की भी. केवल परीक्षा पास करने के लिए पढ़ना, जीवन का दुरुपयोग है. इस को बिलकुल बंद न भी किया जा सके तो इस को कम से कम करने का प्रयास अवश्य करें. कोशिश हो कि आप वह काम करें जिस में आप की रुचि हो.

आप के सुझावों का स्वागत है. कमियों-गलतियों को ज़रूर बताने का कष्ट करें.

01-06-2024

राजेन्द्र चौधरी
सेवानिवृत्त प्रोफ़ेसर, अर्थशास्त्र विभाग,
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)
rajinderc@gmail.com

अंग्रेज़ी-हिंदी अर्थ-शास्त्रीय शब्द-सूची

हिंदी में एक से अधिक समानार्थी शब्द होने पर इस पुस्तक में मोटे अक्षरों में लिखे शब्द का प्रयोग किया गया है.

Absolute value: निरपेक्ष मूल्य
Abstraction: पृथक्करण
Accounting profit: बाज़ारी अथवा लेखाविधि अनुसार लाभ
Additive utility function: यौगिक उपयोगिता फलन
Administered prices: प्रशासनिक तौर पर कीमत निर्धारण
Allocative function of price: कीमत की आवंटन में भूमिका
Arc elasticity: चाप लोच
Assumption: मान्यता
Axiom: स्वयंसिद्ध मान्यता
Bandwagon effect: भेड़-चाल/अनुरूपता प्रभाव
Barriers to entry: प्रवेश की राह में रोड़े
Bilateral monopoly: द्विपक्षीय/दो-तरफ़ा एकाधिकार
Breakeven point: लाभ-अलाभ बिंदु
Budget line: बजट-रेखा
Cardinal number: गणन संख्या
Cardinal Utility Analysis: गणना-वाचक उपयोगिता विश्लेषण
Cardinalist criterion: गणन-संख्यावादी मापदंड
Cartel: मिली-भगत का उत्पादक संघ (संक्षेप में, उत्पादक संघ)
Ceteris paribus: अन्य बातें समान रहने पर
Choice variable: निर्धारक चर
Circular flow of economy: अर्थव्यवस्था का गोलाकार प्रवाह
Collusive oligopoly: मिली-भगत अथवा साँठ-गाँठ का अल्पाधिकारी बाज़ार
Comparative static equilibrium: तुलनात्मक निश्चल संतुलन
Compensation: क्षतिपूर्ति
Complimentary goods: पूरक/सहयोगी वस्तु
Concave: धनुषाकारी/अवतल
Consistency: स्थिरता
Constant returns to scale: पैमाने का समानुपातिक बदलाव/प्रतिफल
Consumer surplus: उपभोक्ता आधिक्य
Convex: उत्तल/उन्नतोदर
Corner solution: नुक्कड़/कोने का चयन
Cross elasticity: आड़ी/प्रति/तिरछी लोच
Cumulative: संचित
Dead weight loss: ऐसा घाटा है जिस की एवज़ में किसी को लाभ नहीं मिलता/डेड वेट लॉस
Decile ratio: दशमांश अनुपात
Decreasing returns to scale: पैमाने का घटता/ह्रासमान बदलाव/प्रतिफल
Degree of homogeneity: समरूपता की घात
Denominator: हर/भाजक/विभाजक
Dependent/endogenous variable: निर्भर/आश्रित/अन्तर्जात चर
Derivative: डेरिवेटिव/अवकलज/व्युत्पादित
Derive: व्युत्पन्न /प्राप्त करें
Derived demand: माँग से उत्पन्न माँग/व्युत्पन्न माँग
Diseconomies of scale: बढ़ते पैमाने का नुकसान/उत्पादन स्तर मूलक अलाभ
Disembodied technical progress: अशरीरी तकनीकी प्रगति/देह मुक्त तकनीकी विकास
Disposable income: स्वविवेक से ख़र्च करने के लिए उपलब्ध आय
Divisible: विभाज्य/अनन्त भागों में विभक्त हो सकने वाला
Duopoly: द्वि-विक्रेता अधिकारी
Dynamic equilibrium: गतिमान संतुलन
Economies of scale: बढ़ते पैमाने की बचत/उत्पादन स्तर मूलक लाभ
Edgeworth box diagram: एज्वर्थ पेटी-नुमा चित्र

Edgeworth Contract Curve for exchange/distribution: विनिमय/वितरण का एज्वर्थ करार-वक्र/अनुबंध-वक्र
Elasticity of technical substitution: तकनीकी प्रतिस्थापन की लोच
Elasticity: लोच
Embodied technical progress: **सशरीरी तकनीकी प्रगति**/देह समाविष्ट तकनीकी विकास
Entrepreneurship: उद्यमिता
Equilibrium: संतुलन
Expansion path: विस्तार रेखा
Expected demand curve: अपेक्षित माँग-वक्र
Externality: बाह्यता
Flow variable: प्रवाह चर
Free entry and exit: निर्बाध प्रवेश एवं बहिर्गमन
Free rider phenomenon: मुफ़्तख़ोरी
Functional distribution: संसाधन-वर्गों के बीच वितरण
General equilibrium: सर्व व्यापक/समग्र संतुलन
Giffin goods: गिफ़्फ़िन वस्तु
Gini coefficient: गिनी गुणांक
Homogenous: समघात/समरूप
Horizontal summation: क्षैतिज/आड़ा/समस्तरीय जोड़
Household: परिवार
Human Development Index: मानव विकास सूचकांक
Impossibility theorem: असम्भवता प्रमेय
Incentive function: उत्प्रेरक भूमिका
Income Consumption Curve /ICC: आय-उपभोग वक्र
Income effect: आय प्रभाव
Inconsistent: विसंगत/असंगत
Increasing returns to scale: पैमाने का वृद्धिमान बदलाव/वर्धमान अनुमापी प्रतिफल
Independent/exogenous variable: निर्धारक/बहिर्जात/स्वायत्त/स्वतंत्र चर
Indifference curve: उदासीनता/तटस्थता/अनधिमान/समभाव वक्र
Inelastic: कम लचीला
Inequality: असमिका
Inferior goods: निम्न स्तरीय वस्तु
Information Asymmetry: जानकारी में असमानता
Integral: इंटिग्रल/प्रति-अवकलज/समाकलन
Inter-commodity independence of utility: उपयोगिता की अन्तर्वस्तु स्वतंत्रता
Internal rate of return /IRR: लाभ की आन्तरिक दर
Inter-personal independence of utility: उपयोगिता की अंतर-वैयक्तिक स्वतंत्रता
Isocline: सम-ढलान रेखा
Iso-cost curve: सम-लागत-वक्र
Isoquant: सम-उत्पाद वक्र
Joint profit maximizing model: प्रतिभागियों के कुल लाभ को अधिकतम करने का प्रतिरूप/मॉडल
Kinky demand curve: सकोण/मुड़ा हुआ माँग-वक्र
Labour force participation rate: श्रमबल सहभागिता दर
Law of demand: माँग का नियम
Law of diminishing marginal utility: घटती सीमान्त उपयोगिता का नियम
Law of diminishing return to variable proportions: बदलते अनुपात के घटते प्रतिफल का नियम/ परिवर्ती अनुपात के घटते/ह्रासमान प्रतिफल का नियम
Law of equi-marginal utility: सम-सीमान्त उपयोगिता का नियम
Lerner Measure of monopoly power: एकाधिकारी शक्ति का लर्नर मापदंड
Lexicographic ordering: शब्द-कोशीय अभिरुचि
Linear programming isoquant: रैखिक क्रमादेशन सम-उत्पाद वक्र
Lumpsum tax: एक मुश्त कर

Luxuries: विलासिता की वस्तु
Macroeconomics: समग्र/समष्टि अर्थशास्त्र
Marginal efficiency of capital - MEC: पूँजी की सीमान्त दक्षता
Marginal expenditure - ME: सीमान्त ख़र्च
Marginal physical product -MPP: सीमान्त भौतिक उत्पाद
Marginal Rate of Product Transformation-MRPT: उत्पाद-रूपांतरण की सीमान्त दर
Marginal rate of substitution - MRS: प्रतिस्थापन की सीमान्त दर
Marginal rate of technical substitution - MRTS: तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर
Marginal revenue product- MRP: सीमान्त राजस्व उत्पाद
Marginal revenue: सीमान्त राजस्व
Marginal Utility - MU: सीमान्त उपयोगिता
Market clearing price: बाज़ार ख़ाली करने वाला भाव
Merit goods: सराहनीय वस्तु
Micro economics: इकाई आधारित/व्यष्टि अर्थशास्त्र
Model: प्रतिरूप/मॉडल
Monopolistic exploitation: एकाधिकारी शोषण
Monopoly: एकाधिकारी
Monopsonistic exploitation: क्रेता एकाधिकारी शोषण
Monopsony: क्रेता एकाधिकार
Necessities: आवश्यक वस्तु
Neoclassical: नव-शास्त्रीय
Nominal/money income: मौद्रिक आय
Non-collusive oligopoly: बिना मिली-भगत/बिना साँठ-गाँठ/स्वतंत्र निर्णय का अल्पाधिकारी बाज़ार
Non-excludability: प्रयोग से वंचित करना असंभव/मुश्किल होना
Non-price competition: ग़ैर-कीमत प्रतियोगिता
Non-rivalry in consumption: उपभोग में प्रतिद्वंद्विता का अभाव
Normal goods: सामान्य वस्तु
Normal profit: सामान्य लाभ
Normative economics: मूल्यांकन/सकारात्मक/आदर्शक अर्थशास्त्र
Numerator: अंश/गणक/भंजन
Objective: तथ्यात्मक/वस्तुनिष्ठ
Oligopoly: अल्पाधिकारी बाज़ार
Opportunity cost: अवसर लागत
Optimum: इष्टतम
Ordinal number: क्रम/पद-क्रम सूचक संख्या
Ordinal Utility Analysis: क्रमसूचक उपयोगिता विश्लेषण
Origin: उद्गम/मूल बिंदु
Pareto optimality criterion for product mix: उत्पाद समूह के इष्टतम स्तर के चयन का परेटो मापदंड
Pareto Optimality Criterion: इष्टतम का परेटो मापदंड
Partial equilibrium: आंशिक संतुलन
Pecuniary economies: मौद्रिक लाभ-अलाभ
Perfect Competition: पूर्ण प्रतियोगिता
Point elasticity: बिंदु लोच
Positive economics: व्याख्यात्मक अर्थशास्त्र
Predatory pricing policy: परभक्षी/नाशकारी कीमत निर्धारण नीति
Present value: वर्तमान मान
Price Consumption Curve - PCC: कीमत-उपभोग वक्र
Price discrimination: कीमत-विभेद
Price leadership: कीमत नेतृत्व
Price rigidity: कीमत जड़ता/स्थिरता
Price taker: कीमत स्वीकारक
Price theory: कीमत का सिद्धांत
Principal and agent problem: प्रतिनिधि एवं मालिक विषमता
Privatising the commons: सार्वजनिक संसाधनों का निजीकरण

Producer surplus: उत्पादक आधिक्य
Product differentiation: वस्तु-विभेदीकरण/विशिष्टीकरण
Product exhaustion: उत्पादन का पूरा निपटारा
Product line: उत्पादन रेखा
Product Transformation Curve - PTC: उत्पाद-रूपांतरण वक्र
Production Possibility Frontier- PPF: अधिकतम संभव उत्पादन सीमा
Proportionate: समानुपाती/अनुपातिक
Public goods: सार्वजनिक उपभोग की वस्तु
Quasi-rent: आभासी लगान
Rate of discount: कटौती की दर
Rational: विवेकशील/विचारशील
Rationing: नियंत्रित बिक्री
Real economies: तकनीकी या वास्तविक लाभ-अलाभ
Real income: वास्तविक आय
Realized demand curve: प्रभावी माँग-वक्र
Rectangular hyperbola: समकोणीय/ आयताकार अतिपरवलय
Regulator: नियामक
Relative prices: सापेक्ष/तुलनात्मक कीमतें
Relevant: प्रासंगिक
Rent: लगान
Restrictive assumption: प्रतिबन्धात्मक मान्यता
Returns to scale: पैमाने का प्रतिफल
Revealed Preference Theory: उद्घाटित प्राथमिकता पद्धति
Ridge line: मेड़
Risk and uncertainty: जोखिम एवं अनिश्चितता
Satisficing: संतोषजनक/पर्याप्तता
Share in the market demand curve: बाज़ार माँग में हिस्सा/ सम-भाव माँग-वक्र
Shift factors: खिसकाने वाले चर अथवा कारक
Shut-down point: उत्पादन बंदी बिंदु
Simplifying assumption: सुविधाजनक मान्यता
Size distribution: आय वर्गों में वितरण
Slope: ढलान/प्रवणता
Smooth: निष्कोण/सपाट
Snob effect: मिथ्याभिमानी/विशिष्टता प्रभाव
Social Welfare Function: सामाजिक कल्याण फलन
Stable equilibrium: टिकाऊ संतुलन
Static equilibrium analysis: निश्चल संतुलन अध्ययन
Stock variable: भण्डार चर
Subjective: व्यक्ति-सापेक्ष /व्यक्तिपरक
Subsidy: अनुदान
Substitute good: स्थानापन्न वस्तु
Substitution effect: प्रतिस्थापन प्रभाव
Super normal profit: असामान्य लाभ
Tangent: स्पर्श रेखा
Taste and preference: अभिरुचि/पसंद-नापसंद
Technical efficiency: तकनीकी दक्षता
Theory of demand: माँग का सिद्धांत
Theory of distribution: वितरण का सिद्धांत
Theory of value and distribution: मूल्य एवं वितरण का सिद्धांत
Transaction cost: समझौता लागू करने का ख़र्च
Transfer price: हस्तांतरण मूल्य
Transitivity: संक्रामिकता
Unitisation: इकाइयों का एकीकरण
Utility: उपयोगिता
Value of marginal product - VMP: सीमान्त भौतिक उत्पाद का मूल्य
Variable cost: परिवर्तनशील लागत
Variable: चर/परिवर्ती
Vertical summation: खड़ा/लंबवत योग
Weighted sum: भारित/भारांकित योग
Welfare Economics: सामाजिक कल्याण का अर्थशास्त्र
X-axis: क्ष (क्षैतिज/आड़ा) अक्ष
Y-axis: य (उर्ध्वाधर//लम्बवत/खड़ा) अक्ष

हिंदी-अंग्रेज़ी अर्थ-शास्त्रीय शब्द-सूची

हिंदी में एक से अधिक समानार्थी शब्द होने पर इस पुस्तक में मोटे अक्षरों में लिखे शब्द का प्रयोग किया गया है.

अंश/गणक/भंजन: Numerator
अधिकतम संभव उत्पादन-वक्र/सीमा: Production Possibility Frontier/Curve-
अन्य बातें समान रहने पर: Ceteris paribus
अपेक्षित माँग-वक्र: Expected demand curve
अभिरुचि/पसंद-नापसंद: Taste and preference
अर्थव्यवस्था का गोलाकार प्रवाह: Circular flow of economy
अल्पाधिकारी बाज़ार: Oligopoly
अवसर लागत: Opportunity cost
अव्यक्त/अंतर्निहित/निहित: Implicit
अशरीरी तकनीकी प्रगति/देह मुक्त तकनीकी विकास: Disembodied technical progress
असमिका : Inequality
असम्भवता प्रमेय: Impossibility theorem
असामान्य लाभ: Super normal profit
आंशिक संतुलन: Partial equilibrium
आड़ी सब्सिडी: Cross subsidy
आड़ी/प्रति/तिरछी लोच: Cross elasticity
आभासी लगान: Quasi-rent
आय-उपभोग वक्र: Income Consumption Curve/ICC
आय प्रभाव: Income effect
आय वर्गों में वितरण: Size distribution
आवश्यक वस्तु: Necessities
इंटिग्रल/प्रति-अवकलज/समाकलन: Integral
इकाइयों का एकीकरण: Unitisation
इकाई आधारित/व्यष्टि अर्थशास्त्र: Microeconomics
इष्टतम का परेटो मापदंड: Pareto Optimality Criterion
इष्टतम: Optimum
उत्तल/उन्नतोदर: Convex
उत्पाद समूह के इष्टतम स्तर के चयन का परेटो मापदंड: Pareto optimality criterion for product mix
उत्पादक आधिक्य: Producer Surplus
उत्पादन का पूरा निपटारा: Product Exhaustion
उत्पादन बंदी बिंदु: Shut-down point
उत्पादन रेखा: Product line
उत्पाद-रूपांतरण की सीमान्त दर: Marginal Rate of Product Transformation/MRPT
उत्पाद-रूपांतरण वक्र: Product Transformation Curve - PTC
उत्प्रेरक भूमिका: Incentive function
उदासीनता/तटस्थता/अनधिमान/समभाव वक्र: Indifference curve
उद्गम/मूल बिंदु : Origin
उद्घाटित प्राथमिकता पद्धति: Revealed Preference Theory
उद्यमिता: Entrepreneurship
उपभोक्ता आधिक्य: Consumer surplus
उपभोग में प्रतिद्वंद्विता का अभाव: Non-rivalry in consumption
उपयोगिता की अन्तर्वस्तु स्वतंत्रता: Inter-commodity independence of utility
उपयोगिता की अंतर-वैयक्तिक स्वतंत्रता: Inter-personal independence of utility
उपयोगिता: Utility
एक मुश्त कर: Lumpsum tax
एकाधिकारी शक्ति का लर्नर मापदंड: Lerner Measure of monopoly power
एकाधिकारी शोषण: Monopolistic exploitation
एकाधिकारी: Monopoly
एज्वर्थ पेटी-नुमा चित्र: Edgeworth box diagram
ऐसा घाटा है जिस की एवज़ में किसी को लाभ नहीं मिलता/डेड वेट लॉस :Dead weight loss
कटौती की दर: Rate of discount
कम लचीला: Inelastic

कीमत-उपभोग वक्र: Price Consumption Curve/PCC
कीमत का सिद्धांत: Price theory
कीमत की आवंटन में भूमिका: Allocative function of price
कीमत जड़ता/स्थिरता: Price rigidity
कीमत नेतृत्व: Price leadership
कीमत स्वीकारक: Price taker
कीमत-विभेद: Price discrimination
क्रम/पद-क्रम सूचक संख्या: Ordinal number
क्रमसूचक उपयोगिता विश्लेषण: Ordinal Utility Analysis
क्रेता एकाधिकार: Monopsony
क्रेता एकाधिकारी शोषण: Monopsonistic exploitation
क्ष (क्षैतिज/आड़ा) अक्ष: X-axis
क्षतिपूर्ति: Compensation
क्षैतिज/आड़ा/समस्तरीय जोड़: Horizontal summation
खड़ा/लंबवत योग: Vertical summation
खिसकाने वाले चर अथवा कारक: Shift factors
गणन संख्या: Cardinal number
गणन-संख्यावादी मापदंड: Cardinalist criterion
गणना-वाचक उपयोगिता विश्लेषण: Cardinal Utility Analysis
गतिमान संतुलन: Dynamic equilibrium
गिनी गुणांक: Gini coefficient
गिफ़्फ़िन वस्तु: Giffin goods
ग़ैर-कीमत प्रतियोगिता: Non-price competition
घटती सीमान्त उपयोगिता का नियम : Law of diminishing marginal utility
चर/परिवर्ती: Variable
चाप लोच: Arc elasticity
जानकारी में असमानता: Information Asymmetry
जोखिम एवं अनिश्चितता: Risk and uncertainty
टिकाऊ संतुलन: Stable equilibrium
डेरिवेटिव/अवकलज/व्युत्पादित: Derivative
ढलान/प्रवणता: Slope
तकनीकी दक्षता: Technical efficiency
तकनीकी प्रतिस्थापन की लोच: Elasticity of technical substitution
तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर: Marginal rate of technical substitution/MRTS
तकनीकी या वास्तविक लाभ-अलाभ: Real economies
तथ्यात्मक/वस्तुनिष्ठ: Objective
तुलनात्मक निश्चल संतुलन: Comparative static equilibrium
दशमांश अनुपात: Decile ratio
द्विपक्षीय/दो-तरफा एकाधिकार: Bilateral monopoly
द्वि-विक्रेता अधिकारी: Duopoly
धनुषाकारी/अवतल: Concave
नव-शास्त्रीय: Neoclassical
निम्न स्तरीय वस्तु: Inferior goods
नियंत्रित बिक्री: Rationing
नियामक: Regulator
निरपेक्ष मूल्य: Absolute value
निर्धारक चर: Choice variable
निर्धारक/बहिर्जात/स्वायत्त/स्वतंत्र चर: Independent/exogenous variable
निर्बाध प्रवेश एवं बहिर्गमन: Free entry and exit
निर्भर/आश्रित/अन्तर्जात चर: Dependent/endogenous variable
निश्चल संतुलन अध्ययन: Static equilibrium analysis
निष्कोण/सपाट: Smooth
नुक्कड़/कोने का चयन: Corner solution
परभक्षी/नाशकारी कीमत निर्धारण नीति : Predatory pricing policy
परिवर्तनशील लागत: Variable cost
परिवार: Household
पूँजी की सीमान्त दक्षता: Marginal efficiency of capital/MEC
पूरक/सहयोगी वस्तु: Complimentary goods
पूर्ण प्रतियोगिता: Perfect Competition
पृथक्करण: Abstraction

पैमाने का घटता/ह्रासमान बदलाव: Decreasing returns to scale
पैमाने का प्रतिफल: Returns to scale
पैमाने का वृद्धिमान बदलाव/वर्धमान अनुमापी प्रतिफल: Increasing returns to scale
पैमाने का समानुपातिक बदलाव/प्रतिफल: Constant returns to scale
प्रतिनिधि एवं मालिक विषमता: Principal and agent problem
प्रतिबन्धात्मक मान्यता: Restrictive assumption
प्रतिभागियों के कुल लाभ को अधिकतम करना : Joint profit maximizing model
प्रतिरूप/मॉडल: Model
प्रतिस्थापन की सीमान्त दर: Marginal rate of substitution/MRS
प्रतिस्थापन प्रभाव: Substitution effect
प्रभावी माँग-वक्र: Realized demand curve
प्रयोग से वंचित करना असंभव/मुश्किल होना: Non-excludability
प्रवाह चर: Flow variable
प्रवेश की राह में रोड़े: Barriers to entry
प्रशासनिक तौर पर कीमत निर्धारण: Administered prices
बढ़ते पैमाने का नुकसान/उत्पादन स्तर मूलक अलाभ: Diseconomies of scale
बढ़ते पैमाने की बचत अथवा उत्पादन स्तर मूलक लाभ: Economies of scale
बदलते अनुपात के घटते प्रतिफल का नियम/ परिवर्ती अनुपात के घटते/ह्रासमान प्रतिफल का नियम: Law of diminishing return to variable proportion
बाज़ार ख़ाली करने वाला भाव: Market clearing price
बाज़ार माँग में हिस्सा/ सम-भाव माँग-वक्र : Share in the market demand curve
बाज़ारी अथवा लेखाविधि अनुसार लाभ: Accounting profit
बाह्यता: Externality
बिंदु लोच: Point elasticity
बिना मिली-भगत/बिना साँठ-गाँठ/स्वतंत्र निर्णय का अल्पाधिकारी बाज़ार: Non-collusive oligopoly
भण्डार चर: Stock variable
भारित/भारांकित योग: Weighted sum
भेड़-चाल/अनुरूपता प्रभाव: Bandwagon effect
माँग का नियम: Law of demand
माँग का सिद्धांत: Theory of demand
माँग से उत्पन्न माँग/व्युत्पन्न माँग: Derived demand
मानव विकास सूचकांक: Human Development Index
मिथ्याभिमानी/विशिष्टता प्रभाव: Snob effect
मिली-भगत का उत्पादक संघ (संक्षेप में, उत्पादक संघ): Cartel
मिली-भगत अथवा साँठ-गाँठ का अल्पाधिकारी बाज़ार: Collusive oligopoly
मुफ़्तख़ोरी: Free rider phenomenon
मूल्य एवं वितरण का सिद्धांत: Theory of value and distribution
मूल्यांकन/सकारात्मक/आदर्शक अर्थशास्त्र: Normative economics
मेड़: Ridge line
मौद्रिक आय: Nominal/money income
मौद्रिक लाभ-अलाभ: Pecuniary economies
य (उर्ध्वाधर/लम्बवत/खड़ा) अक्ष: Y-axis
यौगिक उपयोगिता फलन: Additive utility function
रैखिक क्रमादेशन सम-उत्पाद वक्र: Linear programming isoquant
लगान: Rent
लाभ की आन्तरिक दर: Internal rate of return/IRR
लाभ-अलाभ बिंदु: Breakeven point
लोच: Elasticity
वर्तमान मान: Present value
वस्तु-विभेदीकरण/विशिष्टीकरण: Product differentiation
वास्तविक आय: Real income
वितरण का सिद्धांत: Theory of distribution

विनिमय/वितरण का एज्वर्थ करार-वक्र/अनुबंध-वक्र : Edgeworth Contract Curve for exchange/distribution
विभाज्य/ अनन्त भागों में विभक्त हो सकने वाला: Divisible
विलासिता की वस्तु: Luxuries
विवेकशील/विचारशील: Rational
विसंगत/असंगत: Inconsistent
विस्तार रेखा: Expansion path
व्यक्ति-सापेक्ष /व्यक्तिपरक: Subjective
व्याख्यात्मक अर्थशास्त्र: Positive economics
व्युत्पन्न /प्राप्त करें : Derive
शब्द-कोशीय अभिरुचि: Lexicographic ordering
श्रमबल सहभागिता दर: Labour force participation rate
संक्रामिकता: Transitivity
संचित: Cumulative
संतुलन: Equilibrium
संतोषजनक/पर्याप्तता: Satisficing
संसाधन-वर्गों के बीच वितरण: Functional distribution
संसाधनों की कीमत निर्धारण: Factor pricing
सकोण/मुड़ा हुआ माँग-वक्र: Kinky demand curve
सम-उत्पाद वक्र: Isoquant
समकोणीय/आयताकार अतिपरवलय: Rectangular hyperbola
समग्र/समष्टि अर्थशास्त्र: Macroeconomics
समघात/समरूप: Homogenous
समझौता लागू करने का ख़र्च: Transaction cost
सम-ढलान रेखा: Isocline
समरूपता की घात: Degree of homogeneity
सम-लागत-वक्र: Iso-cost curve
सम-सीमान्त उपयोगिता का नियम: Law of equi-marginal utility
समानुपाती/अनुपातिक: Proportionate
सराहनीय वस्तु: Merit goods
सर्व व्यापक/समग्र संतुलन: General equilibrium
सशरीरी तकनीकी प्रगति/देह समाविष्ट तकनीकी विकास: Embodied technical progress
सापेक्ष/तुलनात्मक कीमतें: Relative prices
सामाजिक कल्याण का अर्थशास्त्र: Welfare Economics
सामाजिक कल्याण फलन: Social Welfare Function
सामान्य लाभ: Normal profit
सामान्य वस्तु: Normal goods
सार्वजनिक उपभोग की वस्तु: Public goods
सार्वजनिक संसाधनों का निजीकरण: Privatising the commons
सीमान्त उपयोगिता: Marginal Utility/MU
सीमान्त ख़र्च: Marginal expenditure/ME
सीमान्त भौतिक उत्पाद का मूल्य: Value of marginal product/VMP
सीमान्त भौतिक उत्पाद: Marginal physical product/MPP
सीमान्त राजस्व उत्पाद: Marginal revenue product/MRP
सीमान्त राजस्व: Marginal revenue
सुविधाजनक मान्यता: Simplifying assumption
स्थानापन्न वस्तु : Substitute good
स्थिर लागत: Fixed cost
स्थिरता: Consistency
स्पर्श रेखा: Tangent
स्वयंसिद्ध मान्यता: Axiom
हर/भाजक/विभाजक : Denominator
हस्तांतरण मूल्य: Transfer price

अध्याय -1

अर्थशास्त्र, इकाई आधारित अर्थशास्त्र एवं कुछ बुनियादी परिभाषाएं

भाषा सम्बन्धी एवं कुछ अन्य स्पष्टीकरण: हमारा प्रयास हिन्दी भाषा के ऐसे शब्दों के प्रयोग करने पर रहेगा जो आसानी से समझ आ जाएँ, जो बोलचाल की भाषा के नज़दीक हों. आम तौर पर माइक्रोइकनौमिक्स (Microeconomics) को हिंदी में व्यष्टि अर्थशास्त्र कहा जाता है. व्यष्टि शब्द आम बोलचाल का शब्द नहीं है.. इस लिए हम इस पुस्तक में माइक्रोइकनौमिक्स या व्यष्टि अर्थशास्त्र को 'इकाई आधारित अर्थशास्त्र' कहेंगे. ऐसा नामकरण क्यों किया गया है, यह शीघ्र स्पष्ट हो जाएगा. हर बार तो नहीं परन्तु बीच-बीच में, हम कोष्ठक में समानार्थक अंग्रेज़ी के शब्द भी देंगे ताकि अंग्रेज़ी की किताब या अंग्रेज़ी में कही बात समझने में दिक्कत न हो. कहीं-कहीं अंग्रेज़ी के शब्दों को हिंदी में लिख कर भी प्रयोग करेंगे. ज़रूरत पड़ने पर प्रारंभ में दी गई अंग्रेज़ी-हिंदी एवं हिंदी-अंग्रेज़ी शब्द-सूची का प्रयोग करना उपयोगी होगा.

दूसरी बात, जैसे स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्या होने पर अलग-अलग डाक्टरों के निदान एवं इलाज अलग-अलग हो सकते हैं, यहाँ तक कि वैज्ञानिकों में भी मतभेद होते हैं (उदाहरण के तौर पर परमाणु ऊर्जा मानव हित में है या नहीं इस बारे में वैज्ञानिकों में गहरे मतभेद हैं), इसी तरह अर्थशास्त्रियों में भी मतभेद होते हैं. उदाहरण के तौर पर गांधी का अर्थशास्त्र एवं मार्क्स का अर्थशास्त्र अलग हैं- विषय-वस्तु अलग-अलग है, प्राथमिकताएँ अलग हैं. इस पुस्तक में हम किस अर्थशास्त्र की बात करेंगे? यह किताब वर्तमान में प्रचलित अर्थशास्त्र की मुख्य धारा पर केन्द्रित है. जगह-जगह इस धारा या इस के किसी पक्ष की आलोचना भी की जाएगी परन्तु इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य वर्तमान में प्रचलित अर्थशास्त्र की मुख्य धारा की जानकारी देनी है. कई बार हम अर्थशास्त्र से पहले आधुनिक या प्रचलित जैसे विशेषण जोड़ देंगे परन्तु हर बार ऐसा करना उपयुक्त नहीं होगा. **इस लिए अगर सन्दर्भ अन्यथा न हो तो अर्थशास्त्र का अर्थ माना जाए वर्तमान में प्रचलित अर्थशास्त्र की मुख्य धारा. इसे नव-शास्त्रीय (neoclassical) धारा कहा जाता है.**[1]

मानव जीवन के सभी पक्ष एक दूसरे से जुड़े हुए हैं. केवल अध्ययन की सुविधा के लिए समाज शास्त्र, राजनीति शास्त्र एवं अर्थशास्त्र जैसे विषयों के अंतर्गत मानव जीवन के विशिष्ट पक्षों का विभाजन किया जाता है. यह बंटवारा केवल अध्ययन की सुविधा के लिए ही किया जाता है. कई परिस्थितियों में यह बंटवारा उपयोगी नहीं भी होता है. राजनीति एवं अर्थ-नीति के एक दूसरे पर पड़ने वाले प्रभाव जगजाहिर हैं. क्योंकि सभी पक्षों को एक साथ देखना जटिल होता है, इस लिए, कम से कम प्रारंभिक तौर पर, विभिन्न पक्षों का अलग-अलग अध्ययन किया जाता है.

अर्थशास्त्र मानव जीवन के किस पक्ष का अध्ययन करता है? ऐसा माना जाता है कि आदिकाल में मानव एक समूह के रूप में रहता था. खाद्य सामग्री जैसी अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ये समूह आत्मनिर्भर थे. धीरे-धीरे मानव समूहों के अन्दर कामों का बंटवारा हुआ परन्तु इस के बावजूद लम्बे समय तक हर एक मानव समूह अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आत्मनिर्भर बना रहा. दूसरे समूहों से जीवन-उपयोगी सामग्री का आदान-प्रदान बहुत बाद में आया एवं ऐसे सामग्री का अनुपात सीमित ही रहा. जीवन-उपयोगी आवश्यकताओं की पूर्ति का अध्ययन एक रुचिकर एवं महत्त्वपूर्ण विषय है. इस का एक भौतिक या तकनीकी पक्ष है; जैसे, अनाज पैदा करने की तकनीक या कपड़ा बनाने की प्रक्रिया. इस पक्ष का अध्ययन उस वस्तु से सम्बन्धित वैज्ञानिक करते हैं. उदाहरण के तौर पर, कृषि वैज्ञानिक अनाज या खाद्य सामग्री के उत्पादन के तौर तरीकों एवं उन में सुधार की संभावनाओं का अध्ययन करते हैं. जीवन-उपयोगी आवश्यकताओं की पूर्ति के तकनीकी पक्ष के अलावा, एक पक्ष और भी है जिस का अध्ययन अर्थशास्त्र करता है. **अर्थशास्त्र जीवन-उपयोगी आवश्यकताओं की पूर्ति की प्रक्रिया में पनपे मानव सम्बन्धों, निर्णय प्रक्रियाओं एवं सामाजिक ढांचों का अध्ययन करता है.**

[1] इस नामकरण को समझने का हम प्रयास नहीं करेंगे क्योंकि ऐसा करने के लिए हमें अर्थशास्त्र के इतिहास में जाना होगा, जो हमें अपने वर्तमान विषय से दूर ले जाएगा.

जीवन-उपयोगी आवश्यकताओं की पूर्ति के ढाँचे को हम अर्थव्यवस्था कहते हैं एवं इस ढाँचे एवं इस ढाँचे में सम्मिलित प्रक्रियाओं के अध्ययन को अर्थशास्त्र. मानवों या मानव समूहों के बीच जीवन-उपयोगी आवश्यकताओं की पूर्ति कैसे होती है, इस प्रक्रिया में इंसानों के बीच कैसे सम्बन्ध विकसित होते हैं एवं इन सम्बन्धों को कैसे सुधारा जा सकता है, यह अर्थशास्त्र की मूल विषय-वस्तु है.

वर्तमान में अर्थशास्त्र की बुनियाद इस तथ्य पर आधारित मानी जाती है कि मनुष्य को उपलब्ध संसाधन सीमित हैं एवं मनुष्य की ज़रूरतें असीमित हैं. अगर संसाधन सीमित हों एवं ज़रूरतें असीमित, तो मनुष्य को चुनाव करना ही पड़ता है. सीमित आय को किन उपभोग की वस्तुओं पर ख़र्च करना है, यह निर्णय या चुनाव इस परिस्थिति में एक बुनियादी समस्या बन ही जाती है क्योंकि असीमित ज़रूरतों के चलते सब ज़रूरतें पूरी नहीं हो सकती. इसी तरह, सीमित ज़मीन, सीमित पानी से क्या और कितनी फसल उगानी है, यह निर्णय लेना ही पड़ता है क्योंकि सीमित साधनों के चलते सभी वस्तु मनचाही मात्रा में नहीं उगाई जा सकती. इन प्रश्नों को संसाधनों के वितरण की समस्या कहा जाता है. इस चुनाव की प्रक्रिया का अध्ययन आजकल अर्थशास्त्र की मुख्य विषय-वस्तु मानी जाती है.

दूसरे दृष्टिकोण से देखेंगे तो पायेंगे कि मनुष्य की ज़रूरतें असीमित नहीं हैं- एक समय पर एक बिस्तर में ही सो सकता है, एक समय पर थोड़े ही कपड़े पहन सकता है और अधिक खाने से मनुष्य बीमार पड़ जाता है. न ही मनुष्य के संसाधन सीमित हैं - बल्कि अधिक आराम करने से भी कई तरह की बीमारियाँ हो जाती हैं. 'सीमित संसाधन एवं असीमित ज़रूरतों' का नज़रिया मनुष्य के इतिहास में एक ख़ास समय-काल में ही विकसित हुआ है. मुख्य तौर पर क्रय-विक्रय/ बाज़ार आधारित अर्थव्यवस्था में ही 'सीमित संसाधन एवं असीमित ज़रूरतों' की स्थिति पनपती है.[2] क्योंकि आधुनिक अर्थशास्त्र मुख्य तौर पर क्रय-विक्रय अथवा बाज़ार आधारित अर्थव्यवस्था तक सीमित है, इस लिए **आधुनिक अर्थशास्त्र 'सीमित संसाधन एवं असीमित ज़रूरतों' को अर्थशास्त्र की बुनियादी समस्या मानता है. परन्तु यह सर्व-देशीय एवं सर्व-कालिक यानी हर देश एवं हर समय यानी हमेशा के लिए सही नहीं है.** भले ही आज के अर्थशास्त्र की मुख्य धारा का आधार 'सीमित संसाधन एवं असीमित ज़रूरतों' पर आधारित है परन्तु अब पर्यावरणीय समस्याओं एवं अन्य कारणों से बहुत से देशों में उत्पादन बढ़ाने के स्थान पर उत्पादन और काम के घंटे कम करने (degrowth) की माँग उठ रही है, अधिकतम उपभोग के स्थान पर न्यूनतम आवश्यक उपभोग का विचार पनप रहा है. इस लिए 'सीमित संसाधन एवं असीमित ज़रूरतों' का अर्थशास्त्र व्यापक अर्थशास्त्र का एक छोटा हिस्सा मात्र है. अर्थशास्त्र की व्यापक परिभाषा - अर्थशास्त्र जीवन-उपयोगी आवश्यकताओं की पूर्ति की प्रक्रिया में पनपे मानव सम्बन्धों, निर्णय प्रक्रियाओं एवं सामाजिक ढांचों का अध्ययन करता है- के अंतर्गत यह भी शामिल है.

मानव इतिहास में अर्थव्यवस्था कई पड़ावों से गुजरी है. आज बड़े पैमाने पर व्यक्ति एवं मानव समूह, दोनों, आत्मनिर्भर न रह कर एक दूसरे पर निर्भर हो गए हैं एवं क्रय-विक्रय के माध्यम से ही अधिकांश जीवन-उपयोगी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है. परन्तु न हमेशा से ऐसा था और न ही अब भी हर मामले में ऐसा होता है. इतिहासकारों का मानना है कि बड़े लम्बे समय तक मानव जीवन-उपयोगी आवश्यकताओं की पूर्ति में बड़े पैमाने पर व्यक्तिगत स्तर अथवा समूह के स्तर पर आत्मनिर्भर रहा है. अलग-थलग रहने वाले कुछ आदिवासी समूह आज भी काफ़ी हद तक आत्मनिर्भर जीवन जीते हैं. आधुनिक अर्थव्यवस्था में आज भी हम बिना क्रय विक्रय के एक दूसरे की सहायता करते हैं एवं यह सहायता जीवन-उपयोगी है, बिना ऐसी सहायता के जीवन दूभर हो जाएगा. सोच कर देखिये कि अगर नए गाँव में कोई शुल्क लिए बिना या विज्ञापन दिखाए बिना आप को कहीं का रास्ता न बताये, तो हमारा जीवन कितना मुश्किल हो जाएगा. आज भले ही जानी-मानी जगहों की जानकारी इन्टरनैट से मिल जाये, परन्तु बहुत सी जगह ऐसी हैं जिन पर बिना मानवीय सहायता के पहुँचना आज भी मुश्किल है और यह मानवीय सहायता बिना शुल्क चुकाए आज भी उपलब्ध है. इस के अलावा बड़ी विशालकाय कम्पनियों के विभिन्न घटकों के बीच, उदाहरण के तौर पर, मारुति कार की उत्पादक कम्पनी की भारतीय एवं जापानी इकाई के बीच का लेनदेन पूरी

---

[2] मुख्य तौर पर क्रय-विक्रय आधारित अर्थव्यवस्था को कई नामों से पुकारा जाता है. खुली अर्थव्यवस्था/बाज़ार अर्थव्यवस्था/पूंजीवादी अर्थव्यवस्था. इन नामों के पीछे अलग-अलग मूल्यबोध हैं. इन की चर्चा हमें वर्तमान विषय से दूर ले जायेगी. संक्षेप में कह सकते हैं कि ऐसी अर्थव्यवस्था के अनिवार्य तत्व हैं - उत्पादन के अधिकांश संसाधनों का निजी सम्पत्ति होना, उत्पादन मुख्यतः बिक्री के उद्देश्य के लिए होना एवं सरकार/समाज की सामूहिक, सचेत भूमिका को कम से कम रखने का मूल्य बोध.

तरह से क्रय-विक्रय अथवा बाज़ार आधारित नहीं है. **फिर भी यह तो स्वीकार करना ही होगा कि पिछले कई दशकों से क्रय-विक्रय जीवन-उपयोगी आवश्यकताओं की पूर्ति का बड़ा माध्यम बन गया है.**

आधुनिक अर्थशास्त्र बहुत हद तक ऐसी क्रय-विक्रय केन्द्रित बाज़ार अर्थव्यवस्था के अध्ययन से विकसित हुआ है. विशेष तौर से पिछली सदी के अंतिम हिस्से में बिना क्रय-विक्रय वाली अर्थव्यवस्थाओं का अध्ययन, ऐसी अर्थव्यवस्थाओं का अध्ययन जिन में बड़े पैमाने पर उत्पादन के साधन निजी सम्पत्ति नहीं हैं, बहुत सीमित हो गया. यद्यपि यह पुस्तक क्रय-विक्रय आधारित अर्थव्यवस्था, जिसे पूँजीवाद भी कहा जाता है, के अध्ययन पर केन्द्रित है परन्तु **हमें आधुनिक अर्थशास्त्र की इस सीमा को, कि यह मानव जीवन काल के एक छोटे हिस्से के अनुभव पर आधारित है, हमेशा ध्यान में रखना चाहिए. अपितु प्रचलित आम धारणा कि विपरीत हम यह भी पाएँगे कि आधुनिक अर्थशास्त्र के अनुसार भी अर्थव्यवस्था में सामाजिक/सरकारी हस्तक्षेप का महत्त्वपूर्ण स्थान है.**

सीमित मात्रा में वस्तुओं का क्रय विक्रय लम्बे समय से चला आ रहा है परन्तु आज यह न केवल बहुत व्यापक हो गया है अपितु वस्तुओं के क्रय-विक्रय से बढ़ कर मानव श्रम भी क्रय-विक्रय की प्रक्रिया में शामिल हो गया है. क्रय -विक्रय आधारित अर्थव्यवस्था का अभिन्न अंग है कीमत; कीमत वस्तु की एवं सेवाओं की, उपभोग की वस्तुओं की, मशीनों की एवं विभिन्न तरह के मानव श्रम की. इस लिए कीमत निर्धारण की प्रक्रिया का अध्ययन अर्थशास्त्र का एक बड़ा भाग है. क्रय-विक्रय का दूसरा अभिन्न पक्ष है उत्पादन एवं उपभोग का निर्णय लेना, कितना एवं कैसे उत्पादन करना है. (फ़िलहाल इन शब्दों- वस्तुओं, सेवाओं, उत्पादन, उपयोग इत्यादि को सामान्य बोलचाल के अर्थ में ही समझा जाए. आगे चल कर हम इन को भी परिभाषित करेंगे.) इकाई आधारित अर्थशास्त्र जिन प्रश्नों पर विचार करता है उन में ये तीन प्रश्न महत्त्वपूर्ण हैं. विभिन्न वस्तुओं की कीमत निर्धारण, उन की उत्पादन की मात्रा एवं उत्पादन विधि सम्बन्धी निर्णयों का अध्ययन इकाई आधारित अर्थशास्त्र के मुख्य प्रश्न हैं. क्योंकि आधुनिक अर्थव्यवस्था में उत्पादन प्रक्रिया में आम तौर पर कई व्यक्ति शामिल होते हैं, इस लिए उत्पादन का इन के बीच वितरण भी एक बड़ा मुद्दा है. वितरण में न केवल वस्तुओं का व्यक्तियों के बीच वितरण का सवाल उठता है अपितु यह भी विचारणीय मुद्दा होता है कि कितना हिस्सा आज उपभोग में प्रयोग किया जाए एवं कितना भविष्य के लिए बचाया जाए. उदाहरण के लिए, किसान उत्पादित गेहूं को खा भी सकता है एवं बीज के रूप में संरक्षित भी कर सकता है. यह निर्णय किस तरह से किया जाता है, यह प्रश्न भी अर्थशास्त्र के अध्ययन का विषय है.

परन्तु इतना अध्ययन करना पर्याप्त नहीं है कि अर्थव्यवस्था में उपभोग एवं उत्पादन सम्बन्धी निर्णय कैसे लिए जा रहे हैं. इस पर भी विचार करना उपयोगी होगा कि क्या इस निर्णय प्रक्रिया को, वस्तुओं के वितरण (एवं उत्पादन इत्यादि) की व्यवस्था को सुधारा जा सकता है. यानी दोनों तरह के प्रश्न विचारणीय हैं: वर्तमान व्यवस्था क्या है, कैसे काम करती है एवं क्या वर्तमान व्यवस्था को सुधारा जा सकता है. ये दोनों प्रश्न अर्थशास्त्र के अध्ययन का विषय हैं. आम तौर पर पहले प्रश्न के अध्ययन को- **कि अर्थव्यवस्था कैसे संचालित हो रही है, व्याख्यात्मक अर्थशास्त्र (positive economics) कहते हैं और क्या अर्थव्यवस्था में सुधार की गुंजाइश है जैसे प्रश्नों के अध्ययन को मूल्यांकन अर्थशास्त्र (normative economics) कहते हैं.** अर्थव्यवस्था के कुछ अन्य पक्षों ने भी ध्यान आकर्षित किया है. समय-समय पर ऐसे अवसर भी आयें हैं जब देश/दुनिया में बड़े पैमाने पर बेरोजगारी भी रही है और वस्तुओं की कमी भी. वस्तुओं की कमी एवं बेरोजगार व्यक्ति एवं बंद पड़ी मशीनों के विरोधाभास ने ध्यान आकर्षित किया. ऐसा क्यों होता है? क्यों कुछ देश संपन्न हैं और कुछ देश ग़रीब? कुछ देशों की उत्पादन क्षमता तेज़ी से आगे बढ़ती है और अन्य देशों की नहीं, इन प्रश्नों ने भी अर्थशास्त्रियों को आकर्षित किया है.

अर्थशास्त्र की विभिन्न शाखाएं भिन्न-भिन्न प्रश्नों पर ध्यान केन्द्रित करती हैं. **अर्थशास्त्र में एक बड़ा विभाजन व्यष्टि अर्थशास्त्र (Microeconomics), जिसे हम इकाई आधारित अर्थशास्त्र कहेंगे एवं समष्टि अर्थशास्त्र (Macroeconomics), जिसे हम समग्र अर्थशास्त्र कह सकते हैं, का है.** इकाई आधारित अर्थशास्त्र में हम एक छोटी इकाई – एक उपभोक्ता, एक उत्पादक, एक उद्योग - की निर्णय प्रक्रिया पर ध्यान केन्द्रित करते हैं. परन्तु ऐसा करते हुए भी हमारा उद्देश्य पूरी अर्थव्यवस्था को समझना होता है. क व्यक्ति क्या खा रहा है या क्या उत्पादन कर रहा है, इस में व्यापक समाज की क्या रुचि हो सकती है? परन्तु अगर क सभी उपभोक्ताओं या उत्पादकों का प्रतिनिधि है, तब हमारी उस के व्यवहार में निश्चित तौर पर रुचि होगी क्योंकि उस के व्यवहार के अध्ययन से हमें पूरी

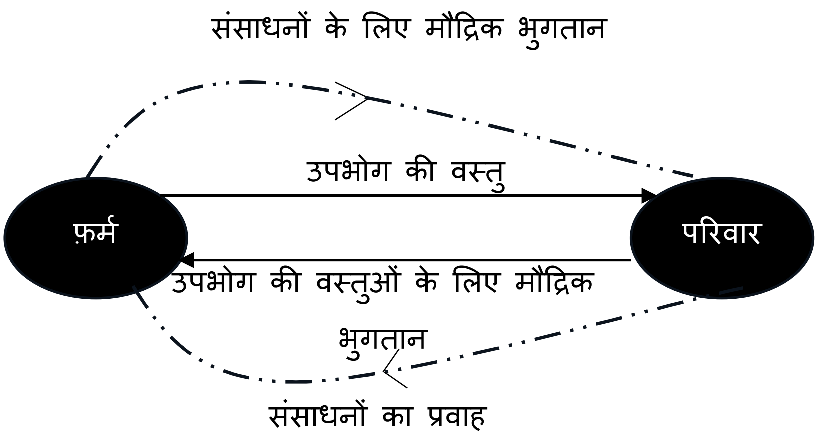
अर्थव्यवस्था को समझने में सहायता मिलेगी. **इकाई आधारित अर्थशास्त्र एक छोटी इकाई, उपभोक्ता, उत्पादक या एक वस्तु/उद्योग की निर्णय प्रक्रिया पर ध्यान केन्द्रित कर के पूरी अर्थव्यवस्था को समझने का प्रयास करता है.** इस के विपरीत समष्टि या समग्र अर्थशास्त्र तुलनात्मक रूप से बड़े समूहों का अध्ययन करता है. उदाहरण के तौर पर समग्र अर्थशास्त्र किसी एक वस्तु अ के दाम या उपभोग मात्रा पर ध्यान केन्द्रित न कर के अर्थव्यवस्था में होने वाले कुल उपभोग, कुल उत्पादन, औसत मूल्य स्तर इत्यादि का अध्ययन करता है. **इकाई आधारित अर्थशास्त्र एवं समग्र अर्थशास्त्र दोनों का उद्देश्य ही अर्थव्यवस्था का अध्ययन करना है. उन में अंतर अध्ययन के लिए चुनी गई इकाई का है न कि उद्देश्यों का.** इस लिए यह कहना ग़लत होगा कि इकाई आधारित अर्थशास्त्र एक उपभोक्ता या उत्पादक का अध्ययन करता है एवं समग्र अर्थशास्त्र पूरी अर्थव्यवस्था का. दोनों का उद्देश्य पूरी अर्थव्यवस्था को ही समझना है परन्तु उन के अध्ययन के केंद्र में स्थित इकाई अलग हैं. इस लिए इन के द्वारा चिह्नित मुद्दे भी अलग हैं परन्तु उद्देश्य दोनों का एक ही है. यह पुस्तक इकाई आधारित अर्थशास्त्र की है. समग्र अर्थशास्त्र या विकास का अर्थशास्त्र इत्यादि के प्रश्न इस पुस्तक की विषय-वस्तु में शामिल नहीं हैं. इकाई आधारित अर्थशास्त्र या माइक्रोइकनौमिक्स को कीमत का सिद्धांत (price theory) या मूल्य एवं वितरण का सिद्धांत (theory of value and distribution) भी कहा जाता है. इस लिए इन नामों वाली पुस्तकों की विषय-वस्तु भी वर्तमान पुस्तक जैसी ही होगी.

कुछ परिभाषाएं: हर विषय में आम बोलचाल के शब्दों का प्रयोग किया जाता है परन्तु कई बार यह प्रयोग सामान्य बोलचाल के प्रयोग से अलग हट कर होता है. अर्थशास्त्र में भी ऐसा ही होता है. इस लिए आम बोलचाल के शब्दों का अर्थशास्त्र में क्या विशिष्ट अर्थ होता है, यह समझना यानी परिभाषाओं को समझना आवश्यक हो जाता है. उदाहरण के तौर पर, उपभोग की छोटी से छोटी निर्णय की इकाई के लिए अर्थशास्त्र का प्रचलित शब्द है परिवार (household) एवं उत्पादन की छोटी से छोटी इकाई के लिए शब्द है फ़र्म (firm). इन दोनों शब्दों की सटीक परिभाषा बोलचाल में इन शब्दों के अर्थ से अलग है.

अर्थशास्त्र में फ़र्म का अर्थ है बिक्री के लिए उत्पादन करने वाली वह इकाई जो स्वतन्त्र रूप से उत्पादन सम्बन्धी निर्णय लेती है. अर्थशास्त्र में अपनी ज़मीन पर स्वतंत्र रूप से खेती करने वाला एक किसान भी फ़र्म है और एक दुकानदार भी फ़र्म है; स्वतंत्र रूप से स्कूटर ठीक करने वाला मिस्त्री भी फ़र्म है और बिक्री के लिए मुर्गी पालन करने वाली महिला भी फ़र्म है. जो भी स्वतंत्र इकाई उत्पादन करती है वह अर्थशास्त्र में फ़र्म कहलाती है. उस का बड़ी या नामी कम्पनी होना आवश्यक नहीं है परन्तु उत्पादन का बिक्री के लिए होना आवश्यक है. अपने परिवार के लिए खाना बनाना उत्पादन नहीं है और न ही ऐसा काम करने वाली इकाई उत्पादक फ़र्म परन्तु बिक्री के लिए खाना बनाना उत्पादन है एवं उस को बनाने वाला फ़र्म. दूसरी ओर **प्रत्येक स्वतन्त्र उपभोक्ता अर्थशास्त्र में परिवार है.** परिवार में एक सदस्य भी हो सकता है व एक सौ भी हो सकते हैं. एक छात्रावास, जहाँ सहकारी भोजनशाला है जिसमें रहवासी मिल बाँट कर भोजन की व्यवस्था करते हैं, भी अर्थशास्त्र की नज़र में परिवार है. अर्थशास्त्र में परिवार का मूल तत्त्व है कि परिवार की आय एक बटुए में जाती है एवं एक बटुए से ख़र्च होती है. यह माना जाता है कि परिवार ऐसे निर्णय ले रहा है जैसे एक व्यक्ति निर्णय ले रहा हो. परिवार के अन्दर निर्णय कैसे लिए जाते हैं- जनतांत्रिक तरीके से सब की सलाह से या तानाशाही रूप से, अर्थशास्त्र में इस को अनदेखा किया जाता है. भले ही उस में कई सदस्य हों, परिवार को एकल व्यक्ति के रूप में देखा जाता है.

आधुनिक अर्थशास्त्र के सब से सरल स्वरूप में यह माना जाता है कि अर्थव्यवस्था दो हिस्सों या घटकों में बंटी है. एक ओर उपभोक्ता या परिवार हैं ओर दूसरी ओर उत्पादक यानी फ़र्म हैं. परिवार सभी उत्पादक संसाधनों के मालिक होते हैं एवं सभी जीवन-उपयोगी वस्तुओं के उपभोक्ता होते हैं. फ़र्म के पास उपलब्ध मशीनों इत्यादि के असली मालिक वे व्यक्ति या परिवार हैं जो इस फ़र्म के मालिक हैं. इस लिए सभी उत्पादक संसाधनों का मालिक परिवारों को माना जाता है. फ़र्म उन संसाधनों का उपयोग करने वाली इकाई मात्र है. फ़र्म परिवारों से उत्पादक संसाधन प्राप्त कर के इन संसाधनों के उपयोग से वस्तुओं का उत्पादन कर के उस का विक्रय करती है. फ़र्म संसाधनों के मालिकों को यानी परिवारों को उन द्वारा प्रदान किए गए संसाधनों के लिए भुगतान करती है एवं परिवार फ़र्म से प्राप्त भुगतान से फ़र्म द्वारा उत्पादित वस्तुओं को ख़रीद कर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं. यानी परिवार एवं फ़र्म के बीच आदान-प्रदान दो तरह का भी होता है एवं दोहरा भी होता है. परिवार एवं फ़र्म के बीच एक आदान-प्रदान प्रक्रिया में परिवार से फ़र्म को उत्पादन के 'भौतिक' संसाधन उपलब्ध कराये जाते हैं जिन के एवज़ में फ़र्म परिवार को 'मौद्रिक' भुगतान करती है. यानी एक ओर से भौतिक साधन उपलब्ध

कराये जाते हैं एवं दूसरी ओर से इन के लिए मौद्रिक भुगतान होता है. परिवार एवं फ़र्म के बीच आदान-प्रदान की दूसरी कड़ी में फ़र्म परिवार को 'भौतिक' वस्तु (अथवा सेवाएँ) उपलब्ध कराती है जिस की एवज में परिवार फ़र्म को 'मौद्रिक' भुगतान करता है. यानी आदान-प्रदान की इन दो कड़ियों में एक ओर से वास्तविक वस्तु/सेवाएँ/संसाधन उपलब्ध कराये जाते हैं और दूसरी ओर से मौद्रिक भुगतान होता है. इसे अर्थव्यवस्था का गोलाकार प्रवाह (circular flow of economy) कहते हैं यानी जहाँ से शुरुआत होती है, वहीं आ कर अंत होता है एवं पुन: शुरुआत होती है. हम अपने अध्ययन का प्रारंभ अर्थव्यवस्था के इस दो घटक स्वरूप – उपभोक्ता एवं फ़र्म - से करेंगे. बाद में सरकार एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को शामिल कर के इसे क्रमशः अधिक जटिल स्वरूप दिया जा सकता है. चित्र 1 में यह आदान-प्रदान दिखाया गया है.



चित्र 1-अर्थव्यवस्था का गोलाकार प्रवाह

उत्पादन क्या है ? आधुनिक अर्थशास्त्र में बिक्री के लिए पैदा की गई हर वस्तु को उत्पादन कहते हैं एवं केवल बिक्री हेतु उपलब्ध कराई गई वस्तु को ही उत्पादन कहते हैं. इस लिए घर में अपने लिए खाना तैयार करना उत्पादन में नहीं आता क्योंकि वह बिक्री के लिए नहीं है. वही खाना अगर बिक्री के लिए तैयार किया जाता है तो वह उत्पादन कहलाता है. इस लिए बिक्री के लिए उत्पादन में प्रयोग किए जाने वाले श्रम को ही उत्पादक माना जाता है. परोपकार के लिए मुफ़्त में कोई सेवा उपलब्ध कराना- किसी को पढ़ाना - उत्पादन में शामिल नहीं किया जाता एवं न ही इस में लगने वाले श्रम को उत्पादक माना जाता है. **इस प्रकार आधुनिक अर्थशास्त्र में हर उपयोगी वस्तु को तैयार करना उत्पादन नहीं कहलाता.**[3] **इस के ठीक विपरीत यह भी आवश्यक नहीं है कि हर उत्पादित वस्तु मानव हित में हो.** मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक परन्तु बिक्री योग्य पदार्थों को उपलब्ध कराना भी उत्पादन कहलाता है. इस के अलावा, अर्थ-शास्त्रीय उत्पादन में केवल प्रचलित 'उत्पादन' शामिल नहीं है. **खेत से फसल को मंडी पहुँचाना भी उत्पादन माना जाता है.** कश्मीर से तैयार सेब को मैदानी इलाकों में पहुंचाना भी उत्पादक क्रिया मानी जाती है. इसी तरह आलू का सुरक्षित भण्डारण कर के कुछ महीने बाद उपलब्ध कराना भी उत्पादन माना जाता है. **यानी वह हर प्रक्रिया जो बिक्री हेतु वस्तु का उत्पादन करती है अथवा उपलब्ध वस्तु को भिन्न, अधिक उपयोगी स्वरूप (गेहूं को आटे या परांठे के रूप में) में या भिन्न समय या स्थान पर उपलब्ध कराती है एवं जिस की बिक्री संभव है, उत्पादन कहलाती है.** उत्पादन में ठोस वस्तु या उस से सम्बन्धित सेवा ही शामिल नहीं है अपितु 'मनोरंजन' करना भी शामिल है. इस लिए न केवल उत्पादित वस्तु को मंडी पहुँचाना या भंडारण करना उत्पादन में शामिल हैं बल्कि शुल्क या वेतन-दर ले कर 'पढ़ाना', 'मनोरंजन' करना, पूजा करवाना इत्यादि भी उत्पादन में शामिल है. **केवल ग़ैर-कानूनी वस्तुओं/सेवाओं की बिक्री को उत्पादन नहीं माना जाता यानी रिश्वत लेना-देना उत्पादन का हिस्सा नहीं है.**[4] हम आम तौर पर वस्तु

[3] परन्तु भारत जैसे देश के राष्ट्रीय उत्पादन की गणना में विशेष तौर पर कृषि जैसे क्षेत्र में खुद उपयोग के लिए रखे अनाज की गणना का अंदाजा लगाया जाता है एवं इसे कृषि उत्पादन में शामिल किया जाता है. यह अपवाद है.

[4] कानून देश-काल अनुसार बदलते रहते हैं. कई देशों में नशीले पदार्थों की बिक्री ग़ैर-कानूनी है और कई देशों में कानूनी. इस लिए कौन-सा श्रम उत्पादक है और कौन-सा नहीं, यह भी बदलता रहता है.

उत्पादन का ज़िक्र करेंगे न कि वस्तुओं एवं सेवाओं, दोनों के उत्पादन का परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि जब वस्तु उत्पादन का ज़िक्र हो तो उस में सेवाओं को भी शामिल मान लिया जाना चाहिए.

श्रम, भूमि एवं पूँजी: उत्पादन के साधनों को आम तौर पर इन तीन श्रेणियों में बाँटा जाता है. श्रम में हर तरह की मानवीय क्षमता शामिल है. अर्थशास्त्र में शुल्क या वेतन-दर के बदले काम करने वाला डाक्टर भी श्रम संसाधन है और सर पर बोझा ढोने वाला मजदूर भी. अर्थशास्त्र में श्रमिक का अर्थ सामान्य मजदूर तक सीमित नहीं है और मजदूरी का अर्थ केवल दिहाड़ी नहीं है. किसी भी रूप में मानव द्वारा किए गए श्रम के लिए किए गए भुगतान को मजदूरी कहते हैं. कई बार उद्यमिता (entrepreneurship) यानी श्रम, भूमि एवं पूँजी को एकत्रित कर के उत्पादन करने की व्यवस्था करना) को चौथा संसाधन मान लेते हैं परन्तु अधिकांश तौर पर इस को भी श्रम में शामिल माना जाता है.

भूमि में हर तरह का प्राकृतिक संसाधन, जिस का उत्पादन में योगदान होता है एवं जो बिक्री हेतु उपलब्ध है, शामिल होता है. पानी, धरती के गर्भ में उपलब्ध खनिज तत्त्व एवं जंगल के पेड़, सभी अर्थशास्त्र में भूमि कहलाते हैं. परन्तु जो प्राकृतिक संसाधन बिक्री हेतु उपलब्ध नहीं है, जैसे मौसम, वह भूमि नहीं कहलाता. पूँजी में मानवीय श्रम को छोड़ कर सब तरह के मानव निर्मित संसाधन, जो उत्पादन में सहायक होते हैं एवं बिक्री के लिए उपलब्ध होते हैं, शामिल होते हैं. व्यापार में लगाया पैसा ही पूँजी नहीं है, मशीनें एवं उत्पादन के लिए निर्मित भवन भी पूँजी कहलाते हैं.

जल एवं जंगल को भूमि कहना कितना उचित है? किसी भी परिस्थिति या प्रक्रिया या अवस्था को समझने के लिए उस को छोटे छोटे हिस्सों में बाँटा जाता है. ऐसे कोई भी विभाजन कुछ हद तक अतार्किक होता है; कहीं हम समानता की अनदेखी करते हैं तो कहीं विभिन्नताओं अनदेखी करते हैं. उदाहरण के लिए, 33 अंक लेने वाला पास और 32 अंक लेने वाला फेल. 100 अंकों की परीक्षा में मात्र 1 अंक के अंतर से एक व्यक्ति का साल ख़राब हो जाए एवं दूसरे का बच जाए, यह किसी भी तरह से उचित प्रतीत नहीं होता. परन्तु कहीं तो सीमा रेखा खींचनी ही होगी. कोई सीमा रेखा न होने पर पास-फेल की मनमानी सीमा रेखा हो जाएगी जो कि वर्तमान स्थिति से भी ख़राब स्थिति होगी. इस लिए श्रेणियों में वर्गीकरण का मूल्यांकन हमें उस के सही ग़लत के आधार पर न कर के श्रेणी विभाजन की उपयोगिता के आधार पर करना चाहिए. इस लिए जल एवं जंगल को भूमि मानना कितना ठीक है या नहीं या किन परिस्थितियों में उपयुक्त है और किन में नहीं, यह इस तरह के वर्गीकरण की उपयोगिता से तय होगा. इस का मूल्यांकन आप कर पायेंगे जब आप इस वर्गीकरण का आगे चल कर उपयोग करेंगे. वर्गीकरण से सम्बन्धित एक अन्य उदाहरण की ओर ध्यान आकर्षित करना उपयोगी होगा. ऊपर हम ने दो जगह अर्थशास्त्र का दो भिन्न तरीकों से वर्गीकरण किया है. एक बार अर्थशास्त्र को व्याख्यात्मक (positive) अर्थशास्त्र एवं मूल्यांकन (normative) अर्थशास्त्र में बाँटा और एक जगह इकाई आधारित अर्थशास्त्र (Microeconomics) एवं समग्र अर्थशास्त्र (Macroeconomics) में. यह उदाहरण हमारी इस बात की पुष्टि करते हैं कि वर्गीकरण सन्दर्भ के हिसाब से बदल सकता है. हम जानते ही हैं कि समाज को स्त्री-पुरुष में भी बाँटा जा सकता है एवं साक्षर एवं निरक्षर में भी; बल्कि अनेक तरह से बाँटा जा सकता है. कैसे बांटना है, कैसे श्रेणीबद्ध करना है यह सन्दर्भ से तय होता है.

नक्शा ज़रूरी या चित्र? किसी जगह की जानकारी उस जगह के चित्र या फ़ोटो से भी मिल सकती है एवं उस जगह का मोटा खाका खींचने वाले नक़्शे से भी. उद्देश्य के अनुरूप दोनों -नक्शा एवं चित्र उपयोगी हो सकते हैं. अगर आप को किसी व्यक्ति को कहीं का रास्ता समझाना है, तो मोटी-मोटी जानकारी वाला नक्शा पर्याप्त है, उस के लिए रास्ते के हर पेड़ पौधे को दिखाना न केवल अनावश्यक है अपितु ये अतिरिक्त विवरण रास्ता समझने में दिक़्क़त पैदा कर सकते हैं. इसी प्रकार मानव जीवन को समझने के लिए उस का हू बहू चित्र बनाना आवश्यक नहीं है, उस का मोटा-मोटा नक्शा बनाना न केवल पर्याप्त होता है अपितु ज़्यादा उपयुक्त भी हो सकता है. इस लिए **मानव जीवन के किसी पक्ष को समझने के लिए बनाए गए सिद्धांतों में मानव जीवन का हू बहू चित्र न ले कर उस के आवश्यक तत्त्व/पहलू ही लिए जाते हैं. तत्त्वों का ऐसा पृथक्करण (abstraction)/सार निकालना जीवन को समझने की प्रक्रिया का एक आवश्यक अंग है.**

मान्यताएँ (assumptions) पृथक्करण की इस प्रक्रिया का ही अंग हैं. इस पुस्तक में जगह-जगह आप को कई बिलकुल अस्वाभाविक मान्यताएँ भी मिलेंगी, ऐसी मान्यताएँ जो स्पष्टतः वास्तविक जीवन से मेल नहीं खाती. जैसे मान लो कि किसी अर्थव्यवस्था में कुल दो व्यक्ति हैं और कुल दो ही वस्तु हैं. अब न तो आम तौर पर किसी अर्थव्यवस्था में केवल दो व्यक्ति होते हैं और न ही उन को केवल दो वस्तुओं के बीच ही चुनाव करना होता है. ऐसा केवल सुविधा के लिए माना जाता है क्योंकि बोर्ड या कापी में दो वस्तुओं को दिखाना आसान है -एक को लम्बाई में और एक को चौड़ाई में, एक को क्ष अक्ष पर और दूसरे को य अक्ष पर. अगर वस्तु या उपभोक्ता दो से अधिक होने पर भी निष्कर्षों पर असर नहीं पड़ता तो ऐसा मानने में कोई हर्ज़ नहीं है. ऐसी अवास्तविक मान्यताओं को जिन का निष्कर्षों पर कोई असर नहीं पड़ता सुविधाजनक मान्यता (simplifying assumption) अथवा पूर्व धारणा कहते हैं. लेकिन अगर किसी मान्यता के प्रयोग से निष्कर्ष प्रभावित होते हैं तो ऐसी मान्यता को प्रतिबन्धात्मक मान्यता (restrictive assumption) कहते हैं. ऐसी मान्यता को प्रतिबन्धात्मक मान्यता इस लिए कहते हैं क्योंकि इस मान्यता के चलते निकले निष्कर्ष उन्हीं सीमित/संकुचित अवस्थाओं में लागू होंगे जिन में ये मान्यता प्रभावी होगी.

आम तौर पर मान्यताओं का मूल्यांकन उन की उपयोगिता से होता है. यानी हम मान्यताओं की वास्तविकता या अवास्तविकता पर ध्यान न दे कर उस मान्यता से निकले निष्कर्षों की वास्तविकता के आधार पर उस मान्यता के उपयोग का मूल्यांकन करते हैं.[5] अगर किसी मान्यता से निकले निष्कर्ष सही हैं, वास्तविक जीवन से मेल खाते हैं तो मान्यता का अवास्तविक होना चिंता की बात नहीं है. **केवल एक परिस्थिति में मान्यता की वास्तविकता महत्त्वपूर्ण हो जाती है.** अगर निष्कर्षों की पड़ताल करना संभव न हो, तब मान्यताओं की वास्तविकता की पड़ताल उपयोगी हो जाती है. तब हमें देखना होगा कि क्या वह मान्यता वास्तविक जीवन से मेल खाती है; अगर वह मान्यता वास्तविक जीवन से मेल खाती है तो उस मान्यता पर आधारित निष्कर्षों का उपयोग किया जा सकता है अथवा नहीं.

मान्यताओं से जुड़ा एक ओर पक्ष भी है. व्याख्यात्मक अर्थशास्त्र एवं मूल्यांकन अर्थशास्त्र के विभेद का आधार यह माना गया था कि मूल्यांकन अर्थशास्त्र तथ्यात्मक/वस्तुनिष्ठ (objective) अथवा व्यक्ति निरपेक्ष न हो कर व्यक्ति-सापेक्ष/व्यक्तिपरक (subjective) होता है. क्योंकि व्यक्तियों के मूल्य बोध - यानी वह क्या ठीक समझता है और क्या ग़लत, उस की प्राथमिकता क्या है, इन में भिन्नता हो सकती है एवं इस लिए उन की किसी भी विषय पर राय भी अलग-अलग हो सकती है, व्यक्ति-सापेक्ष हो सकती है. इस के विपरीत यह माना जाता है कि विज्ञान की तरह व्याख्यात्मक अर्थशास्त्र व्यक्ति निरपेक्ष है यानी इस के निष्कर्ष व्यक्ति या व्यक्ति के मूल्य बोध पर निर्भर नहीं करते. इस तरह के श्रेणी विभाजन पर अर्थशास्त्रियों बल्कि वैज्ञानिकों में भी गहरा विवाद है कि क्या मानव जीवन में कोई भी ज्ञान पूरी तरह से वस्तुनिष्ठ /तथ्यात्मक (objective) और निरपेक्ष यानी व्यक्ति के मूल्य बोध से स्वतंत्र हो सकता है? अर्थशास्त्र को एक ओर छोड़ कर, अगर हम विज्ञान की बात भी करें तो यह भी पूरी तरह से तथ्यात्मक (objective) एवं मूल्य बोध या सामाजिक परिवेश से निरपेक्ष नहीं है. विज्ञान के नियम सर्व कालिक एवं सर्व देशीय भले ही हों परन्तु वैज्ञानिक किन समस्याओं पर ध्यान देते हैं, और समस्याओं को उन को देखने का तरीका सामाजिक परिवेश से असम्बद्ध नहीं है. किन समस्याओं को प्राथमिकता दी जाएगी और उन को किस दृष्टिकोण से देखा जाएगा, इस में सामाजिक सन्दर्भ की बड़ी भूमिका होती है. उदाहरण के लिए, अन्य बातें समान रहने पर, निजी लाभ के लिए काम करने वाली संस्थान के लिए शोध करने वाले वैज्ञानिक बाँझ (terminator) बीज (यानी ऐसे बीज जिन की उपज आगे चल कर बीज का काम न कर सकें) बनाना चाहेंगे ताकि किसान को हर बार उन से बीज लेना पड़े और वे मुनाफा कमा सकें. इस के विपरीत सरकारी अथवा परोपकारी संस्थान के वैज्ञानिकों की कोशिश यह रहेगी कि एक बार बीज बना कर किसान को दे दें जिस का वह लगातार प्रयोग कर सके ताकि बार-बार उन को अपना काम दोहराना न पड़े. इस उदाहरण से साबित होता है कि **सामाजिक सन्दर्भ या**

---

[5] प्रसंगवश, सांख्यिकी (statistics) शास्त्र के अनुसार तकनीकी तौर पर तथ्यों के आधार पर हम किसी अवधारणा को सही साबित नहीं कर सकते. तथ्यों के आधार पर किसी अवधारणा को या तो गलत साबित किया जा सकता है अथवा यह कहा जा सकता है कि यह अवधारणा गलत साबित नहीं हुई. उदाहरण के तौर पर कोई व्यक्ति ईमानदार है, इसे गलत साबित करने के लिए उस की बेईमानी का एक ही सबूत पर्याप्त है परन्तु ईमानदारी का एक सबूत उसे ईमानदार साबित नहीं कर सकता.

व्यक्तिगत मूल्य बोध प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी भी बौद्धिक कार्य में शामिल रहते हैं. इस बारे में सचेत रह कर इस को पारदर्शी तरीके से रेखांकित करने का प्रयास होना चाहिए न कि मूल्य निरपेक्ष होने का. ऊपर हम ने पढ़ा था कि 'अर्थशास्त्र जीवन-उपयोगी आवश्यकताओं की पूर्ति की प्रक्रिया में पनपे मानव सम्बन्धों एवं सामाजिक ढांचों का अध्ययन करता है'. अब 'जीवन-उपयोगी आवश्यकताओं' की सूची ही समय-समाज-परिवेश से निर्धारित होती है. यह वस्तुनिष्ठ नहीं है. कहीं-कभी विवाह एवं मृत्यु संस्कार बहुत सादगी से हो सकते हैं तो कहीं-कभी ये परिवार को उम्र भर के लिए क़र्ज़ के बोझ में दबा सकते हैं. यह किताब हिंदी में लिखी जा रही है न कि अंग्रेज़ी में इस के पीछे एक स्पष्ट मूल्य बोध है न कि केवल बिक्री से होने वाली लाभ हानि की गणना. इस के साथ ही यह भी समझना चाहिए कि मूल्य बोध भी नितांत व्यक्तिपरक नहीं होते. यह भी काफी हद तक तथ्यों से प्रभावित होते हैं एवं बदलते भी हैं. किसी व्यक्ति अथवा समाज के मूल्य बोध अपरिवर्तनशील एवं पूर्व निर्धारित नहीं होते. जब तक यह खोज नहीं हुई थी कि मानवीय रक्त केवल चार तरह का ही होता है, यह माना जाता था कि अमीर-ग़रीब, विभिन्न जातियों एवं विभिन्न नस्लों के खून भी अलग-अलग तरह के होते हैं. यह समझ जातीय/नस्ली भेदभाव का एक बड़ा आधार था. यह खोज होने के बाद की सभी जातियों/नस्लों में खून एक जैसा ही होता है, जातीय/नस्ली मनभेद कुछ हद तक कम हुआ है भले ही यह ख़त्म नहीं हुआ.

एक समय पर यह विचार भी रहा कि अर्थशास्त्रियों को व्याख्यात्मक अर्थशास्त्र तक ही सीमित रहना चाहिए एवं मूल्यांकन अर्थशास्त्र से दूर रहना चाहिए. परन्तु अगर विषय विशेषज्ञ मूल्यांकन नहीं करेंगे, अच्छे-बुरे पर राय नहीं रखेंगे, तो समाज का मार्गदर्शन कौन करेगा? इस लिए अर्थशास्त्रियों को मूल्यांकन के प्रश्नों से दूर न रहते हुए प्रयास यह करना चाहिए कि अपने मूल्य बोध को स्पष्ट करते हुए भरसक तटस्थ मूल्यांकन करें एवं अपने मूल्य बोध से असंगत तथ्यों को छिपायें या नज़रअंदाज़ न करें.

ऊपर हम ने एक जगह लिखा था **'अन्य बातें समान रहने पर' (ceteris paribus)**. यह एक ऐसा वाक्यांश है जिस का अर्थशास्त्री बार-बार प्रयोग करते हैं. किसी घटना या प्रक्रिया पर कई तत्त्व असर डालते हैं. जैसे, किसी फसल की पैदावार बीज की गुणवत्ता, बीज की मात्रा, मौसम, खाद इत्यादि कई तत्त्वों पर निर्भर होती है. मान लो हम इन में से किसी एक तत्त्व, उदाहरण के तौर पर, बीज की मात्रा का प्रभाव देखना चाहते हैं. इस के लिए हम अलग-अलग मात्रा में बीज का प्रयोग कर के पैदावार की तुलना करेंगे. परन्तु इस के लिए यह आवश्यक होगा कि बाकी प्रभावी तत्त्व यानी बीज की गुणवत्ता, खाद इत्यादि में कोई बदलाव न हो; तभी हम देख पायेंगे कि फसल की पैदावार और बीज की मात्रा में कोई सम्बन्ध है या नहीं. अगर बीज की मात्रा के साथ-साथ बीज की गुणवत्ता इत्यादि भी बदलती रही, तो यह कहना मुश्किल होगा कि पैदावार की मात्रा में किस तत्त्व का कितना प्रभाव रहा. अगर अन्य प्रभावी सभी तत्त्व एक से रहें हों, तो बीज की मात्रा एवं पैदावार की मात्रा में सम्बन्ध देखना तुलनात्मक रूप से आसान होगा. अन्य बातें समान रहने का अर्थ यह नहीं है कि सब बातें जैसे किसान का नाम भी समान हो. **'अन्य बातें समान रहने' का अर्थ है उस घटना या प्रक्रिया के लिए प्रभावी अन्य तत्त्वों का समान रहना. हर घटना या प्रक्रिया के सन्दर्भ में 'अन्य बातें समान रहने पर' में शामिल तत्त्व अलग होंगे. 'अन्य बातें समान रहने' में कौन से तत्त्व शामिल होंगे, यह तय होता है उस घटना/प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले अन्य तत्त्वों की सूची से.** किस सन्दर्भ में कौन से तत्त्व इस वाक्यांश में शामिल होंगे, इस पर हम को विशेष ध्यान देना होगा. इस लिए जब 'अन्य बातें समान रहने पर' वाक्यांश का प्रयोग हो या हम इस वाक्यांश का प्रयोग करें तो हमें स्पष्ट होना चाहिए कि कौन से तत्त्व समान रहने चाहिये

आम तौर पर हम दो अथवा दो से अधिक तत्त्वों के परस्पर सम्बन्धों का अध्ययन करना चाहते हैं; उदाहरण के तौर पर बीज की मात्रा एवं उत्पादन, परीक्षा परिणाम एवं इस को प्रभावित करने वाले तत्त्व इत्यादि. **जिस तत्त्व पर अन्य तत्त्वों के प्रभाव का अध्ययन किया जाता है उसे निर्भर/आश्रित/अन्तर्जात चर (dependent/endogenous variable) कहा जाता है. निर्भर चर को प्रभावित करने वाले कारकों/चरों को निर्धारक/बहिर्जात/स्वतंत्र/स्वायत्त चर (independent/exogenous variable) कहा जाता है.** इन का नामकरण अथवा वर्गीकरण इस आधार पर किया गया है कि जिन चरों का व्यवहार हम समझना चाहते हैं उन्हें निर्भर, अन्तर्जात अथवा आश्रित चर कहते हैं क्योंकि इन का व्यवहार अन्य कारकों पर निर्भर है. परन्तु जिन कारकों के प्रभाव का हम अध्ययन कर रहे हैं, उन्हें बहिर्जात/बाह्य, स्वायत्त अथवा स्वतंत्र चर इस लिए कहते हैं क्योंकि हम इन में होने वाले बदलावों को अपने तात्कालिक अध्ययन से बाहर मान रहे हैं; क्योंकि ये चर किसी अन्य चर को प्रभावित करते हैं इस लिए ये निर्धारक चर भी कहलाते हैं. किसी चर का

निर्भर अथवा स्वतंत्र होना सन्दर्भ से तय होता है न कि यह उस का कोई प्राकृतिक गुण होता है. एक ही चर किसी अध्ययन में निर्भर चर हो सकता है एवं किसी अन्य अध्ययन में स्वतंत्र चर.

आर्थिक चर अथवा तत्त्व दो तरह के होते हैं. कीमत जैसे चर एक समय बिंदु से सम्बन्धित होते हैं जैसे दूध की कीमत. दूसरी ओर, माँग अथवा उत्पादन जैसे चर एक समयावधि से सम्बन्धित होते हैं. यह साप्ताहिक हो सकती है या दैनिक या मासिक या वार्षिक परन्तु एक समयावधि इस का अनिवार्य अंग होती है. दूध की माँग 'क ख ग' है, यह अर्थहीन वाक्य है. परन्तु प्रतिदिन की औसत माँग 'क ख ग' है एक अर्थपूर्ण वाक्य है. एक अन्य उदाहरण तालाब की जल धारण क्षमता एवं उस में आने वाले या उस से निकलने वाले जल की मात्रा का हो सकता है. इन दोनों चरों में अंतर है. जल धारण क्षमता में समयावधि का ज़िक्र नहीं होता परन्तु जल निकासी अथवा भराव के बारे में हम कहते हैं कि इस तालाब की प्रति घंटा या प्रति दिन जल निकासी/भराव क्षमता इतनी है. **कीमत, जल धारण क्षमता इत्यादि चरों को जो एक समय बिंदु से सम्बन्धित होते हैं भण्डार चर (stock variable) कहते हैं एवं माँग, जल निकासी क्षमता इत्यादि चरों को जो एक समयावधि सम्बन्धी होते हैं, को प्रवाह चर (flow variable) कहते हैं.**

संक्षेप में, इस अध्याय में हम ने अर्थशास्त्र की कुछ बुनियादी अवधारणाओं अध्ययन किया है. सब से पहले हम ने अर्थशास्त्र को परिभाषित किया यानी यह जाना कि अर्थशास्त्र क्या है अथवा यह मानव जीवन के किस पक्ष का अध्ययन करता है. अर्थव्यवस्था को देखने के कई दृष्टिकोण रहे हैं और आज भी कई दृष्टिकोण हैं. इस पुस्तक की विषय-वस्तु आज की मुख्य धारा के अर्थशास्त्र -जो क्रय-विक्रय अथवा बाज़ार आधारित अर्थव्यवस्था पर केन्द्रित है- तक सीमित है. इस पुस्तक में हम आज के मुख्य धारा के अर्थशास्त्र की भी एक ही शाखा, इकाई आधारित अर्थशास्त्र, का ही अध्ययन करेंगे. इकाई आधारित अर्थशास्त्र एवं समग्र अर्थशास्त्र के अंतर को समझना महत्त्वपूर्ण हैं; अर्थशास्त्र की इन विधाओं में अंतर अध्ययन की इकाई का है न कि अध्ययन के उद्देश्य का. इसी तरह मूल्यांकन अर्थशास्त्र एवं व्याख्यात्मक अर्थशास्त्र के अंतर को भी समझना महत्त्वपूर्ण है. परन्तु इस के साथ ही यह ध्यान रखना भी आवश्यक है कि अर्थशास्त्री दोनों तरह के प्रश्नों पर विचार करते हैं. हम ने यह भी पाया कि किसी भी शोधार्थी/अध्ययन कर्ता के लिए मूल्य विहीन होना संभव नहीं होता. आवश्यक यह है कि अपने मूल्य बोध को पारदर्शी तरीके से स्पष्टता के साथ रेखांकित करते हुए जहां तक हो सके निष्पक्ष एवं तटस्थ मूल्यांकन करने का प्रयास करना चाहिए एवं अपने मूल्य बोध से असंगत तथ्यों को छिपाना अथवा नज़रअंदाज़ नहीं करना चाहिए.

इस अध्याय का उद्देश्य उन प्रश्नों को चिह्नित करना था जिन का अध्ययन हम इस पुस्तक में करेंगे एवं इस अध्ययन में प्रयोग की जाने वाली कुछ बुनियादी अवधारणाओं को समझना था. अर्थव्यवस्था का गोलाकार प्रवाह एवं इस के अंग, उत्पादन के साधनों का वर्गीकरण, आश्रित एवं स्वायत्त चर, भण्डार एवं प्रवाह चर, उत्पादन इत्यादि की व्याख्या हम ने इस अध्याय में की है. इस के साथ-साथ हम ने किसी भी तरह के वर्गीकरण की आवश्यकता एवं उस की सीमाओं की भी चर्चा की है. यह ध्यान में सदा रखना आवश्यक है कि अर्थशास्त्र की कई अन्य अवधारणाओं की परिभाषा सामान्य बोलचाल के उन्हीं शब्दों के अर्थ से अलग हैं इस लिए प्रयोग की जा रही अवधारणाओं की स्पष्ट समझ बनाना आवश्यक है.

पूर्व धारणाएं अथवा मान्यताएँ किसी भी विषय के अध्ययन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं. सरलीकरण हेतु प्रयोग की गई सुविधाजनक मान्यताओं एवं प्रतिबन्धात्मक मान्यताओं की भूमिका एवं प्रभाव अलग होता है. चित्र/फ़ोटो एवं मानचित्र दोनों अपनी-अपनी जगह उपयोगी हैं. जैसे मानचित्र महत्त्वपूर्ण तत्त्वों को चिह्नित करता है उसी तरह अर्थशास्त्र में, बल्कि किसी भी अध्ययन में, महत्त्वपूर्ण तत्त्वों का ऐसा पृथक्करण/चिह्नित करना अनिवार्य अंग है. हम ने इस विषय पर भी चर्चा की है कि मान्यताओं की सत्यता किन परिस्थितियों में महत्त्वपूर्ण होती है एवं किन में नहीं. 'बाकी बातें समान रहने पर' अर्थशास्त्र में बार-बार प्रयोग होने वाला वाक्यांश है. इस की क्यों ज़रूरत पड़ती है एवं 'बाकी बातों' में क्या शामिल है, यह समझना आवश्यक है.

प्रचलित अर्थशास्त्र की एक बुनियादी अवधारणा है कि मनुष्य की ज़रूरतें असीमित हैं एवं संसाधन असीमित हैं. हम ने संक्षिप्त रूप में इस अवधारणा की भी समीक्षा इस अध्याय में की है एवं यह रेखांकित किया है कि यह नज़रिया मानव इतिहास में एक विशिष्ट समय पर ही विकसित हुआ है. यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि बाज़ार आधारित अर्थव्यवस्था मानव इतिहास के एक छोटे समय-काल में ही महत्त्वपूर्ण बनी है.

पिछली कुछ पंक्तियों में हम ने इस अध्याय में उठाये गए मुद्दों को सूचीबद्ध किया है. अगर आप को इन में से कोई भी मुद्दा स्पष्ट नहीं है, तो आगे बढ़ने से पहले उस मुद्दे से सम्बन्धित सामग्री को दोहरा लें. अर्थशास्त्र में कई अन्य अवधारणाओं, जैसे संतुलन, का भी प्रयोग होता है परन्तु उन के बारे में हम आगे चर्चा करेंगे. इस अध्याय में कुछ प्रारंभिक अवधारणाओं की ही चर्चा हुई है.

इन कुछ बुनियादी बातों के बाद अब हम इकाई आधारित अर्थशास्त्र का अध्ययन करने की ओर आगे बढ़ेंगे. क्रय-विक्रय आधारित अर्थव्यवस्था में कीमत निर्धारण एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है. कीमत का निर्धारण माँग एवं आपूर्ति से तय होता है. हम दैनिक जीवन में देखते हैं कि अगर किसी वस्तु की कीमत एकाएक बढ़ जाती है तो उस वस्तु की माँग घट जाती है. ऐसा क्यों होता है? इस प्रश्न का उत्तर खोजने के लिए आगामी कई अध्यायों में हम माँग का अध्ययन करेंगे – माँग क्या होती है एवं यह क्यों बढ़ती घटती है. हम उन तत्त्वों को चिह्नित करने का प्रयास करेंगे, जो माँग को प्रभावित करते हैं. उस के बाद ऐसा ही अध्ययन आपूर्ति का करेंगे. पुस्तक के अंतिम हिस्से में हम बाज़ार आधारित अर्थव्यवस्था का मूल्यांकन करेंगे

प्रश्न:

1. अर्थशास्त्र को परिभाषित करें. कारण सहित यह भी स्पष्ट करें कि क्या खेती की तकनीक अर्थशास्त्र के अध्ययन की वस्तु है.

2. क्या इकाई आधारित अर्थशास्त्र (Microeconomics) एवं समग्र अर्थशास्त्र (Macroeconomics) के उद्देश्यों में अंतर है? इन दोनों तरह के अर्थशास्त्र के अंतर को स्पष्ट करें.

3. प्रतिबन्धात्मक एवं सुविधाजनक मान्यताओं के अंतर को स्पष्ट करें. मान्यताओं की वास्तविकता किन परिस्थितियों में महत्त्वपूर्ण होती है?

4. 'अन्य बातें समान रहने पर' वाक्यांश का प्रयोग क्यों किया जाता है एवं इस में कौन सी बातें शामिल होती हैं.

5. निम्न को परिभाषित करें: फ़र्म, परिवार, उपभोग, उत्पादन, वस्तु, सेवा, भूमि, श्रम ,पूँजी, स्वायत्त चर, निर्भर चर, निर्धारक चर, प्रवाह चर, भण्डारण चर.

6. निम्न का उपरोक्त अन्यथा अन्य श्रेणी में वर्गीकरण करें: वार्षिक वर्षा की माला, अपने बच्चे को पढ़ाना, घर में बिक्री हेतु मुर्गी पालन, रेहड़ी वाला, दुकान में बिक्री हेतु रखा माल, पुजारी, भक्ति.

7. अर्थव्यवस्था के गोलाकार प्रवाह की व्याख्या करें.

8. अर्थशास्त्र के सिद्धांतों को अर्थव्यवस्था का चित्र बनाना चाहिए या मानचित्र? क्यों?

अध्याय - 2

माँग के निर्धारक तत्त्व एवं माँग के साथ उन का सम्बन्ध

माँग से हमारा अभिप्राय क्या है? **किसी उपभोक्ता की किसी वस्तु की माँग का अर्थ है उस वस्तु कि वह अधिकतम मात्रा है जो वह एक निश्चित समय अवधि में विभिन्न दामों पर ख़रीदना चाहता है एवं ख़रीद सकता है.** अगर आप एक बहुत महँगी कार ख़रीदना चाहते हैं परन्तु जिस दाम पर वह मिल रही है, उस दाम पर आप ख़रीद नहीं सकते, आप के पास इतने पैसे ही नहीं हैं, तो आप की उस कार की माँग उस दाम पर शून्य होगी. इसी प्रकार अगर आप सिगरेट पीना नहीं चाहते, तो भले ही आप के पास सिगरेट ख़रीदने के पैसे हों, तो भी आप की सिगरेट की माँग शून्य होगी. दूसरी ओर, अगर आप किसी दाम पर एक वस्तु की 10 इकाइयाँ ख़रीदना चाहते हैं एवं इन को ख़रीदने के लिए आप के पास पैसे भी हैं परन्तु सरकारी नियम के चलते 5 इकाई ही ख़रीद सकते हैं, तो आप की माँग 5 न हो कर 10 है.

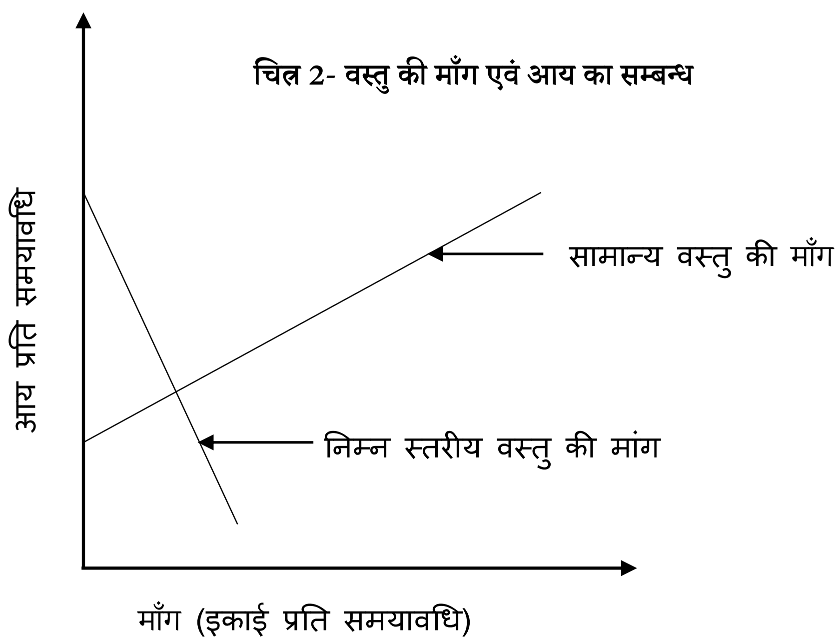
ध्यान देने वाली बात यह है कि माँग हमेशा एक समय अवधि या समय काल की होती है. भले ही हम हर बार समय अवधि को इंगित न करें परन्तु ध्यान रहे कि माँग एक प्रवाह चर है. इस लिए माँग का चित्र खींचते हुए इकाई प्रति समयावधि लिखा जाना चाहिए. माँग भी दो तरह की हो सकती है- उपभोग के लिए माँग एवं उत्पादन के लिए माँग. एक ही वस्तु की माँग भी दोनों तरह की हो सकती है; उदाहरण के तौर पर बिजली की माँग घरेलू उपयोग जैसे पंखा चलाने के लिए भी हो सकती है एवं बिजली की माँग मशीन चला कर उत्पादन करने के लिए भी हो सकती है. अर्थशास्त्र में, अगर सन्दर्भ से स्पष्ट रूप से अन्यथा आशय न हो तो, माँग से अभिप्राय उपभोक्ता द्वारा उपभोग के लिए की जाने वाली माँग से होता है (ऐसा क्यों होता है, यह आप को आगे चल के स्पष्ट हो जाएगा). यह माँग भी दो स्तर पर देखी जा सकती है- उपभोक्ताओं की कुल माँग अथवा बाज़ार माँग एवं एक उपभोक्ता की माँग. अर्थशास्त्रियों की रुचि किसी व्यक्ति विशेष की माँग में न हो कर कुल माँग में होती है. शुरुआत हम एक उपभोक्ता की माँग से करेंगे एवं उस के आधार पर बाज़ार माँग ज्ञात करेंगे. उपभोग की वस्तु भी दो तरह की हो सकती हैं. उपभोग की वस्तु समोसे जैसी- एक बार उपभोग किया एवं ख़त्म – हो सकती है या साइकिल जैसी, जिस का बार-बार लम्बी अवधि तक प्रयोग किया जा सकता है. सुविधा के लिए माँग की चर्चा करते हुए हम यह मान कर चलेंगे कि वस्तु समोसे जैसी हैं जिनका उपभोग एक बार ही हो सकता है. लम्बी अवधि तक प्रयोग की जाने वाली वस्तुओं पर भी माँग का नियम लागू होता है परन्तु उस की व्याख्या अध्ययन के अगले स्तर पर ही संभव है.[6]

माँग किन तत्त्वों पर निर्भर करती है? इस की एक सूची अपने अनुभव से बनाएँ तभी आगे बढ़ें. संभवतः आप की सूची में चिह्नित कारक निम्न चर्चा में शामिल होंगे. अगर कुछ तत्त्व प्रथम दृष्टि में निम्न चर्चा में शामिल नहीं हैं, तो विचार करें कि क्या ये तत्त्व परोक्ष रूप से निम्न कारकों में शामिल हैं. अगर आप को लगता है कि माँग का कोई निर्धारक तत्त्व निम्न चर्चा में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में शामिल नहीं है, तो अपने अध्यापक से इस बारे में चर्चा करें. उपभोक्ता की आय, वस्तु की कीमत तथा अन्य वस्तुओं की कीमत निश्चित तौर पर आप द्वारा बनाई गई माँग के निर्धारक कारकों की सूची में होंगे. अब हम इन पर एक-एक कर के चर्चा करेंगे.

आय एवं माँग: अपने अनुभव से हम जानते हैं कि वस्तु की माँग उपभोक्ता की आय से प्रभावित होती है. हालाँकि आय की परिभाषा या इस के विभिन्न स्वरूपों को स्पष्ट करना आवश्यक है परन्तु यह हम थोड़ा रुक कर करेंगे. अभी आय को आम बोलचाल के अर्थ में लेते हैं. अन्य बातें समान रहने पर (इस में क्या-क्या शामिल होगा, यह आप को इस अध्याय पढ़ने के उपरांत स्पष्ट हो जाना चाहिए) आम तौर पर आय बढ़ने पर माँग बढ़ जाती है एवं आय घटने पर माँग घट जाती है. उदाहरण के तौर पर, आय बढ़ने पर परिवार में फ़ल, दूध इत्यादि की खपत बढ़ जाती है. **ऐसी वस्तु, जिन की माँग आय बढ़ने के साथ बढ़ जाती हैं और आय घटने पर माँग घट जाती है, उन्हें सामान्य वस्तु (normal goods) कहते हैं.** सामान्य वस्तुओं की माँग और आय में धनात्मक सम्बन्ध होता है यानी उन में परिवर्तन

[6] लम्बी अवधि तक प्रयोग की जा सकने वाली वस्तुओं से संतुष्टि अलग-अलग समय पर मिलेगी. अलग-अलग समय पर मिलने वाली संतुष्टि का वर्तमान मूल्य ज्ञात होने पर - जिस के तरीके आगे सीखेंगे- सामान्य माँग का सिद्धांत ही लागू होगा.

की दिशा एक ही होती है- आय बढ़ने पर इन वस्तुओं की माँग बढ़ती है एवं आय घटने पर घटती है. इस के विपरीत कुछ वस्तु ऐसी भी होती हैं, जिन की माँग आय बढ़ने पर घट जाती है और आय घटने पर माँग बढ़ जाती है. ऐसी वस्तुओं को निम्न स्तरीय वस्तु (inferior goods) कहते हैं. उदाहरण के लिए, वनस्पति घी या अल्युमीनियम के बर्तन. परिवार में सम्पन्नता आने पर अल्युमीनियम (बोलचाल की भाषा में जिन्हें सिल्वर के बर्तन कहा जाता है) के बर्तनों के स्थान पर स्टील के बर्तन आ जाते हैं. यानी अल्युमीनियम के बर्तनों की माँग आय बढ़ने पर घट जाती है. ऐसा ही कुछ वनस्पति घी के साथ भी होता है. निम्न स्तरीय वस्तुओं की माँग एवं आय में ऋणात्मक सम्बन्ध होता है, इन में परिवर्तन की दिशा एक दूसरे के विपरीत होती है. आय और माँग में सामान्य वस्तुओं एवं निम्न स्तरीय वस्तुओं का सम्बन्ध चित्र 2 में दर्शाया गया है.



ग्राफ़/चित्र: आगे बढ़ने से पहले ग्राफ़ या चित्रों के बारे में चर्चा कर लें क्योंकि अर्थशास्त्र में ग्राफ़/चित्रों का प्रयोग काफी सहायक होता है. शब्दों में कही बात को चित्र के माध्यम से भी दिखाया जा सकता है एवं गणित के सूत्रों के माध्यम से भी. हमें इन तीनों के बीच अनुवाद करना सीखना होगा. हमें शब्दों में कही बात को गणित के सूत्रों अथवा चित्र के माध्यम से दिखाना या इस का ठीक उलटा करने का, यानी गणितीय सूत्र अथवा चित्र को शब्दों में व्यक्त करने का, अभ्यास करना चाहिए. गणित की बात आगे करेंगे परन्तु अभी चित्रों की चर्चा कर लें.

परम्परा यह है कि आम तौर पर हम क्ष (क्षैतिज/आड़ा) अक्ष (X-axis) पर स्वतन्त्र कारक, यानी जिस कारक का प्रभाव हम दिखाना चाहते हैं, को चित्रित करते हैं एवं य (उर्ध्वाधर या लम्बवत या खड़े) अक्ष पर (Y-axis) उस चर को चित्रित करते हैं जिस पर होने वाले प्रभाव को हम दिखाना चाहते हैं यानी जो निर्भर चर है. माँग के चित्र इस परम्परा का अपवाद हैं. इस लिए चित्र 2 में आय कारक होते हुए भी य अक्ष पर दिखाई गई है.

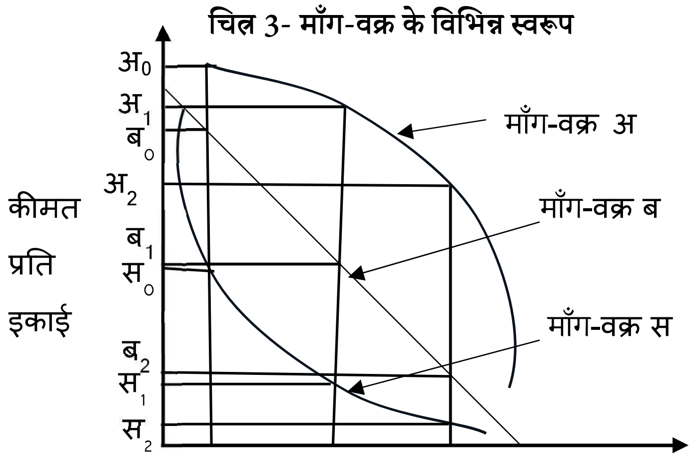
किस अक्ष पर क्या दिखाया या मापा जा रहा है यह स्पष्ट तौर पर इंगित किया जाना चाहिए. अगर केवल परिवर्तन या सम्बन्ध की दिशा ही इंगित करनी हो तो इकाई इंगित करना आवश्यक नहीं है परन्तु अगर ठोस आंकड़े आधारित चित्र हो तो इकाई भी इंगित की जानी चाहिए. क्योंकि ये दोनों अक्ष अनंत तक जा सकते हैं, इस लिए आम तौर पर इन के कोनों को तीर के निशान से इंगित करते हैं. जहाँ पर ये दोनों अक्ष मिलते हैं, उस बिंदु को उद्गम अथवा मूल बिंदु (origin) कहते हैं.

ग्राफ़/चित्र की ढलान (स्लोप/slope): ग्राफ़/चित्र की ढलान उस का एक महत्त्वपूर्ण गुण है. ढलान क्या इंगित करता है? जब आप किसी भी वक्र पर एक बिंदु से दूसरे बिंदु पर जाते हैं तो क्ष-अक्ष पर चिह्नित चर एवं य-अक्ष पर चिह्नित चर दोनों में या कम से कम एक में परिवर्तन होता है. इन्हें हम प्रचलित रूप में Δक्ष एवं Δय से इंगित करते हैं. Δ (उच्चारण डेल्टा) परिवर्तन को इंगित करता है. इस लिए Δक्ष का अर्थ है क्ष चर में होने वाला परिवर्तन एवं Δय का अर्थ है य चर में होने वाला परिवर्तन. चित्र की ढलान का अर्थ है Δय भाग में Δक्ष (यानी Δय/Δक्ष) जो इंगित करता है कि क्ष अक्ष पर एक इकाई बदलाव होने पर य अक्ष पर कितनी इकाई का बदलाव होता है. अगर Δक्ष एवं Δय दोनों में बदलाव एक ही दिशा में होता है, यानी दोनों इकट्ठे बढ़ते हैं या घटते हैं, तो इन का अनुपात धनात्मक होगा. अगर इन में विपरीत परिवर्तन होता है, तो यह अनुपात ऋणात्मक होगा. दूसरे शब्दों में, अगर बाएँ से दाएँ जाने पर ग्राफ़ ऊपर की ओर चढ़ता है तो इस का अर्थ है कि इन दोनों परिवर्तनशील चरों में परिवर्तन एक ही दिशा में हो रहा है. ढलान धनात्मक है. इस के विपरीत,

अगर बाएँ से दाएँ जाने पर ग्राफ़ नीचे गिरता है, तो इस का अर्थ है कि दोनों चरों में परिवर्तन विपरीत दिशा में हो रहा है एवं वक्र की ढलान ऋणात्मक है. अगर कोई वक्र क्ष अक्ष के समानांतर है, तो इस का स्पष्ट अर्थ है कि क्ष की मात्रा में बदलाव होने पर य की मात्रा में कोई बदलाव नहीं होता. इस लिए ऐसे वक्र की ढलान शून्य होती है. इस के विपरीत य अक्ष के समानांतर सीधी रेखा में वक्र होने पर, किसी एक बिंदु से थोड़ा सा विचलन होने पर य में अनंत बदलाव हो जाता है. इस लिए ऐसे वक्र की ढलान अनंत होती है.

चित्र 3 का अध्ययन करने से न केवल ग्राफ़ की ढलान पढ़ना आ जाएगा अपितु वक्रों की एक अन्य प्रकृति की जानकारी भी हो जाएगी. इस चित्र में तीन तरह के वक्र हैं. तीनों की ढलान ऋणात्मक है परन्तु तीनों में महत्त्वपूर्ण अंतर हैं. इस को समझने के लिए क्ष अक्ष पर तीन सीधी रेखा खींचे जिन के बीच दूरी समान हो. चित्र 3 में, पहली रेखा एवं दूसरी रेखा के बीच की दूरी एवं दूसरी रेखा व तीसरी रेखा के बीच की दूरी एक समान है; यानी तीनों रेखाओं के बीच Δक्ष एक समान है. अब ये तीनों रेखाएं तीनों माँग वक्रों को जिन बिन्दुओं पर काटती हैं, वहाँ से य अक्ष पर लम्ब डाल कर हम Δय ज्ञात कर सकते हैं. क्योंकि Δक्ष एक समान है, इस लिए हम ढलान के बढ़ने या घटने का अंदाज़ा Δय को देख कर ही लगा सकते हैं. आम तौर पर बोलचाल में ऋणात्मक ढलान होने पर भी हम उस का निरपेक्ष मान लेते हैं यानी ऋणात्मक चिन्ह की अनदेखी कर देते हैं (परन्तु यह ध्यान रहे कि गणितीय गणना करने में इस की अनदेखी नहीं की जा सकती). हम पाते हैं कि बीच वाले सीधी रेखा वाले माँग-वक्र ब में बाएँ से दाएँ जाने पर भी Δय एक समान रहता है यानी $ब_0$ एवं $ब_1$ के बीच की दूरी एवं $ब_1$ एवं $ब_2$ के बीच की दूरी एक समान है. इस का अर्थ है कि इस वक्र की ढलान स्थिर है. **सीधी रेखा वक्र में ढलान हमेशा स्थिर रहती है.** परन्तु ऊपर वाले माँग-वक्र अ में Δय बढ़ जाता है यानी $अ_1$ एवं $अ_2$ के बीच की दूरी $अ_0$ एवं $अ_1$ के बीच की दूरी से अधिक है (ऐसा निरपेक्ष मान के रूप में कह सकते हैं अन्यथा -3, -2 से छोटा होता है न कि बड़ा). इस का अर्थ है कि इस माँग-वक्र में ढलान (निरपेक्ष रूप में) बढ़ रही है. सब से नीचे वाले माँग-वक्र स में विपरीत स्थिति है. इस में $स_1$ एवं $स_2$ के बीच की दूरी $स_0$ एवं $स_1$ के बीच की दूरी से कम है यानी इस वक्र की ढलान घट रही है. किसी ग्राफ़ को देख कर यह ज्ञात करना कि इस की ढलान ऋणात्मक है या धनात्मक एवं यह बदल रही है या स्थिर है, बहुत महत्त्वपूर्ण है. अगर संशय हो तो इस प्रकार तीन अथवा अधिक रेखाएँ समान दूरी पर खींच कर, हम यह ज्ञात कर सकते हैं.

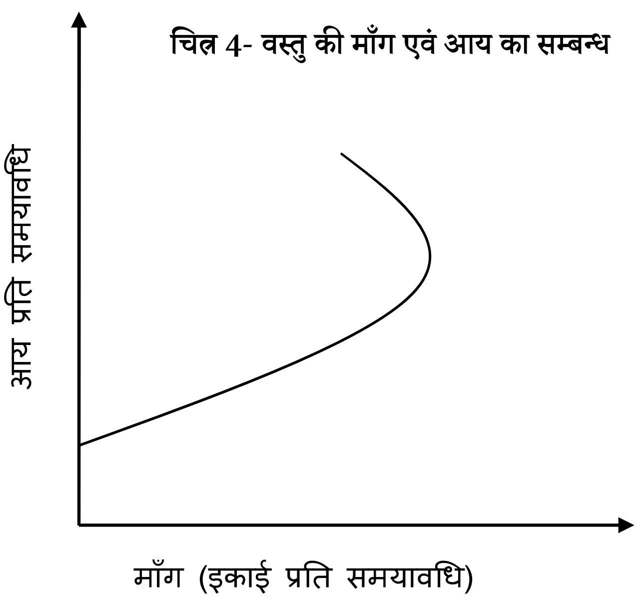
चित्र 3- माँग-वक्र के विभिन्न स्वरूप



अगर किसी वक्र पर बाएँ से दाएँ जाने पर ढलान का निरपेक्ष मान घटता है तो हम ऐसे वक्र को मूल बिंदु की ओर उत्तल (convex) कहते हैं (जैसा कि चित्र 3 के माँग-वक्र स में हो रहा है). **यदि किसी वक्र पर बाएँ से दाएँ जाने पर ढलान का निरपेक्ष मान बढ़ता है तो ऐसे वक्र को मूल बिंदु की ओर अवतल/धनुषाकारी (concave) कहते हैं** (जैसे की चित्र 3 के माँग-वक्र अ में हो रहा है). हालाँकि ये दोनों शब्द बोलचाल के सामान्य शब्द नहीं है फिर भी हम इनका प्रयोग करेंगे क्योंकि गणित एवं भौतिक शास्त्र में भी सामान्य तौर यही शब्द प्रयोग किए जाते हैं.

अब ग्राफ़ के अध्ययन को छोड़ कर वापिस आय एवं माँग के सम्बन्ध पर चलें. वस्तु का सामान्य होना या निम्न स्तरीय होना केवल वस्तु की प्रकृति से तय नहीं होता. कोई वस्तु एक व्यक्ति के लिए सामान्य एवं दूसरे व्यक्ति के लिए निम्न स्तरीय हो सकती है. बल्कि इस से भी बढ़ कर एक ही व्यक्ति के लिए आय के एक स्तर तक वस्तु सामान्य हो सकती है एवं इस स्तर के बाद निम्न स्तरीय वस्तु हो सकती है. उदाहरण के लिए, एक ग़रीब दिहाड़ीदार मजदूर के लिए वनस्पति घी एवं अल्युमीनियम के बर्तन भी सामान्य वस्तु हो सकते हैं जिन की माँग आय बढ़ने के साथ बढ़ती जाती है. परन्तु अगर समय के साथ वह दुकानदार या ठेकेदार बन जाता है एवं उस की आय काफ़ी बढ़ जाती है, तो यही वस्तु उस के लिए निम्न स्तरीय वस्तु बन सकती है. इसी प्रकार एक मध्यम वर्गीय परिवार में

संपन्नता के साथ दो पहिया वाहनों की माँग बढ़ती जाती है परन्तु संपन्नता बढ़ते-बढ़ते ऐसी स्थिति भी आ जाती है कि दो पहिया वाहनों की माँग ख़त्म हो जाती है या कम हो जाती है एवं इन का स्थान कार ले लेती है. चित्र 4 में इस परिस्थिति को दिखाया गया है.



मौद्रिक आय एवं वास्तविक आय (Nominal/money income and real income): आय के एक महत्त्वपूर्ण पक्ष की चर्चा करनी लंबित है. अगर किसी व्यक्ति का वेतन-दर दो-गुना हो जाए एवं उस द्वारा ख़रीदी जानी वाली सभी वस्तुओं की कीमत भी दुगनी हो जाए, तो क्या यह कहना उचित होगा कि उस व्यक्ति की आय दुगनी हो गई है? निश्चित तौर पर वह उतनी ही वस्तुओं को ख़रीद पायेगा जो वह पहले ख़रीद पा रहा था. इस लिए हम कह सकते हैं कि हालाँकि उस की मौद्रिक आय दुगनी हो गई है परन्तु उस की वास्तविक आय स्थिर ही है. इस लिए मौद्रिक एवं वास्तविक आय में अंतर करना ज़रूरी है. मौद्रिक आय का अर्थ स्पष्ट है- रुपये पैसे या किसी अन्य मुद्रा में आय को मौद्रिक आय कहते हैं. इस सन्दर्भ में एक अन्य बात का ध्यान रखना ज़रूरी है. माँग के सन्दर्भ में आय से अभिप्राय उपभोक्ता को स्वविवेक से ख़र्च करने के लिए उपलब्ध आय (disposable income) से है. अगर उपभोक्ता को आय पर अनिवार्य रूप से सरकार को कुछ हिस्सा कर के तौर पर भुगतान करना है, तो वास्तव में आय का उतना हिस्सा उस को अपनी मर्जी से ख़र्च करने के लिए उपलब्ध ही नहीं है. उपभोग सम्बन्धी निर्णय के लिए कर इत्यादि अनिवार्य भुगतान को घटा कर बची हुई आय को ही उपभोक्ता की प्रभावी मौद्रिक आय कहा जा सकता है.

वास्तविक आय (real income) क्या है? वास्तविक आय की गणना में किसी एक समय-बिंदु की कीमतों को ध्यान में रखा जाता है. पुराने उपभोग पर नई कीमतों पर होने वाले ख़र्च की गणना कर के, उस की तुलना वर्तमान मौद्रिक आय से की जाती है. अगर वर्तमान मौद्रिक आय पुराने उपभोग स्तर के लिए वर्तमान कीमतों पर होने वाले ख़र्च से ज़्यादा है ,तो वास्तविक आय बढ़ गई है; अगर कम है तो वास्तविक आय घट गई है. उदाहरण के लिए, अगर वर्तमान मौद्रिक आय पुराने उपभोग स्तर पर वर्तमान कीमतों पर होने वाले ख़र्च से 10% अधिक है, तो इस का अर्थ है कि उपभोक्ता वर्तमान कीमतों पर, वर्तमान मौद्रिक आय के प्रयोग से पिछले किसी तय समय बिंदु पर उपभोग की गई सभी वस्तुओं की 10% अतिरिक्त मात्रा ख़रीद सकता है. इस का अर्थ हुआ कि उस की वास्तविक आय (जिसे स्थिर कीमतों पर आय भी कहते हैं)10% बढ़ गई है. अगर इस के विपरीत अगर मौद्रिक आय में परिवर्तन के बाद नई कीमतों पर पुराने समय बिंदु पर ख़रीदी गई सभी वस्तुओं की मात्रा का मात्र 80% ही ख़रीद सकता है, तो हम कहेंगे कि उस की वास्तविक आय 20% घट गई है.

वास्तविक आय पर मौद्रिक आय एवं कीमतों में परिवर्तन दोनों का प्रभाव पड़ता है. वस्तुओं की कीमतें स्थिर रहने पर मौद्रिक आय एवं वास्तविक आय में धनात्मक सम्बन्ध होता है; मौद्रिक आय बढ़ने/घटने पर वास्तविक आय भी बढ़ती/घटती है. इस के विपरीत मौद्रिक आय में परिवर्तन के बिना भी वास्तविक आय में परिवर्तन हो सकता है बशर्ते कि उपभोक्ता द्वारा प्रयोग की जा रही वस्तुओं की कीमत में परिवर्तन हो जाए. मौद्रिक आय में परिवर्तन होने के बावजूद वास्तविक आय स्थिर रह सकती है बशर्ते कि कीमतें भी उसी अनुपात में बदलें जिस अनुपात में मौद्रिक आय बदली है. इस सन्दर्भ में यह रेखांकित करना आवश्यक है कि **सामान्य एवं निम्न स्तरीय वस्तुओं की परिभाषा में आय से अभिप्राय वास्तविक आय से है.**

अन्य वस्तुओं की कीमत: किसी वस्तु की माँग को अन्य वस्तुओं की कीमत भी प्रभावित करती है. कुछ वस्तु ऐसी होती हैं जो एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग की जा सकती हैं. उदाहरण के लिए, विभिन्न प्रकार की सब्जियां एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग की जा सकती हैं.

ऐसी वस्तुओं को एक दूसरे की स्थानापन्न वस्तु (substitute good) कहते हैं. इस के विपरीत कुछ वस्तु ऐसी होती हैं जो इकट्ठी प्रयोग की जाती हैं जैसे बिजली और पंखा, जुराब और जूते. ऐसी वस्तुओं को एक दूसरे की पूरक/सहयोगी (complimentary) वस्तु कहते हैं. अगर बाज़ार में भिन्डी के दाम बढ़ जाते हैं, तो करेले या अन्य सब्जियों की माँग बढ़ सकती है क्योंकि कम-से-कम कुछ लोग भिन्डी के महंगे होने पर, उस के स्थान पर दूसरी सब्जी खाना पसंद करेंगे. इस लिए हम कह सकते हैं कि वस्तु अ की स्थानापन्न वस्तु के दाम बढ़ने पर वस्तु अ की माँग बढ़ जाएगी और स्थानापन्न वस्तु के दाम कम होने पर वस्तु अ की माँग घट जाएगी. इस चर्चा में हम यह मान कर चल रहे हैं कि उपभोक्ता की वास्तविक आय स्थिर रहती है.

दूसरी ओर, पेट्रोल के दाम बढ़ने पर कार की माँग पर क्या असर होगा? हम सब का अनुभव यह कहेगा कि पेट्रोल के दाम बढ़ने पर कार की माँग कम हो जाएगी (अन्य सब बातें समान रहने पर, जिस में वास्तविक आय भी शामिल है). इसी प्रकार, 'ऐसी' (AC-Air Conditioner) महंगे होने से बिजली की माँग घट जाएगी और बिजली सस्ती होने पर 'ऐसी' की माँग बढ़ जाएगी. यानी वस्तु अ की पूरक वस्तु के दाम बढ़ने पर वस्तु अ की माँग घट जाएगी. पूरक वस्तु की कीमत में एवं वस्तु अ की माँग में विपरीत बदलाव होता है.

अगर किसी ऐसी वस्तु की कीमत में बदलाव होता है, जो न वस्तु अ की स्थानापन्न वस्तु है और न पूरक वस्तु है, तो क्या होगा? सोचिए, क्या ऐसी वस्तु की कीमत में बदलाव का वस्तु अ की माँग पर कोई असर नहीं होगा? जिस वस्तु की कीमत में बदलाव होता है, अगर वह उपभोक्ता की ख़रीद में शामिल है, तो इस का भी वस्तु अ की माँग पर भी असर होगा. मौद्रिक आय स्थिर रहने पर, अगर उपभोक्ता द्वारा प्रयोग की जा रही किसी भी वस्तु की कीमत में परिवर्तन होता है, तो उपभोक्ता की वास्तविक आय बदल जाती है. वास्तविक आय में परिवर्तन का प्रभाव सभी वस्तुओं की माँग पर पड़ता है. इस लिए उपभोक्ता द्वारा प्रयोग की जा रही ऐसी वस्तु की कीमत बढ़ने पर, जो न वस्तु अ की स्थानापन्न वस्तु है और न पूरक वस्तु है, वस्तु अ की मांग पर प्रभाव वस्तु की प्रकृति पर निर्भर करेगा. अगर अ सामान्य वस्तु है ,तो उस की माँग घटेगी और अगर अ निम्न स्तरीय वस्तु है तो माँग बढ़ेगी.

परन्तु क्या किसी भी वस्तु की कीमत में बदलाव का हर उपभोक्ता की माँग पर असर पड़ेगा? पांच सितारा होटल में खाने-पीने की वस्तुओं के दाम बढ़ने पर क्या साइकिल या बीड़ी की माँग पर असर पड़ेगा? शायद नहीं. क्योंकि पांच सितारा होटल में खाने-पीने वाले आम तौर पर साइकिल या बीड़ी का प्रयोग करते ही नहीं. यानी केवल उन वस्तुओं की कीमत का असर क उपभोक्ता की अ वस्तु की माँग पर असर पड़ेगा जिन का प्रयोग उपभोक्ता क करता है. अगर उपभोक्ता क किसी वस्तु का उपभोग करता ही नहीं है तो उस वस्तु की कीमत में परिवर्तन का उपभोक्ता क की माँग पर कोई असर नहीं पड़ेगा.[7]

परन्तु वस्तु की माँग पर सब से सीधा असर तो उस वस्तु की कीमत का होता है. हम अपने दैनिक अनुभव से जानते हैं कि यह प्रभाव ऋणात्मक होता है यानी कीमत बढ़ती है तो माँग घटती है एवं कीमत घटने पर ठीक इस का उलटा होता है. अर्थशास्त्रियों ने इस सम्बन्ध के कारणों पर बहुत कुछ लिखा है. वस्तु की कीमत और उस वस्तु की माँग पर जितना विचार विमर्श हुआ है उतना माँग के अन्य कारकों पर नहीं हुआ. अगले अध्यायों में हम इस सन्दर्भ में प्रचलित तीन व्याख्याओं का विस्तार से अध्ययन करेंगे परन्तु एक बात का ज़िक्र यहीं करना आवश्यक है.

कीमत से हमारा अभिप्राय क्या है? कीमत से हमारा अभिप्राय उस राशि से है जिस कुल ख़र्च पर व्यक्ति को किसी वस्तु की एक इकाई मिलती है. यानी कर, भाड़ा समेत अन्य सभी अनिवार्य ख़र्च कीमत में शामिल होंगे न कि मात्र वस्तु का अंकित अथवा क्रय मूल्य. उदाहरण के लिए, अगर किसी वाहन की उत्पादक कम्पनी द्वारा निर्धारित कीमत स्थिर रहती है परन्तु उस पर अनिवार्य रूप से करवाए जाने वाले अनिवार्य बीमा एवं अन्य देय करों में बढ़ोतरी हो जाती है, तो प्रभावी रूप से उपभोक्ता के लिए तो वाहन की कीमत बढ़ गई. इसी

---

[7] बाज़ार माँग के सन्दर्भ में संभावना है कि हर 'अन्य' वस्तु किसी न किसी उपभोक्ता की ख़रीदी में शामिल होगी. इस के चलते उस उपभोक्ता की अ वस्तु की माँग पर असर होगा, जिसका प्रभाव कुल बाज़ार माँग पर पड़ेगा. इस लिए संभावना है कि बाज़ार माँग के सन्दर्भ में अन्य सभी वस्तुओं की कीमत का अ वस्तु की कुल माँग पर प्रभाव पड़ेगा परन्तु किसी उपभोक्ता विशेष पर हर वस्तु की कीमत में बदलाव का प्रभाव पड़ना आवश्यक नहीं है.

प्रकार अगर घर के पास कोई वस्तु अधिक दाम में मिल रही है, परन्तु शहर के दूसरे हिस्से में सस्ती मिल रही है, तो वह वस्तु कहाँ से ख़रीदनी चाहिए? यह निर्णय केवल इस आधार पर नहीं होगा कि दुकानदार किस दाम पर दे रहा है, परन्तु हमें पड़ने वाली कुल लागत, जिस में दूर से ख़रीदने पर आने-जाने में होने वाला ख़र्च भी शामिल होगा, पर निर्भर होगा.

अभिरुचि/पसंद-नापसंद (taste and preference): उपरोक्त सब बातें समान होने पर भी कोई व्यक्ति समोसा खाना बहुत पसंद करता है तो कोई बिलकुल नहीं. हर व्यक्ति की अपनी पसंद-नापसंद होती है. सब बातें समान होने पर भी कोई व्यक्ति किसी वस्तु की ज़्यादा मात्रा ख़रीदता है तो कोई अन्य व्यक्ति कम या बिलकुल नहीं. यानी माँग व्यक्ति की पसंद-ना पसंद/अभिरुचि पर भी निर्भर करती है. अर्थशास्त्र यह मान कर चलता है कि व्यक्ति की पसंद-नापसंद स्वतंत्र रूप से पूर्व निर्धारित होती है एवं आर्थिक कारक इस को प्रभावित नहीं करते. उत्पादक तो इस पसंद-ना पसंद को ध्यान में रख कर उत्पादन करते हैं. इस लिए अर्थशास्त्र में व्यक्ति की पसंद-ना पसंद को प्रभावित करने वाले तत्त्वों/कारकों की विवेचना नहीं की जाती और आम तौर पर इन को स्थिर माना जाता है. **परन्तु वास्तविक** जीवन में हम क्या देखते हैं? विज्ञापनों की भरमार – जो पत्नी से करे प्यार वह कैसे करे '---' से इनकार, व्यक्ति की पसंद-ना पसंद को ही तो प्रभावित करने का प्रयास ही तो है. आप देखेंगे कि कुछ वस्तुओं के, कुछ उद्योगों के विज्ञापन बहुत होते हैं एवं कुछ के लगभग बिलकुल नहीं. शायद ही किसी ने आलू प्याज़ का विज्ञापन देखा हो. निश्चित तौर पर इस का सम्बन्ध आर्थिक कारकों से हो सकता है **परन्तु अर्थशास्त्र इस की अनदेखी कर के व्यक्ति की पसंद-ना पसंद को माँग का एक महत्त्वपूर्ण अपितु स्वतंत्र एवं पूर्व निर्धारित कारक मानता है.** अर्थशास्त्र में अभिरुचि के कारकों एवं आर्थिक चरों से इन के सम्बन्ध को आम तौर पर अनदेखा किया जाता है.

पसंद-नापसंद में माँग के अन्य सभी बचे हुए कारक/तत्त्व शामिल कर लिए जाते हैं जैसे मौसम/संस्कृति/इतिहास इत्यादि. किसी विशेष वस्तु जैसे कुल्फ़ी या गर्म कपड़ों की माँग का अंदाज़ा लगाते हुए उत्पादक को निश्चित तौर पर मौसम का ध्यान रखना होगा एवं इसे एक अलग कारक के तौर पर देखना होगा. परन्तु माँग की सामान्य चर्चा में हम इन को पसंद-नापसंद में ही शामिल कर लेते हैं एवं अलग से चिह्नित नहीं करते.

कीमत में बदलाव की संभावना का भी माँग पर असर पड़ता है. वास्तविक जीवन के अनुभव से हम जानते हैं कि अगर समाचारपत्रों में इस आशय की खबर हो कि कार पर आगामी बजट में कर बढ़ाया जा सकता है, तो बजट से पहले कारों की माँग में एकाएक बढ़ोतरी हो जाती है. लेकिन माँग की प्रारंभिक अर्थ-शास्त्रीय व्याख्या में 'कीमत में परिवर्तन की संभावना' के माँग पर पड़ने वाले प्रभाव की अनदेखी की जाती है. उच्चतर व्याख्या में ही इसे शामिल किया जाता है. [प्रारंभिक स्तर पर यह माना जाता है कि हर समय काल दूसरे समय काल से स्वतंत्र है; एक समय लिए जाने वाले निर्णय अगले किसी समय में लिए जाने वाले निर्णयों पर न कोई प्रभाव नहीं डालते हैं और न उन से प्रभावित होते हैं. इस लिए कीमतों में बदलाव की संभावना को अनदेखा किया जाता है.]

जन संख्या एवं इस की संरचना/बनावट (बच्चे ज़्यादा हैं या बूढ़े, महिलाएं ज़्यादा हैं या पुरुष) तथा आर्थिक असमानता का स्तर (ज़्यादा असमानता तो बहुत महँगी एवं बहुत सस्ती वस्तुओं की माँग ज़्यादा, असमानता कम तो सामान्य कीमतों वाली वस्तुओं की माँग ज़्यादा) जैसे तत्त्वों का बाज़ार माँग यानी कुल माँग पर निश्चित तौर पर असर पड़ता है; कुछ वस्तुओं की माँग पर ज़्यादा और कुछ पर कम या बिलकुल नहीं. विशेष वस्तुओं की माँग का अध्ययन करते हुए हमें इन जैसे तत्त्वों पर भी अलग से ध्यान देना होगा परन्तु माँग की सामान्य चर्चा में हम इन को पसंद-नापसंद में ही शामिल कर लेते हैं.

आशा है इस अध्याय के आरम्भ में आप द्वारा माँग को प्रभावित करने वाले सारे तत्त्व, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में उपरोक्त चर्चा में आ गए होंगे. अगर कोई तत्त्व नहीं आया, तो इस बाबत अपनी अध्यापिका से चर्चा करें.

माँग पर अब तक की गई चर्चा को समेटते हुए हम कह सकते हैं कि **क उपभोक्ता की वस्तु अ की एक निश्चित समयावधि में माँग उपभोक्ता की आय, उस की अभिरुचि/पसंद-ना पसंद, उस व्यक्ति द्वारा उपभोग की जाने वाली अन्य वस्तुओं की कीमत एवं वस्तु अ की कीमत पर निर्भर करती है.**

गणित की भाषा में माँग फलन को निम्न रूप में व्यक्त किया जा सकता है:

$$D_{अ}^{क} = f\left(Y, T, P_1, P_2, P_3, P_4, P_5 \dots \dots P_n, P_{अ}\right) \dots\dots\dots\dots\dots\dots\dots\dots \text{(1)}$$

यहाँ $D_{अ}^{क}$ इंगित करता है क उपभोक्ता कि वस्तु अ की एक निश्चित समय अवधि में माँग, f का अर्थ है कि $D_{अ}^{क}$ कोष्ठक में दिए गए तत्त्वों पर निर्भर करती है, Y इंगित करता है उपभोक्ता की मौद्रिक आय, T इंगित करता है उपभोक्ता की पसंद-ना पसंद, $P_{1,}P_2, P_3, P_{4,}P_5 \dots P_n$ इंगित करते हैं उपभोक्ता द्वारा ख़रीदी जाने वाली अन्य वस्तुओं की कीमत एवं $P_{अ}$ इंगित करता है वस्तु अ की कीमत. ये सामान्य संकेताक्षर हैं, जिन का हम भविष्य में बिना खुलासा किए प्रयोग करेंगे, इस लिए इन्हें याद कर लें.

इस समीकरण में बाईं ओर का चर $D_{अ}^{क}$ निर्भर तत्त्व/चर कहलाता है. निर्भर यानी जिस का व्यवहार अन्य तत्त्वों पर निर्भर करता है या जिस के व्यवहार की हम विवेचना करना चाहते हैं, जिसे हम समझना चाहते हैं. समीकरण में दाईं ओर के तत्त्व स्वतंत्र चर हैं यानी उन में बदलाव स्वतंत्र हैं. हम उन में होने बदलाव की व्याख्या नहीं करेंगे अपितु निर्भर तत्त्व पर पड़ने वाले उन के प्रभाव का अध्ययन करेंगे.

यह गणितीय फलन का सामान्य स्वरूप है. इस से मात्र यह पता चलता है कि निर्भर तत्त्व किन स्वतंत्र तत्त्वों पर निर्भर करता है. परन्तु यह सम्बन्ध कैसा है, सम्बन्ध धनात्मक है या ऋणात्मक, अथवा स्वतंत्र तत्त्व में कितना परिवर्तन होने पर निर्भर चर में कितना परिवर्तन होगा, यह इस सामान्य स्वरूप से नहीं पता चलता. उस के लिए फलन के विशिष्ट स्वरूप का अध्ययन करना पड़ता है. उदाहरण के लिए, अगर हम अन्य चरों को स्थिर मान लें और कीमत एवं माँग के परस्पर सम्बन्ध का अध्ययन करने पर पायें कि इस का स्वरूप निम्न है:

$D_{अ}^{क} = a + bP_{अ}$ ....(2)

समीकरण 2 माँग फलन का विशिष्ट स्वरूप है. गणितीय सूत्रों में आम तौर पर a एवं b का प्रयोग तब किया जाता है जब किसी चर का मान स्थिर हो. इन को गुणांक (*coefficient*) कहते हैं. इस के विपरीत X, Y इत्यादि का प्रयोग इंगित करता है कि इन चरों का मान परिवर्तनशील है. समीकरण 2 में $P_{अ}$ एवं $D_{अ}^{क}$ परिवर्तनशील चर हैं.

शुरू में गणित का प्रयोग मुश्किल लग सकता है परन्तु एक बार आप गणित की भाषा को समझ लें, तो यह बहुत उपयोगी भी साबित हो सकता है. हम इस पुस्तक में गणितीय भाषा पर निर्भर नहीं रहेंगे. इस लिए इससे डरने की ज़रूरत नहीं है. परन्तु गणित के उपयोग की बिलकुल अनदेखी भी नहीं करेंगे. सहयोगी सामग्री के तौर पर इस का प्रयोग करते रहेंगे.

जब माँग फलन के अन्य तत्त्वों को स्थिर रख कर केवल कीमत एवं माँग का सम्बन्ध चित्र द्वारा दिखाया जाता है तो उसे माँग-वक्र कहते हैं. कीमत को छोड़ कर अन्य चरों में परिवर्तन में होने पर माँग-वक्र दाएँ अथवा बाएँ सरक जाता है. इस लिए इन अन्य चरों को खिसकाने वाले चर अथवा कारक(shift factors) कहा जाता है.

माँग एवं उस वस्तु की कीमत के परस्पर सम्बन्ध के अध्ययन को माँग का नियम (Law of demand) कहा जाता है और माँग के सभी कारकों के अध्ययन को माँग का सिद्धांत (theory of demand) कहा जाता है. वस्तु की कीमत एवं उस वस्तु की माँग का सम्बन्ध माँग के सिद्धांत का एक छोटा अपितु महत्त्वपूर्ण भाग है. इस का विस्तृत अध्ययन हम आगामी अध्यायों में करेंगे.

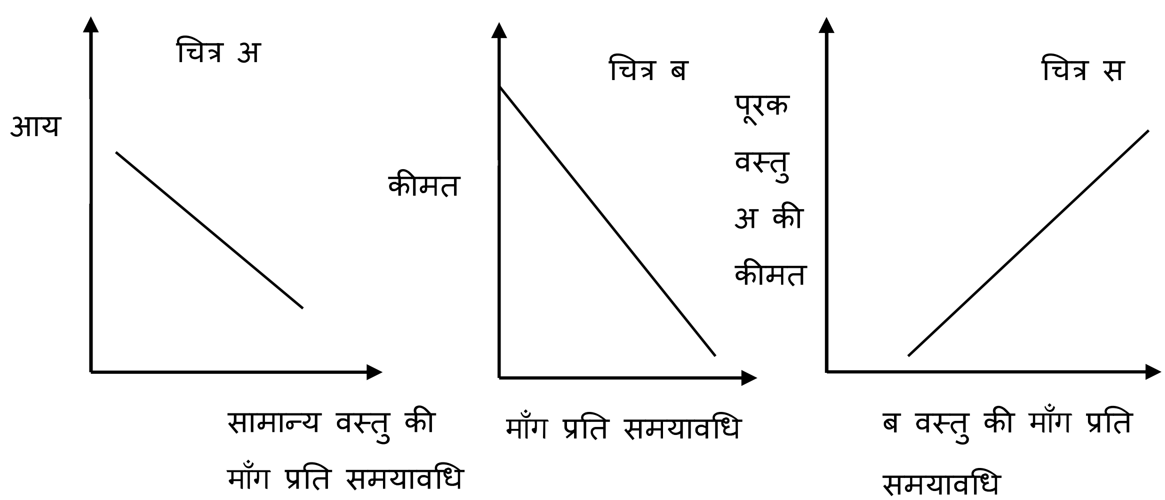
आगे बढ़ने से पहले भाषा प्रयोग सम्बन्धी एक अन्य स्पष्टीकरण भी आवश्यक है. क्योंकि माँग कई तत्त्वों पर निर्भर करती हैं इस लिए किसी वस्तु की माँग में बदलाव उस वस्तु की कीमत में बदलाव के चलते भी हो सकता है परन्तु यह अन्य कारणों से भी हो सकता है. **माँग में इन दोनों किस्म के बदलाव के लिए अलग-अलग शब्दावली प्रयोग की जाती है. कीमत में बदलाव के चलते माँग में होने वाले बदलाव को हम उस वस्तु की माँग मात्रा में बदलाव कहते हैं**. इस के चलते उपभोक्ता एक ही माँग-वक्र पर ऊपर नीचे होता है परन्तु माँग-वक्र में बदलाव नहीं होता. परन्तु अन्य कारणों से हुए माँग में बदलाव को हम **माँग में या माँग-वक्र में (न कि माँग की मात्रा में) बदलाव** कहते हैं. **कीमत के अलावा अन्य कारणों से हुए माँग में बदलाव माँग बढ़ना या घटना कहते हैं. इसके विपरीत कीमत में बदलाव के चलते माँग में हुए बदलाव को माँग की मात्रा बढ़/घट गई कहते हैं.** माँग में विभिन्न तरह के बदलाव के इस नामकरण को आप को याद रखना होगा.

इस अध्याय में हमने माँग का अध्ययन शुरू किया है. हमें यह स्पष्ट होना चाहिए कि जो सिद्धांत हम पढ़ने जा रहे हैं वह किन वस्तुओं की माँग पर लागू होते हैं एवं किन पर नहीं. मौद्रिक आय एवं वास्तविक आय का अंतर, वास्तविक आय की परिभाषा, कीमतों में परिवर्तन का वास्तविक आय पर प्रभाव, सामान्य वस्तु एवं निम्न स्तरीय वस्तुओं की परिभाषा, स्थानापन्न एवं पूरक/सहयोगी वस्तुओं की परिभाषा

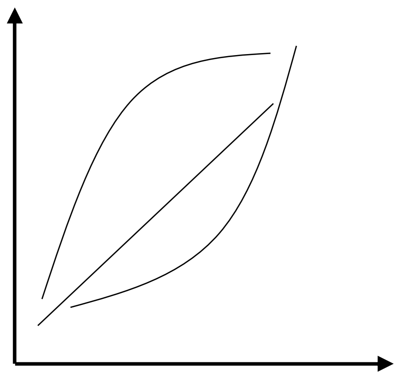
एवं इन की कीमतों में होने वाले परिवर्तन का माँग पर असर इत्यादि की भी हम ने चर्चा की है. उत्तल (convex) एवं अवतल/धनुषाकारी (concave) वक्रों के स्वरूप को भी हमने समझा है. अर्थशास्त्र व्यक्तिगत पसंद-ना पसंद को किस रूप में देखता है एवं क्या वास्तव में ऐसा होता है, इस की भी हम ने यहाँ चर्चा की है. ग्राफ़, गणित एवं भाषा तीन वैकल्पिक तरीके हैं, जिन का अर्थशास्त्र में प्रयोग हो सकता है. हमें इन तीनों के बीच अनुवाद करना एवं इन का मिलाजुला प्रयोग करना सीखना है. ग्राफ़ बनाने एवं इस के ढलान की पहचान तथा गणितीय फलन के स्वरूप की भी हम ने इस अध्याय में चर्चा की है. ये सभी तत्त्व आप को स्पष्ट होने चाहिये. अगर नहीं हैं तो सम्बन्धित हिस्सों को दोबारा से पढ़ें. फिर आगे बढ़ें. इस अध्याय में हम ने वस्तु की कीमत एवं इस की माँग के परस्पर सम्बन्ध का संक्षेप में ज़िक्र तो किया है परन्तु गहन विवेचना नहीं की है. यह अगले अध्यायों में करेंगे.

प्रश्न:

1. मान लीजिये कि आप केवल अ, ब, स एवं द वस्तुओं का उपभोग करते हैं. इन की कीमत क्रमशः 2, 5, 10 व 8 रुपये प्रति इकाई है एवं आप प्रति माह इन की क्रमशः 10, 4, 5 एवं 10 इकाइयों का प्रयोग करते हैं. अगर आप का वेतन-दर 100 रुपये प्रति माह बढ़ जाता है एवं ब एवं स वस्तु की कीमत दोगुनी हो जाती परन्तु अन्य वस्तुओं की कीमत में बदलाव नहीं होता, तो आप की वास्तविक आय पर क्या असर पड़ेगा?
2. क्या आप इस कथन से सहमत हैं कि उपभोक्ताओं की अभिरुचि स्वतंत्र एवं पूर्व निर्धारित होती है एवं उत्पादक इन को प्रभावित नहीं कर सकते?
3. निम्न चित्रों में से कौन से चित्र सही हैं और कौन से नहीं? जो चित्र सही नहीं है उन में क्या त्रुटियाँ हैं?



4. स्वतंत्र कारक एवं निर्भर कारक को परिभाषित करें एवं उदाहरण से स्पष्ट करें.
5. वस्तु अ की स्थानापन्न वस्तु की कीमत और वस्तु अ की माँग के परस्पर सम्बन्ध को ग्राफ़ से प्रदर्शित करें. इस वक्र का स्वरूप ऐसा क्यों होता है?
6. शून्य ढलान का वक्र, उत्तल वक्र एवं धनुषाकारी वक्र प्रदर्शित करें.
7. दो चरों के बीच में किन परिस्थितियों में सम्बन्ध धनात्मक कहे जाते हैं?
8. अब तक पढ़े अर्थ-शास्त्रीय चरों का भण्डार एवं प्रवाह चरों में वर्गीकरण करें.
9. माँग-वक्र को खिसकाने वाले चरों को चिह्नित करें.
10. निम्न चित्र के किस वक्र में ढलान बढ़ रहा है एवं किस में स्थिर है अथवा घट रहा है.



11. क्या माँग के सिद्धांत एवं माँग के नियम में कोई अंतर है? अगर है तो उसे स्पष्ट करें एवं माँग के सिद्धांत की व्याख्या करें.

12. माँग में बढ़ोतरी एवं माँग की मात्रा में बढ़ोतरी में क्या अंतर है?

अध्याय – 3

वस्तु की माँग एवं उस की कीमत का सम्बन्ध: गणना-वाचक उपयोगिता विश्लेषण (Cardinal Utility Analysis)

पिछले अध्याय में हम ने माँग के कारकों यानी माँग को प्रभावित करने वाले तत्त्वों की चर्चा की थी. परन्तु माँग के एक महत्त्वपूर्ण कारक, वस्तु की कीमत की विस्तृत चर्चा नहीं की थी. हम अपने अनुभव से जानते हैं कि इन में विपरीत सम्बन्ध होता है, परन्तु ऐसा होता क्यों है? परम्परागत रूप में इस की कम से कम तीन तरह से व्याख्या की गई है. इस अध्याय में हम इस की एक विशिष्ट व्याख्या का अध्ययन करेंगे.

संख्याओं में भेद: सब से पुरानी व्याख्या गणना-वाचक दृष्टिकोण से की गई थी. इस व्याख्या के अध्ययन से पहले हमें यह समझना चाहिए कि गणना-वाचक का अर्थ क्या है. हम दो तरह की संख्याओं का प्रयोग करते हैं. क्रम (या पद क्रम) सूचक संख्या (ordinal numbers) जैसे पहला, दूसरा, तीसरा एवं गणन संख्या (cardinal numbers) जैसे एक,दो, तीन इत्यादि. इन दो किस्म की संख्याओं में क्या अंतर है? गणन संख्या दो संख्या एक से दुगनी है एवं चार से आधी परन्तु पहले, दूसरे एवं चौथे के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता कि उन में कितना अंतर है. क्रमसूचक संख्याओं को परस्पर जोड़ नहीं सकते परन्तु गणन संख्याओं को जोड़ा या घटाया जा सकता है. गणन संख्याओं के आधार पर पद क्रम, पहला, दूसरा इत्यादि तय किए जा सकते हैं परन्तु सब से लम्बा, उस से छोटा और उस से छोटा आदि के आधार पर ऊंचाई या लम्बाई नहीं बताई जा सकती. परीक्षा में अंकों के आधार पर पद क्रम तय हो जाते हैं परन्तु पद क्रम के आधार पर अंक नहीं पता चल सकते. इन दो तरह की संख्याओं का अंतर क्यों महत्त्वपूर्ण है एवं हम क्यों यह चर्चा कर रहे हैं, यह अगले कुछ पृष्ठों में स्पष्ट हो जाएगा. फ़िलहाल इन का अंतर समझना आवश्यक है. **मूल अंतर यह है कि क्रमसूचक संख्याओं में किसी विशेष गुण के आधार पर वस्तुओं का पद क्रम तय किया जा सकता है, परन्तु 'विशेष गुण' की मात्रा का पता नहीं चलता. इस के विपरीत गणन संख्याओं में उस 'विशेष गुण' की मात्रा भी इंगित होती है.**

मूल प्रश्न कीमत एवं माँग के सम्बन्ध को समझने से पहले यह समझना आवश्यक है कि कोई उपभोक्ता किसी वस्तु का उपयोग क्यों करता है? भोजन से भूख मिटती है या स्वाद मिलता है, कम्बल से सर्दी से बचाव होता है, दवाई से दर्द से राहत मिलती है. इस लिए उपभोक्ता इन वस्तुओं का उपभोग करता है. यानी कोई उपभोक्ता किसी वस्तु का उपभोग या प्रयोग उस से मिलने वाली उपयोगिता के लिए करता है. अर्थशास्त्री तरह-तरह की उपयोगिता -भूख से मुक्ति, सर्दी से बचाव इत्यादि के लिए एक ही शब्द उपयोगिता (utility) या संतुष्टि शब्द का प्रयोग करते हैं. पहले यह माना जाता था कि उपयोगिता या संतुष्टि को ऐसे ही नापा जा सकता है जैसे लम्बाई या वज़न को नापा जाता है. यानी उपयोगिता को गणन संख्या में नापा जा सकता है. उपयोगिता को नापने की इस मान्यता पर आधारित कीमत एवं माँग की व्याख्या को गणना-वाचक उपयोगिता सिद्धांत कहते हैं.

अगर उपयोगिता को गणन संख्या में नापा जा सकता है तो सवाल उठता है कि उपयोगिता को नापने की इकाई क्या है? जैसे लम्बाई को मीटर या फ़ुट में नाप सकते हैं, वज़न किलोग्राम, सेर या पाउंड में नापा जा सकता है, इसी तरह उपयोगिता को कैसे नापा जाए? इस बारे में दो विचार आये. एक विचार तो यह था कि उपयोगिता को रुपयों या मौद्रिक इकाई में नापा जा सकता है (ऐसा कैसे हो सकता है, इस की चर्चा हम आगे करेंगे). क्योंकि अर्थशास्त्री मार्शल ने गणना-वाचक उपयोगिता सिद्धांत की अपनी व्याख्या में इस मान्यता का प्रयोग किया था, इस लिए इसे मार्शल की गणना-वाचक उपयोगिता व्याख्या भी कहा जाता है. बाद के अर्थशास्त्रियों का यह मानना रहा है कि उपयोगिता की इकाई इंगित करना आवश्यक नहीं है. इतना मानना पर्याप्त है कि हर व्यक्ति का अपना एक पैमाना होता है, जिस से वह किसी वस्तु से मिलने वाली उपयोगिता की गणना कर सकता है एवं इस की तुलना किसी अन्य वस्तु से मिलने वाली उपयोगिता से कर सकता है. इस काल्पनिक इकाई को यूटिल कहते हैं. इस व्याख्या को गणना-वाचक उपयोगिता की आधुनिक व्याख्या कहा जाता है.

गणना-वाचक उपयोगिता सिद्धांत की कुछ कमियाँ चिह्नित की गईं (जिन की चर्चा हम आगे करेंगे) तो फिर यह विचार आया कि उपयोगिता को गणन संख्याओं में नापना आवश्यक ही नहीं है. अगर उपयोगिता को क्रमसूचक संख्या में ही नापा जाए तो भी वस्तु की माँग एवं कीमत के परस्पर सम्बन्ध की व्याख्या की जा सकती है. इस व्याख्या के बारे में अगले अध्याय में पढ़ेंगे. फिर इस मान्यता की भी कुछ कमियाँ रेखांकित की गईं और इस लिए वस्तु की माँग एवं कीमत के परस्पर सम्बन्ध की तीसरी व्याख्या - उद्घाटित प्राथमिकता विश्लेषण- सामने आई. इन तीनों व्याख्याओं का अध्ययन हमें न केवल वस्तु की माँग एवं उस की कीमत के परस्पर सम्बन्ध को समझने में मदद करेगा, अपितु अर्थशास्त्र के सिद्धांत कैसे विकसित होते हैं, उन में कैसे बदलाव आते हैं, उस का भी यह एक अच्छा उदाहरण साबित होगा.

वस्तु की कीमत एवं माँग के परस्पर सम्बन्ध की उपरोक्त तीन व्याख्याओं में महत्त्वपूर्ण अंतर होते हुए भी, इन में कुछ समान बातें भी हैं. बल्कि कुछ अवधारणाओं का प्रयोग तो अर्थशास्त्र में माँग के अलावा भी होता है. इस लिए हम इन अवधारणाओं का इस अध्याय में विस्तार से अध्ययन करेंगे. इस पर कुछ ज़्यादा समय लग सकता है, परन्तु इस का फ़ायदा यह होगा कि अगले अध्यायों में हम इन बातों को संक्षेप में कह सकेंगे.

उपभोक्ता क को विभिन्न वस्तुओं के उपभोग से मिलने वाली उपयोगिता तालिका 1 में दी गई है. फ़िलहाल हम यह मान लेते हैं कि उपभोक्ता क केवल दो ही वस्तुओं को ख़रीद सकता है. वस्तु अ की कीमत 2 रुपया प्रति इकाई है और वस्तु ब की कीमत 4 रुपया प्रति इकाई है. यह भी मान लेते हैं कि उपभोक्ता की कुल आय 30 रुपया है. उपयोगिता की मापन इकाई रुपया अथवा यूटिल दोनों में से कोई भी हो सकती है.

तालिका -1

क उपभोक्ता को वस्तु अ एवं ब से मिलने वाली उपयोगिता

वस्तु अ की उपभोग मात्रा (1)	वस्तु अ से मिलने वाली कुल उपयोगिता (2)	वस्तु अ की सीमान्त उपयोगिता (3)	प्रति मौद्रिक इकाई वस्तु अ की सीमान्त उपयोगिता (4)	ब वस्तु की उपभोग मात्रा (5)	ब वस्तु के उपभोग से मिलने वाली कुल उपयोगिता (6)	ब वस्तु की सीमान्त उपयोगिता (7)	प्रति मौद्रिक इकाई ब वस्तु की सीमान्त उपयोगिता (8)
1	8	8	4	1	6	6	1.5
2	17	9	4.5	2	16	10	2.5
3	25	8	4	3	25	9	2.25
4	32	7	3.5	4	33	8	2
5	38	6	3	5	37	4	1
6	43	5	2.5	6	40	3	0.75
7	47	4	2	7	42	2	0.5
8	49	2	1	8	43	1	0.25
9	50.5	1.5	0.75	9	43	0	0
10	51.5	1	0.5	10	42	-1	-0.25
11	51.5	0	0	11	40	-2	-0.5
12	50	-1.5	-0.75	12	37	-3	-0.75

तालिका 1 के पहले, दूसरे, पांचवें एवं छठे स्तम्भ/कॉलम (column) में दी गई जानकारी उपभोक्ता से प्राप्त हुई है. यह जानकारी उपभोक्ता के उपयोगिता फलन अथवा उस की पसंद-नापसंद अथवा अभिरुचि पर आधारित है. इन स्वतंत्र रूप से दिए गए आँकड़ों के आधार पर तीसरे, चौथे, सातवें एवं आठवें स्तम्भ की गणना आप स्वयं कर सकते हैं. गणना कैसे करनी है, यह स्तम्भ शीर्षक से स्पष्ट हो जाता है. स्तम्भ तीन (एवं सात) में प्रति एक इकाई उपभोग बढ़ने पर उस वस्तु से मिलने वाली कुल उपयोगिता में होने वाले बदलाव की गणना की गई है. इसे सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility अथवा MU) कहते हैं. (शीघ्र हम इस पर विस्तार से चर्चा करेंगे. फ़िलहाल तालिका की गणना पर ध्यान केन्द्रित करते हैं.) क्योंकि इस तालिका में हर पंक्ति में उपभोग एक इकाई बढ़ रहा है, इस लिए किसी पंक्ति की उपयोगिता में से पिछली पंक्ति की उपयोगिता घटाने से हमें प्रति अतिरिक्त इकाई के उपभोग से मिलने वाली अतिरिक्त उपयोगिता यानी तीसरे एवं सातवें स्तम्भ के आंकड़े मिल जाते हैं. तीसरे एवं सातवें स्तम्भ के आँकड़ों को सम्बन्धित वस्तु की कीमत से भाग देने पर हमें प्रति एक रुपया अतिरिक्त ख़र्च से सम्बन्धित वस्तु से मिलने वाली अतिरिक्त उपयोगिता यानी चौथे एवं आठवें स्तम्भ के आंकड़े मिल जाते हैं. **दूसरे एवं छठे स्तम्भ में दिए गए आँकड़ों के आधार पर स्वयं गणना कर के तालिका 1 के अन्य स्तम्भों में दिए गए आँकड़ों की पुष्टि करें. बिना स्वयं गणना करे आगे न बढ़ें.**[8]

तालिका में निहित कुछ मान्यताएँ: इस साधारण सी तालिका में कई मान्यताएँ अंतर्निहित हैं, छुपी हुई हैं. इन को स्पष्ट करना आवश्यक है. पहली मान्यता तो यह है कि किसी वस्तु से मिलने वाली उपयोगिता या संतुष्टि को गणन संख्याओं में नापा जा सकता है. अगर ऐसा संभव न हो, तो ऐसी तालिका बनेगी ही नहीं. दूसरी मान्यता यह है कि किसी वस्तु से मिलने वाली उपयोगिता केवल उस वस्तु के उपभोग के स्तर पर निर्भर करती है, अन्य वस्तुओं की उपभोग की मात्रा पर नहीं. इस मान्यता के आधार पर ही हमने वस्तु अ से मिलने वाली उपयोगिता को केवल वस्तु अ की उपभोग की मात्रा से जोड़ा है, ब वस्तु के उपभोग के स्तर से नहीं.[9] इसे उपयोगिता की उपयोगिता की अन्तर्वस्तु स्वतंत्रता यानी वस्तुओं से मिलने वाली उपयोगिता की परस्पर स्वतंत्रता (inter-commodity independence of utility) कहते हैं.[10] अगर वस्तु अ से मिलने वाली उपयोगिता ब वस्तु के उपभोग के स्तर पर भी निर्भर करती, तो ऐसी सीधी-सादी तालिका बन ही नहीं सकती थी. **तब तालिका का क्या स्वरूप होता, यह आप स्वयं सोचें.** इस मान्यता की आवश्यकता का एक स्पष्ट कारण तो यह है कि बिना इस मान्यता के उपरोक्त तालिका बनानी मुश्किल हो जाती. केवल दो वस्तुओं के संदर्भ में ही तालिका जटिल हो जाती और अगर वास्तविक जीवन की परिस्थितियों में, जिन में सैंकड़ो वस्तुओं में चुनाव करना होता है, तो यह तालिका बहुत ही जटिल हो जाती. इस मान्यता का एक और कारण भी है जिस की चर्चा हम आगे करेंगे.

---

[8] वैसे तालिका 1 के दूसरे एवं छठे स्तम्भ भी आप स्वयं बना सकते हैं. इन्हें याद रखना अनिवार्य नहीं है. बस आप को एक बात का ध्यान रखना है कि कुल उपयोगिता आगे दिए गए घटती सीमान्त उपयोगिता के नियम, जिस की चर्चा आगे की गई है, के अनुसार हो. हो सकता है कि आप की गणना कुछ कठिन हो जाए, परन्तु बुनियादी निष्कर्ष ऐसे ही रहेंगे जैसे ऊपर दी गई तालिका से निकलेंगे. एक बार तालिका 1 का अध्ययन समाप्त होने के बाद आप को स्वयं नई तालिका बना कर इस प्रयोग को दोहराना चाहिए.

[9] फ़िलहाल हम यह मान कर चलेंगे कि साबुन के प्रयोग से मिलने वाली उपयोगिता साबुन की मात्रा पर ही निर्भर करती है, व्यक्ति ने क्या खाया है इस पर नहीं. परन्तु क्या ऐसा हमेशा होता है? क्या हम यह कह सकते हैं कि चाय से मिलने वाली उपयोगिता केवल चाय से प्रभावित होती है, साथ में खाने के लिए उपलब्ध बिस्कुट या मठरी की मात्रा से नहीं? शायद नहीं. परन्तु यहाँ हम यह मान कर चलेंगे कि उपयोगिता में स्वतंत्रता होती है एवं किसी वस्तु से मिलने वाली उपयोगिता केवल उस वस्तु की उपभोग की मात्रा पर निर्भर करती है. आगे चल कर हम इस मान्यता को छोड़ देंगे परन्तु गणना-वाचक उपयोगिता फलन में इस मान्यता का प्रयोग किया गया है.

[10] गणित की भाषा में इस मान्यता को यौगिक उपयोगिता फलन (additive utility function) भी कहते हैं. यौगिक उपयोगिता फलन का अर्थ है ऐसा उपयोगिता फलन जिस में विभिन्न वस्तुओं से मिलने वाली स्वतंत्र उपयोगिता को जोड़ कर कुल उपयोगिता ज्ञात की जा सके. यौगिक उपयोगिता फलन में वस्तुएँ स्थानापन्न अथवा पूरक नहीं हो सकतीं क्योंकि स्थानापन्न एवं पूरक की परिभाषा में ही निहित है कि इन वस्तुओं की उपयोगिता परस्पर स्वतंत्र नहीं है.

इस तालिका में तीसरी अन्तर्निहित मान्यता यह है कि किसी व्यक्ति को मिलने वाली उपयोगिता केवल उसके अपने उपयोग के स्तर पर निर्भर करती है, न कि अन्य व्यक्तियों के उपभोग के स्तर पर. इस लिए इस तालिका में केवल क उपभोक्ता का ज़िक्र है, अन्य व्यक्तियों के उपभोग का नहीं. चाय से मिलने वाली उपयोगिता तो व्यक्ति द्वारा पी जाने वाली चाय से ही होगी न कि दूसरों द्वारा पी गई चाय से. परन्तु क्या हमेशा ही ऐसा होता है? आप नए सुन्दर कपड़े पहन के बहुत खुश हो कर घर से निकलते हैं, परन्तु कक्षा में पहुँचते ही देखते हैं कि किसी अन्य छात्र ने आप से भी सुन्दर एवं महंगे कपड़े पहन रखें हैं. सब लोग उसकी प्रशंसा कर रहे हैं. इसे देखते ही हो सकता है कि आप का मज़ा किरकरा हो जाए. परन्तु व्यक्ति की माँग एवं वस्तु की कीमत का अध्ययन करने के लिए हम यह मान कर चलेंगे कि ऐसा नहीं होता एवं व्यक्तियों को मिलने वाली उपयोगिता केवल उन के अपने उपभोग के स्तर पर निर्भर करती है. इसे उपयोगिता की अंतर-व्यक्ति अथवा अंतर-वैयक्तिक यानी व्यक्तियों के बीच की स्वतंत्रता (inter-personal independence of utility) कहते हैं. अगर यह मान्यता न हो तो इस तालिका में अन्य व्यक्तियों के उपयोगिता फलन को भी शामिल करना होगा जो इस तालिका को अत्यंत जटिल बना देगा.

तालिका 1 में एक और मान्यता निहित है – यह कि उपभोक्ता को मिलने वाली उपयोगिता सुनिश्चित है. इस में कोई अनिश्चितता नहीं है. आम खट्टा भी निकल सकता है और मीठा भी. दोनों परिस्थितियों में आम के उपभोग से मिलने वाली संतुष्टि अलग-अलग होगी, परन्तु प्रारम्भिक बुनियादी चर्चा में हम यह मान कर चलेंगे कि आम एक निश्चित गुणवत्ता का है एवं इस लिए इस से मिलने वाली संतुष्टि सुनिश्चित है.[11] **इस चर्चा से आप को यह अहसास हो गया होगा कि बहुत साधारण सी दिखने वाली चीज़ों के पीछे भी कई तरह की मान्यताएँ होती हैं. किसी सिद्धांत में निहित मान्यताओं की जानकारी होना आवश्यक है क्योंकि, जैसा हम पहले अध्याय में देख चुके हैं, कई परिस्थितियों में मान्यताओं के आधार पर ही किसी सिद्धांत का मूल्यांकन संभव हो सकता है.** इस लिए हमेशा किसी व्याख्या अथवा विश्लेषण में निहित मान्यताओं को ढूँढने-समझने का प्रयास अवश्य करें.

उपभोक्ता की चयन प्रक्रिया में निहित कुछ अन्य मान्यताएँ: अब मान लीजिये कि यह क व्यक्ति आप ही हैं. जैसा कि हम मान चुके हैं, वस्तु अ की कीमत 2 रुपये प्रति इकाई है, ब की कीमत 4 रुपये प्रति इकाई है एवं आप की आय 30 रुपये है, जो आप को इन वस्तुओं पर ख़र्च करनी है. फ़िलहाल के लिए बचत को नकार देते हैं अथवा यह मान लेते हैं कि बचत करने के बाद आप के पास ख़र्च हेतु 30 रुपये बचे हैं. आप सब से पहले कौन सी वस्तु ख़रीदेंगे? **व्यक्ति का व्यवहार उस के उद्देश्यों से प्रभावित होता है.** व्यक्ति किधर जाएगा, कैसे जाएगा, यह उस की यात्रा के उद्देश्य से प्रभावित होता ही है. **उपभोक्ता का उद्देश्य क्या है?** अर्थशास्त्र में हम यह मानते हैं कि व्यक्ति अपनी कुल उपयोगिता को अधिकतम करना चाहता है.[12] यानी प्रस्तुत परिस्थितियों में – उपलब्ध आय, बाज़ार भाव एवं उस के स्वयं के उपयोगिता फलन/वक्र को ध्यान में रख कर वह अधिक से अधिक उपयोगिता प्राप्त करना चाहेगा. अधिकतर अर्थ-शास्त्रीय व्याख्या में यह माना जाता है कि उपभोक्ता या उत्पादक अपने चिह्नित लक्ष्य (उपयोगिता, लाभ इत्यादि) को अधिकतम एवं लागत या कष्ट को न्यूनतम करना चाहते हैं. अपवाद स्वरूप कुछ ही अर्थशास्त्री ऐसे हैं जो इस मान्यता को उपयुक्त नहीं मानते, परन्तु अधिकांश समय अर्थ-शास्त्रीय

---

[11] अनिश्चित उपयोगिता की स्थिति में भी माँग की व्याख्या की गई है, परन्तु फ़िलहाल हम इस का अध्ययन नहीं करेंगे.

[12] क्योंकि माँग-वक्र को स्थापित करने में हम यह मान कर चल रहे हैं कि उपभोक्ता अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करना चाहता है, इस लिए स्पष्ट है कि माँग-वक्र की यह व्याख्या उपभोग की वस्तुओं पर ही लागू हो सकती है. अन्य वस्तुओं की माँग, जैसे फ़र्म द्वारा उत्पादन में प्रयोग की जाने वाली सामग्री की माँग, की व्याख्या के लिए हम इस सिद्धांत का प्रयोग नहीं कर सकते क्योंकि फ़र्म का उद्देश्य अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करना नहीं है. भले ही हम पाएँ कि दोनों तरह के माँग-वक्र दिखने में एक जैसे हैं, ऋणात्मक ढलान वाले हैं, परन्तु फ़र्म द्वारा उत्पादन में प्रयोग की जाने वाली सामग्री की माँग की व्याख्या माँग के नियम के आधार पर नहीं की जा सकती क्योंकि फ़र्म का उद्देश्य भिन्न है. इस के लिए हमें अलग व्याख्या ढूँढनी होगी.

चर्चा में लक्ष्य को अधिकतम एवं कष्ट/लागत को न्यूनतम करना ही उद्देश्य माना जाता है. इस लिए हम यह मान कर चलेंगे कि व्यक्ति इष्टतम (यानी लाभ हो तो अधिकतम और लागत हो तो न्यूनतम) की प्राप्ति चाहता है. अंग्रेज़ी में इसे optimisation कहते हैं.

मनुष्य के व्यवहार को समझने के लिए यह भी ज़रूरी है कि वह अपने उद्देश्य के अनुरूप व्यवहार भी करे. अगर वह तय उद्देश्य के अनुरूप व्यवहार नहीं करता, तो उस के व्यवहार के बारे में पूर्वामान कैसे लगाया जा सकता है? इस लिए अर्थशास्त्र में हम यह भी मान कर चलते हैं कि उपभोक्ता का व्यवहार उस के उद्देश्यों के अनुरूप है. ऐसे उपभोक्ता को विवेकशील/विचारशील (rational) उपभोक्ता अथवा उत्पादक कहते हैं. वास्तविक जीवन में कई बार ऐसा होता नहीं है. हम उठना तो सुबह जल्दी चाहते हैं पर देर रात तक जागते रहते हैं. देर रात तक जागेंगे, तो सुबह जल्दी कैसे उठेंगे? परन्तु बिना विवेकशील व्यवहार की मान्यता के किसी व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन संभव नहीं है. इस लिए हम विवेकशील व्यवहार मान कर चलेंगे. **ध्यान रहे यहाँ विवेकशील का अर्थ मात्र इतना ही है कि व्यक्ति का व्यवहार उस के लक्ष्यों के अनुरूप है; विवेकशील का यह अर्थ नहीं है कि व्यक्ति अच्छा अथवा सही है.**

विवेकशील निर्णय लेने के लिए यह भी ज़रूरी है कि व्यक्ति को आवश्यक जानकारी उपलब्ध हो. बिना आवश्यक जानकारी के उचित निर्णय नहीं लिया जा सकता. बीमारी क्या है, इस की जानकारी होना आवश्यक है, तभी इलाज किया जा सकता है. अगर बीमारी की जानकारी ही न हो, तो इलाज कैसे किया जा सकता है? अगर आवश्यक जानकारी सहज उपलब्ध न हो या उस के लिए शुल्क देना पड़े, तो इस का भी निर्णय प्रक्रिया पर असर पड़ेगा. जानकारी जुटाने की लागत को भी निर्णय प्रक्रिया में शामिल करना होगा. इन जटिलताओं से बचने के लिए हम यह मान लेते हैं कि आवश्यक जानकारी सहज, बिना किसी लागत के उपलब्ध है. **माँग के सन्दर्भ में आवश्यक जानकारी क्या होगी?** उपभोक्ता की आय, उस द्वारा उपयोग में की जा सकने वाली वस्तुओं से मिलने वाली उपयोगिता एवं उन की कीमत.[13]

सीमान्त उपयोगिता (marginal utility): उपरोक्त तालिका के तीसरे एवं सातवें स्तंभ को ध्यान से देखें. इन स्तम्भों में वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिता की गणना की गई है. सीमान्त उपयोगिता का अर्थ है कुल उपयोगिता में वृद्धि की दर यानी वस्तु का उपभोग बढ़ने पर कुल उपयोगिता में प्रति इकाई कितनी वृद्धि होती है. **यह ध्यान में रहना चाहिए कि सीमान्त उपयोगिता का अर्थ अतिरिक्त इकाई से मिलने वाली उपयोगिता नहीं है. सीमान्त उपयोगिता का अर्थ है किसी वस्तु के अतिरिक्त उपभोग से उस वस्तु के उपभोग से मिलने वाली कुल संतुष्टि में बदलाव की दर(rate of change of total utility).** इस को इस प्रकार समझें. मान लीजिये आप एक कप चाय में चीनी की मात्रा बढ़ाते जाते हैं, तो एक समय पर चाय का मज़ा ही ख़त्म हो जाता है. पूरी चाय एवं उस में पड़ी चीनी का ही मज़ा ख़त्म हो जाता है. इस लिए हम ऐसा नहीं कह सकते कि चीनी के अंतिम ग्राम से मज़ा नहीं आया परन्तु उस से पहले वाली चीनी से मज़ा आया. अतिरिक्त इकाई की उपयोगिता एवं अतिरिक्त इकाई से कुल उपयोगिता में होने वाले परिवर्तन की दर में थोड़ा सा अंतर है. इस पर हमें ध्यान देना होगा. इस को एक अन्य उदाहरण की सहायता से समझा जा सकता है. मान लें कि एक विक्रेता 10 रुपया की दर पर 10 इकाई बेच पाता है. उस की कुल बिक्री हुई 100 रुपए. अब अगर कीमत 9 रुपए करने पर वह 11 इकाई बेच पाता है. इस स्थिति में उस की कुल बिक्री होगी 99 रुपये. अब अंतिम इकाई की बिक्री कीमत है 9 रुपये परन्तु उस का सीमान्त राजस्व कितना है? उस का कुल राजस्व 1 रुपया कम हो गया है यानी सीमान्त राजस्व है (-)1.

उपरोक्त तालिका के तीसरे एवं सातवें स्तंभ को ध्यान से देखने पर आप पाएंगे कि एक वस्तु का उपभोग बढ़ने पर प्रति अतिरिक्त इकाई उपयोगिता में होने वाली बढ़ोतरी एक समय के बाद घटने लग जाती है और फिर घटती जाती है. माँग के अध्ययन में यह एक महत्त्वपूर्ण मान्यता है**. इस मान्यता को घटती सीमान्त उपयोगिता का नियम कहते हैं.** इस नियम के अनुसार उपभोग बढ़ने पर प्रति अतिरिक्त इकाई उपयोगिता में होने वाली बढ़ोतरी अंततः घटने लग जाती है. **अंततः** शब्द महत्त्वपूर्ण है. इस का मतलब यह है कि अगर

[13] निश्चित तौर पर इन में से कई मान्यताएं वास्तविकता से मेल नहीं खाती. अगर इन पर आधारित निष्कर्ष वास्तविक जीवन में लागू होते हैं, तो इन मान्यताओं का अवास्तविक होना कोई दुर्गुण नहीं है. फ़िलहाल, यह समझना ज़रूरी है कि हमारे अध्ययन में इन मान्यताओं का प्रयोग कहाँ हो रहा है एवं कैसे ये मान्यताएँ, इस अध्ययन से निकले निष्कर्षों के लिए अनिवार्य हैं.

किसी वस्तु के उपभोग की मात्रा बढ़ती जाती है, तो भले ही शुरू से ऐसा न हो, परन्तु आख़िरकार सीमान्त उपयोगिता घटने लग जाती है. इस के चलते ऐसा भी हो सकता है कि अतिरिक्त उपभोग से कुल उपयोगिता घट जाए. हमारा अनुभव भले ही ऐसा रहा हो कि एक पकौड़ा खाने के बाद रुकना मुश्किल हो जाता है और 2-3 पकोड़े खाने से मज़ा बहुत बढ़ जाता है, लेकिन यह अनुभव इस मान्यता को ग़लत साबित नहीं करता. यह मान्यता तो मात्र इतना कहती है कि अगर हम ज़्यादा पकोड़े खाना जारी रखेंगे, तो एक समय ज़रूर ऐसा आयेगा जब हमारी उपयोगिता भले ही बढ़े पर बढ़ोतरी की दर कम हो जाएगी. इस मान्यता को स्वयंसिद्ध (axiom) माना जाता है एवं इस लिए इसे मान्यता न कह कर घटती सीमान्त उपयोगिता का नियम (law of diminishing marginal utility) कहते हैं.

उपभोक्ता की चयन प्रक्रिया: अब वापिस तालिका 1 पर चलें और विचार करें कि इन परिस्थितियों में आप सब से पहला रुपया कहाँ ख़र्च करेंगे? आप को अपनी उपयोगिता को अधिकतम करना है. इस लिए आप अपना पहला रुपया वहीं ख़र्च करेंगे, जहाँ आप को प्रति रुपया अधिकतम सीमान्त उपयोगिता मिलेगी. इसके लिए हमें चौथे एवं आठवें स्तम्भ को देखना होगा. ये स्तम्भ हमें तीसरे एवं सातवें स्तम्भ को सम्बन्धित वस्तुओं की कीमत से भाग देने पर प्राप्त होते हैं. स्पष्ट है आप सब से पहले वस्तु अ को ख़रीदेंगे क्योंकि इस से आप को प्रति रुपया 4 इकाई उपयोगिता मिलेगी. इस के विपरीत अगर आप ब वस्तु ख़रीदेंगे, तो आप को केवल प्रति रुपया 1.5 इकाई उपयोगिता मिलेगी.

अब अगली ख़रीदी किस वस्तु की होगी? पुन: उसी विचार प्रक्रिया का पालन करने पर आप पायेंगे कि अभी भी आप को वस्तु अ की ही ख़रीद करनी चाहिए. इस प्रकार निर्णय लेते हुए आप वस्तु अ की 7 इकाई ख़रीद कर चुके होंगे एवं 14 रुपये ख़र्च चुके होंगे. अब अगर वस्तु अ की अतिरिक्त इकाई ख़रीदते हैं तो आप की कुल उपयोगिता में मात्र 2 इकाई की बढ़ोतरी होगी यानी प्रति रुपया 1 इकाई अतिरिक्त उपयोगिता मिलेगी. जबकि, इस के स्थान पर अगर आप वस्तु ब की पहली इकाई ख़रीदें, तो आप को प्रति रुपया 1.5 इकाई अतिरिक्त उपयोगिता मिलेगी. यानी अब आप को ब वस्तु की एक इकाई ख़रीदनी चाहिए. इस स्थिति में आप 18 रुपये की ख़रीदी कर चुके हैं अथवा इस की योजना बना चुके हैं. अभी आप के पास 12 रुपये बचे हुए हैं. इस प्रकार ही गणना करते हुए आप ब वस्तु की 3 इकाई और ख़रीद करने की योजना बना सकते हैं. अब आप को ब वस्तु से भी 2 इकाई प्रति रुपया उपयोगिता मिल रही है और वस्तु अ से भी इतनी ही. अब आप की पूरी आय ख़र्च होने की योजना बन चुकी है. आप वस्तु अ की 7 इकाई एवं ब वस्तु की 4 इकाई ख़रीद कर कुल 47+33 (80) इकाई की संतुष्टि प्राप्त कर सकते हैं.

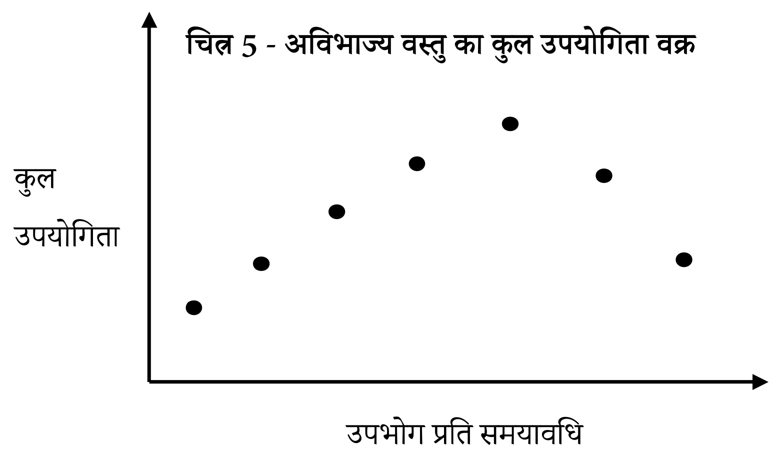
आप विचार कर के देखिये. इन परिस्थितियों में, यानी इन कीमतों पर, इस आय में एवं आप के उपयोगिता फलन (जिस पर स्तम्भ 2 एवं 6 आधारित हैं) के आधार पर, आप के सामने इस से बेहतर और कोई विकल्प नहीं है. ऐसा और कोई विकल्प नहीं है, जो आप को इस से बेहतर कुल संतुष्टि दे सके.

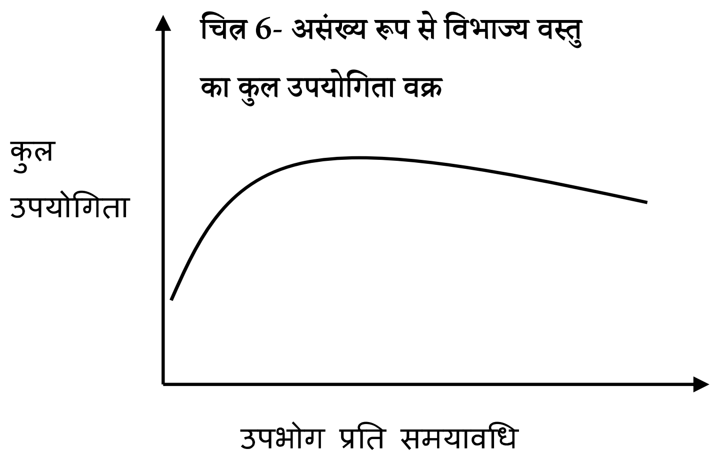
इस से स्पष्ट है कि उपयोगिता को अधिकतम करने का लक्ष्य रखने वाला, एक विवेकशील उपभोक्ता, जिसे आवश्यक जानकारी सहज एवं मुफ़्त उपलब्ध है, इस प्रकार ख़रीदी करेगा कि अधिकतम उपयोगिता के स्तर पर दोनों वस्तुओं पर अतिरिक्त रुपया ख़र्च होने से मिलने वाली अतिरिक्त उपयोगिता समान होगी. अगर ऐसा नहीं है, तो जिस वस्तु पर रुपये की सीमान्त उपयोगिता ज़्यादा है, उस का उपभोग बढ़ा कर, और जिस वस्तु पर रुपये की सीमान्त उपयोगिता कम हो, उस की मात्रा घटा कर, उपभोक्ता अपनी कुल उपयोगिता बढ़ा सकता है. यह बदलाव तब तक जारी रहेगा जब तक कि दोनों वस्तुओं पर अतिरिक्त रुपया ख़र्च होने से मिलने वाली अतिरिक्त उपयोगिता समान नहीं हो जाती. **इस नियम को सम-सीमान्त उपयोगिता का नियम (law of equi-marginal utility) कहते हैं. इस के अनुसार अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करने के लक्ष्य वाला विवेकशील उपभोक्ता इस प्रकार उपभोग करेगा कि सभी वस्तुओं से प्रति रुपया समान सीमान्त संतुष्टि प्राप्त होगी.**

यह स्थिति - कि अधिकतम उपयोगिता के स्तर पर दोनों वस्तुओं पर अतिरिक्त रुपया ख़र्च होने से मिलने वाली अतिरिक्त उपयोगिता समान है- कहीं अपवाद तो नहीं है? **यह देखने के लिए हम तालिका 1 में थोड़ा सा परिवर्तन कर देते हैं. वस्तु अ की 7 इकाइयों से मिलने वाली कुल उपयोगिता को 47 की बजाय 46.75 इकाई कर दें.** अब 7वीं इकाई पर ख़र्च होने वाले अतिरिक्त रुपये से 2 की बजाय मात्र 1.875 इकाई अतिरिक्त उपयोगिता मिल रही है जबकि ब वस्तु पर ख़र्च होने होने वाले अतिरिक्त रुपये से 2 इकाई

अतिरिक्त उपयोगिता मिल रही है. इस परिस्थिति में, दोनों वस्तुओं से मिलने वाली प्रति रुपया सीमान्त उपयोगिता एक समान नहीं है. फिर भी हम पाते हैं कि उपभोग का यही स्तर इष्टतम है. अगर वस्तु अ पर ख़र्च घटा कर ब वस्तु पर ख़र्च बढा दें, तो नुकसान 1.875 इकाई उपयोगिता का होगा और मात्र 1.75 इकाई अतिरिक्त उपयोगिता मिलेगी. जाहिर है ऐसा बदलाव घाटे का सौदा होगा. यानी वर्तमान उपभोग स्तर मौजूदा परिस्थितियों में अधिकतम संतुष्टि देता है जबकि दोनों वस्तुओं से मिलने वाली प्रति रुपया सीमान्त उपयोगिता समान नहीं है.

यह विरोधाभास क्यों है? एक तरफ़ हम कह रहे हैं कि अधिकतम उपयोगिता के स्तर पर दोनों वस्तुओं पर अतिरिक्त रुपया ख़र्च होने से मिलने वाली अतिरिक्त उपयोगिता समान होनी चाहिए परन्तु दूसरी ओर हम ने देखा है कि बिना इस शर्त को पूरा किए भी उपयोगिता अधिकतम हो सकती है. इस समस्या से निपटने के लिए अर्थशास्त्र में एक अन्य मान्यता का प्रयोग किया जाता है. हम यह मानते हैं कि किसी भी वस्तु की इकाई के असंख्य टुकड़े किए जा सकते है, वह पूरी तरह विभाज्य (divisible) है. भले ही हम आधी कार नहीं ख़रीद सकते परन्तु खुला नमक जितना चाहे ख़रीद सकते हैं; 256 ग्राम बल्कि 256.24 ग्राम भी बशर्ते कि हमारे पास उपयुक्त तराजू हो. **अर्थशास्त्र में हम यह मान कर चलते हैं कि हर वस्तु/संसाधन खुले नमक की तरह है, जिस कि कितनी भी मात्रा ख़रीदी जा सकती है यानी हर वस्तु पूरी तरह विभाज्य है.**





चित्र 5 एवं 6 में इस मान्यता का प्रभाव देखा जा सकता है. चित्र 5 में अविभाज्य वस्तु का उपयोगिता वक्र है एवं चित्र 6 में पूरी तरह विभाज्य वस्तु का उपयोगिता वक्र है.

इस मान्यता का प्रभाव क्या होगा? तालिका 1 में बदलाव के बाद इष्टतम स्थिति में वस्तु अ से सीमान्त उपभोग पर प्रति रुपया 1.875 इकाई अतिरिक्त उपयोगिता मिल रही है जबकि वस्तु ब से यह 2 इकाई है. अब इस अतिरिक्त मान्यता, यानी यह मान कर कि वस्तु की एक इकाई के अनंत हिस्से हो सकते हैं, के चलते आप वस्तु ब के उपभोग की मात्रा थोड़ी सी बढ़ा पायेंगे. घटती सीमान्त उपयोगिता के नियम के चलते ब वस्तु से मिलने वाली प्रति रुपया सीमान्त उपयोगिता कुछ घट जाएगी यानी 2 से कुछ कम हो जाएगी. दूसरी ओर, ब वस्तु की खपत बढ़ने से, निश्चित तौर पर आप को वस्तु अ की खपत घटानी ही होगी; तय आय के चलते ब वस्तु पर ख़र्च बढ़ने से वस्तु अ पर ख़र्च को घटाना ही होगा. घटती सीमान्त उपयोगिता के नियम के चलते, वस्तु अ से मिलने वाली प्रति रुपया सीमान्त उपयोगिता कुछ बढ़ जाएगी यानी 1.875 से कुछ ज़्यादा हो जाएगी. वस्तु अ पर ख़र्च घटाने एवं ब वस्तु का उपभोग बढ़ाने की यह प्रक्रिया तब तक चलेगी जब तक कि दोनों से मिलने वाली प्रति रुपया सीमान्त उपयोगिता समान नहीं हो जाती. **यानी अगर हम वस्तुओं को पूरी तरह विभाज्य माने तो इष्टतम उपभोग की स्थिति में दोनों वस्तुओं से मिलने वाली प्रति मौद्रिक इकाई सीमान्त उपयोगिता समान ही होगी.** ध्यान रहे कि यह सरलीकरण हेतु की गई मान्यता है वस्तु केवल दो हैं. इस लिए दो से अधिक वस्तु होने पर न केवल अ एवं ब वस्तु की, अपितु सभी वस्तुओं से मिलने वाली प्रति रुपया सीमान्त उपयोगिता समान होनी चाहिए.

अगर घटती सीमान्त उपयोगिता का नियम लागू न हो, तो उपभोक्ता के चयन पर क्या असर होगा? अगली इकाई किस वस्तु की ख़रीदेंगे? जिस वस्तु की आप ने पहली इकाई ख़रीदी है, अगली इकाई भी आप उस वस्त की ही ख़रीदेंगे. घटती सीमान्त उपयोगिता का नियम न लागू होने के कारण, उस वस्तु की सीमान्त उपयोगिता या तो स्थिर रहेगी या बढ़ जायेगी. पहले ही इस वस्तु की प्रति रुपया सीमान्त उपयोगिता दूसरी वस्तु की प्रति रुपया सीमान्त उपयोगिता से अधिक थी. इस लिए अगर घटती सीमान्त उपयोगिता की मान्यता लागू न हो, तो व्यक्ति आम तौर पर केवल एक ही वस्तु का उपभोग करेगा.[14] ऐसा वास्तविक जीवन में नहीं होता. हम देखते हैं कि उपभोक्ता केवल एक वस्तु का उपभोग न कर के एक से अधिक वस्तुओं का उपभोग करते हैं. वास्तविक जीवन का यह तथ्य, घटती सीमान्त उपयोगिता के नियम को तर्कसंगत साबित करता है. बिना घटती सीमान्त उपयोगिता के, हर उपभोक्ता केवल एक ही वस्तु का उपभोग करता.

गणितीय सूत्रों का प्रयोग करते हुए, अब तक की चर्चा के आधार पर हम कह सकते हैं कि:

$$U^{क} = f\left(Y_{क}, T_{क}, Q_{1क}, Q_{2क}, Q_{3क}, \ldots Q_{nक}\right) \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (3)$$

$U^{क}$ क उपभोक्ता का उपयोगिता फलन है जो इंगित करता है कि क व्यक्ति की उपयोगिता किन-किन तत्त्वों पर निर्भर करती है. यह निर्भर करती है उस व्यक्ति की मौद्रिक आय पर जिसे $Y_{क}$ दर्शाता है, उस की पसंद-नापसंद पर जिसे $T_{क}$ दर्शाता है, एवं उस द्वारा उपभोग की गई वस्तुओं की मात्रा पर जिन्हें $Q_{1क}, Q_{2क}, Q_{3क}, \ldots Q_{nक}$ से इंगित किया गया है. ($Q_{1क,}$ यानी क उपभोक्ता द्वारा उपभोग की गई 1 वस्तु की मात्रा इत्यादि).

इस साधारण से गणितीय समीकरण में एक अप्रत्यक्ष रूप से शामिल मान्यता की ओर आप का ध्यान आकर्षित करेंगे. इस समीकरण के अनुसार क व्यक्ति की उपयोगिता उस द्वारा उपयोग की गई वस्तुओं की मात्रा पर निर्भर करती है. इस में यह निहित है कि उस व्यक्ति की उपयोगिता दूसरों द्वारा उपभोग की गई वस्तुओं की मात्रा पर निर्भर नहीं है. अगर ऐसा न हो तो ख व्यक्ति द्वारा उपभोग की जा रही वस्तुओं की मात्रा भी इस समीकरण में शामिल होती. यानी उपयोगिता की अंतर-व्यक्ति स्वतंत्रता की मान्यता इस उपयोगिता फलन में अप्रत्यक्ष रूप से शामिल है.

किसी वस्तु की सीमान्त उपयोगिता को गणितीय रूप में उत्पादन फलन के प्रथम डेरिवेटिव/अवकलज/व्युत्पादित (derivative) से इंगित करते हैं यानी कि

$$MU^{क}_{अ} = \frac{\partial U^{क}}{\partial Q_{अ}}$$

परन्तु गणित से हम जानते हैं कि किसी फलन का डेरिवेटिव तभी लिया जा सकता है जब उस से सभी चर पूरी तरह सतत अथवा विभाज्य हों. इस लिए हम आम तौर पर उपयोगिता फलन को पूरी तरह विभाज्य मानते हैं. ऊपर हम देख चुके हैं कि अधिकतम उपयोगिता के लिए सभी वस्तुओं से मिलने वाली प्रति रुपया सीमान्त उपयोगिता समान होनी चाहिए. इस को गणित के सूत्र में निम्न रूप में इंगित कर सकते हैं.

$$\frac{MU^{क}_{अ}}{P_{अ}} = \frac{MU^{क}_{ब}}{P_{ब}} = MU_{आ} = \lambda \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (4)$$

इष्टतम उपभोग स्तर पर प्रति रुपया मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता को हम आय/मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता कहते हैं. आय की सीमान्त उपयोगिता, $MU_{आ}$ को आम तौर पर ग्रीक भाषा के अक्षर λ (lambda; उच्चारण लैम्बडा) से इंगित करते हैं.

वस्तु की माँग एवं इस की कीमत का परस्पर सम्बन्ध: इस लम्बी पृष्ठभूमि के बाद, जिस का हम बार-बार प्रयोग करेंगे, अब हम देखें कि कीमत बदलने पर उपभोक्ता के व्यवहार में क्या बदलाव आयेगा. इस को समझने के लिए हम ऊपर वर्णित सभी मान्यताओं का

---

[14] इस को कोने का चयन (corner solution) कहते हैं क्योंकि अगले अध्याय में आप पायेंगे कि केवल एक वस्तु का उपभोग उदासीनता वक्र के एक कोने पर ही संभव होता है.

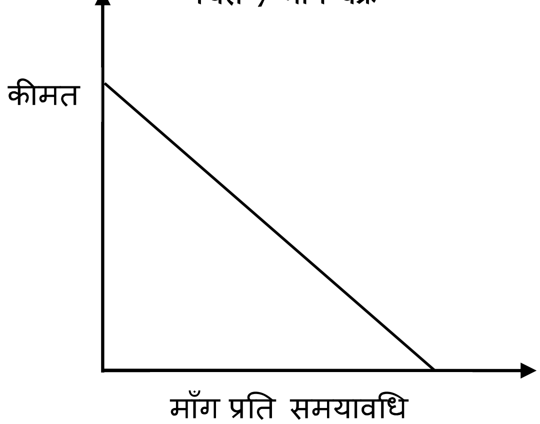
प्रयोग करेंगे. हर कदम पर **आप चिह्नित करने का प्रयास करें कि कौन सी मान्यता का प्रयोग किया जा रहा है एवं यह भी देखें कि क्या ऊपर दी गई कोई मान्यता ऐसी है जिस का प्रयोग न किया गया हो.**

अगर वस्तु अ की कीमत घट कर एक रुपया हो जाए, तो तालिका 1 में वर्णित उपभोक्ता क की ख़रीदी में क्या परिवर्तन होगा? यह जानने के लिए आप को तालिका 1 के स्तम्भ 4 की गणना दोबारा से करनी होगी क्योंकि पहली गणना का आधार वस्तु अ की कीमत दो रुपया प्रति इकाई था. अब अगर उपभोक्ता अपना पहले का उपभोग का स्तर बनाये रखता है, यानी वस्तु अ की 7 इकाई एवं वस्तु ब की 4 इकाई का उपभोग करता है, तो दो प्रभाव होंगे. एक तो उपभोक्ता के पास कुछ आय (7 रुपये) बच जाएगी जिनको वह ख़र्च कर सकता है. दूसरा, उस के वर्तमान उपभोग के स्तर पर अ एवं ब वस्तु से मिलने वाली प्रति रुपया सीमान्त उपयोगिता समान नहीं रहेगी. वस्तु अ से उसे प्रति रुपया 4 इकाई सीमान्त उपयोगिता मिल रही होगी जबकि वस्तु ब से मात्र 2 इकाई. निश्चित तौर पर उपभोक्ता वस्तु अ की खपत बढ़ाएगा क्योंकि अब उसे प्रति रुपया वस्तु अ से ब वस्तु की तुलना में ज़्यादा सीमान्त उपयोगिता मिल रही है. घटती सीमान्त उपयोगिता के नियम के चलते वस्तु अ की सीमान्त उपयोगिता घटती जाएगी. उपभोक्ता वस्तु अ पर तब तक ख़र्च बढ़ाता रहेगा, जब तक कि वस्तु अ से मिलने वाली प्रति रुपया सीमान्त उपयोगिता घट कर ब वस्तु से मिलने वाली प्रति रुपया सीमान्त उपयोगिता के बराबर नहीं हो जाती. इस प्रकार वस्तु अ की कीमत घटने से वस्तु अ की खपत बढ़ जाएगी.

बदली हुई कीमत के आधार पर एवं तालिका 1 के नए प्रारूप के आधार पर आप क उपभोक्ता के नए इष्टतम उपभोग स्तर की गणना करें. आप पायेंगे कि इष्टतम उपभोग का स्वरूप निम्न होगा: वस्तु अ की 10 इकाई, ब वस्तु की 5 इकाई और कुल उपयोगिता 87.5 इकाई. अगर आप की गणना इस से भिन्न है, तो दोबारा से गणना करें. इस उदाहरण में दोनों वस्तुओं की खपत बढ़ गई है. परन्तु ऐसा होना अनिवार्य नहीं है. कीमत घटने पर उस वस्तु की माँग तो निश्चित तौर पर बढ़ेगी क्योंकि उस वस्तु की कीमत घटने पर उस वस्तु से मिलने वाली प्रति रुपया सीमान्त उपयोगिता बढ़ जाएगी. दूसरी वस्तु पर प्रभाव हमेशा एक सा नहीं होगा. इस विषय पर हम फिर लौट कर आयेंगे.

अगर वस्तु अ की कीमत घटने के स्थान पर बढ़ जाती तो क्या होता? इस परिस्थिति में, अगर आप पिछले पैरा में की गई गणना को दोहराएंगे, तो पायेंगे कि वस्तु अ की कीमत बढ़ने पर इस की खपत या माँग घट जाएगी. **गणना द्वारा आप का स्वयं इस निष्कर्ष तक पहुँचना ज़रूरी है. इसे मात्र इस लिए न स्वीकार करें कि किताब में लिखा है.**

चित्र 7-माँग-वक्र



इस निष्कर्ष को, कि कीमत बढ़ने के साथ, अन्य बातें समान रहने पर (अन्य बातों में क्या क्या शामिल है, यह आप को स्पष्ट होना चाहिए) वस्तु की माँग घटती है एवं कीमत घटने पर माँग बढ़ती है, माँग का नियम कहते हैं. माँग के नियम के अनुसार कीमत एवं वस्तु की माँग में परस्पर ऋणात्मक या उलटा सम्बन्ध है (चित्र 7)

कीमत घटने पर वस्तु की माँग क्यों बढ़ती है? कहीं इस तालिका में दिया उदाहरण अपवाद तो नहीं है. नहीं ,यह अपवाद नहीं है. वस्तु अ की कीमत में परिवर्तन होने से पहले, दोनों वस्तुओं से प्रति रुपया समान उपयोगिता मिल रही थी. हम देख चुके हैं कि उपयोगिता को अधिकतम करने के लिए ऐसा होना अनिवार्य है. अब अगर वस्तु अ सस्ती हो गई है, तो इस के उपभोग से मिलने वाली प्रति रुपया सीमान्त उपयोगिता बढ़ जाएगी एवं ब वस्तु से मिलने वाली प्रति रुपया सीमान्त उपयोगिता से ज़्यादा हो जाएगी. गणित का प्रयोग करें तो वस्तु अ की कीमत सस्ते होने पर उपरोक्त समीकरण 4 बदल कर निम्न रूप ले लेगा: $\frac{MU_{\text{अ}}^{\text{क}}}{P_{\text{अ}}} > \frac{MU_{\text{ब}}^{\text{क}}}{P_{\text{ब}}}$. इस के चलते उपभोक्ता वस्तु अ का उपभोग बढ़ा देगा क्योंकि अब

प्रति रुपया वस्तु अ से ज़्यादा सीमान्त उपयोगिता प्राप्त हो रही है. यह प्रक्रिया तब तक चलेगी जब तक पुन: $\frac{MU_{अ}^{क}}{P_{अ}} = \frac{MU_{ब}^{क}}{P_{ब}}$ नहीं हो जाती. इस के चलते निश्चित तौर पर वस्तु अ का उपभोग बढ़ जाएगा.

इस निष्कर्ष के लिए वस्तुओं से मिलने वाली उपयोगिता की स्वतंत्रता की मान्यता आवश्यक है. अगर ऐसा न हो तो माँग का नियम स्थापित नहीं किया जा सकता. अगर वस्तु अ से मिलने वाली उपयोगिता, ब वस्तु के उपभोग के स्तर पर निर्भर हो, तो यह संभव है कि ब वस्तु का उपभोग बदलने पर परोक्ष प्रभाव से वस्तु अ से मिलने वाली उपयोगिता कम हो जाए और बिना वस्तु अ के उपभोग में बढ़ोतरी के ही $\frac{MU_{अ}^{क}}{P_{अ}} = \frac{MU_{ब}^{क}}{P_{ब}}$ की शर्त पूरी हो जाए. **इस लिए वस्तुओं से मिलने वाली उपयोगिता की स्वतंत्रता की मान्यता के बिना न केवल तालिका 1 जैसी तालिका जटिल हो जाएगी, अपितु इसके बिना गणना-वाचक व्याख्या में माँग का नियम स्थापित नहीं किया जा सकता.**

माँग का नियम अर्थशास्त्र का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण नियम अथवा सम्बन्ध है. इस अध्याय में हम ने इस की व्याख्या यह मान कर की है कि उपभोक्ता को किसी वस्तु के उपभोग से मिलने वाली उपयोगिता को गणन संख्याओं में नापा जा सकता है. इस के अलावा भी हम ने कई मान्यताओं का प्रयोग इस व्याख्या में किया है. इस लिए यह उपयोगी होगा कि अब आप इस विचार विमर्श को दोहरायें एवं देखें कि क्या पहले जिन मान्यताओं की चर्चा की गई थी, उन में से कोई मान्यता ऐसी है, जिस का प्रयोग न हुआ हो. आशा है अब आप को स्पष्ट हो गया होगा कि इन मान्यताओं के पीछे स्पष्ट उद्देश्य एवं उपयोगिता है. ये मनमानी मान्यताएँ नहीं हैं, जिन्हें आप को केवल याद करना है. **आप को सब मान्यताओं का उपयोग स्पष्ट होना चाहिए.**

इस अध्याय में प्रयोग की गई कुछ मान्यताएँ तो माँग के नियम की अन्य व्याख्याओं में भी प्रयोग की जाएँगी. इन मान्यताओं की समीक्षा हम अन्य दो व्याख्याओं के बाद करेंगे. लेकिन एक मान्यता पर विस्तार से चर्चा हम यहीं करेंगे. इस अध्याय में हम ने यह माना है कि उपयोगिता को गणन संख्याओं में नापा जा सकता है. हम ने यह भी कहा है कि उपयोगिता को रुपयों में भी नापा जा सकता है एवं काल्पनिक इकाई यूटिल में भी नापा जा सकता है. अब हम रुपये में उपयोगिता को नापने की समीक्षा करेंगे.

ऊपर हम ने आय या मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता का ज़िक्र किया था. स्पष्ट रूप से रुपये या मुद्रा की अपनी कोई उपयोगिता नहीं होती; उपयोगिता तो वस्तुओं (एवं सेवाओं) की होती है. एक निश्चित आय एवं कीमतों पर सम-सीमान्त उपयोगिता सिद्धांत के अनुसार उपभोग के इष्टतम स्तर पर किसी भी उपभोक्ता के लिए सभी वस्तुओं से प्रति रुपया समान सीमान्त उपयोगिता मिलेगी. इसे ही आय की सीमान्त उपयोगिता कहा गया है.

उपभोक्ता किसी वस्तु की एक इकाई के लिए अधिकतम कितना भुगतान करने को तैयार होगा? इष्टतम उपभोग के स्तर पर अगर उपभोक्ता एक वस्तु का उपभोग बढ़ाता है, तो उसे किसी अन्य वस्तु के उपभोग में कमी करनी पड़ेगी. इस लिए उपभोक्ता उस सीमा तक वस्तु अ की एक अतिरिक्त इकाई के लिए भुगतान करने को तैयार होगा, जब तक उस से मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता, दूसरी वस्तुओं के उपभोग में होने वाली कमी के चलते उपयोगिता में हुई कटौती, से ज़्यादा होगी. उदाहरण के लिए, अगर उपभोक्ता क के लिए वर्तमान परिस्थिति में रुपये की सीमान्त उपयोगिता 1 इकाई है और वस्तु अ की सीमान्त उपयोगिता 4 इकाई है, तो उपभोक्ता वस्तु अ की सीमान्त इकाई के लिए अधिकतम 4 रुपये देने को तैयार होगा. वह इस से ज़्यादा, जैसे 5 रुपये, नहीं देगा क्योंकि तब वह 5 इकाई उपयोगिता का त्याग कर मात्र 4 इकाई उपयोगिता पायेगा. ऐसा करने से उस की कुल उपयोगिता घट जाएगी. इसी तर्क से चार रुपये से कम, जैसे 3 रुपये से अधिक न देना भी उस की उपयोगिता घटाएगा. इस लिए सम-सीमान्त उपयोगिता सिद्धांत के अनुसार इष्टतम स्तर पर निम्न शर्त पूरी होनी चाहिए:

वस्तु अ की अतिरिक्त इकाई के लिए किया भुगतान गुणा में $MU_{आ} = MU_{अ}$..(5)

समीकरण 5 में $MU_{\text{आ}}$ आय की सीमान्त उपयोगिता दर्शाता है एवं $MU_{\text{वस्तु अ}}$ अ की सीमान्त उपयोगिता दर्शाता है. समीकरण 5 का दाईं ओर का पद वस्तु अ की सीमान्त उपयोगिता दर्शाता है. बाईं ओर का पद, वस्तु अ के लिए किए जाने वाले भुगतान के चलते, अन्य वस्तुओं के उपभोग में हुई कमी के कारण, उपयोगिता में हुई गिरावट को दर्शाता है. जब दोनों पद समान होंगे, यानी वस्तु अ की अतिरिक्त इकाई की ख़रीदी से मिलने वाली अतिरिक्त उपयोगिता एवं इसके चलते अन्य वस्तुओं से मिलने वाली उपयोगिता में हुई कमी एक समान हो जाएँगे, तभी उपभोक्ता इष्टतम स्तर पर होगा. सूत्र 5 को हम निम्न रूप में भी लिख सकते हैं:

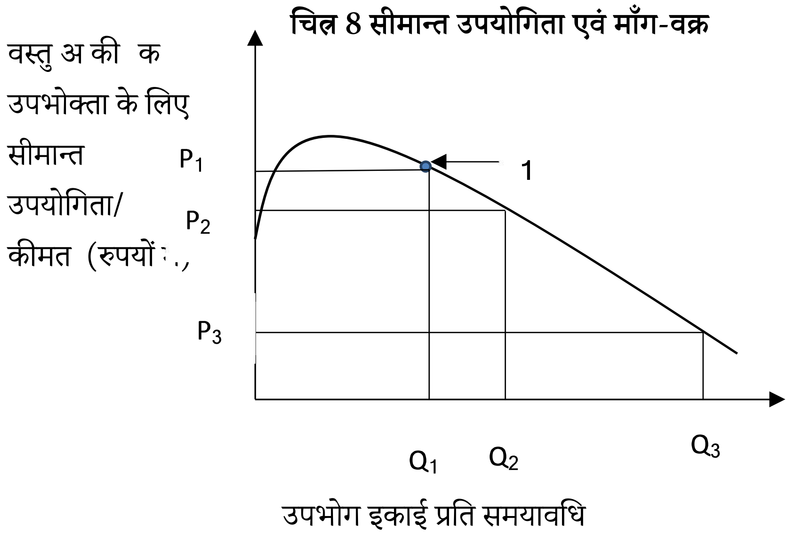
वस्तु अ की अतिरिक्त इकाई के लिए किया जाने वाला भुगतान = $MU_{\text{अ}}/\ MU_{\text{आय}}$ ....(6)

समीकरण 6 के बाईं ओर के पद से अधिक भुगतान वस्तु अ की अतिरिक्त इकाई के लिए किया जाना उचित नहीं होगा. इस लिए किसी वस्तु की अतिरिक्त इकाई के लिए उपभोक्ता द्वारा किया जा सकने वाला अधिकतम भुगतान, उस इकाई की सीमान्त उपयोगिता का मापक हो सकता है.

सूत्र 6 से स्पष्ट है कि आय की सीमान्त उपयोगिता में बदलाव होने पर वस्तु अ की रुपयों में मापी सीमान्त उपयोगिता में भी बदलाव हो जाएगा एवं सीमान्त उपयोगिता की गणना पुन: करनी होगी. इस समस्या से निपटने के लिए **मार्शल ने यह माना था कि वस्तु अ की कीमत बदलने पर भी मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता स्थिर रहती है.** इस मान्यता के पक्ष में निम्न तर्क दिया जा सकता है. एक उपभोक्ता कई वस्तुओं का उपभोग करता है. इस लिए किसी एक वस्तु पर होने वाला ख़र्च उस की कुल आय का बहुत छोटा हिस्सा होता है. अंत: किसी एक वस्तु की कीमत में बदलाव होने पर एवं अन्य बातें समान रहने पर, उस की वास्तविक आय में कोई विशेष बदलाव नहीं होगा. इस लिए, यह माना जा सकता है कि एक वस्तु की कीमत में बदलाव होने पर, एवं अन्य बातें समान रहने पर, उस की वास्तविक आय स्थिर रहेगी. अगर वास्तविक आय स्थिर रहेगी तो स्वाभाविक रूप से रुपये की सीमान्त उपयोगिता भी स्थिर रहेगी.

रुपये की सीमान्त उपयोगिता को स्थिर मानने का प्रभाव यह होता है कि रुपये में नापा गया सीमान्त उपयोगिता वक्र ही माँग-वक्र बन जाता है. इसे हम चित्र 8 की सहायता से देख सकते हैं. इस चित्र में उपभोक्ता क के लिए वस्तु अ का सीमान्त उपयोगिता वक्र दिखाया गया है. सीमान्त उपयोगिता को रुपयों में नापा गया है. अब अगर वस्तु अ की कीमत P_1 है इस कीमत पर उपभोक्ता वस्तु अ की Q_1 मात्रा ख़रीदना चाहेगा, न इस से कम और न इस से ज़्यादा. यानी इस स्थिति में उपभोक्ता बिंदु 1 पर होगा. अब अगर वस्तु अ की कीमत बदल जाती है, परन्तु मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता स्थिर रहती है, तो उपभोक्ता का सीमान्त उपयोगिता वक्र भी स्थिर रहेगा. इस स्थिति में P_2 कीमत पर माँग Q_2 होगी एवं P_3 कीमत पर Q_3. यानी सीमान्त उपयोगिता वक्र ही उपभोक्ता क के लिए वस्तु अ का माँग-वक्र बन जाएगा.

चित्र 8 सीमान्त उपयोगिता एवं माँग-वक्र



लेकिन अगर मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता स्थिर नहीं रहती एवं कीमत बदलने पर, मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता बदल जाती है, तो मुद्रा में नापा गया वस्तु अ का सीमान्त उपयोगिता वक्र भी स्थिर नहीं रहेगा. इस परिस्थिति में **कीमत घटने पर, वस्तु अ का मुद्रा में नापा गया सीमान्त उपयोगिता वक्र ऊपर खिसक जाएगा. ऐसा क्यों होगा?** कीमत घटने पर स्पष्ट तौर पर वास्तविक आय बढ़ जायेगी,

जिसके कारण मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता घट जायेगी. इस का कारण यह है कि मुद्रा की अपनी कोई उपयोगिता नहीं होती; मुद्रा की उपयोगिता वस्तुओं की उपयोगिता पर निर्भर करती है, जिन पर घटती सीमान्त उपयोगिता का नियम लागू होता है. इस लिए वास्तविक आय यानी उपभोग बढ़ने पर आय/मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता कम हो जाती है. समीकरण 6 से स्पष्ट है कि ऐसा होने पर वस्तु अ का सीमान्त उपयोगिता वक्र ऊपर की ओर खिसक जाएगा. लेकिन इस की ढलान ऋणात्मक ही रहेगी. इस लिए कीमत घटने पर माँग ज़्यादा होगी. विचार करने पर आप पायेंगे कि कीमत बढ़ने का मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता एवं वस्तु अ के सीमान्त उपयोगिता वक्र पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा. यह नीचे की ओर खिसक जाएगा, जिस के चलते माँग घट जाएगी. इस से स्पष्ट है कि अगर मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता स्थिर नहीं भी रहती, तो भी इस का कीमत एवं माँग के सम्बन्ध पर कोई असर नहीं पड़ता. कीमत एवं माँग का सम्बन्ध ऋणात्मक ही रहेगा. घटती सीमान्त उपयोगिता के चलते कीमत घटने पर अधिक मात्रा ही ख़रीदी जाएगी.

यह रेखाँकित करना आवश्यक है कि **मुद्रा अथवा आय की सीमान्त उपयोगिता की स्थिरता सीमित परिस्थिति – केवल एक वस्तु की कीमत में बदलाव - के सन्दर्भ में मानी गई है; आय में बदलाव के सन्दर्भ में नहीं.** आय बढ़ने पर तथा अन्य बातों के समान रहने पर, वस्तुओं का उपभोग का बढ़ेगा. घटती सीमान्त उपयोगिता के नियम के चलते वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिता घट जाएगी. वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिता घटती है, तो निश्चित तौर पर मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता भी घटेगी क्योंकि मुद्रा की उपयोगिता वस्तुओं की उपयोगिता पर आधारित है. इस की कोई स्वतंत्र उपयोगिता नहीं है.

माँग की मार्शल द्वारा की गई व्याख्या का एक ऐतिहासिक विरोधाभास के समाधान में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है. मानव इतिहास में हीरे अत्यंत महँगे रहे हैं और पानी (बोतलों में बंद होने से पहले तक) आम तौर पर नि:शुल्क. ऐसा इस के बावजूद है कि पानी जीवन के लिए आवश्यक है. इसके बिना कुछ दिन जीना भी मुश्किल हो जाता है, जबकि हीरे जीवन के लिए अनिवार्य नहीं हैं. इनके बिना भी जीवन निर्बाध चल सकता है. फिर **यह विरोधाभास क्यों? जो जीवन के लिए अत्यंत उपयोगी है, वह तो नि:शुल्क या बहुत कम कीमत पर उपलब्ध है और जिस की जीवन में विशेष उपयोगिता नहीं है, वह इतनी महँगी कीमत पर बिकता है.** मार्शल इस विरोधाभास की बहुत सरल व्याख्या कर पाए. मार्शल के अनुसार किसी वस्तु की कीमत उस की कुल उपयोगिता से नहीं, बल्कि उस की सीमान्त उपयोगिता से तय होती है. जल की कुल उपयोगिता ज़्यादा है, परन्तु आसानी से एवं बड़ी मात्रा में उपलब्धता के कारण इस की सीमान्त उपयोगिता कम है, इस लिए इस की कीमत कम होती है. इस के विपरीत हीरों की उपलब्धता अत्यंत सीमित होने के कारण इन की सीमान्त उपयोगिता उच्च बनी हुई है; इस लिए इन की कीमत ज़्यादा है.[15]

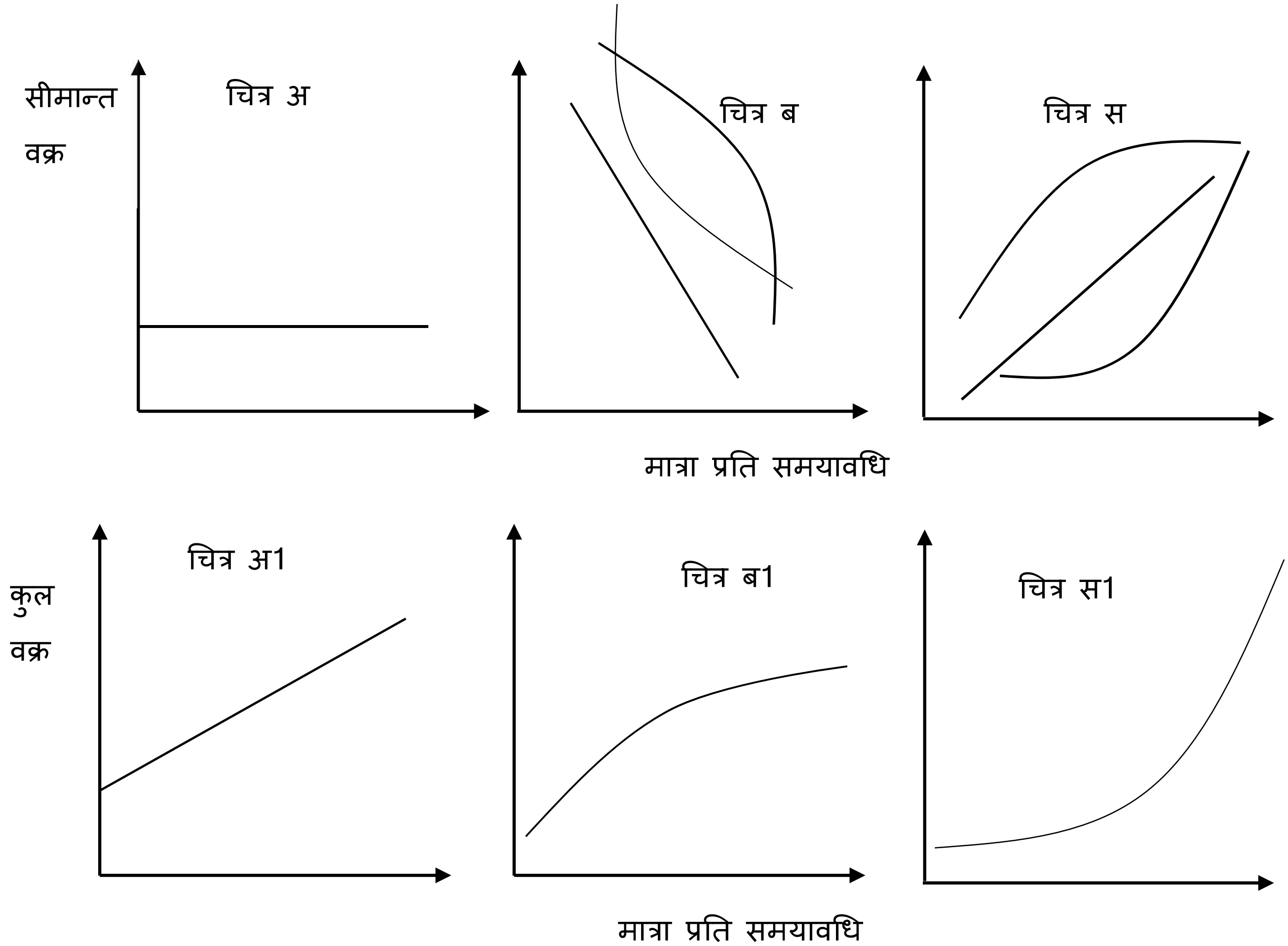
मुद्रा की स्थिर सीमान्त उपयोगिता के निहितार्थ: मार्शल द्वारा मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता यानी λ को स्थिर मानने की आलोचना की गई है. यह दिखाया गया है कि λ को स्थिर मानने का अर्थ है कीमत में बदलाव के बावजूद सभी वस्तुओं पर होने वाले ख़र्च का स्थिर रहना. तर्क थोड़ा घुमावदार परन्तु सटीक है. क्योंकि $\lambda = \frac{MU_{\text{ब}}^{\text{क}}}{P_{\text{ब}}}$ एवं ब वस्तु की कीमत में कोई बदलाव नहीं हुआ है, इस लिए λ तभी स्थिर हो सकता है जब ब वस्तु की सीमान्त उपयोगिता स्थिर रहे. ब वस्तु की सीमान्त उपयोगिता तभी स्थिर होगी जब ब वस्तु का उपभोग का स्तर स्थिर रहे. परन्तु अगर ब वस्तु का उपभोग का स्तर स्थिर है, तो ब वस्तु पर होने वाला खर्चा भी स्थिर होगा क्योंकि, अन्य बातें समान रहने की मान्यता के चलते, ब वस्तु की कीमत भी स्थिर है. अगर ब वस्तु पर होने वाला खर्चा स्थिर है, तो इस का अर्थ हुआ कि वस्तु अ पर होने वाला खर्चा भी स्थिर होगा क्योंकि मौद्रिक आय स्थिर है. आगे हम पढ़ेंगे कि अगर किसी वस्तु पर होने वाला खर्चा कीमत बदलने के बावजूद स्थिर रहता है तो इस का अर्थ है कि उस की कीमत लोच (जिसे हम बाद में परिभाषित करेंगे) एक होती है. इस लिए

[15] ध्यान देने की बात है कि अर्थशास्त्र में उपयोगिता नापने का कोई वस्तुनिष्ठ या स्वतंत्र पैमाना नहीं है; इसे उपभोक्ता के विवेक पर छोड़ दिया गया है. इस लिए सिगरेट एवं शराब जैसी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक वस्तुओं की भी उपयोगिता मानी गई है. यह भी एक कारण है कि हीरे मात्र दिखावटी उपभोग की वस्तु होने के बावजूद इतने महंगे होते हैं.

मार्शल की मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता स्थिर रहने का प्रभाव यह है कि वस्तु अ की कीमत लोच एक हो सकती है.[16] क्योंकि वस्तु अ एक सामान्य वस्तु की प्रतिनिधि वस्तु है, इस का तात्पर्य यह है कि न केवल वस्तु अ बल्कि हर वस्तु की कीमत लोच एक ही होगी. यह निष्कर्ष निश्चित तौर पर ग़लत है. भिन्न-भिन्न वस्तुओं की लोच अलग-अलग कीमतों पर अलग-अलग होती है एवं हमेशा एक नहीं होती. इस आधार पर मार्शल द्वारा उपयोगिता को मुद्रा में नापने की आलोचना की गई थी एवं यूटिल को मापने की इकाई के तौर पर प्रस्तावित किया गया था. लेकिन, जैसा हम ने ऊपर देखा है, मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता की स्थिरता, मार्शल की व्याख्या में भी माँग के नियम को स्थापित करने के लिए अनिवार्य नहीं है. इस मान्यता के प्रयोग से मात्र इतना लाभ होता है कि वस्तु का सीमान्त उपयोगिता वक्र ही उसका माँग-वक्र बन जाता है.

कुल एवं सीमान्त वक्र का चित्रण: आगे बढ़ने से पहले सीमान्त एवं कुल उपयोगिता के चित्रण के बारे में कुछ और चर्चा करनी उपयोगी होगी. सीमान्त वक्र एवं कुल वक्र का सम्बन्ध एक सा रहेगा, भले ही बात उपयोगिता की हो या उत्पादन की या राजस्व की. इस लिए यह चर्चा ज़रूरी है. चित्र 9 में ऊपर वाली पंक्ति में सीमान्त वक्र के विभिन्न स्वरूप दिखाए गए हैं एवं ठीक उन के नीचे सम्बन्धित कुल वक्र दिखाये गए हैं. इन का परस्पर सम्बन्ध भली प्रकार समझ लें ताकि इन में से एक वक्र दिया होने पर आप दूसरा वक्र खींच सकें - सीमान्त वक्र दिया हो तो कुल वक्र एवं कुल वक्र दिया हो तो सीमान्त वक्र.

चित्र 9 -सीमान्त वक्र एवं कुल वक्र का परस्पर सम्बन्ध



[16] आगे लोच के बारे में पढ़ने पर हमें ज्ञात होगा कि न केवल वस्तु अ की माँग की कीमत लोच एक होगी अपितु अ वस्तु के उपयोगिता वक्र की लोच भी एक ही होगी.

पिछले अध्याय में हम ने ढलान का अध्ययन किया था. उस के आधार पर चित्र 9 के भाग़ अ एवं अ1 की तुलना करें. भाग अ में सीमान्त चर स्थिर है. क्योंकि कुल वक्र की ढलान सीमान्त चर के समान होती है, इस लिए भाग अ1 में कुल वक्र की ढलान भी स्थिर है. चित्र 9 के भाग स में चर का सीमान्त स्तर (तीनों वक्रों में) बढ़ रहा है. इस लिए चित्र स1 में कुल वक्र की ढलान बढ़ रही है. स्वयं ढलान नाप कर, इस की पुष्टि करें. भाग ब में तीनों वक्रों में चर का सीमान्त स्तर घट रहा है, लेकिन इस के घटने की दर अलग-अलग है. इस लिए चित्र ब1 में कुल वक्र की ढलान भी घट रही है.[17]

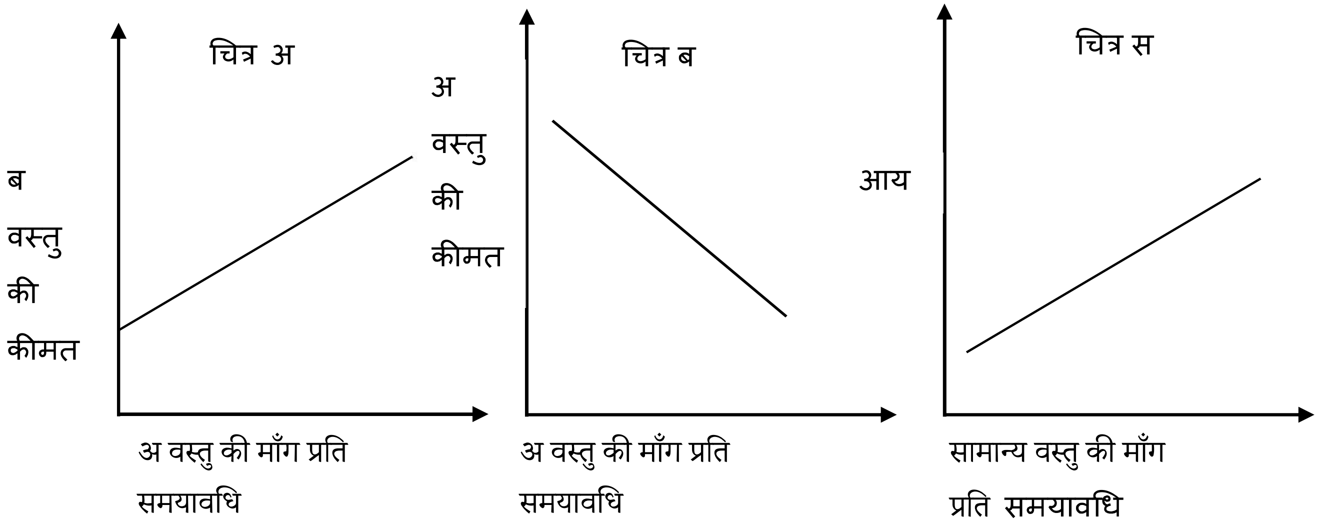
इस अध्याय में हम ने क्रमसूचक या पद क्रमसूचक एवं गणन संख्याओं के अंतर को समझा है. किसी उपभोक्ता को किसी वस्तु के उपभोग से मिलने वाली उपयोगिता की जानकारी एवं वस्तु की कीमत के आधार पर तालिका 1 जैसी तालिका बनाना सीखा है. इस में अंतर्निहित मान्यताओं को समझा है. इन मान्यताओं के आधार पर दी गई परिस्थितियों में किसी उपभोक्ता के इष्टतम उपभोग की गणना की है. हमने किसी एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने पर उस वस्तु की माँग पर होने वाले प्रभाव का अध्ययन भी किया है. हम ने पाया कि वस्तु की कीमत एवं उस की माँग में विपरीत सम्बन्ध होता है. इस सम्बन्ध की उत्पत्ति एवं यह किन मान्यताओं पर आधारित है, यह इस अध्याय की मुख्य विषयवस्तु है. हम ने पाया कि आय की सीमान्त उपयोगिता का स्थिर रहना, माँग के नियम को स्थापित करने के लिए आवश्यक नहीं है. सीमान्त उपयोगिता की अवधारणा एवं सीमान्त उपयोगिता वक्र का कुल उपयोगिता वक्र से सम्बन्ध का भी हम ने अध्ययन किया है.

वर्तमान व्याख्या की सब से बड़ी आलोचना यह रही है कि उपयोगिता को लम्बाई एवं वज़न की तरह नहीं नापा जा सकता. व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर कहा गया है कि यह मान्यता अवास्तविक है. यह मान्यता वर्तमान व्याख्या की आवश्यक शर्त है. अगर यह मान्यता लागू न हो, तो तालिका 1 इस रूप में बन ही नहीं सकती. माँग एवं कीमत के सम्बन्ध की एक वैकल्पिक व्याख्या प्रस्तुत की गई जिस में यह मान्यता आवश्यक भी नहीं है. इस वैकल्पिक व्याख्या के अनुसार उपभोक्ता के व्यवहार का अंदाज़ा उस परिस्थिति में भी लगाया जा सकता है (एवं माँग का नियम तब भी प्राप्त किया जा सकता है), जब उपभोक्ता उपयोगिता को गणना सूचक अंकों में न नाप कर मात्र इतना कह सके कि उसे अमुक वस्तु या वस्तुओं की तुलना में अमुक वस्तु या वस्तुओं कम या ज़्यादा संतुष्टि मिलती है. इस नई मान्यता के आधार पर माँग एवं कीमत के सम्बन्ध की व्याख्या अगले अध्याय में की जाएगी.

प्रश्न

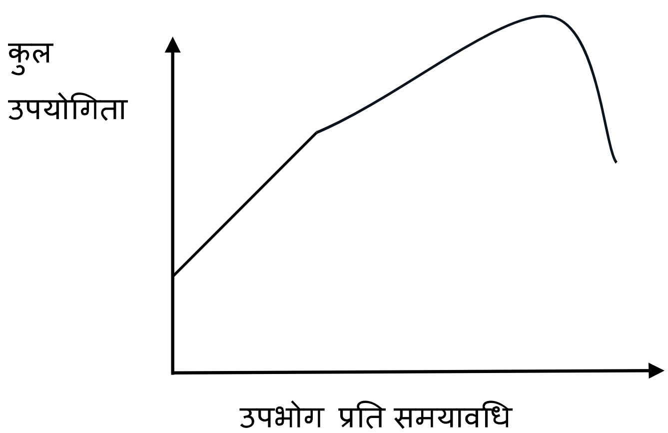
1. माँग के सिद्धांत के अनुसार यूरिया सामान्य वस्तु है. तर्क सहित इस वाक्य से अपनी सहमति या असहमति व्यक्त करें.
2. सीमान्त उपयोगिता क्या है? यह भी स्पष्ट करें कि किस प्रकार से सीमान्त उपयोगिता 'सीमान्त उपयोगिता प्रति मौद्रिक इकाई' से भिन्न है.
3. अगर् घटती सीमान्त उपयोगिता का नियम तालिका 1 पर लागू न होता एवं अगर सीमान्त उपयोगिता बढ़ती होती, तो उपभोक्ता का इष्टतम उपभोग स्तर कैसा होता?
4. अगर उपभोक्ता का लक्ष्य सारी आय को ख़र्च कर के उपयोगिता अधिकतम न कर के न्यूनतम रखना होता, तो तालिका 1 के आधार पर, उस का उपभोग का स्तर क्या होता? इस परिस्थिति में वस्तु अ की कीमत घटने पर उपभोक्ता के उपभोग के स्तर पर क्या असर पड़ता. क्या इस से यह पुष्टि होती है कि माँग के नियम को स्थापित करने के लिए अधिकतम उपयोगिता का लक्ष्य अनिवार्य है?
5. आय की सीमान्त उपयोगिता सम्बन्धी मान्यता, इस के प्रभाव एवं आवश्यकता की व्याख्या करें.
6. अपनी ओर से तालिका 1 जैसी एक अन्य तालिका बनाएँ. उस के आधार पर दिखाएँ कि कीमत बढ़ने पर, वस्तु की माँग घटेगी.
7. निम्न में से कौन से चित्र माँग के सिद्धांत के अनुरूप हैं एवं कौन से नहीं हैं अथवा किन परिस्थितियों में होंगे? कारण भी बताएं.

[17] यहाँ हम ने चित्र 9 के भाग ब एवं ब1, तथा स एवं स1 के मात्र एक सम्बन्ध की चर्चा की है - ढलान की स्थिरता अथवा घटने-बढ़ने की. इस पर अधिक चर्चा न कर के इतना ज़रूर रेखांकित करना आवश्यक है कि हालाँकि ऊपर वर्णित समानता बनी रहेगी परन्तु भाग ब अथवा स में चित्रित हर सीमान्त वक्र से सम्बन्धित कुल वक्र भिन्न होगा.



8. अगर किसी उपभोक्ता को दो वस्तुओं से मिलने वाली उपयोगिता परस्पर स्वतंत्र न हो, तो उस के उपयोगिता फलन को इंगित करती हुई तालिका का खाका बनाएँ.

9. निम्न कुल उपयोगिता वक्र का सीमान्त उपयोगिता वक्र दर्शाएँ. इस की सटीक गणना करनी आवश्यक नहीं है परन्तु इतना इंगित करना पर्याप्त है कि कहाँ पर सीमान्त उपयोगिता बढ़ रही है, कहाँ स्थिर है, इत्यादि.

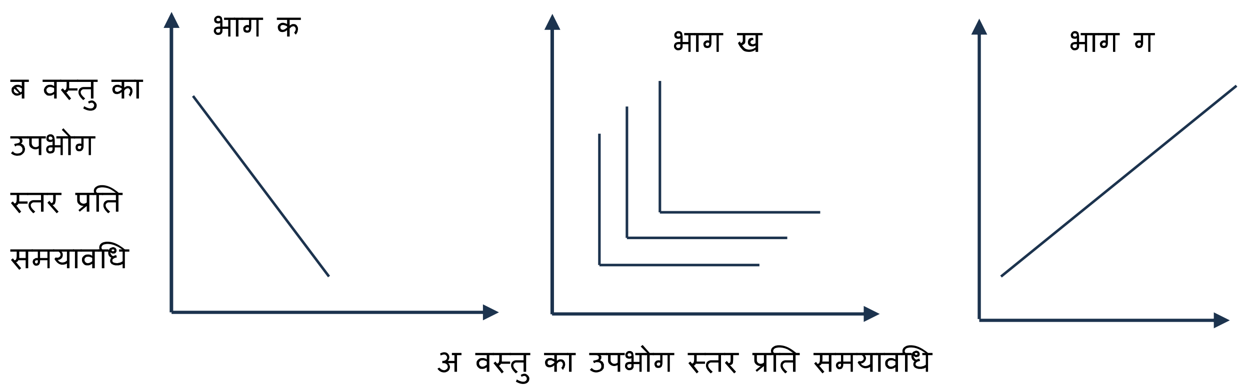


अध्याय – 4

वस्तु की माँग एवं उस की कीमत का सम्बन्ध: क्रमसूचक उपयोगिता विश्लेषण (Ordinal Utility Analysis)

पिछले अध्याय में की गई, माँग के नियम की व्याख्या, इस मान्यता पर आधारित थी कि वस्तु से मिलने वाली उपयोगिता गणन संख्याओं में नापी जा सकती है. इसे बहुत से अर्थशास्त्रियों ने अवास्तविक माना एवं माँग के नियम की व्याख्या एक नए आधार पर दी. इस नई व्याख्या के लिए उपयोगिता को क्रमसूचक संख्याओं में नापना पर्याप्त है. इस अध्याय में हम इस व्याख्या का अध्ययन करेंगे. इस के लिए कुछ नई अवधारणाओं -उदासीनता-वक्र एवं बजट-रेखा - को समझना ज़रूरी होगा. इन अवधारणाओं को स्पष्ट करने के लिए हमें काफी समय लगाना होगा. यह बहुत उपयोगी होगा क्योंकि ये दोनों अवधारणाएँ, कई अन्य अवधारणाओं को समझने में भी सहायक होंगी. इस लिए धैर्य से इन्हें समझें बल्कि हर नई अवधारणा को धैर्य से समझें क्योंकि अवधारणा स्पष्ट होने पर उस का उपयोग आसानी से समझ आ जाता है.

उदासीनता या तटस्थता वक्र (indifference curve): उदासीनता या तटस्थता वक्र वस्तुओं के उन सब संयोगों/समूहों को इंगित करता है जो किसी उपभोक्ता को एक जैसी संतुष्टि देते हैं. क्योंकि उपभोग के ये सभी समूह इस उपभोक्ता को एक जैसी संतुष्टि देते हैं, इस लिए उपभोक्ता इन के बीच तटस्थ या उदासीन रहेगा. इस लिए इन का नाम उदासीनता या तटस्थता वक्र रखा गया है. **उदासीनता-वक्र का स्वरूप कैसा होता है?** चित्रण की सुविधा के लिए हम यह मान लेते हैं कि उपभोक्ता को केवल दो वस्तु उपलब्ध हैं. निम्न चित्र 10 में उदासीनता-वक्र के कई तरह के संभावित स्वरूप दिखाए गए हैं. हम एक-एक कर के हर स्वरूप की समीक्षा कर के देखेंगे कि किन परिस्थितियों में उदासीनता-वक्र का स्वरूप ऐसा हो सकता है.



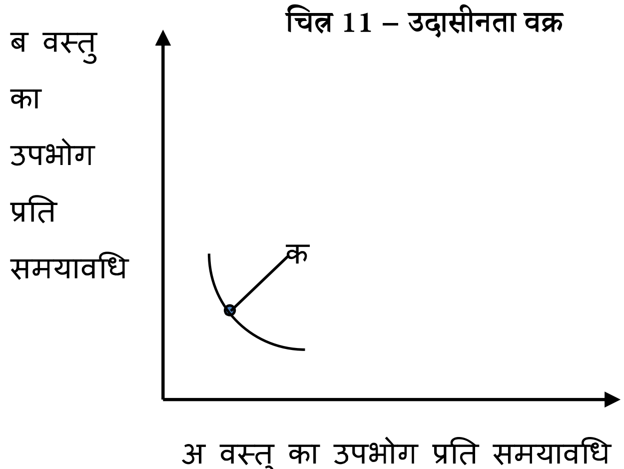
चित्र 10- संभावित उदासीनता वक्र

उपरोक्त चित्र के भाग क में उदासीनता-वक्र की ढलान स्थिर है. यानी संतुष्टि का स्तर बनाए रखते हुए एक निश्चित अनुपात में वस्तु अ की जगह ब वस्तु का उपभोग किया जा सकता है. ऐसा कब हो सकता है? जब दोनों वस्तु एक दूसरे की पूरी तरह से स्थानापन्न हों, जैसे 100 रुपये के बदले 50 रुपये के दो नोट. इस के विपरीत भाग ख के वक्र को अगर उदासीनता-वक्र माने तो इस का अर्थ है कि एक वस्तु की मात्रा स्थिर रहने पर दूसरी वस्तु की मात्रा कितनी भी बढ़ जाए, संतुष्टि के स्तर में कोई बदलाव नहीं होता. ऐसा कब हो सकता है? जब वस्तुएँ पूरी तरह से एक दूसरे की पूरक हों जैसे बाएँ पाँव का जूता और दाएँ पाँव का जूता, चकला-बेलन; एक चकला हो तो बेलन चाहे 1 हो या चार, उन की उपयोगिता एक जैसी ही होगी. भाग ग का वक्र किस परिस्थिति में उदासीनता-वक्र हो सकता है? इस में हम देखते हैं कि दोनों वस्तुओं का उपभोग बढ़ रहा है, परन्तु संतुष्टि के स्तर में कोई बदलाव नहीं है. ऐसा कब हो सकता है? ऐसा तभी हो सकता है जब एक वस्तु का उपभोग संतुष्टि घटाए एवं दूसरी वस्तु का उपभोग संतुष्टि बढ़ाए. एक वस्तु के बढ़े हुए उपभोग से हुई संतुष्टि में गिरावट की

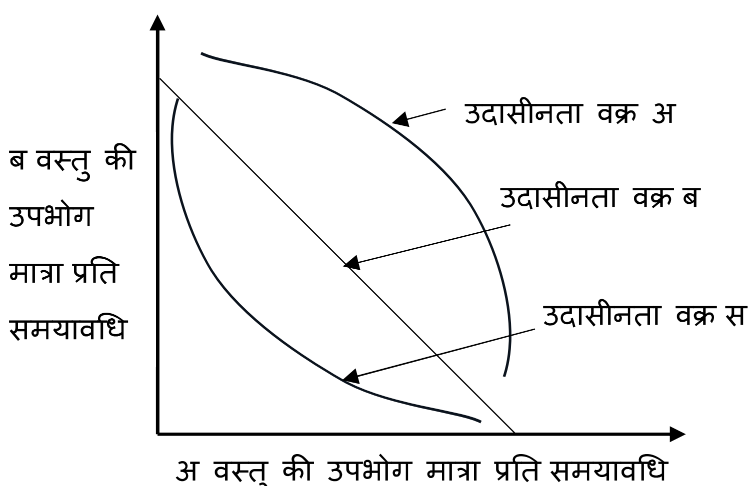
भरपाई के लिए, दूसरी वस्तु, जिस का अतिरिक्त उपभोग अतिरिक्त संतुष्टि देता हो, की मात्रा बढ़ानी होगी. उदाहरण के लिए, सिगरेट पीने से हुए सेहत के नुकसान की भरपाई के लिए कोई व्यायामशाला (जिम) में लगाया जाने वाला समय बढ़ाए.

ये तीनों तरह के वक्र विशेष परिस्थितियों में ही उदासीनता-वक्र का रूप ले सकते हैं. परन्तु अगर दोनों वस्तु न तो पूर्ण रूप से एक दूसरे की पूरक हों, न पूरी तरह स्थानापन्न हों और अगर दोनों का उपभोग संतुष्टि बढ़ाता हो, तो उदासीनता-वक्र का स्वरूप कैसा होगा?

चित्र 11 – उदासीनता वक्र



चित्र11 में बिंदु क, अ एवं ब वस्तु के एक समूह या संयोग को इंगित करता है. [18] इस से उपभोक्ता को एक निश्चित संतुष्टि या उपयोगिता मिलती होगी. अगर अब हम क बिंदु से दाईं ओर आगे बढ़ें तो वस्तु अ की मात्रा बढ़ जाएगी एवं वस्तु अ की मात्रा बढ़ने से उपभोक्ता की संतुष्टि का स्तर भी बढ़ जाएगा. इस लिए अगर उपभोक्ता का संतुष्टि का स्तर बिंदु क के स्तर पर रखना है, तो वस्तु अ का उपभोग बढ़ने पर ब वस्तु का उपभोग घटाना होगा. इसी प्रकार अगर क बिंदु से ऊपर की ओर जाते हैं एवं ब वस्तु की मात्रा बढ़ाते हैं, तो समान संतुष्टि के लिए वस्तु अ की मात्रा घटानी होगी. इस से स्पष्ट है कि उदासीनता-वक्र की ढलान बाएँ से दाएँ जाते हुए नीचे की ओर होगी यानी उदासीनता-वक्र की ढलान ऋणात्मक होगी. इस लिए ऊपर दी गई विशेष परिस्थितियों को छोड़ कर, आम तौर पर उदासीनता-वक्र की ढलान ऋणात्मक होगी. परन्तु जैसा हमने चित्र 3 में देखा था, ऋणात्मक ढलान भी कई तरह की हो सकती है. निम्न चित्र 12 में भी तीन तरह के उदासीनता-वक्र दिखाए गए हैं एवं तीनों की ढलान ऋणात्मक है. वास्तविक उदासीनता-वक्र कैसा होता है?



चित्र 12 - उदासीनता वक्र की संभावित ढलान

इन तीनों उदासीनता वक्रों में महत्त्वपूर्ण अंतर है. पिछले अध्याय में हम ढलान को नापने का तरीका सीख चुके हैं. उस के आधार पर हम देख सकते हैं कि बाएँ से दाएँ जाने पर उदासीनता-वक्र ब की ढलान स्थिर है उदासीनता-वक्र अ की ढलान का निरपेक्ष मान बढ़ता जाता है एवं उदासीनता-वक्र स में यह घटता जाता है. यानी, नीचे वाला वक्र उत्तल है, सब से ऊपर वाला धनुषाकारी एवं बीच वाला सीधी रेखा है.

उदासीनता-वक्र इन तीनों में से किस जैसा होगा? उदासीनता-वक्र की ढलान यानी $\frac{\Delta q_{ब}}{\Delta q_{अ}}$, ब वस्तु की वह मात्रा इंगित करता है, जो बिना संतुष्टि में गिरावट के, उपभोक्ता वस्तु अ की एक अतिरिक्त इकाई के लिए छोड़ने को तैयार है. इस लिए उदासीनता-वक्र की ढलान को प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (marginal rate of substitution या MRS) भी कहते हैं.

---

[18] इस चित्र में क सरीखा हर बिंदु वस्तु अ एवं वस्तु ब की एक निश्चित मात्रा को इंगित करता है. गणित की भाषा में वस्तुओं के ऐसे समूह को (अ, ब) रूप में दर्शाते हैं. प्रथा यह है कि पहले क्ष अक्ष पर मापी जा रही वस्तु की मात्रा एवं फिर य अक्ष पर मापी जा रही वस्तु की मात्रा दर्शाते हैं.

उपरोक्त परिभाषा के आधार पर अब हम उदासीनता-वक्र के स्वरूप का अध्ययन कर सकते हैं. मान लीजिये वस्तु अ है रोटी एवं ब वस्तु है सब्ज़ी. आप शुरुआत क्ष-अक्ष पर उद्गम बिंदु के करीब से करते हैं यानी थोड़ी रोटी एवं ज़्यादा सब्ज़ी से करते हैं. अब आप एक अतिरिक्त रोटी के लिए कुछ सब्ज़ी छोड़ने को तैयार होंगे. यह मात्रा हर व्यक्ति के लिए अलग होगी क्योंकि हर व्यक्ति की पसंद-नापसंद अलग होगी, परन्तु अधिकतर लोग संतुष्टि का स्तर बनाए हुए भी इस परिस्थिति में अतिरिक्त रोटी के लिए कुछ सब्ज़ी छोड़ने को तैयार होंगे. यह उस बिंदु पर उदासीनता-वक्र की ढलान होगी. अब उस व्यक्ति को फिर एक मौका दिया जाए कि वह एक अतिरिक्त रोटी के लिए कितनी सब्ज़ी छोड़ने को तैयार होगा. सामान्य अनुभव यह कहता है कि जैसे-जैसे व्यक्ति के पास रोटियों की संख्या बढ़ती जाएगी और सब्जी की मात्रा घटती चली जाएगी, वह अतिरिक्त रोटी के लिए सब्ज़ी की जो मात्रा छोड़ने को तैयार होगा वह घटती जाएगी. यानी जैसे हम क्ष-अक्ष पर दाएँ ओर बढ़ेंगे $\frac{\Delta q_{ब}}{\Delta q_{अ}}$ या उदासीनता-वक्र की ढलान का निरपेक्ष मान (यानी ऋणात्मक चिन्ह को अनदेखा करते हुए मूल्य) घटता जायेगा. इस तर्क के आधार पर चित्र 12 में नीचे वाला वक्र यानी उत्तल (convex) वक्र ही उदासीनता-वक्र हो सकता है. सब से ऊपर वाले वक्र में ढलान का निरपेक्ष मूल्य तो वस्तु अ की मात्रा बढ़ने के साथ बढ़ता जाता है. इस का अर्थ है कि सब से ऊपर वाले वक्र में जैसे-जैसे उपभोक्ता के पास रोटी ज़्यादा एवं सब्जी कम होती जाती है, उपभोक्ता रोटी के लिए ज़्यादा सब्ज़ी छोड़ने को तैयार होता जाता है. ऐसा आम तौर पर नहीं होता. इस लिए ऊपर का वक्र उदासीनता-वक्र नहीं हो सकता. बीच का वक्र अपवाद स्वरूप उदासीनता-वक्र हो सकता है, अगर अ एवं ब वस्तु पूरी तरह से एक दूसरे का विकल्प हों, उदाहरण के तौर पर दो ऐसे रंगों के कपड़े जो हमें समान संतुष्टि देते हों. क्योंकि आम तौर पर वस्तुएँ पूरी तरह एक दूसरे की स्थानापन्न नहीं होतीं, इस लिए आम तौर उदासीनता-वक्र नीचे वाले वक्र जैसा होता है. यानी, प्रतिस्थापन की सीमान्त दर घटती हुई होती है एवं उदासीनता-वक्र उत्तल होता है.

[**अगर सीमान्त उपयोगिता घटती जाती है, तो उस का प्रभाव यह होगा कि प्रतिस्थापन की सीमान्त दर भी घटती हुई होगी. परन्तु प्रतिस्थापन की सीमान्त दर के घटने के लिए सीमान्त उपयोगिता का घटना आवश्यक नहीं है.** इस बात को हम गणित की सहायता से ज़्यादा आसानी से समझ सकते हैं. अगर आप को गणित समझने में ज़्यादा परेशानी हैं तो निम्न पंक्तियों पर निगाह ज़रूर मारें लेकिन ज़्यादा समय एवं ऊर्जा न लगाएँ.

गणितीय सूत्र में हम उदासीनता-वक्र को निम्न रूप में इंगित कर सकते हैं:

$TU_0 = f(q_{अ}, q_{ब})$..(7)

TU_0 संतुष्टि का कोई एक स्तर इंगित करता है. अगर उपयोगिता गणन संख्याओं में नापी जा सकती है तो उपरोक्त समीकरण का कुल डेरिवेटिव/ अवकलज (total derivative) निम्न होगा

$\Delta TU_0 = \left(\frac{\partial TU_0}{\partial q_{अ}}\right) \Delta q_{अ} + \left(\frac{\partial TU_0}{\partial q_{ब}}\right) \Delta q_{ब}$..........................(8)

क्योंकि यह एक उदासीनता-वक्र है इस लिए इस पर एक बिंदु से दूसरे बिंदु पर जाने पर भी कुल उपयोगिता में कोई बदलाव नहीं होगा यानी $\Delta TU_0 = 0$. इस का प्रयोग करते हुए समीकरण 8 के आधार पर हम पाते हैं कि

$\frac{\Delta q_{ब}}{\Delta q_{अ}} = -\frac{\left(\frac{\partial TU_0}{\partial q_{अ}}\right)}{\left(\frac{\partial TU_0}{\partial q_{ब}}\right)}$..(9)

यानी उदासीनता-वक्र की ढलान = प्रतिस्थापन की सीमान्त दर = MRS $= -\frac{MU_{अ}}{MU_{ब}}$.............................(10)

यह रेखांकित करना आवश्यक है कि सीमान्त उपयोगिता की गणना के लिए यह आवश्यक है कि उपयोगिता गणन संख्याओं में नापी जा सकती हो. ऐसा होने पर ही उपरोक्त समीकरण 10 लागू होगा यानी तभी हम प्रतिस्थापन की सीमान्त दर की सीमान्त उपयोगिता से तुलना कर सकते हैं.

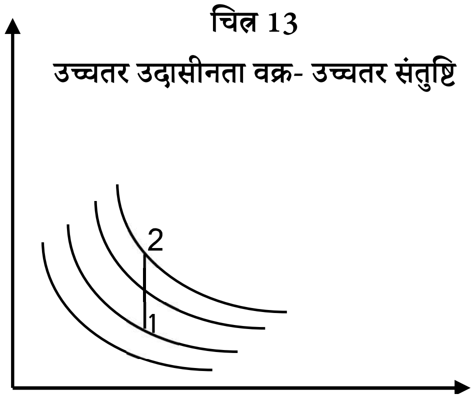
अगर घटती सीमान्त उपयोगिता का नियम लागू होता है तो जब वस्तु अ का उपभोग बढ़ेगा यानी उदासीनता-वक्र पर दाईं ओर चलेंगे तो $MU_{अ}$ घटेगी एवं क्योंकि ब वस्तु का उपभोग घट रहा है तो $MU_{ब}$ बढ़ेगी. सामान्य गणित का नियम कहता है कि अगर

अंश/विभाज्य या भिन्न के ऊपर की संख्या घटती है एवं नीचे की संख्या यानी विभाजक संख्या बढ़ती है, तो भिन्न का निरपेक्ष मान घटता है. इस लिए उपरोक्त समीकरण 10 एवं घटती सीमान्त उपयोगिता के नियम के आधार पर हम कह सकते हैं कि उदासीनता-वक्र पर दाईं ओर चलने पर $-\frac{MU_{अ}}{MU_{ब}}$ का निरपेक्ष मान घटेगा. इस का अर्थ है कि उदासीनता-वक्र की ढलान घटेगी. इस प्रकार घटती सीमान्त उपयोगिता के आधार पर हम कह सकते हैं कि उदासीनता-वक्र शून्य बिंदु की ओर उत्तल होगा.[19] परन्तु सामान्य गणित के अनुसार प्रतिस्थापन की सीमान्त दर के घटने के लिए सीमान्त उपयोगिता का घटना आवश्यक नहीं है. अगर अंश/विभाज्य या $MU_{अ}$ बढ़ता है, यानी अ वस्तु पर घटती सीमान्त उपयोगिता का नियम लागू नहीं होता, परन्तु विभाजक संख्या उस से भी ज़्यादा तेज़ी से बढ़ती है, तो भी भिन्न का मान घट सकता है. इस लिए प्रतिस्थापन की सीमान्त दर के घटने के लिए, सीमान्त उपयोगिता के घटने के नियम की आवश्यकता नहीं है. इस लिए प्रतिस्थापन की सीमान्त दर के घटने को हम एक स्वतंत्र मान्यता के रूप में देख सकते हैं.]

उदासीनता-वक्र की अन्य विशेषताएँ: उदासीनता-वक्र की कुछ विशेषताओं की हम चर्चा कर चुके हैं- ढलान ऋणात्मक होगी और यह शून्य बिंदु की ओर उत्तल होगा- परन्तु कुछ और विशेषताओं की चर्चा भी स्पष्ट रूप से करनी ज़रूरी है. अभी तक चित्रों में हम ने एक-एक उदासीनता-वक्र ही दिखाया है. ऐसा चित्रांकन की सुविधा के लिए ही किया गया है. वास्तव में तो एक उपभोक्ता के अनेक उदासीनता-वक्र होंगे. इस लिए उपभोक्ता एक उदासीनता-वक्र के स्थान पर उदासीनता-मानचित्र के आधार पर निर्णय लेता है. उदासीनता-वक्र सघन (dense) होते हैं, यानी दोनों वस्तुओं का हर संयोग किसी न किसी उदासीनता-वक्र पर होगा. हम यह भी मानते हैं कि उपभोक्ता अतृप्त है (यानी अघाया हुआ नहीं है). इस का अर्थ है कि अन्य वस्तुओं का उपभोग स्थिर रहने पर किसी भी वस्तु की अतिरिक्त मात्रा उसे अतिरिक्त संतुष्टि देगी. यानी किसी भी उपभोग बिंदु से किसी भी एक वस्तु अथवा दोनों की वस्तुओं की मात्रा बढ़ने पर उपभोक्ता की संतुष्टि का स्तर बढ़ जाएगा एवं ऐसा हर नया बिंदु न केवल एक नए उदासीनता-वक्र पर आसीन होगा, अपितु यह उच्चतर संतुष्टि को इंगित करेगा.

चित्र 13

उच्चतर उदासीनता वक्र- उच्चतर संतुष्टि



चित्र 13 में उदासीनता मानचित्र में बिंदु 2 एवं बिंदु 1 की तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है. बिंदु 2 बिंदु 1 के सीधा ऊपर स्थित है. इस लिए बिंदु 1 एवं 2 द्वारा इंगित संयोगों में वस्तु अ की मात्रा समान है, परन्तु ब वस्तु की मात्र संयोग 2 में ज़्यादा है. अगर उपभोक्ता अतृप्त है, तो स्पष्ट तौर पर बिंदु 2 बिंदु 1 की तुलना में ज़्यादा संतुष्टि देगा. इस लिए उच्चतर उदासीनता-वक्र उच्चतर संतुष्टि को इंगित करता है.[20] अतृप्तता की मान्यता के चलते ही दोनों या एक वस्तु का उपभोग बढ़ने पर, बिना किसी वस्तु के उपभोग में कटौती के, संतुष्टि का स्तर ऊपर उठ जाता है. नया उदासीनता-वक्र पुराने के ऊपर होगा, परन्तु इस का समानांतर ऊपर उठना आवश्यक नहीं है. **हम मात्र इतना कह सकते हैं कि दो उदासीनता-वक्र एक दूसरे को छूते या काटते नहीं हैं. ऐसा क्यों होता है? इस पर आप स्वयं विचार करें.**(इशारा/सहयोगी सूत्र: अगर दो उदासीनता-वक्र एक दूसरे को काटे या छूएंगे तो ऐसी स्थिति बन जाएगी कि एक वस्तु का

---

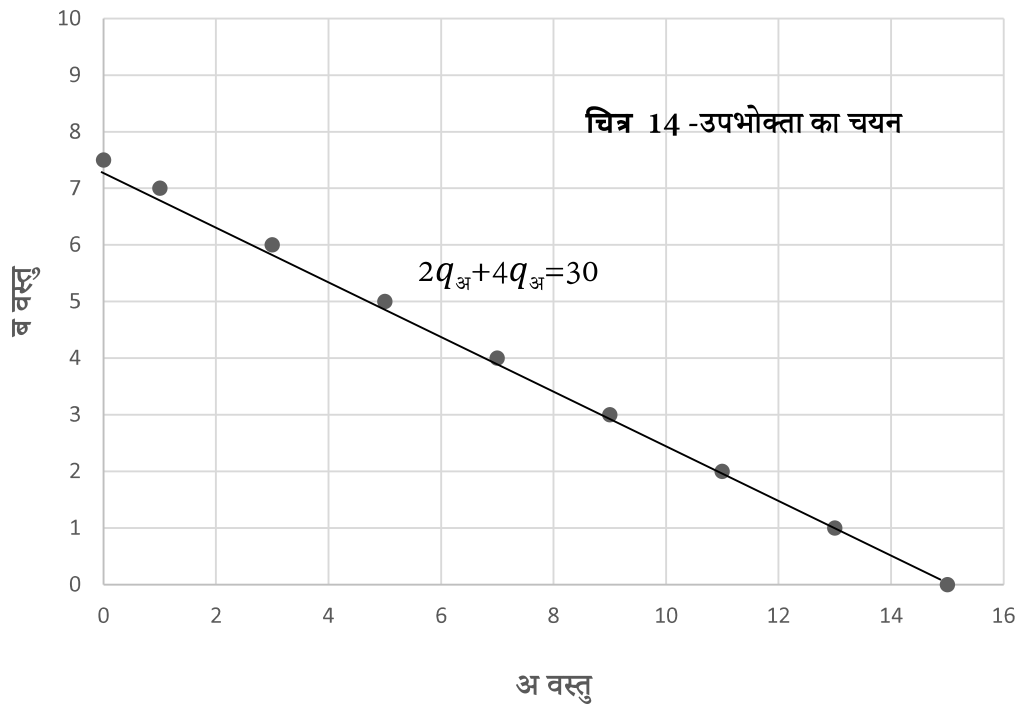
[19] हालाँकि यह ध्यान रहे कि घटती सीमान्त उपयोगिता के नियम के अनुसार अंततः सीमान्त उपयोगिता घटती है, परन्तु उपभोग के हर स्तर पर इस का घटना आवश्यक नहीं है.

[20] यह फिर दोहरा दें कि अधिक संतुष्टि का अर्थ मात्र इतना है कि उपभोक्ता को ज़्यादा संतुष्टि महसूस होती है. इस का यह अर्थ कदापि नहीं है कि ऐसा करना उपभोक्ता के लिए लाभकर या स्वास्थ्यकर है. शराब पीना या सिगरेट पीना या अधिक मीठा खाना मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए अच्छा नहीं है परन्तु **अर्थशास्त्र यह मान कर चलता है कि अधिक उपभोग यानी अधिक संतुष्टि.**

उपभोग बढ़ने पर बिना अन्य वस्तु का उपभोग कम हुए, भी उपभोक्ता दोनों संयोगों के बीच तटस्थ होगा. ऐसा होना संभव नहीं है क्योंकि यह उदासीनता-वक्र के उपरोक्त गुण - कि उपभोक्ता अतृप्त है - का निषेध होगा. चित्र द्वारा इसे आप स्वयं दिखाएँ.)

बजट-रेखा: मान लीजिये कि आप पिछले अध्याय में तालिका 1 के उपभोक्ता की स्थिति में हैं. यानी आप की आय 30 रुपये, वस्तु अ की कीमत 2 रुपये प्रति इकाई एवं वस्तु ब की कीमत 4 रुपये प्रति इकाई है. इस स्थिति में आप को अ एवं ब वस्तु के वे सब संयोग उपलब्ध हैं जो 30 रुपये में ख़रीदे जा सकते हों. इस बात को गणितीय सूत्र में निम्न समीकरण द्वारा दर्शाया जा सकता है: $2q_{अ} + 4q_{ब} = 30$. यही सब संयोग चित्र 14 में सीधी रेखा द्वारा दर्शाए गए हैं. इस रेखा पर स्थित संयोगों के अलावा आप इस रेखा के नीचे के सब संयोग भी ख़रीद सकते हैं. परन्तु इस रेखा के ऊपर स्थित कोई भी संयोग उपभोक्ता को उपलब्ध नहीं है क्योंकि इन की लागत 30 रुपये से अधिक है.

चित्र 14 की रेखा को बजट-रेखा कहते हैं. बजट-रेखा उपभोक्ता को उपलब्ध उन सब संयोगों को दिखाती है जो उपभोक्ता की आय में बाज़ार भाव पर उपलब्ध हैं एवं जिन की ख़रीदी में उस की पूरी आय ख़र्च हो जाती है. बजट-रेखा के नीचे के सब संयोगों पर कम लागत आती है, इस लिए उपभोक्ता को इस बजट-रेखा के नीचे के भी सब संयोग उपलब्ध होते हैं. बजट- रेखा के ऊपर स्थित संयोगों की लागत आय से अधिक होती है, इस लिए ये उपभोक्ता को उपलब्ध नहीं होते हैं. दूसरे शब्दों में, बजट-रेखा वस्तु के संयोगों को उपभोक्ता को उपलब्ध एवं 'उपलब्ध नहीं' दो हिस्सों में बाँट देती है. बजट-रेखा एवं इस के नीचे स्थित वस्तु-समूह उपलब्ध होते हैं एवं इस के ऊपर स्थित वस्तु-समूह उपभोक्ता को उपलब्ध नहीं होते.



चित्र 14 -उपभोक्ता का चयन

अलग-अलग आय एवं अलग-अलग कीमतों के आधार पर बजट-रेखा खींच कर देखें. आप पाएंगे कि कीमतें स्थिर रहने पर और आय बदलने पर बजट-रेखा समानांतर रूप से ऊपर-नीचे हो जाती है. आय स्थिर रहने पर, परन्तु वस्तु अ की कीमत बढ़ने पर इस की ढलान का निरपेक्ष मूल्य बढ़ जाता है (यानी ढलान ज़्यादा तीखी हो जाती है या शून्य बिंदु की ओर मुड़ जाती है). अगर आय एवं वस्तु अ की कीमत स्थिर रहे लेकिन ब वस्तु की कीमत में बदलाव आये तो बजट-रेखा की ढलान पर क्या असर होगा, यह स्वयं सोचें.

[बजट-रेखा को गणितीय समीकरण के रूप में हम निम्न रूप में लिख सकते हैं. पिछले अध्याय की तालिका 1 की परिस्थिति में बजट-रेखा का स्वरूप होगा:

$4q_{ब}+ 2q_{ब} =30$..(11)

परन्तु सामान्य रूप में बजट-रेखा का निम्न स्वरूप होगा:

$p_{ब}\, q_{ब}+ p_{अ}\, q_{अ} =y$..(12)

जिस के आधार पर हमें निम्न समीकरण मिल जाएगा:

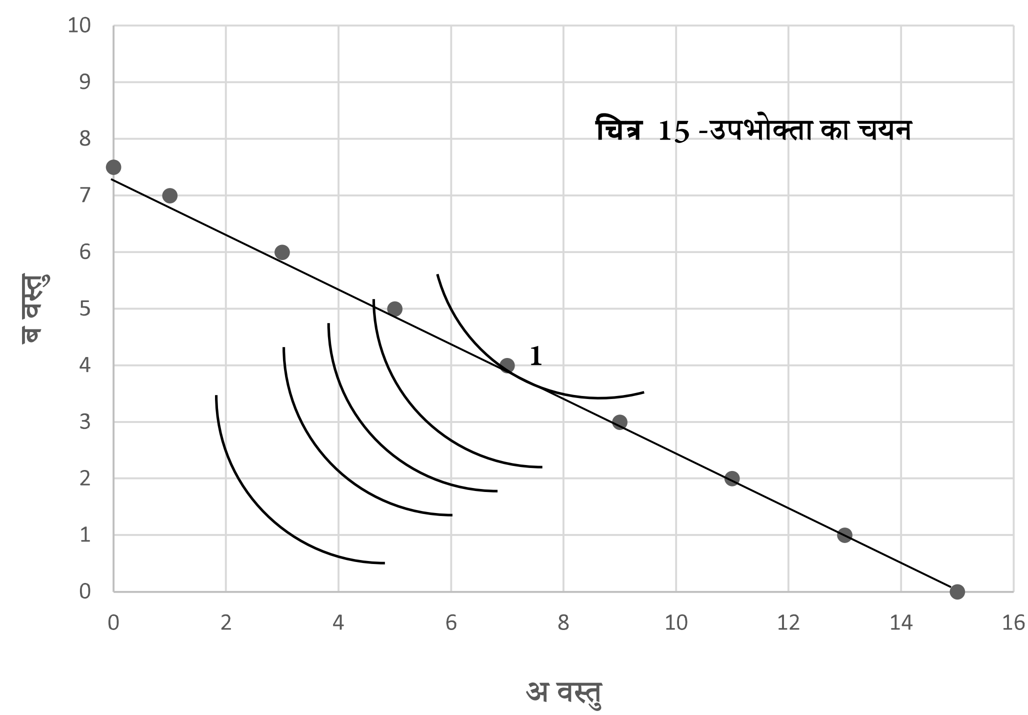
$q_{ब} = y - p_{अ}\frac{q_{अ}}{p_{ब}} = y - \left(\frac{p_{अ}}{p_{ब}}\right) q_{अ}$ ....(13)

उपरोक्त फलन का डेरीवेटिव लेने पर हमें इस वक्र की ढलान मिल जाएगी और यह होगी

$\frac{\partial q_{ब}}{\partial q_{अ}} = -\frac{p_{अ}}{p_{ब}} =$ बजट रेखा की ढलान..(14)

बजट-रेखा की ढलान यह इंगित करती है कि वस्तु अ की एक इकाई ख़रीदने पर ब वस्तु की कितनी इकाइयों का त्याग करना पड़ेगा. स्पष्ट है कि 10 रुपये कीमत की वस्तु की एक इकाई ख़रीदने के लिए 2 रुपये वाली कीमत की 5 इकाइयों की (यानी 10/2) कटौती करनी होगी. समीकरण 14 से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि आय का बजट-रेखा के ढलान पर कोई असर नहीं होता. यानी मात्र आय बदलने पर बजट-रेखा की ढलान नहीं बदलेगी अर्थात आय के विभिन्न स्तरों पर खींची गई बजट-रेखा एक दूसरे के समानांतर होंगी. इस समीकरण से हमें यह भी पता चलता है कि ब वस्तु की कीमत स्थिर रहने पर एवं वस्तु अ की कीमत घटने पर बजट वक्र की ढलान का निरपेक्ष मूल्य घट जायेगा.]

उपभोक्ता द्वारा चयन: अब हम उदासीनता-वक्र एवं बजट-रेखा को एक ही चित्र में इकट्ठे खींच कर देखेंगे कि उपभोक्ता किस संयोग का चयन करेगा. उपभोक्ता के उद्देश्य, तथा उदासीनता-वक्र की विशेषताओं एवं बजट-रेखा की परिभाषा से स्पष्ट है कि उपभोक्ता ऊँचे से ऊँचे उदासीनता-वक्र पर पहुँचना चाहेगा. यह तब होगा, जब उपभोक्ता उस उदासीनता-वक्र पर हो जो बजट-रेखा को छूता भर हो. उपरोक्त चित्र 15 में यह बिंदु 1 है. इस उदासीनता-वक्र से ऊँचे जाने पर संतुष्टि का स्तर तो बढ़ सकता है, परन्तु वस्तुओं का वह संयोग बजट-रेखा से ऊपर स्थित होगा एवं इस लिए उपभोक्ता की पहुँच से बाहर है; वह इसे ख़रीद ही नहीं सकता. इस बिंदु से नीचे का कोई वस्तुओं का समूह/संयोग ख़रीदा तो जा सकता है, लेकिन वह निचले उदासीनता-वक्र पर होगा यानी कम संतुष्टि देगा. इस लिए स्पष्ट है कि मौजूदा परिस्थितियों में (इस में क्या शामिल है और क्या नहीं यह ज़रूर सोचें) अपनी संतुष्टि को अधिकतम करने का उद्देश्य रखने वाला विवेकशील उपभोक्ता, जिसे सारी आवश्यक जानकारी (इस में क्या शामिल है और क्या नहीं यह भी ज़रूर सोचें) उपलब्ध है. बिंदु 1 पर इंगित वस्तुओं के समूह का चयन करेगा.

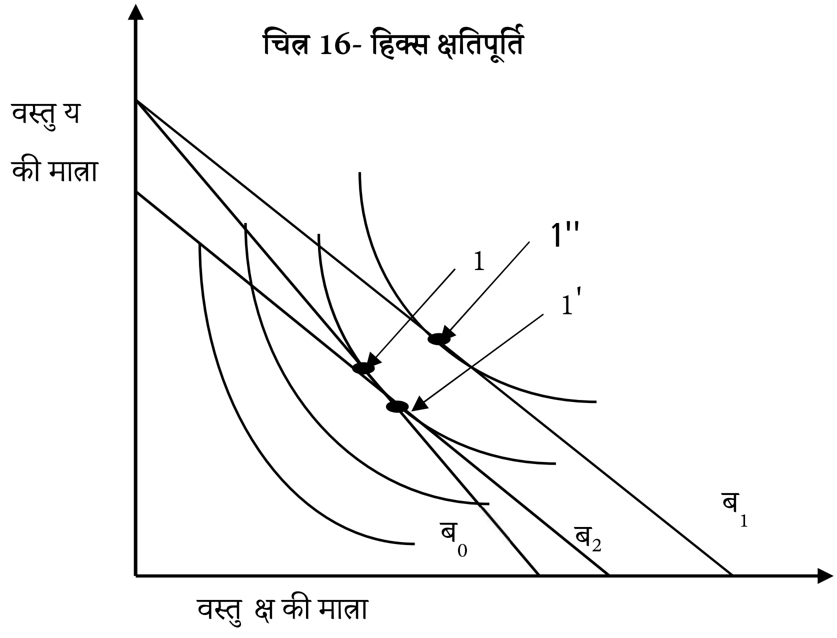


ऊपर हम ने छूने का ज़िक्र किया था. इस पर थोड़ा और प्रकाश डालना आवश्यक है. दो वक्र या एक रेखा एवं एक वक्र जिन के बीच एक या एक से अधिक ऐसे बिंदु हों जो दोनों पर हों लेकिन वक्र अथवा रेखा दोनों एक दूसरे का आर-पार न जाते हों, उस बिंदु पर छूते कहे जाते हैं. गणित की भाषा में ये वक्र उस स्थान पर एक दूसरे के स्पर्शी (tangent) कहे जाते हैं. इस या इन बिन्दुओं पर दोनों वक्रों की ढलान समान होती है. इस का अर्थ हुआ कि उपभोक्ता की संतुष्टि के अधिकतम स्तर पर उदासीनता-वक्र एवं बजट-रेखा दोनों की ढलान एक समान होगी.

[**ऐसा होना क्यों ज़रूरी है?** उदासीनता-वक्र की ढलान यह इंगित करती है कि उपभोक्ता इन दोनों वस्तुओं के बीच किस दर पर आदान-प्रदान करने को तैयार है. यह हर व्यक्ति के लिए भिन्न होगी. इस लिए हम इसे वस्तुओं के बीच की **व्यक्ति-सापेक्ष प्रतिस्थापन दर** कह सकते हैं. इस के विपरीत बजट-रेखा की ढलान उन्हीं दो वस्तुओं के बीच बाज़ार प्रतिस्थापन दर इंगित करती है. यह दर सभी उपभोक्ताओं के लिए एक समान होती है. इस लिए इसे **व्यक्ति निरपेक्ष प्रतिस्थापन दर** कहते हैं. इष्टतम स्तर पर ये दोनों समान होनी चाहिएँ. अगर ऐसा नहीं है तो उपभोक्ता अपने इष्टतम स्तर पर नहीं होगा. उदाहरण के तौर पर अगर उदासीनता-वक्र की ढलान का निरपेक्ष मान बजट रेखा कि ढलान से अधिक है (संक्षेप में अगर, $MRS>\frac{p_{अ}}{p_{ब}}$) तो इस का अर्थ हुआ कि उपभोक्ता वस्तु अ की अतिरिक्त इकाई के लिए ब वस्तु की जितनी माला छोड़ने को तैयार है, बाज़ार से उसे इस से कम माला छोड़ने पर वस्तु अ की एक अतिरिक्त इकाई मिल सकती है. इस लिए वह वस्तु अ का उपभोग बढ़ाएगा. ऐसा करने पर उस की MRS कम हो जाएगी. यह प्रक्रिया तब तक चलेगी जब तक $MRS=\frac{p_{अ}}{p_{ब}}$ नहीं हो जाती. अगर $MRS<\frac{p_{अ}}{p_{ब}}$ है, तो विपरीत प्रक्रिया चलेगी. यानी जब तक व्यक्ति-सापेक्ष एवं व्यक्ति निरपेक्ष (यानी बाज़ार भाव) वस्तुओं की प्रतिस्थापन दर समान नहीं हो जाती, व्यापार/आदान-प्रदान चलता रहेगा. अगर बाज़ार न भी हो, तब भी दो उपभोक्ताओं की प्रतिस्थापन दर में अंतर होने पर व्यापार संभव होगा. उदाहरण के तौर पर अगर क उपभोक्ता की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर दो वस्तुओं के बीच 5 है और ख व्यक्ति के लिए यह दर 4 है, तो क व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को वस्तु अ की एक इकाई के बदले ब वस्तु की 4 इकाई दे कर अपना संतुष्टि का स्तर बढ़ा सकता है. क व्यक्ति का संतुष्टि का स्तर बढ़ जाएगा क्योंकि वह तो वस्तु अ की एक अतिरिक्त इकाई के लिए ब वस्तु की 5 इकाइयाँ देने को तैयार था, लेकिन उसे देनी पड़ी माल 4 इकाइयाँ. ख व्यक्ति की संतुष्टि का स्तर प्रभावित नहीं होगा क्योंकि उसे वस्तु अ की एक इकाई के बदले समान संतुष्टि देने वाली ब वस्तु की चार इकाइयाँ मिल गई. वस्तु अ की एक इकाई के बदले अगर पहले उपभोक्ता को ब वस्तु की 5 से कम परन्तु 4 से ज़्यादा इकाई देनी पड़े एवं दूसरे उपभोक्ता को चार से ज़्यादा ब वस्तु की इकाई मिल जाए तो दोनों का संतुष्टि का स्तर बढ़ जाएगा. आदान-प्रदान किस अनुपात में होगा, यह निश्चित नहीं है परन्तु यह आदान-प्रदान तब तक चलेगा जब तक कि दोनों उपभोक्ताओं की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर समान नहीं हो जाती. पुस्तक के अंतिम हिस्से में परेटो (Pareto) द्वारा सुझाये गए इष्टतम के मापदंड की चर्चा में हम इस विषय पर फिर बात करेंगे.]

अब वापिस उपभोक्ता के चयन की समस्या पर चलते हैं. अगर वस्तु की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर घटने की बजाय बढ़ती हुई हो यानी उदासीनता-वक्र धनुषाकारी हो, तो अधिकतम संतुष्टि का बिंदु कहाँ होगा? क्योंकि उपभोक्ता अपनी संतुष्टि को अधिकतम रखना चाहता है, इस लिए वह बजट को छूने वाले उच्चतम उदासीनता-वक्र पर रहेगा. चित्र 12 की सहायता से आप देख सकते हैं कि ऐसा बिंदु या तो य-अक्ष पर होगा या क्ष-अक्ष पर होगा. अगर वस्तु की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर घटने की बजाय बढ़ती हुई हो तो हमेशा ही ऐसा होगा. यानी उपभोक्ता या तो सारी आय वस्तु अ पर ख़र्च कर देगा या ब वस्तु पर. यानी उपभोक्ता केवल एक ही वस्तु का उपभोग करेगा, दोनों (या कई) का नहीं. ऐसे चयन को, जैसा हम पहले पढ़ चुके हैं, कोने का चयन (corner solution) कहते हैं. क्योंकि आम तौर पर ऐसा नहीं होता कि उपभोक्ता केवल एक वस्तु का ही उपभोग

चित्र 16- हिक्स क्षतिपूर्ति



करें, इस लिए हम वस्तु की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर को घटता हुआ मानते हैं एवं चित्र 12 के ऊपरी वक्र को जो धनुषाकारी है, को उदासीनता-वक्र नहीं मानते.

कीमत में बदलाव का उपभोक्ता के चयन पर प्रभाव: मान लें कि वस्तु अ की कीमत कम हो जाती है. अब बजट-रेखा बदल जाएगी एवं आप नई बजट-रेखा ($ब_1$) खींचने पर पायेंगे कि य-अक्ष पर तो यह स्थिर रहती है लेकिन क्ष-अक्ष पर यह बाहर की ओर घूम जाती है (चित्र 16). अब उपभोक्ता को वस्तुओं के कई अन्य ऐसे संयोग उपलब्ध हो जाते हैं जो पहले उपलब्ध नहीं थे. अब उपभोक्ता की संतुष्टि कहाँ पर अधिकतम होगी? चित्र को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि अब उपभोक्ता पहले से ऊँचे उदासीनता-वक्र पर जा सकता है. ऊँचा उदासीनता-वक्र, माने ऊँची संतुष्टि. अब अगर उसी मौद्रिक आय में व्यक्ति की संतुष्टि बढ़ सकती है, तो इस का अर्थ हुआ कि व्यक्ति की वास्तविक आय बढ़ गई है.[21] इस लिए अगर वस्तु सामान्य है, तो वास्तविक आय बढ़ने के कारण उस की माँग बढ़ जाएगी. परन्तु फ़िलहाल हमारा मकसद वस्तुओं की कीमत में बदलाव का माँग पर प्रभाव देखना है. केवल कीमत में बदलाव का माँग पर प्रभाव देखने के लिए, हमें व्यक्ति की वास्तविक आय को स्थिर रखना होगा. वास्तविक आय को स्थिर रखने के लिए, हमें व्यक्ति की मौद्रिक आय में बदलाव करने होंगे. आय में ऐसे मौद्रिक बदलाव को क्षतिपूर्ति (compensation) कहा जाता है. दो अर्थशास्त्रियों ने क्षति पूर्ति के अलग-अलग उपाय सुझाए हैं. पहले हम हिक्स (Hicks) द्वारा सुझाए गए उपाय का प्रयोग कर के वस्तु अ की कीमत में कमी का प्रभाव देखेंगे (चित्र 16). इस के बाद स्लटस्की (Slutsky) द्वारा सुझाए उपाय का प्रयोग करेंगे.

हिक्स के तरीके से वास्तविक आय स्थिर रखना: हिक्स के अनुसार वास्तविक आय स्थिर रखने का अर्थ है कि उपभोक्ता की संतुष्टि का स्तर स्थिर रहे. इसके लिए आवश्यक है कि **कीमत में परिवर्तन होने पर हम उपभोक्ता की मौद्रिक आय को तब तक बढ़ाएँ या घटाएँ जब तक कि उपभोक्ता पुराने उदासीनता-वक्र तक नहीं पहुँच जाता**, न उस से ऊपर, न उस से नीचे. क्योंकि नई बजट-रेखा, मतलब नई कीमतों पर बजट-रेखा, उपभोक्ता की मौद्रिक आय कम होने पर समानांतर रूप में नीचे की ओर खिसक जाती है, इस लिए हम उपभोक्ता की मौद्रिक आय को तब तक कम करते रहेंगे, जब तक कि नई बजट-रेखा पुराने उदासीनता-वक्र, यानी जिस उदासीनता-वक्र पर उपभोक्ता वस्तु अ की कीमत में बदलाव होने से पहले था, को स्पर्श मात्र नहीं करती. वास्तविक आय को हिक्स के तरीके से स्थिर रखने वाली बजट-रेखा को हम $ब_2$ नाम दे देते हैं. अब, हमारे पास तीन बजट-रेखा हैं - शुरुआती बजट-रेखा $ब_0$, पुरानी मौद्रिक आय, परन्तु नई कीमतों पर बजट-रेखा $ब_1$ एवं नई कीमतों व नई मौद्रिक आय, जो वास्तविक आय को हिक्स की परिभाषा अनुसार स्थिर रखे, पर बजट-रेखा $ब_2$. इन तीनों का अंतर आप को स्पष्ट होना चाहिए क्योंकि आगे की चर्चा इनतीनों बजट-रेखाओं में अंतर पर आधारित है.

प्रारंभ में, यानी कीमत में बदलाव से पहले, उपभोक्ता बिंदु 1 पर था. अब प्रश्न यह है कि यह नया बिंदु 1', जहाँ नई बजट-रेखा $ब_2$ पुराने संतुष्टि स्तर वाले उदासीनता-वक्र को छूती है, वहाँ पर वस्तु अ की माँग बढ़ेगी या घटेगी? चित्र 16 से तो आप को दिख ही गया होगा कि वस्तु अ का उपभोग बढ़ जाएगा (बिंदु 1' बिंदु 1 के दाईं ओर है). थोड़े से गणित की सहायता से यह साबित किया जा सकता है कि कीमत घटने पर हमेशा ऐसा ही होगा. हम यह जान चुके हैं कि उपभोक्ता बजट-रेखा पर स्थित उस संयोग को चुनेगा जो उच्चतम उदासीनता-वक्र पर होगा यानी जहाँ यह बजट-रेखा को मात्र स्पर्श करेगा. दूसरे शब्दों में चयन बिंदु पर उदासीनता-वक्र एवं बजट-रेखा की ढलान समान होगी. अब नई बजट-रेखा $ब_2$ की ढलान पहले के मुकाबले कम हो गई है. ऐसा इस लिए है क्योंकि ऊपर दिये हुए समीकरण क्रमांक 14 के अनुसार बजट-रेखा की ढलान का निरपेक्ष मान $\frac{p_{अ}}{p_{ब}}$ के बराबर होता है. अब क्योंकि $p_{अ}$ घट गई है इस लिए नई बजट-रेखा की ढलान भी पुरानी बजट-रेखा के मुकाबले घट जाएगी.

हम ऊपर यह देख चुके हैं कि उदासीनता-वक्र की ढलान दाएँ ओर कम होती जाती है. इस से स्पष्ट है कि नई बजट-रेखा पुराने उदासीनता-वक्र को पहले बिंदु के मुकाबले दाएँ ओर छूएगी. **इस से साबित हो जाता है कि वस्तु अ की कीमत घटने पर, एवं वास्तविक**

---

[21] उपभोग की जा रही किसी एक वस्तु की कीमत में बदलाव के दो प्रभाव होते हैं. एक तो अन्य वस्तुओं की तुलना में यह वस्तु महँगी या सस्ती हो जाती है, यानी वस्तु की सापेक्ष कीमत में बदलाव हो जाता है. दूसरा प्रभाव यह होता है कि मौद्रिक आय समान रहने पर भी वास्तविक आय बदल जाती है.

आय समेत अन्य सब बातें समान रहने पर, वस्तु अ की माँग बढ़ जाएगी. अब हमारे पास उपभोक्ता के दो चयन बिंदु उपलब्ध हैं 1 जो अ की कीमत में परिवर्तन से पहले था एवं 1' जिस का चयन कीमत परिवर्तन के बाद हिक्स के क्षतिपूर्ति तरीके को अपनाते हुए वास्तविक आय समान रखते हुए किया गया है.

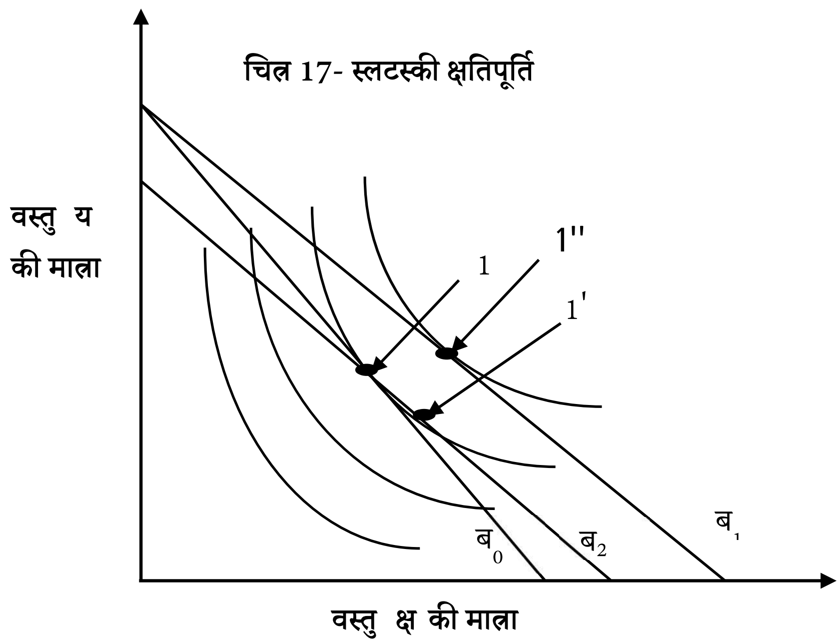
अब अगर हम उपभोक्ता की मौद्रिक आय में की गई कटौती को निरस्त कर दें यानी उस की मौद्रिक आय उतनी ही कर दें जितनी वस्तु अ की कीमत में परिवर्तन से पहले थी, तो उपभोक्ता का उपभोग का स्तर कैसा होगा? यानी $ब_1$ बजट-रेखा पर उपभोक्ता का चयन बिंदु क्या होगा? नया चयन बिंदु 1' के बाएँ होगा या दाएँ? जब हम $ब_2$ से $ब_1$पर जाते हैं तो दोनों वस्तुओं की सापेक्ष कीमत वही रहती है, परन्तु वास्तविक आय बढ़ जाती है. आय एवं माँग के सम्बन्ध के अध्ययन को ध्यान में रखते हुए हम कह सकते हैं कि अगर वस्तु अ सामान्य वस्तु है तो नया चयन बिंदु 1" दूसरे चयन बिंदु 1' के दाएँ ओर होगा परन्तु अगर वस्तु अ निम्न स्तरीय वस्तु है तो नया चयन बिंदु 1' के बाएँ ओर होगा. अगर आप को इस का कारण स्पष्ट नहीं है तो पुराने अध्याय में पढ़ें आय एवं माँग के सम्बन्ध को दोहरा लें.

चित्र 16 में तीन बजट-रेखा के साथ-साथ तीन चयन बिंदु भी हैं. 1,1', एवं 1". वस्तु अ की मात्रा में 1 से 1' तक होने वाला परिवर्तन, वास्तविक आय समान रहने के बावजूद हुआ है. इस बदलाव का कारण है वस्तु अ की कीमत में बदलाव या वस्तु अ एवं ब की कीमतों के अनुपात में बदलाव. इस लिए इसे प्रतिस्थापन प्रभाव (substitution effect) कहते हैं. 1' से 1" तक के बदलाव का कारण वास्तविक आय में परिवर्तन है. इस लिए हम इस को आय प्रभाव (income effect) कहते हैं. 1 से 1" तक होने वाले बदलाव का कारण कीमत में बदलाव है. इस लिए इस को हम कुल कीमत प्रभाव कहते हैं. **कुल कीमत प्रभाव प्रतिस्थापन प्रभाव एवं आय प्रभाव का योग है. प्रतिस्थापन प्रभाव, अन्य बातें समान रहने पर, कीमत में होने वाले परिवर्तन का वस्तु की माँग पर पड़े प्रभाव को दर्शाता है. हम ने देखा है कि यह ऋणात्मक है यानी कीमत में परिवर्तन की विपरीत दिशा में होता है.** आय प्रभाव वस्तु की प्रकृति पर निर्भर करता है. यह ऋणात्मक एवं धनात्मक दोनों तरह का हो सकता है. परन्तु कुल कीमत प्रभाव के बारे में क्या कह सकते हैं? **सामान्य वस्तुओं के सन्दर्भ में प्रतिस्थापन प्रभाव एवं आय प्रभाव दोनों माँग को एक ही दिशा में ले जाते हैं, बढ़ाते हैं या घटाते हैं. इस लिए कुल कीमत प्रभाव भी उसी दिशा में होता है.** यानी कीमत घटने पर कुल कीमत प्रभाव माँग बढ़ाएगा एवं कीमत बढ़ने पर माँग घटाएगा. दोनों परिस्थितियों में कुल कीमत प्रभाव सामान्य वस्तुओं में ऋणात्मक होगा.

निम्न स्तरीय वस्तुओं में प्रतिस्थापन प्रभाव एवं आय प्रभाव का माँग पर विपरीत असर होता है. कीमत घटने से माँग बढ़ेगी परन्तु कीमत घटने के कारण वास्तविक आय बढ़ जाएगी. फलस्वरूप निम्न स्तरीय वस्तु की माँग आय प्रभाव के चलते घट जाएगी. इस परिस्थिति में कुल कीमत प्रभाव इन विपरीत प्रभावों की परस्पर मात्रा पर निर्भर करेगा. अगर आय प्रभाव प्रतिस्थापन प्रभाव से कमज़ोर होगा, तो कुल कीमत प्रभाव प्रतिस्थापन प्रभाव की दिशा में ही होगा यानी ऋणात्मक होगा. लेकिन अगर प्रतिस्थापन प्रभाव आय प्रभाव के मुकाबले कमज़ोर होगा, तो कुल कीमत प्रभाव धनात्मक होगा. कीमत घटने पर वस्तु की माँग कम हो जाएगी एवं कीमत बढ़ने पर वस्तु की माँग बढ़ जाएगी**. ऐसी निम्न स्तरीय वस्तु जिन में प्रतिस्थापन प्रभाव आय प्रभाव से कमज़ोर होता है, उन्हें चिह्नित करने वाले विद्वान के नाम पर गिफ़्फ़िन वस्तु (Giffin goods) कहते हैं.** ध्यान रहे कि सभी गिफ़्फ़िन वस्तु निम्न स्तरीय होती हैं परन्तु सभी निम्न स्तरीय वस्तु गिफ़्फ़िन वस्तु नहीं होती. गिफ़्फ़िन वस्तुओं के माँग-वक्र का ढलान धनात्मक होता है; कीमत बढ़ने पर माँग बढ़ती है, एवं कीमत कम होने पर माँग कम होती है.

उदासीनता-वक्र द्वारा माँग के नियम की व्याख्या की एक विशेषता यह है कि इस की सहायता से धनात्मक ढलान वाले माँग-वक्र की व्याख्या भी की जा सकती है, जबकि गणना-वाचक उपयोगिता विश्लेषण में ऐसे माँग-वक्र की संभावना ही नहीं थी. एक और महत्त्वपूर्ण अंतर यह है कि **उदासीनता-वक्र में उपयोगिता की अन्तर्वस्तु स्वतंत्रता अथवा यौगिक उपयोगिता फलन की मान्यता की आवश्यकता भी नहीं है** (हम ने कहीं इस का प्रयोग नहीं किया है), जबकि गणना-वाचक उपयोगिता विश्लेषण में यह आवश्यक मान्यता थी. **वास्तविक** आय स्थिर रखने का स्लटस्की तरीका: स्लटस्की के अनुसार वास्तविक आय को तब स्थिर माना जाना चाहिए जब उपभोक्ता, अगर चाहे तो, वस्तुओं का पुराना चयन भी ख़रीद सके परन्तु दोनों वस्तुओं की उस से अधिक मात्रा नहीं. यानी उपभोक्ता की मौद्रिक आय को इस हिसाब से बढ़ाया या घटाया जाना चाहिए कि नई कीमतों पर भी पुराना चयन बिंदु बजट-रेखा पर स्थित हो, न उस से ऊपर और न

उस से नीचे. चित्र 17 में $ब_2$ ऐसी बजट-रेखा है जिस में उपभोक्ता की मौद्रिक आय में स्लटस्की की वास्तविक आय की परिभाषा के अनुसार बदलाव किया गया है. यह $ब_1$ के समानांतर है और बिंदु 1 से गुज़र रही है. अब $ब_2$ बजट-रेखा की स्थिति में उपभोक्ता का चयन बिंदु कहाँ पर होगा? अगर वह बिंदु 1 के बाएँ ओर स्थित किसी वस्तु-समूह का चयन करता है, तो वह पहले से निम्न उदासीनता-वक्र पर चला जाएगा क्योंकि बिंदु 1 के बाएँ ओर $ब_2$ पर स्थित सभी वस्तु-समूह पुराने उदासीनता-वक्र के नीचे हैं. ऐसा चयन करने पर उस की उपयोगिता कम हो जाएगी. निश्चित तौर पर यह उपभोक्ता के व्यवहार सम्बन्धी हमारी मान्यताओं – कि उपभोक्ता का उद्देश्य उपयोगिता को अधिकतम करना है एवं उपभोक्ता का व्यवहार विवेकशील है - के विरुद्ध होगा. बिंदु 1 के दाएँ ओर $ब_2$ बजट-रेखा का कुछ हिस्सा पुराने उदासीनता-वक्र के ऊपर है, इस लिए नया चयन बिंदु 1' $ब_2$ रेखा के इसे हिस्से पर होगा जो पहले के उदासीनता-वक्र के ऊपर स्थित है यानी नया चयन बिंदु 1' बिंदु 1के दाएँ ओर होगा. इस का अर्थ है कि वस्तु अ की खपत बढ़ जाएगी. इस प्रकार हम पाते हैं कि अगर हम वास्तविक आय को स्थिर रखते हैं, चाहे हम हिक्स के तरीके से रखें अथवा स्लटस्की के तरीके से, तो वस्तु अ की कीमत घटने पर, अन्य बातें समान रहने पर, वस्तु अ की खपत बढ़ जाएगी. कीमत बढ़ने की स्थिति में नई बजट-रेखा खींच कर आप स्वयं देखें कि कीमत घटने पर ठीक इस का उलटा होगा. आय प्रभाव के चलते माँग में बदलाव हिक्स के तरीके के अनुरूप ही होगा. इस लिए हम उसे यहाँ दोहरा नहीं रहे हैं.

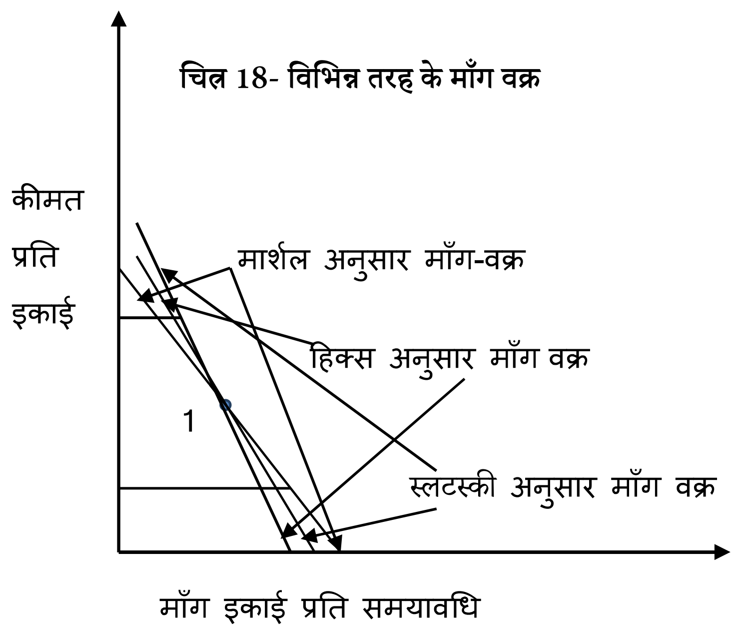


स्लटस्की एवं हिक्स क्षतिपूर्ति की तुलना: वास्तविक आय की स्थिरता की परिभाषा में अंतर के चलते, दोनों तरह की क्षतिपूर्ति के प्रभाव भी कुछ अलग हैं. स्लटस्की गणना आसान है. पहले खपत बिंदु पर नई कीमतों पर होने वाले खर्चे के आधार पर मौद्रिक आय में आवश्यक परिवर्तन की गणना आसानी से की जा सकती है. इस के विपरीत, हिक्स के तरीके से वास्तविक आय स्थिर रखने के लिए मौद्रिक आय में आवश्यक परिवर्तन की गणना उदासीनता-वक्र पर निर्भर करती है. बिना उदासीनता-वक्र की जानकारी के इस की गणना नहीं की जा सकती. स्लटस्की के तरीके में क्षतिपूर्ति की गणना बिना उदासीनता-वक्र के भी संभव है. दूसरा फर्क यह है कि स्लटस्की की परिभाषा के अनुसार की गई वास्तविक आय की गणना में मौद्रिक आय हिक्स की गणना में निहित मौद्रिक आय से अधिक होती है. चित्र 16 एवं 17 की तुलना से यह स्पष्ट हो जाता है. हिक्स क्षतिपूर्ति के तरीके से स्थानापन्न प्रभाव में उपभोक्ता अपने पुराने उदासीनता-वक्र पर रहता है जबकि स्लटस्की के क्षतिपूर्ति तरीके में वह उच्चतर उदासीनता-वक्र पर पहुँच जाता है. स्लटस्की क्षतिपूर्ति बजट-रेखा पुराने उदासीनता-वक्र को काटती है, जब कि हिक्स क्षतिपूर्ति बजट-रेखा पुराने उदासीनता वक्र को छूती भर है. एक ही चित्र में दोनों को खींचने पर आप पाएंगे कि हिक्स क्षतिपूर्ति बजट-रेखा स्लटस्की क्षतिपूर्ति बजट-रेखा से नीचे रहती है. स्लटस्की क्षतिपूर्ति में प्रभावी रूप से उपभोक्ता की वास्तविक आय बढ़ जाती है. इस का प्रभाव यह होगा कि वस्तु अ की कीमत कम होने पर स्थानापन्न प्रभाव के चलते, सामान्य वस्तु अ की माँग में बढ़ोतरी हिक्स की तुलना में स्लटस्की के तरीके में ज़्यादा होगी. जब कि वस्तु अ की कीमत बढ़ने पर माँग में कटौती हिक्स की तुलना में स्लटस्की के तरीके में कम होगी. कुल कीमत प्रभाव में कोई अंतर नहीं होगा क्योंकि दोनों परिस्थितियों में

उपभोक्ता की बजट-रेखा एक समान है. इस लिए स्पष्ट रूप से आय प्रभाव स्लटस्की की तुलना में हिक्स के तरीके में ज़्यादा होगा. कीमत घटने एवं बढ़ने, दोनों परिस्थितियों में. हिक्स एवं स्लटस्की, दोनों के तरीकों से चित्र खींच कर देखें कि क्या वास्तव में ऐसा ही होता है.

पूरी चर्चा को दोहराने के लिए हम एक ही चित्र (18) में मार्शल, हिक्स क्षति पूर्ति एवं स्लटस्की क्षतिपूर्ति माँग-वक्र जिन में आय प्रभाव शामिल नहीं है, खींच कर देखते हैं. मान लें कि वर्तमान में उपभोक्ता बिंदु 1 पर है. वस्तु अ की कीमत बढ़ने पर उपरोक्त तीनों व्याख्याओं के अनुसार वस्तु अ की माँग कितनी होगी? क्योंकि मार्शल की व्याख्या में आय प्रभाव को नकार दिया जाता है. इस का अर्थ है वास्तव में उपभोक्ता की आय घट जाएगी. इस लिए कीमत बढ़ने पर सब से ज़्यादा माँग में गिरावट मार्शल की व्याख्या में होगी. स्लटस्की के क्षतिपूर्ति के तरीके में प्रभावी रूप से वास्तविक आय बढ़ जाती है, इस लिए उस में गिरावट सब से कम होगी. स्पष्ट है कि हिक्स के क्षतिपूर्ति तरीके में गिरावट इन दोनों के बीच होगी. वस्तु अ की कीमत घटने में स्थिति विपरीत हो जाएगी. मार्शल की व्याख्या में वास्तविक आय सब से ज़्यादा होगी एवं हिक्स के क्षतिपूर्ति के तरीके में सब से कम, इस लिए माँग में बढ़ोतरी भी इसी क्रम में होगी- हिक्स में सब से कम, उस से ज़्यादा स्लटस्की क्षतिपूर्ति में और सब से ज़्यादा मार्शल की व्याख्या में. अंत: तीनों तरह के माँग-वक्र चित्र 18 के अनुसार होंगे. हो सकता है कि आप को चित्र 18 एवं इस पैरे की चर्चा समझने में परेशानी हो, परन्तु यह प्रयास उपयोगी होगा. किसी एक बिंदु से कीमत बदलाव के चलते, तीनों तरह के माँग वक्र में होने वाले बदलाव को खुद चित्रित करें. इस प्रक्रिया में आपकी इस अध्याय के बड़े हिस्से की दोहराई हो जाएगी.

चित्र 18- विभिन्न तरह के माँग वक्र

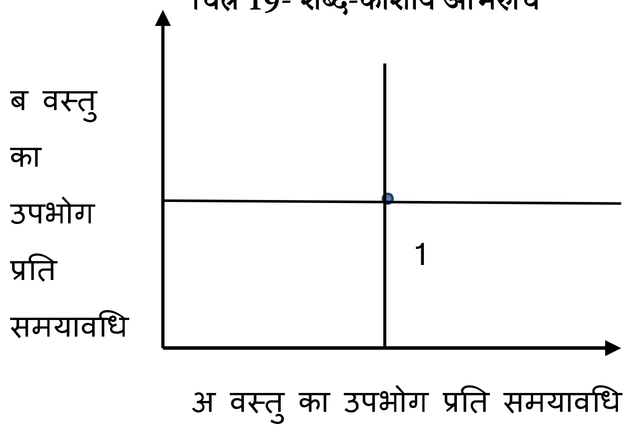


पिछले अध्याय में हम ने उपयोगिता को गणन संख्या में नाप कर माँग के नियम की व्याख्या की थी. इस अध्याय में हम उपयोगिता को केवल क्रमसूचक संख्या में नाप कर भी माँग के नियम -कीमत बढ़ने पर माँग घटती है एवं कीमत घटने पर माँग बढ़ती है- को स्थापित कर पाए हैं. इस उपयोगिता को नापने सम्बन्धी बुनियादी मान्यता में अंतर के अलावा, इन दोनों व्याख्याओं में और क्या अंतर हैं, इस की विस्तृत चर्चा हम माँग के नियम की तीसरी व्याख्या के बाद करेंगे. इस दूसरी व्याख्या में उदासीनता-वक्र की जानकारी होना आवश्यक है. बहुत से अर्थशास्त्रियों को अपने निजी अनुभव के आधार पर, यह मान्यता भी अवास्तविक लगी. इन का मानना था कि एक सामान्य उपभोक्ता के सामने निर्णय लेते समय कोई उदासीनता-वक्र नहीं होता. इस लिए माँग के नियम की तीसरी व्याख्या उदासीनता-वक्र को भी आवश्यक नहीं मानती एवं इस के बिना माँग के नियम को स्थापित करती है. अगले अध्याय में हम इस का अध्ययन करेंगे.

[न केवल जीवन के वास्तविक अनुभव के आधार पर बल्कि सैद्धांतिक रूप से यह भी स्थापित किया गया है कि कुछ परिस्थितियों में उदासीनता-वक्र होगा ही नहीं. जैसे शब्दकोश में हर शब्द का एक स्थान निश्चित होता है एवं दो शब्दों में स्थान की अदला-बदली नहीं हो सकती, उसी प्रकार यह संभव है (लेकिन अनिवार्य नहीं) कि उपभोक्ता वस्तुओं के हर समूह से विशेष संतुष्टि प्राप्त करे एवं वस्तुओं के किन्हीं दो समूहों से उसे समान संतुष्टि प्राप्त न हो. ऐसा होने पर उपभोक्ता वस्तुओं के किन्हीं दो समूहों के बीच उदासीन नहीं होगा. उदाहरण के लिए, हम यह मान लेते हैं कि उपभोक्ता की अभिरुचि ऐसी है कि ब वस्तु की कितनी भी मात्रा हो, वह वस्तु अ की ज़्यादा मात्रा को पसंद करता हो. लेकिन वस्तु अ की मात्रा समान होने पर ब वस्तु की अधिक मात्रा, उसे अधिक संतुष्टि देती है. ऐसी अभिरुचि वाले उपभोक्ता का कोई उदासीनता-वक्र होगा ही नहीं. मान लें कि वर्तमान में वह चित्र 19 में बिंदु 1 पर है, तो उस के उदासीनता-वक्र का स्वरूप कैसा होगा? अगर ब वस्तु की मात्रा स्थिर रखते हुए वस्तु अ का उपभोग बढ़ाते हैं तो उपभोक्ता का संतुष्टि का स्तर बढ़ता जाएगा

यानी बिंदु 1 के दाईं ओर सीधी रेखा में बढ़ने पर हर बिंदु अलग संतुष्टि देगा. ठीक ऐसा ही बाईं ओर जाने पर होगा. अगर हम बिंदु 1 से सीधी रेखा में ऊपर या नीचे जाएँ, तब भी यही स्थिति होगी क्योंकि ऐसा होने पर वस्तु अ की मात्रा तो स्थिर रहेगी परन्तु ब वस्तु की मात्रा बढ़ेगी या घटेगी. इस के चलते बिंदु 1 के ऊपर-नीचे का हर बिंदु पर संतुष्टि का स्तर बदलता जाएगा. अगर बिंदु 1 के ऊपर-नीचे अथवा दाएँ-बाएँ सीधी दिशा में न जा कर हम किसी भी अन्य दिशा में जाते हैं तो दोनों वस्तुओं की मात्रा ही बिंदु 1 की तुलना में बदल जाएगी, जिस के प्रभाव स्वरूप संतुष्टि का स्तर भी बदल जाएगा.

चित्र 19- शब्द-कोशीय अभिरुचि



इस से स्पष्ट है कि चित्र 19 में कोई भी बिंदु ऐसा नहीं है जो बिंदु 1 के समान संतुष्टि दे. हर बिंदु या तो इस से ज़्यादा संतुष्टि देता है या कम. इस लिए ऐसे उपभोक्ता का कोई उदासीनता-वक्र नहीं होगा. ऐसी अभिरुचि को शब्द-कोशीय अभिरुचि (lexicographic ordering) कहते हैं, क्योंकि जैसे शब्द-कोश में हर शब्द का एक नियत एवं अलग स्थान होता है, उसी प्रकार ऐसे उपभोक्ता को भी हर वस्तु-समूह से अलग संतुष्टि मिलती है. इस चर्चा का उद्देश्य यह स्थापित करना है कि उदासीनता-वक्रों के अस्तित्व पर भी प्रश्न चिन्ह हैं.]

इस अध्याय में हम ने कई नई अवधारणाओं जैसे उदासीनता-वक्र, इस का स्वरूप, बजट-रेखा, बजट-रेखा में बदलाव, हिक्स एवं स्लटस्की के वास्तविक आय स्थिर रखने के तरीके, कुल कीमत प्रभाव का स्थान्नापन प्रभाव एवं आय प्रभाव में बटवारा, का अध्ययन किया है. गिफ़्फ़िन वस्तुओं एवं धनात्मक माँग-वक्र के बारे में भी जाना है.

परिभाषाओं को छोड़ कर, इस अध्याय से शायद ही किसी बात को याद करने की ज़रूरत है. जैसे गणित का एक समीकरण पहले समीकरण से निकाला जा सकता है, वैसा ही अर्थशास्त्र में भी होता है. तर्क एवं मान्यताओं तथा परिभाषाओं के आधार पर इस अध्याय के सभी निष्कर्षों पर आप स्वयं पहुँच सकते हैं. हाँ, गणित की तरह कुछ मुख्य क़दमों/मोड़ों को याद रखने से, यह यात्रा आसान अवश्य हो जाती है. इस अध्याय में हम ने आम तौर पर कीमत घटने के उदाहरण लिए हैं. आगे बढ़ने से पहले आप को उस परिस्थिति का स्वयं निरीक्षण करना चाहिए जब वस्तु अ की कीमत घटने के स्थान पर बढ़ जाती है. विचार करें कि अब वास्तविक आय स्थिर रखने के लिए मौद्रिक आय बढ़ानी पड़ेगी या घटानी, बजट-रेखा की ढलान कम होगी या ज़्यादा,उपभोक्ता का चुनाव बिंदु पुराने चयन के बाएँ ओर होगा या दाएँ ओर इत्यादि. अगले अध्याय में हम माँग के नियम को एक अन्य तरीके से स्थापित करेंगे.

प्रश्न:

1. क्या दो उदासीनता-वक्र एक दूसरे को काट या छू सकते हैं? अपने उत्तर को साबित करें.
2. क्या उदासीनता-वक्र की ढलान धनात्मक हो सकती है? अपने उत्तर की तर्कपूर्ण व्याख्या करें.
3. वर्तमान में वस्तु अ की कीमत 5 रुपये प्रति इकाई है, ब वस्तु की कीमत 3 रुपये प्रति इकाई है. उपभोक्ता वस्तु अ की 6 इकाई एवं वस्तु ब 10 इकाई का प्रयोग कर रहा है. अगर ब वस्तु की कीमत बढ़ कर 4 रुपये प्रति इकाई हो जाए ,तो हिक्स एवं स्लटस्की, दोनों के तरीके से उन की मौद्रिक आय में क्रमशः क्या परिवर्तन होना चाहिए कि उन की वास्तविक आय स्थिर रहे?
4. चित्र में ऐसी दो बजट-रेखा खींचे जो एक दूसरे को काटती हों एवं बताएँ कि किस की ढलान ज़्यादा है.
5. उदासीनता-वक्र की सहायता से यह साबित करें कि कीमत बढ़ने पर वस्तु की माँग कम होगी.
6. क्या उदासीनता-वक्र की सहायता से माँग के नियम की व्याख्या के लिए वस्तुओं की उपयोगिता में अन्तर्वस्तु स्वतंत्रता आवश्यक है?

7. प्रतिस्थापन की सीमान्त दर को परिभाषित करें. इस का उदासीनता-वक्र की ढलान के साथ क्या सम्बन्ध है?

8. कुल कीमत प्रभाव, स्थानापन्न प्रभाव एवं आय प्रभाव के अंतर एवं परस्पर सम्बन्ध की व्याख्या करें.

9. क्या कोई वस्तु ऐसी भी हो सकती है जिस के माँग-वक्र की ढलान धनात्मक हो?

10. निम्न वस्तु समूहों के बीच उपभोक्ता को सब से ज़्यादा संतुष्टि कौन सा वस्तु-समूह देगा और सब से कम कौन सा? (9,8), (2,7),(8,8),(6,6).

11. [निम्न टिप्पणी का मूल्यांकन करें: बजट-रेखा की ढलान वस्तुगत प्रतिस्थापन दर इंगित करती है एवं उदासीनता-वक्र की ढलान व्यक्ति-सापेक्ष प्रतिस्थापन दर इंगित करती है. इस लिए अधिकतम संतुष्टि के लिए इनका एक समान होना ज़रूरी है.]

12. क्या कोई उपभोक्ता निम्न तीन परिस्थितियों में उपलब्ध वस्तुओं के समूह के बीच उदासीन या तटस्थ रह सकता है? अपने उत्तर की तर्कपूर्ण व्याख्या करें. अगर इन में से किसी समूह के बारे में निश्चित तौर पर यह कहा जा सकता है कि ये सभी बिंदु उदासीनता-वक्र पर होंगे, तो उसे भी चिह्नित करें.

क. (5,7), (6,6), (4, 9)

ख. (5,7), (6,8), (4, 9)

ग. (5,7), (6,6), (4, 6)

अध्याय - 5

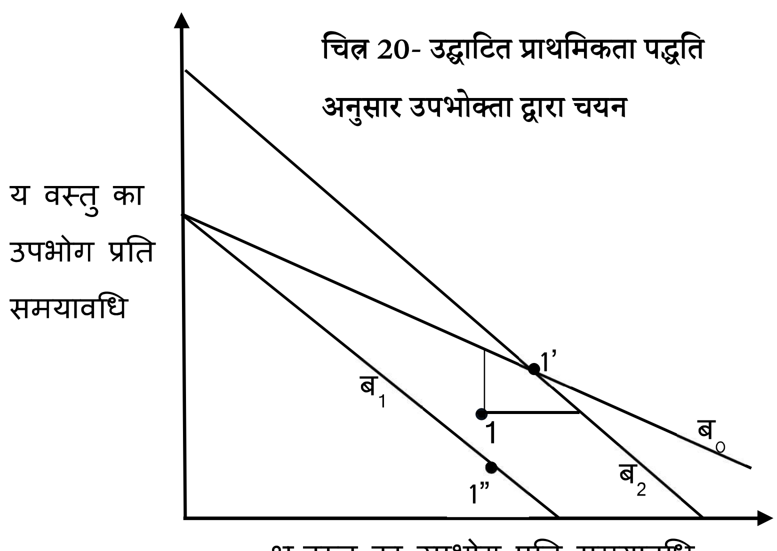
कीमत एवं माँग के सम्बन्ध की तीसरी व्याख्या: उद्घाटित प्राथमिकता पद्धति (Revealed Preference Theory)

कीमत एवं माँग के सम्बन्ध की यह तीसरी व्याख्या भी इस अवधारणा पर आधारित है कि वस्तु के उपभोग से मिलने वाली उपयोगिता को क्रमसूचक संख्याओं में नापा जा सकता है परन्तु इस व्याख्या में कीमत एवं माँग के सम्बन्ध को स्थापित करने के लिए उदासीनता-वक्र की आवश्यकता नहीं है. इस व्याख्या को उद्घाटित प्राथमिकता पद्धति अथवा उद्घाटित अधिमान पद्धति (revealed preference theory/approach) कहते हैं.

यह व्याख्या निम्न मान्यताओं पर आधारित है: उपभोक्ता का चुनाव उस की प्राथमिकताओं को उद्घाटित करता है (यानी अगर उपलब्ध वस्तु समूहों में से, कोई उपभोक्ता किसी विशेष वस्तु-समूह का चयन करता है, तो इस का अर्थ है कि वह उस वस्तु-समूह को उस स्थिति में उपलब्ध अन्य वस्तु समूहों से उच्चतर प्राथमिकता देता है), अन्य बातें समान रहने पर वस्तु की अधिक मात्रा को पसंद किया जाएगा एवं उपभोक्ता के व्यवहार में स्थिरता (consistency) है, अंतर्विरोध नहीं है (यानी अगर किन्हीं दो वस्तु-समूहों में से किसी एक वस्तु-समूह का चयन किया जाता है, तो दोनों वस्तु-समूहों के उपलब्ध होने पर, हमेशा उसी वस्तु-समूह का चयन किया जाएगा).

माना कि चित्र 20 में उपभोक्ता की बजट-रेखा $ब_0$ है. क्या उपलब्ध वस्तुओं में से वह बिंदु 1 को चुन सकता है? हाँ या ना? ना. बिंदु 1 पर खींची हुई त्रिभुज में स्थित हर बिंदु में इस बिंदु की तुलना में दोनों वस्तुओं की अथवा कम से कम एक वस्तु की मात्रा अधिक है एवं कम किसी भी वस्तु की नहीं है. हम यह मान चुके हैं कि अन्य बातें समान रहने पर उपभोक्ता वस्तु की अधिक मात्रा को चुनेगा. इस लिए $ब_0$ बजट-रेखा होने पर बिंदु 1 उपभोक्ता का चयन बिंदु नहीं हो सकता. वास्तव में बजट-रेखा से नीचे का कोई भी बिंदु उपभोक्ता का चयन बिंदु नहीं हो सकता. उपभोक्ता हमेशा बजट-रेखा पर स्थित वस्तुओं के संयोगों में से किसी एक को चुनेगा. मान लें कि यह बिंदु है 1'. अब वस्तु अ की कीमत बढ़ जाती है और बजट-रेखा बदल कर $ब_1$ हो जाती है. अब वास्तविक आय को स्थिर रखने के लिए हमें उपभोक्ता की मौद्रिक आय को बढ़ाना होगा. पिछले अध्याय में हम ने वास्तविक आय को स्थिर रखने के दो तरीके सीखे थे. पहले हिक्स उपाय के अनुसार नई बजट-रेखा खींचे. वास्तव में खींचे? क्या आप खींच पाए? नहीं. हिक्स उपाय के अनुसार बिना उदासीनता-वक्र के स्थिर आय को चिह्नित करना संभव ही नहीं है. इस लिए केवल स्लटस्की उपाय से ही नई बजट-रेखा खींची जा सकती है. अब इस नई स्लटस्की क्षतिपूर्ति बजट-रेखा $ब_2$ पर उपभोक्ता कौन से बिंदु का चयन करेगा? क्या वह 1' के दाईं ओर स्थित किसी बिंदु का चयन कर सकता है? ऊपर दी हुई मान्यताओं के अनुसार ऐसा नहीं होगा. क्योंकि नई बजट-रेखा पर 1' के दाएँ ओर स्थित सभी बिंदु तो कीमत में बदलाव से पहले भी उपभोक्ता को उपलब्ध थे, परन्तु उपभोक्ता ने उन को न चुन कर 1' को चुना था. अब अगर वह इन बिन्दुओं में से किसी को चुनेगा, तो इस का अर्थ है कि उपभोक्ता के व्यवहार में स्थिरता नहीं है. इस लिए ऐसा करना हमारी मान्यता के विरुद्ध होगा. परन्तु क्या हम बता सकते हैं कि वह अन्य उपलब्ध वस्तु समूहों में से किस को चुनेगा? नहीं. हम इतना ही कह सकते हैं कि उपभोक्ता या तो बिंदु 1' पर ही रहेगा या बजट-रेखा $ब_2$ पर इस के बाईं ओर स्थित किसी वस्तु-समूह को चुनेगा. $ब_2$ बजट-रेखा पर बिंदु 1' के बाईं ओर स्थित सभी बिंदु पहले

चित्र 20- उद्घाटित प्राथमिकता पद्धति अनुसार उपभोक्ता द्वारा चयन



उपलब्ध नहीं थे, इस लिए 1' से इन की तुलनात्मक प्राथमिकता के बारे में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है. इस का अर्थ हुआ कि यह साबित हो गया है कि क्ष वस्तु की कीमत बढ़ने पर एवं उपभोक्ता की वास्तविक आय स्थिर रहने पर उस की माँग में कोई बढ़ोतरी नहीं होगी.

अब अगर उपभोक्ता की मौद्रिक आय में किए गए परिवर्तन को निरस्त कर दिया जाता है एवं प्रभावी बजट-रेखा $ब_1$ हो, तो सामान्य वस्तु क्ष के सन्दर्भ में नया चयन बिंदु1" पुराने चयन बिंदु 1' के बाईं ओर ही होगा. इस से साबित होता है कि कीमत बढ़ने पर सामान्य वस्तु की माँग की मात्रा निश्चित तौर पर घट जाएगी. कीमत घटने पर विपरीत स्थिति होगी. [22]

इस तरह तीन अलग-अलग तरीकों से कीमत एवं माँग के सम्बन्ध या माँग के नियम की व्याख्या की गई है. उद्घाटित प्राथमिकता पद्धति यह साबित कर पायी है कि वास्तविक आय स्थिर रहने पर कीमत घटने पर माँग कम नहीं होगी परन्तु मौद्रिक आय स्थिर रहने पर सामान्य वस्तुओं की माँग निश्चित तौर पर बढ़ जाएगी. कीमत बढ़ने पर इस का विपरीत प्रभाव होगा. अन्य दो व्याख्याएं यह साबित कर पायीं हैं कि कीमत कम होने पर एवं वास्तविक आय सहित अन्य बातें समान रहने पर माँग बढ़ जाएगी परन्तु कुल कीमत प्रभाव इन तीनों व्याख्याओं में एक जैसा ही है- सामान्य वस्तुओं की कीमत बढ़ने पर माँग की मात्रा घट जाएगी एवं कीमत घटने पर माँग की मात्रा बढ़ जाएगी.

अब हम इन तीनों व्याख्याओं की समीक्षा करेंगे. अधिकांश चर्चा इन तीनों व्याख्याओं में प्रयुक्त मान्यताओं के इर्द-गिर्द रही है. तालिका-2 में प्रयुक्त मान्यताओं का संक्षिप्त वर्णन है.

तालिका 2
माँग की तीनों व्याख्याओं में प्रयुक्त मान्यताएँ

क्रमांक	मान्यता	गणना-वाचक व्याख्या	उदासीनता-वक्र व्याख्या	उद्घाटित प्राथमिकता सिद्धांत
1	उपभोक्ता का उद्देश्य – संतुष्टि को अधिकतम करना	लागू	लागू	#1
2	विवेकशील व्यवहार	लागू	लागू	#2
3	उपयोगिता को नापने की इकाई	गणन संख्या आवश्यक	क्रमसूचक संख्या पर्याप्त	क्रमसूचक संख्या पर्याप्त
4	उपयोगिता की अंतर-वैयक्तिक स्वतंत्रता	लागू	लागू	लागू
5	उपयोगिता की अन्तर्वस्तु स्वतंत्रता	लागू	आवश्यकता नहीं	आवश्यक नहीं
6	अंततः घटती सीमान्त उपयोगिता का नियम	लागू	आवश्यक नहीं	आवश्यक नहीं
7	मौद्रिक आय की सीमान्त उपयोगिता स्थिर	उपयोगी परन्तु आवश्यक नहीं	आवश्यक नहीं	आवश्यक नहीं
8	प्रतिस्थापन की सीमान्त दर घटती है	आवश्यक नहीं	लागू	आवश्यक नहीं
9	चयन प्राथमिकता को उद्घाटित करता है	आवश्यक नहीं	आवश्यक नहीं	लागू

[22] पिछले अध्याय में दिए गए बजट-रेखा   के गणितीय समीकरण से स्पष्ट है कि अ वस्तु की कीमत बढ़ने पर बजट-रेखा की ढलान का निरपेक्ष मूल्य बढ़ जाता है एवं कीमत कम होने पर बजट-रेखा की ढलान का निरपेक्ष मूल्य कम हो जाता है. हमेशा इस का प्रभाव यह होगा कि कीमत बढ़ने पर क्षतिपूरक बजट-रेखा बिंदु 1 के दाईं ओर पुरानी बजट-रेखा के नीचे होगी एवं कीमत घटने पर बिंदु 1 के बायीं ओर पुरानी बजट-रेखा के नीचे होगी.

10	अन्य बातें समान रहने पर वस्तु की अधिक मात्रा का चयन होगा	अंतर्निहित	लागू	लागू
11	उपभोक्ता के व्यवहार में स्थिरता है एवं अंतर्विरोध नहीं है.	अंतर्निहित	अंतर्निहित	लागू
12	उपभोक्ता को केवल दो वस्तुओं के बीच चयन करना है	लागू नहीं	लागू नहीं	लागू नहीं

#1 प्रत्यक्ष रूप से उपभोक्ता का कोई उद्देश्य नहीं माना जाता. केवल इतना मानना पर्याप्त है कि उपभोक्ता का कोई उद्देश्य होता है जो उस के चयन को प्रभावित करता है.
#2 क्योंकि इस व्याख्या में उपभोक्ता का कोई उद्देश्य प्रत्यक्ष रूप में निर्धारित नहीं है, इस लिए विवेकशील व्यवहार- यानी उद्देश्य के अनुरूप व्यवहार की मान्यता भी आवश्यक नहीं है. इस के स्थान पर व्यवहार में स्थिरता मान्यता का उपयोग किया गया है जो अप्रत्यक्ष रूप से विवेकशील व्यवहार का ही दूसरा स्वरूप है.

उपरोक्त तालिका में दी गई अधिकांश जानकारी स्पष्ट है. इस लिए इस को दोहराने की ज़रूरत नहीं है. इस कारण यहाँ हम सब बिन्दुओं की चर्चा नहीं करेंगे परन्तु यह आवश्यक है कि आप को तालिका के सभी बिन्दु स्पष्ट होने चाहिए.

मान्यता कि 'किसी उपभोक्ता को मिलने वाली उपयोगिता केवल उस के अपने उपभोग पर निर्भर करती है' तीनों व्याख्याओं में अन्तर्निहित है. इस मान्यता के अनुपस्थिति में अन्य उपभोक्ताओं के उपभोग को शामिल किए बिना, हम किसी भी उपभोक्ता के व्यवहार का अध्ययन नहीं कर सकते. इस के विपरीत यह मान्यता कि 'किसी वस्तु से मिलने वाली उपयोगिता केवल उस वस्तु के उपभोग पर ही निर्भर करती है' केवल गणना-वाचक व्याख्या में आवश्यक है. अन्य दो व्याख्याओं में, केवल वस्तुओं के संयोग से मिलने वाली उपयोगिता की जानकारी आवश्यक है न कि किसी वस्तु विशेष से मिलने वाली उपयोगिता की.

'अंततः घटती सीमान्त उपयोगिता का नियम' केवल गणना-वाचक व्याख्या में आवश्यक है. उदासीनता-वक्र में इस का स्थान 'प्रतिस्थापन की सीमान्त दर घटती है' की मान्यता ने ले लिया है. उद्घाटित प्राथमिकता पद्धति में इन दोनों में से किसी भी मान्यता की आवश्यकता नहीं है. जहाँ तक किसी वस्तु की कीमत बदलने पर भी 'मौद्रिक आय की सीमान्त उपयोगिता स्थिर' रहने की मान्यता का सवाल है, यह अनिवार्य तो किसी भी व्याख्या में नहीं है, परन्तु गणना-वाचक व्याख्या के एक प्रारूप, मार्शल के प्रारूप, में इस का प्रयोग किया गया है. इस मान्यता के चलते, मार्शल की गणना-वाचक व्याख्या में कुल कीमत प्रभाव को स्थानापन्न प्रभाव एवं आय प्रभाव में विभिक्त नहीं किया जा सका क्योंकि उस में आय प्रभाव को तो शून्य मान लिया गया है. मार्शल की गणना-वाचक व्याख्या में भी, इस मान्यता का प्रभाव मात्र यह है कि सीमान्त उपयोगिता वक्र ही उपभोक्ता का माँग-वक्र बन जाता है. अन्यथा **मार्शल की व्याख्या में भी मौद्रिक आय की सीमान्त उपयोगिता की स्थिरता, माँग के नियम के लिए आवश्यक नहीं है.** जहाँ तक 'उपभोक्ता को केवल दो वस्तुओं के बीच चयन करना है' की मान्यता का सवाल है, यह किसी भी व्याख्या के लिए अनिवार्य नहीं है. यह मान्यता केवल अध्ययन की सुविधा के लिए प्रयोग की गई है.

तालिका 2 से स्पष्ट है कि गणना-वाचक व्याख्या में सब से ज़्यादा 'मान्यताएँ' लागू होती हैं एवं उद्घाटित प्राथमिकता पद्धति में सब से कम. इस के अलावा गणना-वाचक व्याख्या में प्रयोग की गई कई 'मान्यताएँ' स्पष्ट रूप से अवास्तविक भी हैं. इस लिए कम मान्यताओं एवं अवास्तविक मान्यताओं के प्रयोग के बिना प्रस्तुत उद्घाटित प्राथमिकता पद्धति को बेहतर माना गया है. यह भी कहा गया है कि यह व्याख्या उपभोक्ता के व्यवहार के अध्ययन पर आधारित (behaviouralist approach) है न कि उस के मन के अन्दर झाँक कर लगाए गए अंदाजों पर (introspection). परन्तु उद्घाटित प्राथमिकता पद्धति की बुनियादी मान्यता - 'चुनाव प्राथमिकता उद्घाटित करता है' एवं इस लिए 'उपभोक्ता के व्यवहार में स्थिरता है एवं अंतर्विरोध नहीं है' - को भी अविश्वसनीय माना गया है. अगर आप को दो ऐसी वस्तुओं में से चुनाव करने को कहा जाए जो सिवाय रंग को छोड़ कर समरूप हों, तो यह संभव है कि आप दोनों के बीच तटस्थ या

उदासीन हों. परन्तु क्योंकि आप को एक का चयन करना ही है, तो आप किसी एक रंग की वस्तु का चयन कर लेते हैं. अगर आप को एक बार फिर चुनने का मौका दिया जाए तो आप दूसरी बारी दूसरे रंग का चयन भी कर सकते हैं क्योंकि असल में आप दोनों के बीच तटस्थ हैं. जीवन में कई बार ऐसा होता है परन्तु उद्घाटित प्राथमिकता पद्धति इस संभावना को नकार कर चुनाव में स्थिरता की अपेक्षा करती है.

[किसी भी सिद्धांत या व्याख्या के मूल्यांकन में मान्यताओं की वास्तविकता महत्त्वपूर्ण होती है परन्तु, जैसे हम ने पहले पढ़ा है, यह किसी भी सिद्धांत के मूल्यांकन का मात्र एक पक्ष है. मान्यता की वास्तविकता से भी अधिक महत्त्व इस बात का है कि उस सिद्धांत से निकले निष्कर्ष कितने वास्तविक हैं. लेकिन अगर कई सिद्धांतों से एक जैसे निष्कर्ष निकलते हों, तो उन का मूल्यांकन किस आधार पर होगा? ऐसी परिस्थिति में भी मान्यताओं की वास्तविकता या संख्या एक मात्र मापदंड नहीं हो सकती. किसी सिद्धांत के मूल्यांकन में सिद्धांत की सादगी, स्पष्टता, व्यापकता (वह कितनी अलग-अलग परिस्थितयों या प्रक्रियाओं की व्याख्या कर सकता है) इत्यादि गुण भी महत्त्वपूर्ण होते हैं. यह भी कहा गया है कि अंततः आम तौर पर स्थापित सिद्धांत अपनी कमियों के कारण विस्थापित नहीं होते, अपितु बेहतर सिद्धांत उपलब्ध होने पर ही विस्थापित होते हैं. इस लिए भले ही उदासीनता-वक्र व्याख्या एवं गणना-वाचक उपयोगिता व्याख्या अंतर्निहित मान्यताओं के आधार पर उद्घाटित प्राथमिकता पद्धति से पिछड़ जाती हैं, परन्तु क्योंकि इन में प्रयुक्त अवधारणाओं का प्रयोग काफी व्यापक है, इस लिए ये व्याख्या अभी भी प्रचलित हैं.

कुछ अर्थशास्त्रियों का यह भी मानना है कि हमें उद्घाटित प्राथमिकता पद्धति की भी ज़रूरत नहीं हैं. हम माँग के नियम को बिना किसी व्याख्या के अनुभव जनित निष्कर्ष के रूप में स्वीकार कर सकते हैं. परन्तु मनुष्य की यह स्वाभाविक प्रवृति है कि वह अनुभव की व्याख्या भी करना चाहता है, उसे समझना चाहता है. प्रथम चरण के तौर पर अनुभव जनित निष्कर्ष उपयोगी हो सकते हैं परन्तु इन की व्याख्या, इन के कारण एवं अंतर्संबंधों का अध्ययन अधिक उपयोगी हो सकता है. इस लिए माँग एवं कीमत के सम्बन्ध की व्याख्या के प्रयास लगातार किए जा रहे हैं.]

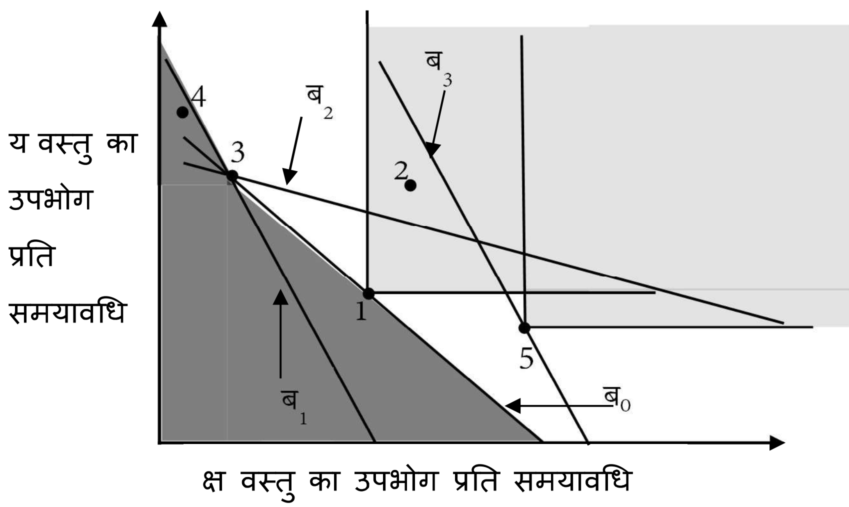
[**हालाँकि उद्घाटित प्राथमिकता पद्धति में उदासीनता-वक्र की आवश्यकता नहीं पड़ती लेकिन इस की सहायता से उदासीनता-वक्र का स्वरूप साबित किया जा सकता है. इस के लिए हमें दो नई मान्यताओं की ज़रूरत पड़ती है. हम यह मानेंगे कि वस्तुओं के हर समूह का किसी न किसी स्थिति में चयन अवश्य किया जाता है.** यानी वस्तुओं के हर समूह के लिए कोई-न-कोई ऐसी बजट-रेखा अवश्य होती है जिस में उपभोक्ता इस समूह का चयन करेगा. इस के अलावा हम यह भी मानेंगे कि अगर वस्तु-समूह क वस्तु-समूह ख के मुकाबले चुना जाता है एवं वस्तु-समूह ख वस्तु-समूह ग के मुकाबले चुना जाता है, तो क एवं ग दोनों वस्तु-समूह उपलब्ध होने पर उपभोक्ता वस्तु-समूह क का ही चयन करेगा. इस को **संक्रामिकता**[23] (transitivity)मान्यता कहते हैं.[24] अब हम इन मान्यताओं के सहयोग से उदासीनता-वक्र के स्वरूप को साबित करेंगे.

मान लें कि प्रारम्भिक अवस्था में चित्र 21 में उपभोक्ता बिंदु 1 वस्तु-समूह का चयन करता है. बिंदु 2 सरीखे वस्तु-समूह (हल्के रंग वाला क्षेत्र) तो वस्तु-समूह 1 मुकाबले ज़्यादा पसंद किए जाएँगे क्योंकि इन में एक वस्तु या दोनों वस्तुओं की मात्रा वस्तु-समूह 1 के मुकाबले ज़्यादा है और कम किसी की भी नहीं है. इस के विपरीत, बजट-रेखा $ब_0$ के नीचे के सब वस्तु-समूह वस्तु-समूह 1 के मुकाबले

[23] संक्रामक ऐसी बीमारी को कहते हैं जो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक फ़ैल सकती है. उसी आधार पर इस मान्यता का नाम पड़ा है.

[24] इस मान्यता की भी आलोचना इस आधार पर की गई है कि वस्तुओं के बीच के छोटे अंतर को व्यक्ति भले ही महसूस न कर सके परन्तु अगर यह अंतर बढ़ता जाता है, तो अंततः व्यक्ति इस अंतर को महसूस कर पायेगा. उदाहरण के तौर पर, एक मीटर एवं एक मीटर 1 सेंटीमीटर की दूरी में शायद इंसान देख कर फर्क न कर पाए एवं इन के बीच तटस्थ हो. इसी तरह एक मीटर एक सेंटीमीटर एवं एक मीटर दो सेंटीमीटर की दूरी में भी अंतर न कर पायें तथा इन के बीच भी तटस्थ हो. अगर हम यह प्रक्रिया दोहराते जाएँ एवं पाएँ कि व्यक्ति एक मीटर 99 सेंटीमीटर व दो मीटर में भी अंतर नहीं कर पाता है. इस लिए अगर संक्रामिकता मान्यता के चलते हम यह मान लें कि व्यक्ति एक मीटर एवं दो मीटर के बीच भी तटस्थ होगा, तो यह निष्कर्ष सही नहीं होगा. क्योंकि वास्तविक जीवन में ऐसा नहीं होता कि व्यक्ति एक मीटर एवं दो मीटर में अंतर न कर पाए. इस आधार पर संक्रामिकता की मान्यता की आलोचना की गई है.

चित्र 21- उद्घाटित प्राथमिकता पद्धति से उदासीनता वक्र का निर्माण



कम पसंद हैं (गहरे रंग का क्षेत्र) क्योंकि इन सब की उपलब्धता के बावजूद वस्तु-समूह 1 का चयन किया गया है. इस का अर्थ है कि अगर उदासीनता-वक्र होगा तो वह इन दोनों क्षेत्रों के बीच होगा. इस से दो और बातें साफ़ हो जाती हैं. एक तो यह कि वस्तु-समूह 1 से निकलने वाले उदासीनता-वक्र की ढलान धनात्मक नहीं हो सकती. बिंदु 1 से निकलने वाले धनात्मक ढलान वाला संभाव्य उदासीनता वक्र कमतर प्राथमिकता वाले क्षेत्र से निकल कर उच्च प्राथमिकता वाले क्षेत्र में जाएगा जो मान्यताओं के अनुकूल नहीं है. इस के अलावा वस्तु-समूह 1 से निकलने वाला उदासीनता-वक्र अवतल/धनुषाकारी (concave) भी नहीं हो सकता क्योंकि उस स्थिति में भी यह कमतर क्षेत्र में प्रवेश कर जाएगा. इतनी स्पष्टता होने के बावजूद अभी भी काफी क्षेत्र ऐसा है जिस के बारे में स्पष्ट नहीं है कि इस में स्थित वस्तु-समूह वस्तु-समूह 1 से बेहतर हैं, कमतर हैं अथवा समान हैं. अनिश्चितता के इस क्षेत्र को अब हम धीरे धीरे कम करेंगे.

ऊपर दी गई मान्यता के अनुसार बिंदु 3 पर स्थित वस्तु-समूह का भी किसी ने किसी अवस्था में चयन होगा. क्या यह बजट-रेखा ब$_2$ की स्थिति में हो सकता है? नहीं, क्योंकि बजट-रेखा ब$_2$ की स्थिति में वस्तु-समूह 1 भी उपलब्ध है एवं यह पहले साबित हो चुका है कि वस्तु-समूह 3 वस्तु-समूह 1 की तुलना में कमतर है. असल में वस्तु-समूह 3 का चयन तभी हो सकता है जब वस्तु-समूह 1 उपलब्ध न हो. मान लीजिये कि यह ब1 की स्थिति में होता है. इस का अर्थ है कि वस्तु-समूह 4 सरीखे सब वस्तु-समूह भी वस्तु-समूह 1 से कमतर हैं. ऐसा इस लिए है क्योंकि वस्तु-समूह 4 वस्तु-समूह 3 से कमतर है क्योंकि वस्तु-समूह 4 उपलब्ध होते हुए भी वस्तु-समूह 3 का चुनाव किया गया है. परन्तु वस्तु-समूह 3 पहले ही वस्तु-समूह 1 से कमतर साबित हो चुका है. इस लिए संक्रामिकता मान्यता के चलते वस्तु-समूह 4 वस्तु-समूह 1 से कमतर साबित होता है. अब हम वस्तु-समूह 1 एवं वस्तु-समूह 4 की तुलना कर पायें हैं जबकि पहले ब$_0$ रेखा के सन्दर्भ में इन बिन्दुओं की तुलना संभव नहीं थी. इस तरह अनिश्चितता का क्षेत्र कुछ कम हो गया. अब हम किसी अन्य बिंदु को ले कर यह प्रक्रिया दोहरा सकते हैं. इस तरह अनिश्चितता का क्षेत्र नीचे की ओर से कम करते जा सकते हैं.

वस्तु-समूह 5 का भी चयन किसी न किसी स्थिति में होगा. मान लीजिये यह ब$_3$ की स्थिति में होता है जब वस्तु-समूह1 भी उपलब्ध है. इस का अर्थ है कि वस्तु-समूह 5 वस्तु-समूह 1 से बेहतर है. इस का यह अर्थ यह भी है कि न केवल वस्तु-समूह 5 अपितु वस्तु-समूह 5 एवं इसे ऊपर एवं दाएँ स्थित सभी वस्तु-समूह भी वस्तु-समूह 1 से बेहतर हैं क्योंकि ये सब वस्तु-समूह वस्तु-समूह 5 से बेहतर हैं. इस तरह से ऊपर से भी अनिश्चित्तता के क्षेत्र में कमी आ गई है. इस प्रक्रिया को दोहराते हुए हम अनिश्चितता के क्षेत्र को ऊपर एवं नीचे दोनों ओर से कम करते जा सकते हैं. इस प्रक्रिया के चलते अंत में हमें उदासीनता-वक्र प्राप्त हो जाएगा. चित्र 21 से स्पष्ट है कि इस का स्वरूप वैसा ही होगा – ऋणात्मक ढलान वाला एवं उत्तल स्वरूप का- जैसा कि हम ने अब तक माना है.

इस तरह से उद्घाटित प्राथमिकता पद्धति की सहायता से उपभोक्ता के व्यवहार का अध्ययन करके हम व्यावहारिक रूप में भी उदासीनता-वक्र चिह्नित कर सकते हैं.]

माँग के अब तक के अध्ययन के निष्कर्ष स्वरूप हम कह सकते हैं कि:

● किसी वस्तु की किसी उपभोक्ता द्वारा माँग का उस वस्तु की कीमत से ऋणात्मक सम्बन्ध होता है यानी कीमत बढ़ने पर, अन्य बातें – वास्तविक आय, अन्य वस्तुओं की कीमत एवं उपभोक्ता की पसंद-नापसंद - समान रहने पर, वस्तु की माँग घट जाएगी एवं कीमत कम होने पर उस वस्तु की माँग बढ़ जाएगी.

● अन्य बातें समान रहने पर, सामान्य वस्तुओं में मौद्रिक आय बढ़ने पर माँग बढ़ जाएगी एवं माँग-वक्र – यानी वस्तु की विभिन्न कीमतों पर उस की माँग दिखाने वाला वक्र - दाईं ओर खिसक जाएगा और निम्न स्तरीय वस्तुओं में बाईं ओर खिसक जाएगा/माँग घट जाएगी. मौद्रिक आय घटने पर विपरीत प्रभाव होगा.

● अन्य बातें समान रहने पर, किसी वस्तु की स्थानापन्न वस्तुओं की कीमत बढ़ने पर उस वस्तु का माँग-वक्र दाईं ओर खिसक जाएगा/माँग बढ़ जाएगी और स्थानापन्न वस्तुओं की कीमत घटने पर माँग-वक्र बाईं ओर खिसक जाएगा/माँग घट जाएगी.

● अन्य बातें समान रहने पर, पूरक वस्तुओं की कीमत बढ़ने पर माँग-वक्र बाईं ओर खिसक जाएगा/माँग घट जाएगी और पूरक वस्तुओं की कीमत घटने पर माँग-वक्र दाईं ओर खिसक जाएगा.

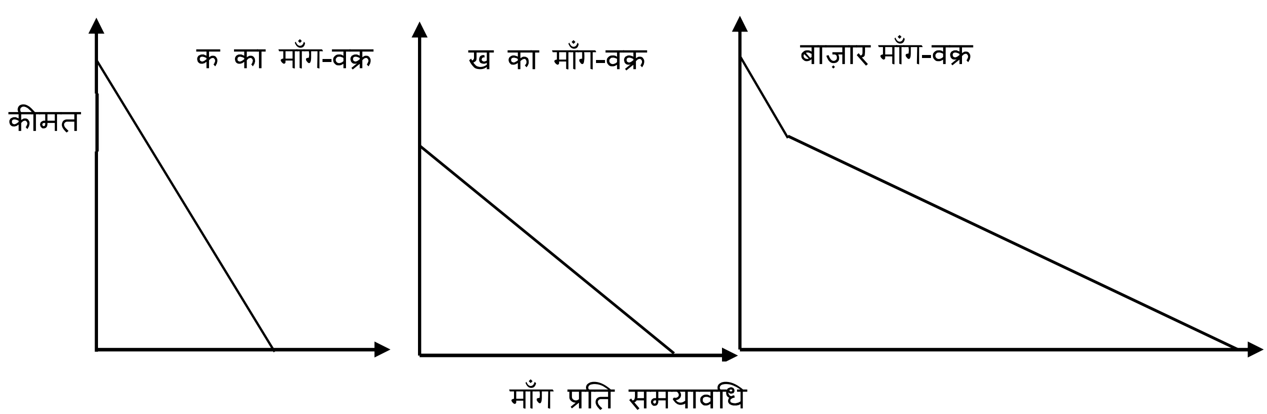
● उपभोक्ता की पसंद- नापसंद में बदलाव होने पर भी माँग-वक्र में उस के अनुरूप बदलाव होंगे. वस्तु की पसंद बढ़ने पर माँग-वक्र दाईं ओर एवं पसंद घटने पर बाईं ओर खिसक जाएगा.

● **विभिन्न परिस्थितियों में माँग-वक्र में बदलाव की दिशा तय है परन्तु यह बदलाव कितना होगा, यह तय नहीं है. विशेष तौर पर माँग-वक्र का समानांतर खिसकना आवश्यक नहीं है.**

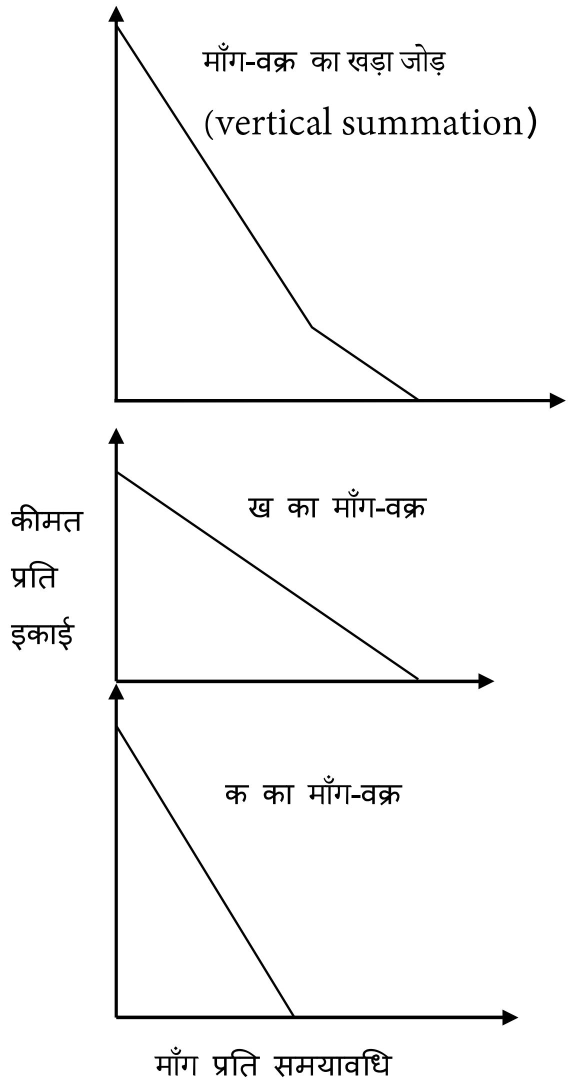
बाज़ार माँग: अब तक की हमारी चर्चा एक व्यक्ति के माँग-वक्र पर केन्द्रित रही है. इस अध्ययन में हमारी एक अनिवार्य मान्यता यह रही है कि किसी भी व्यक्ति के लिए किसी वस्तु की उपयोगिता, एवं इस लिए उस वस्तु की माँग, स्वतंत्र है; यह किसी अन्य व्यक्ति के उपभोग के स्तर से प्रभावित नहीं होती. इस लिए हम विभिन्न व्यक्तियों के माँग-वक्र का योग कर के हम कुल माँग या बाज़ार माँग-वक्र खींच सकते हैं. हर कीमत पर वस्तु अ की सारे उपभोक्ताओं की माँग को जोड़ कर, हम विभिन्न कीमतों पर उस वस्तु की कुल माँग जान सकते हैं. चित्र 22 में इसे दर्शाया गया है. इस प्रक्रिया को उपभोक्ताओं के माँग-वक्र का क्षैतिज (आड़ा) जोड़ (horizontal summation) कहते हैं.

चित्र 22 में सुविधा की दृष्टि से हम ने केवल दो उपभोक्ता माने हैं, इस लिए बाज़ार माँग-वक्र में तीखा मोड़ है- एकायक किसी कीमत पर दूसरा उपभोक्ता शामिल हो जाता है एवं माँग एकायक बढ़ जाती है. अगर बाज़ार में दो की बजाय अनेक उपभोक्ता हों, तो तीखा मोड़ ख़त्म हो जाएगा एवं माँग-वक्र निष्कोण अथवा सपाट (smooth) हो जाएगा.

चित्र 22- बाज़ार माँग-वक्र



चित्र 23 - माँग-वक्र का खड़ा जोड़ (vertical summation)



विचार करें कि क्या उपभोक्ताओं के माँग-वक्र का खड़ा जोड़ (vertical summation) भी हो सकता है? बेशक चित्र के रूप में तो ऐसा हो सकता है और वह चित्र 23 में प्रदर्शित है. परन्तु इस जोड़ का अर्थ क्या है? इस योग को परिभाषित करने का प्रयास करें. **आप पायेंगे कि उपभोग के एक स्तर पर विभिन्न उपभोक्ताओं द्वारा दी जाने वाली कीमत के योग का कोई अर्थ नहीं है.**[25] **इस के विपरीत एक कीमत पर विभिन्न उपभोक्ताओं की माँग के योग का अर्थ स्पष्ट है- कुल माँग.** इस लिए बाज़ार माँग ज्ञात करने के लिए उपभोक्ताओं की माँग का क्षैतिज (आड़ा) जोड़ ही किया जाना चाहिए.

कुछ बार दो या तीन उपभोक्ताओं के माँग-वक्र खींच कर कुल या बाज़ार माँग-वक्र खींचने का अभ्यास करें. यह प्रक्रिया माँग के गणितीय समीकरणों से भी दोहराई जा सकती है. उदाहरण के तौर पर दो उपभोक्ताओं के माँग-वक्र निम्न हैं:

$$D_{\text{क}} = 20 - 2p_{\text{अ}}$$
$$D_{\text{ख}} = 8 - 1p_{\text{अ}}$$

इन दोनों उपभोक्ताओं का कुल माँग-वक्र क्या होगा? सामान्य गणित से हम जानते हैं कि क उपभोक्ता वस्तु अ को तभी ख़रीदेगा जब इस की कीमत 10 से कम होगी एवं उपभोक्ता ख वस्तु अ को तभी ख़रीदेगा जब इस की कीमत 8 से कम होगी. यानी 10 और 8 के बीच कीमत होने पर बाज़ार माँग उपभोक्ता क की माँग के बराबर होगी एवं 8 से नीचे कीमत होने पर बाज़ार माँग में क एवं ख दोनों उपभोक्ताओं की माँग शामिल होगी. इस लिए हम बाज़ार माँग $D_{\text{बा}}$ को निम्न समीकरण से इंगित कर सकते हैं..

$$D_{\text{बा}} = 20 - 2p_{\text{अ}} \text{ अगर } 10 > p_{\text{अ}} \geq 8$$
एवं $D_{\text{बा}} = 28 - 3p_{\text{अ}}$ अगर $p_{\text{अ}} < 8$

अगर उपरोक्त विवरण स्पष्ट नहीं है तो अलग-अलग कीमतों पर गणना कर के स्वयं इस की पुष्टि करें.

अब तक हम यह मान कर चले हैं कि उपभोक्ताओं की माँग परस्पर स्वतंत्र हैं, परन्तु अर्थशास्त्री जानते हैं कि हमेशा ऐसा नहीं होता. कई परिस्थितियों में उपभोक्ताओं की माँग एक दूसरे से प्रभावित होती है. दो ऐसी परिस्थितियाँ चिह्नित की गई हैं. **भेड़-चाल/अनुरूपता प्रभाव (Bandwagon effect), मिथ्याभिमानी/विशिष्टता प्रभाव (snob effect). इन के अलावा वेब्लेन प्रभाव (पहचान करने वाले के नाम पर आधारित; veblen effect) भी माँग-वक्र को प्रभावित कर सकता है.**

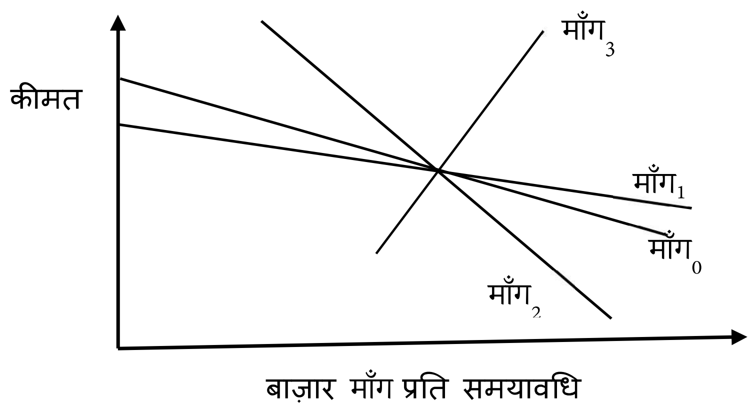
भेड़-चाल प्रभाव में व्यक्ति एक दूसरे की नक़ल करते हैं; अगर आप के पड़ोसी किसी वस्तु का उपभोग बढ़ा रहे हैं, तो आप भी उन की नक़ल करते हुए, अपनी खपत बढ़ा देते हैं. मिथ्याभिमानी/विशिष्टता प्रभाव ठीक इस का उलटा होता है. आप भीड़ से अलग दिखने का प्रयास करते हैं- अन्य लोग अगर किसी वस्तु की खपत बढ़ा रहे हैं, तो मिथ्याभिमानी व्यक्ति उस की खपत कम कर देते हैं. कई बार

[25] माँग का खड़ा जोड़ केवल 'सार्वजनिक वस्तुओं' के सन्दर्भ में उपयुक्त हो सकता है. 'सार्वजनिक वस्तुओं' की अर्थशास्त्र में एक विशेष परिभाषा है. इस की चर्चा हम आगे करेंगे.

यह भी होता है कि व्यक्ति कीमत को गुणवत्ता का पैमाना बना लेता है. यानी वस्तु की कीमत घटने पर उपभोक्ता यह समझते हैं कि वस्तु की गुणवत्ता कम हो गई है एवं महँगी होने पर वस्तु की गुणवत्ता को बेहतर समझते हैं. इसे वेब्लेन प्रभाव कहते हैं. इस का प्रभाव यह होगा कि कीमत बढ़ने पर माँग में बढ़ोतरी होगी (यह मानने के कारण की अब वस्तु की गुणवत्ता/उपयोगिता बढ़ गई है) एवं कीमत घटने पर माँग घट जाएगी.

इन तीनों प्रभावों का कुल बाज़ार माँग पर क्या प्रभाव पड़ेगा? लोच की अर्थशास्त्र में एक विशेष परिभाषा है जिस की चर्चा हम आगे करेंगे. अभी बोलचाल की परिभाषा पर्याप्त होगी. भेड़-चाल प्रभाव होने पर कुल माँग-वक्र बिना भेड़-चाल प्रभाव की स्थिति की तुलना में ज़्यादा लचीला होगा. ऐसा इस लिए होगा क्योंकि कीमत घटने के साथ हर व्यक्ति की माँग बढ़ेगी परन्तु भेड़-चाल प्रभाव के कारण यह अधिक बढ़ेगी. कीमत बढ़ने पर ठीक इस का विपरीत होगा. इस लिए भेड़-चाल प्रभाव के कारण कीमत में परिवर्तन का प्रभाव बढ़ जाएगा. इस के विपरीत मिथ्याभिमानी/विशिष्टता प्रभाव माँग-वक्र को कम लचीला बना देगा क्योंकि कीमत में परिवर्तन का प्रभाव कम हो जाएगा. वेब्लेन प्रभाव के चलते न केवल माँग-वक्र कम लचीला होगा अपितु इस की ढलान धनात्मक भी हो सकती है. वेब्लेन प्रभाव के चलते बाज़ार माँग-वक्र की ढलान धनात्मक होना आवश्यक नहीं है क्योंकि आम तौर पर सभी उपभोक्ता वेब्लेन प्रभाव से प्रभावित नहीं होते. इस लिए वास्तविक जीवन में, जहाँ अनेक उपभोक्ता होते हैं, बाज़ार माँग-वक्र की ढलान ऋणात्मक रह सकती है. चित्र 24 में इन विभिन्न परिस्थितियों में बाज़ार माँग-वक्र दिखया गया है. माँग$_0$ उस परिस्थिति का बाज़ार माँग-वक्र है जब विभिन्न उपभोक्ताओं के माँग-वक्र एक दूसरे से स्वतंत्र हों, माँग$_1$ जब भेड़-चाल प्रभाव लागू हो एवं माँग$_2$ जब मिथ्याभिमानी/विशिष्टता प्रभाव लागू हो. वेब्लेन प्रभाव एवं मिथ्याभिमानी/विशिष्टता प्रभाव का माँग-वक्र पर एक जैसा प्रभाव पड़ता है हालाँकि यह अलग-अलग कारणों से होता है. इस लिए वेब्लेन प्रभाव के चलते बाज़ार माँग-वक्र माँग$_2$ वक्र जैसा भी हो सकता है एवं माँग$_3$ जैसा भी हो सकता है. केवल मिथ्याभिमानी/विशिष्टता प्रभाव के कारण माँग-वक्र माँग$_3$ जैसा नहीं हो सकता.

चित्र 24- उपभोक्ताओं के बीच निर्भरता का बाज़ार माँग पर प्रभाव



संक्षेप में, इस अध्याय में हम ने उद्घाटित प्राथमिकता प्रणाली की सहायता से माँग एवं कीमत के सम्बन्ध का अध्ययन किया है. इस प्रणाली में उदासीनता-वक्र की आवश्यकता नहीं होती. इस व्याख्या की कुछ विशेष मान्यताएँ हैं, जिन को समझना ज़रूरी है. इस के अलावा इस अध्याय में माँग के नियम की तीनों व्याख्याओं में प्रयुक्त मान्यताओं की चर्चा एवं तुलना भी की गई है. व्यक्तिगत माँग-वक्र के आधार पर बाज़ार माँग की गणना करना सीखा है. हालाँकि आम तौर पर बाज़ार माँग-वक्र की गणना इस आधार पर की जाती है कि व्यक्तिगत माँग-वक्र परस्पर एक दूसरे के स्वतंत्र होते हैं, परन्तु अपवाद स्वरूप दो तरह की निर्भरता एवं वेब्लेन प्रभाव का भी हम ने अध्ययन किया है.

इस अध्याय के साथ ही माँग की व्याख्या पूरी होती है. हमने माँग के निर्धारक तत्त्वों का अध्ययन किया है एवं हम जान गए हैं कि कीमत बढ़ने पर माँग कम होगी, कि माँग वक्रों की ढलान ऋणात्मक होती है. कई परिस्थितियों में मात्र इतना जानना पर्याप्त नहीं होता. माँग में कितना परिवर्तन होगा या किस वस्तु की माँग में कम परिवर्तन होता है एवं किस वस्तु की माँग में ज़्यादा परिवर्तन, यह जानना भी कई बार ज़रूरी हो जाता है. इस का अध्ययन हम अगले अध्याय में करेंगे.

प्रश्न:

1. माँग के नियम की उद्घाटित प्राथमिकता प्रणाली की सहायता से व्याख्या करें. इस प्रणाली का मूल्यांकन भी करें.

2. माँग के नियम की उद्घाटित प्राथमिकता प्रणाली उदासीनता-वक्र व्याख्या से किस रूप में बेहतर है?

3. माँग के नियम की तीनों व्याख्याओं में से कौन सी आप को बेहतर लगी एवं क्यों लगी?

4. अगर उपभोक्ताओं की माँग परस्पर स्वतंत्र न हो, तो किस किस तरह की निर्भरता हो सकती है एवं उस का बाज़ार माँग-वक्र पर क्या प्रभाव पड़ेगा?.

5. अब तक आये अर्थशास्त्र के विशिष्ट शब्दों की सूची बनाएँ एवं उन की परिभाषा दें.

6. अगर एक शहर में 15 उपभोक्ता हैं एवं हर व्यक्ति का माँग-वक्र एक जैसा है एवं निम्न है, तो कुल माँग-वक्र ज्ञात करें. इस प्रक्रिया में प्रयुक्त मान्यताओं को स्पष्ट तौर पर इंगित करें.

$$D_{\text{क}} = 30 - 4p_{\text{अ}}$$

अध्याय - 6

लोच (Elasticity)

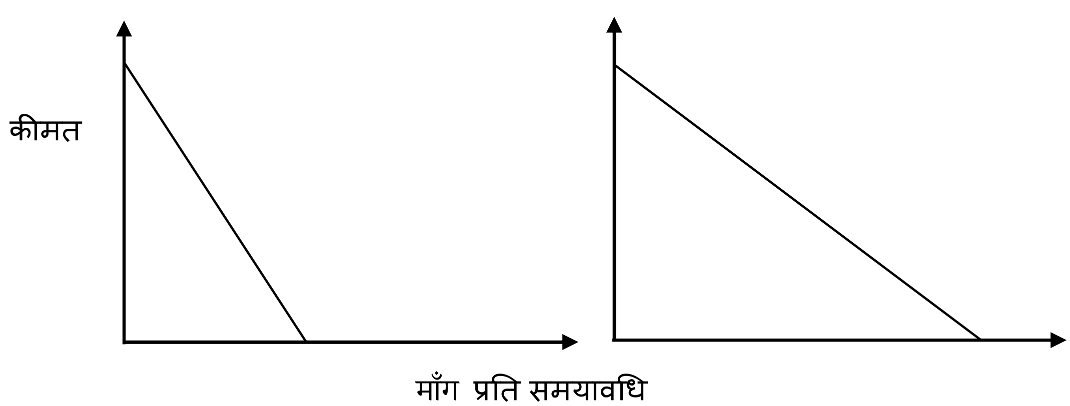
पिछले अध्याय में हम ने रेखांकित किया था कि माँग का सिद्धांत कीमत इत्यादि में बदलाव होने पर, माँग में परिवर्तन की दिशा इंगित करता है परन्तु माँग में बदलाव की मात्रा के बारे में कुछ नहीं कहता. इस अध्याय में हम बदलाव को नापने के बारे में जानेंगे. अर्थशास्त्र में बदलाव को नापने के लिए लोच की अवधारणा का प्रयोग किया गया है. यह एक महत्त्वपूर्ण अवधारणा है. - लोच को परिभाषित करने से पहले एक समस्या का ज़िक्र करना आवश्यक है.

प्रभाव नापने के अपर्याप्त तरीके एवं अपर्याप्तता के कारण : माँग के नियम के अनुसार कीमत बढ़ने पर हर सामान्य वस्तु की माँग कम होती है परन्तु क्या सभी वस्तुओं की माँग पर कीमत का एक-सा प्रभाव होता है? अगर हमें दो वस्तुओं में तुलना कर के देखना हो कि कीमत बढ़ने पर किस की माँग ज़्यादा कम होती है, तो कैसे देखेंगे? मान लीजिये एक वस्तु की कीमत एक रुपया बढ़ने से माँग 10 इकाई कम हो जाती है परन्तु दूसरी वस्तु की माँग केवल 5 इकाई कम हो जाती है. क्या हम कह सकते हैं कि पहली वस्तु की माँगपर कीमत का प्रभाव ज़्यादा है और दूसरी पर कम. निश्चित तौर पर ऊपरी तौर पर यही प्रतीत होता है. परन्तु यह निष्कर्ष ग़लत भी हो सकता है. क्यों? मान लो पहली वस्तु नमक है और इस की कीमत 10 रुपए से बढ़ कर 11 रुपये हो जाती है और माँग 10000 किलो से घट कर 9990 किलो रह जाती है. मान लो दूसरी वस्तु प्याज है एवं इस की कीमत भी 100 रुपए से बढ़ कर 101 रुपये हो जाती है और माँग 10 किलो से घट कर 5 किलो रह जाती है. क्या अब भी आप कह सकते हैं कि नमक की माँग पर कीमत का प्रभाव प्याज़ के मुकाबले ज़्यादा है? शायद नहीं. इन्हीं आँकड़ों को थोड़ा दूसरा रूप दे कर देखते हैं. नमक की माँग को किलो की बजाय अगर टनों में नापें तो नमक की माँग 10 टन से घट कर 9.99 रह जाती है यानी गिरावट मात्र 0.01 इकाई रह जाएगी. परन्तु अगर प्याज़ को किलो में ही नापे तो उस की गिरावट 5 इकाई ही रहेगी. 0.01 के मुकाबले 5 इकाई की गिरावट ज़्यादा प्रतीत होती है. इन दो उदाहरणों से क्या साबित होता है? सोचें.

केवल गिरावट की मात्रा से हम अंदाज़ा नहीं लगा सकते कि किस वस्तु की माँग पर कीमत का प्रभाव ज़्यादा है. ऐसा दो कारणों से है. पहला गिरावट की मात्रा का महत्त्व वस्तु की माँग के स्तर पर निर्भर करता है. 10000 किलो माँग में 10 किलो का अंतर उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना कि 10 किलो की माँग में 5 किलो का. यही बात कीमत पर भी लागू होती है. 10 रुपये में 1 रुपए की बढ़ोतरी और 100 रुपये में एक रुपये की बढ़ोतरी का एक-सा महत्त्व नहीं है. दूसरी ओर, बदलाव की मात्रा नापने की इकाई पर भी निर्भर करती है. जैसा कि हमने उपरोक्त उदाहरण में देखा, वही गिरावट 10 इकाई से भी इंगित की जा सकती है और 0.01 इकाई से. इन दोनों कारणों से केवल गिरावट की मात्रा से कीमत के प्रभाव का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता.

क्या माँग-वक्र की ढलान के आधार पर हम किस वस्तु पर कीमत के प्रभाव का आकलन कर सकते हैं ? चित्र 25 में पहले माँग-वक्र की ढलान ज़्यादा दिखाई देती है. क्या इस लिए यह कह सकते हैं कि दूसरे माँग-वक्र की तुलना में पहले माँग-वक्र पर कीमत का प्रभाव ज़्यादा है? ऐसा नहीं है. दोनों माँग-वक्र एक ही वस्तु के हैं. फिर ढलान में फर्क क्यों है? चित्र 25 में पहले और दूसरे माँग-वक्र की ढलान में अंतर केवल दिखने में है. यह अंतर इस लिए है क्योंकि दूसरे माँग-वक्र में हम ने चित्र के क्ष अक्ष के स्केल यानी पैमाने

चित्र 25- एक माँग-वक्र के दो चित्र या दो भिन्न माँग-वक्र ?



को बदल दिया है. पहले चित्र में हमने एक इकाई को 0.5 सेंटी मीटर से इंगित किया है और दूसरे चित्र में 1 सेंटी मीटर से. इस को ठीक से समझने के लिए आप स्वयं ग्राफ़ कागज़ पर माँग-वक्र बना कर देखें. एक चित्र में एक इकाई को आधा सेंटी मीटर से दिखाएँ एवं दूसरे चित्र में एक इकाई को 1 सेंटी मीटर से दिखाएँ. आप पाएँगे कि ढलान अलग अलग प्रतीत होते हैं. यही प्रयोग आप कीमत अक्ष पर भी कर सकते हैं. ऐसा ही प्रभाव तब भी देखने को मिलेगा जब हम अक्ष के पैमाने को बदलने के स्थान पर मानक इकाई को बदल दें यानी एक चित्र में किलोग्राम में एवं दूसरे में क्विंटल में नापे. ये चित्र तो एक ही वस्तु के माँग-वक्र के थे, फिर भी केवल ढलान देख कर कीमत प्रभाव का आकलन ग़लत हो गया. अगर माँग-वक्रों के चित्र अलग-अलग वस्तुओं के हों, तो निर्णय लेने में कितनी कठिनाई होगी, इस का सहज अंदाज़ा लगाया जा सकता है.

इस लिए **न तो चित्र को देखने मात्र से, न माँग-वक्र की ढलान से और न माँग एवं कीमत में परिवर्तन की मात्रा के आधार पर इस का निर्णय हो सकता कि किस वस्तु की माँग पर कीमत का प्रभाव कम है और किस पर ज़्यादा.** इस लिए एक चर की दूसरे चर पर प्रभावशीलता देखने के लिए एवं दो वस्तुओं पर प्रभावशीलता की तुलना करने के लिए लोच की अवधारणा का प्रयोग किया जाता है.

लोच की अवधारणा: लोच (elasticity; इस लिए लोच को आम तौर पर e द्वारा इंगित किया जाता है) को निम्न सूत्र द्वारा नापा जाता है: लोच $= \frac{\text{निर्भर चर में प्रतिशत बदलाव}}{\text{स्वतंत्र चर में प्रतिशत बदलाव}}$. अगर हम माँग पर कीमत का प्रभाव नापना चाहते हैं यानी माँग की कीमत लोच देखना चाहते हैं तो वह होगी – माँग में प्रतिशत बदलाव ÷ कीमत में प्रतिशत बदलाव. अगर हम माँग की आय लोच देखना चाहते हैं यानी आय का माँग पर प्रभाव देखना चाहते हैं तो वह होगा – माँग में प्रतिशत बदलाव ÷ आय में प्रतिशत बदलाव. **लोच एक चर की दूसरे चर पर प्रभावशीलता को नापता है.**

लोच की ऐसी परिभाषा क्यों? हम ने ऊपर देखा है कि माँग पर कीमत प्रभाव के आकलन के दोनों स्वाभाविक उपायों में दो समस्या थी. एक तो वह नापने की इकाई से प्रभावित हो रही थी और दूसरा, बदलाव को मूल मात्रा के सन्दर्भ में नहीं देखा जा रहा था. जब हम बदलाव की मात्रा को प्रतिशत में नापते हैं तो ये दोनों समस्या दूर हो जाती हैं. आप वस्तु की माँग को किलोग्राम में नापे या क्विंटल में प्रतिशत में बदलाव वही रहेगा. आप स्वयं गणना कर के देखें. इस के साथ ही प्रतिशत बदलाव में मूल मात्रा अनिवार्य रूप से शामिल होती है, इस लिए दूसरी समस्या भी हल हो जाती है. इस तरह से लोच अथवा एक चर की दूसरे चर पर प्रभावशीलता इस प्रकार आंकी जाती है कि यह मापन की इकाई से प्रभावित नहीं होती. लोच इकाई रहित अंक द्वारा मापी जाती है. इकाई रहित होने के कारण विभिन्न वस्तुओं की लोच की परस्पर तुलना की जा सकती है. स्पष्टता के लिए यह ध्यान में रखें कि 2 किलोग्राम एवं 3 लीटर की परस्पर तुलना नहीं की जा सकती परन्तु अगर कोई माप इकाई विहीन है एवं मात्र अंक है तब हम निश्चित तौर पर उन की तुलना कर सकते हैं. लोच ऐसा माप विहीन चर है.

लोच की परिभाषा केवल माँग की कीमत लोच तक सीमित नहीं है. यह किन्हीं दो निर्भर कारकों/चरों पर लागू हो सकती है. इस लिए लोच का ज़िक्र करते हुए यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि स्वतंत्र चर क्या है और निर्भर चर क्या है. हालाँकि अगर सन्दर्भ से स्पष्ट हो, तो बोलचाल में केवल लोच कहने से काम चल सकता है परन्तु सही प्रयोग 'माँग की कीमत लोच' ही है. माँग की कीमत लोच हमेशा ऋणात्मक होगी क्योंकि माँग एवं कीमत में विपरीत सम्बन्ध होता है. परन्तु परम्परागत रूप से माँग की कीमत लोच के ऋणात्मक चिन्ह को अनदेखा कर के ही लोच की गणना की जाती है यानी लोच का निरपेक्ष मूल्य लिया जाता है. इस लिए गणितीय गणना में प्रयोग करते हुए माँग की कीमत लोच के पूर्व '-' का चिन्ह लगाया जाता है.

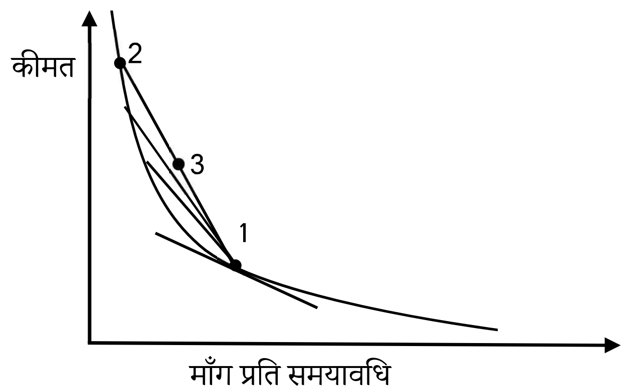
गणना करने के लिए लोच के सूत्र को कई रूपों में लिखा जा सकता है. गणितीय रूप से सभी सूत्र समान हैं एवं ऊपर दिए गए बुनियादी सूत्र से प्राप्त किए जा सकते हैं.

$$\text{लोच} = -\frac{\frac{\Delta\text{माँग}}{\text{माँग}}*100}{\frac{\Delta\text{कीमत}}{\text{कीमत}}*100} = -\frac{\Delta\text{माँग}}{\Delta\text{कीमत}}*\frac{\text{कीमत}}{\text{माँग}} = -\frac{\Delta\text{माँग}}{\text{माँग}}*\frac{\text{कीमत}}{\Delta\text{कीमत}} = -\frac{1}{\frac{\Delta\text{कीमत}}{\Delta\text{माँग}}}*\frac{\text{कीमत}}{\text{माँग}} = -\frac{1}{\text{माँग}-\text{वक्र की ढलान}}*\frac{\text{कीमत}}{\text{माँग}} \quad \text{.........}(15)$$

अब आप ऊपर प्याज़ और नमक के उदाहरण में दिए गए आँकड़ों के आधार पर गणना कर के देखें कि किस वस्तु की माँग की कीमत लोच ज़्यादा है. यह गणना करने में एक दिक्कत आती है. अगर कीमत 10 से बढ़ कर 11 हो जाती है तो भी बदलाव एक इकाई है और 11 से घट कर 10 रह जाती है तो भी बदलाव एक इकाई ही है, परन्तु प्रतिशत बदलाव अलग-अलग हो जाता है. कीमत के दस से 11 होने पर कीमत में बदलाव 10% होता है और 11 से 10 होने पर 9.09%. ऐसा ही अंतर मात्रा के % बदलाव की गणना में होगा.

इस समस्या से निपटने के दो उपाय हैं. एक उपाय तो यह है कि हम लोच की गणना करने के लिए बहुत ही छोटा बदलाव करें, नितांत छोटा. ऐसा करने पर दोनों बिंदु बिलकुल पास होने के कारण किसी भी तरीके से गणना करने पर प्रतिशत अनुपात में विशेष अंतर नहीं होगा. दूसरा तरीका यह है कि हम लोच की गणना दोनों बिन्दुओं के मध्य बिंदु पर करें. यानी कीमत में बदलाव के प्रतिशत की गणना करने के लिए कीमत को 10 या 11 से लेने की बजाय 10 और 11 की औसत यानी 10.5 मान कर गणना करें. यही प्रक्रिया माँग की मात्रा में बदलाव की गणना में भी अपनाएँ. **लोच के इन दोनों तरह के माप को क्रमशः बिंदु (point) लोच (जब बदलाव नितांत कम होता है) एवं चाप (arc) लोच (जब बदलाव की गणना मध्य बिंदु से करते हैं) कहते हैं.**

चित्र 26- कीमत लोच की गणना



इन तरीकों के नामकरण एवं गणना को चित्र की सहायता से समझना आसान होगा. माना कि प्रारम्भ में उपभोक्ता चित्र 26 में बिंदु 1 पर है एवं कीमत में बदलाव के चलते बिंदु 2 पर पहुँच जाता है. बिंदु 2 की स्थिति यानी बिंदु 1 से दूरी के अनुसार बिंदु 2 एवं 1 को जोड़ने वाली रेखा की ढलान में बदलाव होता जाता है. ऊपर दिए गए सूत्र 15 के अनुसार हम देख सकते हैं कि बिंदु 1 एवं 2 को जोड़ने वाली रेखाओं के ढलान में बदलाव के साथ माँग की कीमत लोच में भी बदलाव होता चला जाएगा. परन्तु बिंदु 2 एवं बिंदु 1 के बीच की दूरी कम होते-होते जैसे शून्य के करीब पहुँच जाती है तो गणित के माध्यम से हम जानते हैं कि बिंदु 1 एवं 2 को जोड़ने वाली रेखा बिंदु 1 पर माँग-वक्र की स्पर्श रेखा बन जाएगी. उस परिस्थिति में बिंदु 1 पर माँग की कीमत लोच की गणना निश्चित हो जाएगी. इस प्रक्रिया से गणना करने को बिंदु लोच कहते हैं क्योंकि बिंदु 1 एवं 2 इतने समीप हो जाते हैं कि हम उन्हें एक ही बिंदु मान सकते हैं. परन्तु **बिंदु लोच की गणना तभी संभव हो सकती है जब हमें पूरे माँग-वक्र की जानकारी हो**. अगर हमें पूरे माँग-वक्र की जानकारी हो तो बिंदु लोच को गणितीय भाषा में निम्न रूप में परिभाषित कर सकते हैं:

$$-\frac{d\text{माँग}}{d\text{कीमत}} * \frac{\text{कीमत}}{\text{माँग}} = -\text{ माँग वक्र का डेरिवेटिव} * \frac{\text{कीमत}}{\text{माँग}}.$$

अगर हमें पूरे माँग-वक्र की जानकारी नहीं है और केवल यह मालूम है कि फलां कीमत पर इतनी माँग हैं एवं फलां कीमत पर इतनी, तब बिंदु लोच की गणना करना संभव नहीं है. तब हम, लोच को निश्चित मान देने के लिए ताकि गणना में कोई अंतर न रहे, लोच की गणना माँग के दोनों बिन्दुओं के मध्य बिंदु से करते हैं. प्रभावी रूप से लोच को इस तरह से मापने का अर्थ है कि यह बिंदु 3, जो बिंदु 1 एवं 2 के मध्य स्थित है, पर लोच का माप है. क्योंकि बिंदु 3 एक चाप के मध्य स्थित बिंदु है, इस लिए लोच की इस मापन विधि को चाप लोच कहते हैं. चाप लोच की गणना के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जा सकता है:

$$\text{चाप लोच} = -\frac{\frac{\Delta\text{माँग}}{2}}{\frac{\Delta\text{कीमत}}{2}} * \frac{\frac{\text{नई कीमत}+\text{पुरानी कीमत}}{2}}{\frac{\text{नई माँग}+\text{पुरानी माँग}}{2}} = -\frac{\Delta\text{माँग}}{\Delta\text{कीमत}} * \frac{(\text{नई कीमत}+\text{पुरानी कीमत})}{(\text{नई माँग}+\text{पुरानी माँग})}$$

जब बिंदु 2 बिंदु 1 के बिलकुल समीप आ जाएगा, तब चाप लोच का मान बिंदु लोच के मान के समान हो जाएगा.

लोच मापन की ये दो ही बुनियादी विधियाँ हैं. हालाँकि इन दोनों विधियों से लोच की गणना करने के लिए कई अलग-अलग समतुल्य सूत्रों का प्रयोग किया जा सकता है. इन में से कुछ वैकल्पिक सूत्रों का हम आगे चल कर प्रयोग करेंगे.

लोच को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जाता है. लोच एक से अधिक होने पर लोच को लचीला (elastic) कहा जाता है एवं 1 से कम होने पर अलचीला/कम लचीला (inelastic) कहा जाता है. लोच 1 होने पर लोच को इकाई (unitary) लोच कहा जाता है. हालाँकि माँग की कीमत लोच ऋणात्मक होती है परन्तु उपरोक्त वर्गीकरण हेतु हम लोच का निरपेक्ष मूल्य लेते हैं यानी ऋणात्मक चिन्ह को अनदेखा कर देते हैं. **लोच के इस वर्गीकरण के आधार पर कई उपयोगी निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं. अब हम उन का अध्ययन करेंगे.**

लोच एवं ख़र्च का सम्बन्ध: किसी वस्तु पर होने वाला खर्चा वस्तु की मात्रा एवं कीमत के गुणन से तय होता है. क्योंकि कीमत एवं माँग में विपरीत सम्बन्ध होता है, इस लिए वस्तु पर होने वाले कुल ख़र्च पर इन का विपरीत प्रभाव पड़ेगा. कीमत बढ़ने के चलते वस्तु पर होने वाला कुल ख़र्च बढ़ेगा परन्तु कीमत बढ़ने के कारण वस्तु की माँग मात्रा घटेगी जिस से कुल ख़र्च घटेगा. इन दोनों विपरीत प्रभावों का शुद्ध परिणाम क्या होगा? यह निर्भर करेगा कि कौन सा प्रभाव बड़ा है. माँग की लोच से हमें इस का पता चल जाता है. अगर किसी वस्तु की माँग की लोच एक से अधिक है यानी लचीली है तो इस का अर्थ है कि उस वस्तु की माँग में होने वाला परिवर्तन कीमत में होने वाले परिवर्तन से अधिक है. इस लिए लचीली लोच वाली वस्तु पर होने वाले कुल ख़र्च पर माँग में होने वाले परिवर्तन का प्रभाव हावी होगा. अगर लचीली वस्तु की माँग घटेगी, तो कुल ख़र्च घटेगा और माँग बढ़ेगी तो कुल ख़र्च बढ़ेगा. इस का अर्थ है कि माँग के लचीली होने पर कीमत बढ़ने पर कुल ख़र्च घटेगा और कीमत घटने पर कुल ख़र्च बढ़ेगा. अ-लचीली माँग होने पर स्थिति विपरीत होगी क्योंकि इस स्थिति में कीमत में बदलाव माँग में बदलाव से ज़्यादा होगा एवं कुल ख़र्च पर कीमत बदलाव का प्रभाव ज़्यादा होगा. तालिका 3 में संक्षेप में यह निष्कर्ष दिया गया है. इस को याद नहीं करना अपितु इस के पीछे के कारणों को समझना है.

तालिका 3

माँग की कीमत लोच, कीमत में परिवर्तन एवं वस्तु पर होने वाले कुल ख़र्च का सम्बन्ध

कीमत में बदलाव	**माँग की कीमत लोच 1 से कम यानी अ-लचीली**	**माँग की कीमत लोच 1 यानी इकाई लोच**	**माँग की कीमत लोच 1 से अधिक यानी लचीली**
बढ़ोतरी	ख़र्च बढ़ेगा	कोई बदलाव नहीं	ख़र्च घटेगा
कटौती	ख़र्च घटेगा	कोई बदलाव नहीं	ख़र्च बढ़ेगा

[उपरोक्त निष्कर्ष गणित की सहायता से भी प्राप्त किए जा सकते हैं. माना कि प्रारम्भिक कीमत $की_0$ पर माँग $म_0$ है. कीमत में परिवर्तन होने पर कुल ख़र्च में होने वाला परिवर्तन होगा:

$\Delta ख़र्च= (की_0+\Delta की)*(म_0+\Delta म) - की_0*म_0 = \cancel{की_0*म_0}+\Delta की*म_0+ की_0*\Delta म+\Delta की*\Delta म- \cancel{की_0*म_0} =\Delta की*म_0+ की_0*\Delta म+\Delta की*\Delta म \cong \Delta की*म_0+ की_0*\Delta म$..(16)

उपरोक्त समीकरण में ≅चिन्ह इंगित करता है 'लगभग बराबर' एवं * गुणा इंगित करता है. समीकरण 16 के अंतिम चरण में हम ने एक पद, $\Delta की * \Delta म$, छोड़ दिया है क्योंकि यह पद दो अत्यंत छोटी संख्याओं की गुणा है एवं इस का परिणाम और भी छोटी संख्या होगी, जिसे अनदेखा किया जा सकता है (उदाहरण के लिए, 0.1*0.1=0.01). समीकरण 16 के आधार पर हम ख़र्च में होने वाले परिवर्तन की गणना कर सकते हैं परन्तु इस में एक दिक्कत है. क्योंकि $\Delta की$ एवं $\Delta म$ के चिन्ह माँग के नियम के चलते विपरीत होंगे, इस लिए इस का एक पद ख़र्च घटाता है और एक पद ख़र्च बढ़ाता है. इस कारण बिना पूरी गणना के केवल इस समीकरण के आधार पर यह कहना असंभव है कि कीमत में परिवर्तन के चलते कुल ख़र्च में होने वाला बदलाव धनात्मक होगा या ऋणात्मक. परन्तु इस समीकरण से प्राप्त निम्न सूत्र हमारी सहायता कर सकता है:

कीमत में परिवर्तन के चलते कुल ख़र्च में होने वाला बदलाव$=\Delta ख़र्च \cong \Delta की*म_0+ की_0*\Delta म= \Delta की*म_0(1+(की_0 *\Delta म)/(\Delta की*म_0))= \Delta की*म_0(1-e)$

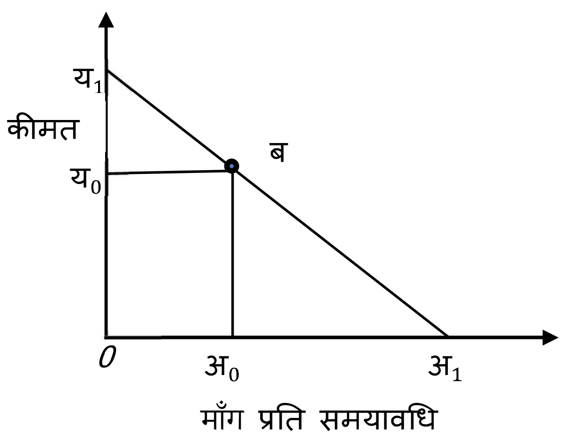
उपरोक्त समीकरण में e लोच को इंगित करता है. क्योंकि हम आम तौर पर कीमत लोच का निरपेक्ष मान लेते हैं, इस लिए इस गणना में हम ने लोच का निरपेक्ष मान प्रयोग करने के लिए लोच को (-1) से गुणा कर दिया है. **इस लिए निम्न सूत्र का प्रयोग करते हुए लोच का निरपेक्ष मान ही लिया जाना चाहिए.** उपरोक्त समीकरण को संक्षेप में हम निम्न रूप में लिख सकते हैं.

Δख़र्च $\cong$ Δकी*म$_0$(1-e) ....(17)[26]

अब अगर वस्तु की कीमत लोच एक से अधिक है यानी माँग लचीली है, तो समीकरण 17 की कोष्ठक में दी गई संख्या ऋणात्मक होगी. इस लिए अगर कीमत बढ़ती है, यानी Δकी धनात्मक है, तो समीकरण 17 का दायाँ पद ऋणात्मक होगा यानी ख़र्च घटेगा. इस के विपरीत कीमत घटने पर, यानी यदि Δकी ऋणात्मक हो, तो समीकरण 17 का दाईं ओर का पद धनात्मक होगा यानी ख़र्च बढ़ेगा. अगर लोच इकाई है तो समीकरण 17 में कोष्ठक में दी गई संख्या शून्य होगी. इस का प्रभाव यह होगा कि कीमत में बढ़ोतरी अथवा कटौती होने पर भी ख़र्च में कोई परिवर्तन नहीं होगा. अगर लोच इकाई से कम है तो समीकरण 17 की कोष्ठक में दी गई संख्या धनात्मक होगी जिस का प्रभाव यह होगा कि ख़र्च में परिवर्तन Δकी के अनुरूप होगा; कीमत बढ़ने पर ख़र्च बढ़ेगा और कीमत घटने पर घटेगा. इन निष्कर्षों को तालिका का रूप देंगे तो आप पायेंगे कि यह उपरोक्त तालिका 3 के समान ही है.]

सीधी रेखा के माँग-वक्र की लोच: अगर माँग-वक्र सीधी रेखा के रूप में है तो लोच को नापने (एवं ख़र्च में बढ़ोतरी या कटौती की गणना करने) का एक ओर तरीका भी हो सकता. चित्र 27 में बिंदु लोच की परिभाषा एवं ऊपर दिए गए सूत्र 15 के अनुसार ब बिंदु पर बिंदु लोच का निरपेक्ष मान होगा $\frac{-1}{\text{माँग—वक्र की ढलान}} * \frac{\text{कीमत}}{\text{माँग}}$ = -(अ$_0$अ$_1$/अ$_0$ब)*(0य$_0$/0अ$_0$)= -अ$_0$अ$_1$/0अ$_0$ (क्योंकि अ$_0$ब एवं 0य$_0$ एक समान और ऊपर नीचे होने के कारण रद्द हो जाएँगे) = बअ$_1$/य$_1$ब (क्योंकि ज्यामिति के अनुसार बअ$_1$/य$_1$ब एवं अ$_0$अ$_1$/0अ$_0$ का मान समान होता है) = सीधे माँग-वक्र के नीचे वाले हिस्से की लम्बाई/ऊपर वाले हिस्से की लम्बाई. **इस लिए सीधी रेखा के माँग-वक्र में किसी बिंदु पर कीमत लोच माँग-वक्र के नीचे वाले हिस्से की लम्बाई भाग में ऊपर वाले हिस्से की लम्बाई के समान होती है.**[27]

चित्र 27- सीधी रेखा माँग-वक्र की लोच की गणना



---

[26] [लोच की बुनियादी परिभाषा को कई समतुल्य रूपों में लिखा जा सकता है. उदाहरण के लिए, लोच को $\frac{\text{औसत राजस्व}}{\text{औसत राजस्व—सीमान्त राजस्व}}$ के समान साबित किया जा सकता है (अगले अध्यायों में हम सीमान्त एवं औसत राजस्व का अध्ययन करेंगे). उपरोक्त समीकरण 16 के आधार पर Δख़र्च $\cong$ Δकी*म$_0$+ की$_0$*Δम है. इस को Δम से भाग देने पर हमें निम्न समीकरण प्राप्त होगा: सीमान्त राजस्व= Δख़र्च/Δम =(Δकी*म$_0$/Δम) +की$_0$ जिस को हम निम्न रूप में लिख सकते हैं: की$_0$ — सीमान्त राजस्व=Δकी*म$_0$/Δम. इस समीकरण को कीमत, जिसे औसत राजस्व भी कहा जा सकता है, से भाग देने पर एवं फिर विलोम लेने पर हमें निम्न समीकरण प्राप्त होगा: औसत राजस्व/ (औसत राजस्व-सीमान्त राजस्व) = -Δम *की$_0$/Δकी*म$_0$ = e = माँग की कीमत लोच. इसी प्रकार लोच की बुनियादी परिभाषा को ध्यान में रख कर गणित के प्रयोग से इसे कई अन्य रूप दिए जा सकते हैं. ध्यान रहे ये सब समतुल्य सूत्र ही हैं ना कि भिन्न तरह की कीमत लोच.]

[27] बल्कि गणित का प्रयोग कर के इस से बढ़ कर हम यह भी कह सकते हैं कि किसी भी माँग-वक्र में, भले ही उसका स्वरूप सीधी रेखा का न हो, किसी बिंदु पर माँग की लोच, उस बिंदु को छूने वाली स्पर्श रेखा को दोनों अक्षों तक फैलाने पर उस बिंदु से नीचे वाले हिस्से की लम्बाई भाग में ऊपर वाले हिस्से की लम्बाई के समान होती है.

इस निष्कर्ष के आधार पर कई और निष्कर्ष भी निकाले जा सकते हैं. चित्र 27 में $\text{य}_1\text{अ}_1$ के मध्य बिंदु पर माँग की लोच होगी 1, उस से नीचे यह एक से कम यानी बेलोचदार होगी एवं मध्य बिंदु से ऊपर यह लचीली होगी. क्ष अक्ष को छूने वाले माँग-वक्र के बिंदु पर यह शून्य होगी एवं य अक्ष को छूने वाले बिंदु पर अनंत (infinity या ∞). **इस के आधार पर, $\text{य}_1\text{अ}_1$ रेखा पर स्थित बिन्दुओं पर कीमत में बदलाव से कुल ख़र्च पर पड़ने वाले प्रभाव के बारे में सोचें एवं तय करें कि उपभोक्ता का इस वस्तु पर अधिकतम ख़र्च किस कीमत पर होगा.**

माँग की अन्य तरह की लोच: माँग पर अन्य तत्त्वों की प्रभावशीलता का आकलन करने के लिए समतुल्य लोच का प्रयोग किया जाता है. माँग की आय लोच तथा माँग की अन्य वस्तु की कीमत लोच अथवा आड़ी लोच (cross elasticity) भी माँग की कीमत लोच सरीखी ही होती हैं. इन अन्य लोचों को नापने की भी दो ही बुनियादी विधियां हैं -बिंदु लोच तथा चाप लोच – परन्तु कीमत लोच की तरह इन की गणना करने के भी कई वैकल्पिक तरीके हो सकते हैं.

माँग की आड़ी लोच में हम किसी अन्य वस्तु की कीमत में परिवर्तन का वस्तु की माँग पर प्रभाव को नापते हैं. आड़ी लोच का सूत्र निम्न होगा:

$$\text{माँग की आड़ी लोच} = \frac{\text{वस्तु अ की माँग में प्रतिशत बदलाव}}{\text{ब वस्तु की कीमत में प्रतिशत बदलाव}}$$

पूरक एवं स्थानापन्न वस्तुओं की परिभाषा के आधार पर स्पष्ट है कि अगर आड़ी लोच धनात्मक है तो ये वस्तु परस्पर स्थानापन्न हैं एवं अगर ऋणात्मक है तो ये वस्तु परस्पर पूरक वस्तु हैं.[28] माँग की आड़ी लोच शून्य से जितनी दूर, उतना वस्तुओं का परस्पर सम्बन्ध नज़दीकी एवं जितना शून्य के समीप, उतना इन वस्तुओं का परस्पर सम्बन्ध कमज़ोर.

माँग की आय लोच की बुनियादी परिभाषा है माँग में प्रतिशत बदलाव /आय में प्रतिशत बदलाव. परन्तु माँग की आय लोच की गणना करने के लिए इस बुनियादी अवधारणा से कई समतुल्य सूत्र विकसित किए जा सकते हैं.

$$\text{माँग की आय लोच} = \frac{\frac{\Delta\text{माँग}}{\text{माँग}}}{\text{आय में \% बदलाव}} = \frac{\frac{\Delta\text{माँग*कीमत}}{\text{माँग*कीमत}}}{\text{आय में \% बदलाव}} = \frac{\frac{\Delta\text{वस्तु पर ख़र्च में बदला}}{\text{वस्तु पर ख़र्च}}}{\text{आय में \% बदलाव}} = \frac{\text{वस्तु पर ख़र्च में \%बदलाव}}{\text{आय में \% बदलाव}} \text{..............(18)}$$

यानी **माँग की आय लोच, वस्तु पर ख़र्च की आय लोच के समान होती है**. माँग की आय लोच की गणना एक अन्य रूप में भी हो सकती है.

$$\text{माँग की आय लोच} = \frac{\text{माँग में \% बदलाव}}{\text{आय में \% बदलाव}} = \frac{\frac{\Delta\text{माँग}}{\text{माँग}}}{\frac{\Delta\text{आय}}{\text{आय}}} = \frac{\frac{\Delta\text{माँग*कीमत}}{\text{माँग*कीमत}}}{\frac{\Delta\text{आय}}{\text{आय}}} = \frac{\frac{\Delta\text{वस्तु पर ख़र्च}}{\text{वस्तु पर ख़र्च}}}{\frac{\Delta\text{आय}}{\text{आय}}} = \frac{\frac{\Delta\text{वस्तु पर ख़र्च}}{\Delta\text{ आय}}}{\frac{\text{वस्तु पर ख़र्च}}{\text{आय}}} = \frac{\text{वस्तु पर सीमान्त ख़र्च}}{\text{वस्तु पर औसत ख़र्च}} \text{........(19)}$$

वस्तु पर सीमान्त ख़र्च का अर्थ है कि आय की एक अतिरिक्त इकाई का कितना प्रतिशत हिस्सा उस वस्तु पर ख़र्च होगा है. वस्तु पर औसत ख़र्च का अर्थ है उस वस्तु पर होने वाले ख़र्च का कुल ख़र्च में प्रतिशत हिस्सा.

इस लिए हम माँग की आय लोच की गणना निम्न तीन तरीकों में से किसी भी तरीके से कर सकते हैं:

$$\text{माँग की आय लोच} = = \frac{\text{वस्तु पर ख़र्च में \%बदलाव}}{\text{आय में \% बदलाव}} = \frac{\text{वस्तु पर सीमान्त ख़र्च}}{\text{वस्तु पर औसत ख़र्च}} \text{..(20)}$$

---

[28] [यह हो सकता है कि गेहूं/अन्न की कीमत बढ़ने पर फलों की माँग कम हो जाए. इस स्थिति में फलों की माँग की आड़ी लोच (गेहूं/अन्न की कीमत के सन्दर्भ में) ऋणात्मक होगी. ऊपर दी हुई परिभाषा के अनुसार इस का अर्थ होगा कि फ़ल एवं अन्न एक दूसरे के पूरक हैं; वास्तविक जीवन में ये एक दूसरे की स्थानापन्न वस्तु हैं न कि पूरक वस्तु. ऐसा विरोधाभासी निष्कर्ष क्यों निकला? अन्न जीने के लिए आवश्यक है एवं कम आय वाले परिवारों में अन्न पर खर्चा उन के कुल बजट का बड़ा हिस्सा होता है. इस लिए अनाज की कीमत बढ़ने पर उन की वास्तविक आय काफ़ी कम हो जाती है. वास्तविक आय में कमी के चलते फलों की खपत कम हो सकती है. आड़ी लोच के आधार पर स्थानापन्न एवं पूरक वस्तुओं की सही पहचान के लिए हमें आय प्रभाव को निरस्त करना चाहिए. इस लिए माँग की आड़ी लोच को शुद्ध (net) रूप में आंकना चाहिए (यानी वास्तविक आय को स्थिर रखते हुए) न कि कुल (gross) रूप में.]

आवश्यक एवं विलासिता की वस्तुओं का वर्गीकरण: उपरोक्त सूत्रों को ध्यान में रख कर हम वस्तुओं का वर्गीकरण कर सकते हैं. भोजन जैसी आवश्यक/बुनियादी ज़रूरतों (necessities) पर तो सब से पहले ख़र्च किया जाता है. इस लिए भोजन जैसी बुनियादी आवश्यकताओं पर आय बढ़ने पर ख़र्च समान अनुपात में नहीं बढ़ता. इसलिए ऐसी वस्तुओं पर सीमान्त ख़र्च औसत ख़र्च से कम होता है. इसलिए इन की माँग की आय लोच 1 से कम यानी अ-लचीली होगी. अंत: जिन वस्तुओं की आय लोच 1 से कम हो उन्हें आवश्यक वस्तु (necessities) कहा जाता है. इस के विपरीत विलासिता की वस्तुओं (luxuries) पर प्रारंभ में कम ख़र्च किया जाता है परन्तु आय बढ़ने पर ऐसी वस्तुओं पर ख़र्च का अनुपात बढ़ता जाता है. दूसरे शब्दों में, विलासिता की वस्तुओं पर सीमान्त ख़र्च औसत ख़र्च से ज़्यादा होता है. इस लिए इन की माँग की आय लोच 1 से अधिक यानी लचीली होती है. अंत: जिन वस्तुओं की आय लोच 1 से अधिक हो, उन्हें विलासिता की वस्तु (luxury) कहा जाता है.

माँग की कीमत लोच किन तत्त्वों पर निर्भर होती है? माँग की कीमत लोच निश्चित तौर पर वस्तु की प्रकृति पर निर्भर करेगी. जाहिर है कि जीवन यापन के लिए अनिवार्य वस्तुओं की लोच कम होगी एवं ऐच्छिक/विलासिता की वस्तुओं की लोच ज़्यादा होगी. लोच इस पर भी निर्भर करेगी कि वस्तु की हमारी परिभाषा कितनी संकीर्ण अथवा व्यापक है. उदाहरण के लिए, मूंग दाल की लोच दालों की लोच की तुलना में ज़्यादा होगी एवं भोजन की लोच दालों से भी कम होगी. इस का कारण स्पष्ट है. मूंग दाल के विकल्प कई हैं परन्तु उस की तुलना में दाल के विकल्प कम हैं. इस लिए दाल की माँग लोच मूंग दाल की लोच की तुलना में कम होगी. लोच इस पर भी निर्भर करेगी कि समयावधि कितनी लम्बी है. कीमत बदलने पर अगले दिन माँग में कम परिवर्तन होगा परन्तु मासिक/वार्षिक माँग में अधिक परिवर्तन होगा; क्योंकि उपभोग में बदलाव एकाएक नहीं होते- जितना ज़्यादा समय बदलाव के लिए मिलेगा, लोच उतनी ज़्यादा होगी.

किसी वस्तु की कीमत लोच उस वस्तु पर होने वाले ख़र्च का कुल ख़र्च में हिस्से पर भी निर्भर करेगी. अगर किसी वस्तु पर ख़र्च कुल ख़र्च का बड़ा हिस्सा है, तो उस की लोच ज़्यादा होगी क्योंकि ऐसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने पर वास्तविक आय में ज़्यादा परिवर्तन होगा. इस कारण से नमक की लोच दूध या अन्न की लोच की तुलना में कम होगी क्योंकि नमक पर ख़र्च कुल ख़र्च का बहुत कम हिस्सा होता है. वस्तु की लोच इस पर भी निर्भर करती है कि उस के कितने विकल्प उपलब्ध हैं, जितने ज़्यादा विकल्प उपलब्ध, उतनी ज़्यादा लोच. लोच वस्तु के उपयोगों की संख्या पर भी निर्भर करती है. जिस वस्तु के जितने ज़्यादा उपयोग होंगे, उस की लोच उतनी ज़्यादा होगी क्योंकि सभी उपयोग एक जैसी प्रकृति के नहीं होंगे; जो कम आवश्यक होंगे उन को छोड़ना ज़्यादा आसान होगा. उदाहरण के लिए, पानी के कई उपयोग हैं- पीने के लिए, नहाने के लिए, साफ़ सफ़ाई के लिए. ये सभी प्रयोग समान रूप से आवश्यक नहीं हैं. पानी की तुलना में दूध के प्रयोग सीमित हैं- केवल खाद्य पदार्थ के रूप में. ध्यान रहे कि हम ने इस चर्चा में लोच शब्द का प्रयोग किया है परन्तु हमारा अभिप्राय माँग की कीमत लोच से है.

अच्छी पैदावार किसान के लिए हमेशा अच्छी क्यों नहीं साबित होती? अगर किसी साल किसी वस्तु के बढ़िया/ज़्यादा पैदावार होती है, तो हम पाते हैं कि उस वस्तु के बाज़ार भाव गिर जाते हैं. इस कारण कई बार किसान फसल को सड़क पर फेंक देते हैं या खड़ी फसल की खेत में ही जुताई कर देते हैं. इस तथ्य से उस फसल की माँग की कीमत लोच के बारे में आप क्या अंदाज़ा लगा सकते हैं? आगे बढ़ने से पहले रुक कर इस बाबत सोचें.

निश्चित तौर पर ज़्यादा पैदावार होने पर कीमतें घटेंगी एवं कीमत घटने पर माँग बढ़ेगी. परन्तु उपभोक्ता का कुल ख़र्च घटेगा या बढ़ेगा यह निर्भर करेगा उस वस्तु की लोच पर. कृषि उत्पाद अधिकांश तौर पर भोजन ही होता है, जो कि एक आवश्यक वस्तु है. आवश्यक वस्तुओं की माँग आम तौर पर अ-लचीली होती है और कीमत कम होने पर अ-लचीली वस्तुओं पर होने वाला ख़र्च कम हो जाता है. अगर उपभोक्ताओं का किसी वस्तु पर कुल ख़र्च कम हो जाता है तो स्पष्ट तौर पर यानी उस वस्तु के किसानों का कुल राजस्व कम हो जाएगा. इस लिए बहुत अच्छी पैदावार होने पर किसानों को फ़ायदे के स्थान पर नुकसान हो सकता है. हाँ, अगर कृषि उत्पाद की माँग लचीली हो, तब अच्छी फसल होने पर किसानों को अवश्य फ़ायदा होगा. उन का राजस्व बढ़ेगा.

परन्तु क्या इस से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि अ-लचीली माँग होने पर, कम पैदावार किसान के लिए फ़ायदे का सौदा होगी? ऊपरी तौर पर ऐसा प्रतीत हो सकता है. निश्चित तौर पर पैदावार कम होने पर कीमतें बढ़ेंगी एवं अ-लचीली लोच के चलते उपभोक्ता

का इस वस्तु पर ख़र्च बढ़ेगा. फ़िलहाल यह मानते हुए कि उपभोक्ता सीधे किसान से ख़रीदता है, बीच में कोई अन्य व्यापारी नहीं होता, तो निश्चित तौर पर कृषक समुदाय का राजस्व बढ़ेगा. परन्तु इस से लाभांवित वही किसान होंगे जिन के पास बिक्री हेतु फसल होगी. जिन की फसल ही नष्ट हो गई है या काफ़ी हद तक नष्ट हो गई है, उन को उच्च कीमत का क्या लाभ हो सकता है?

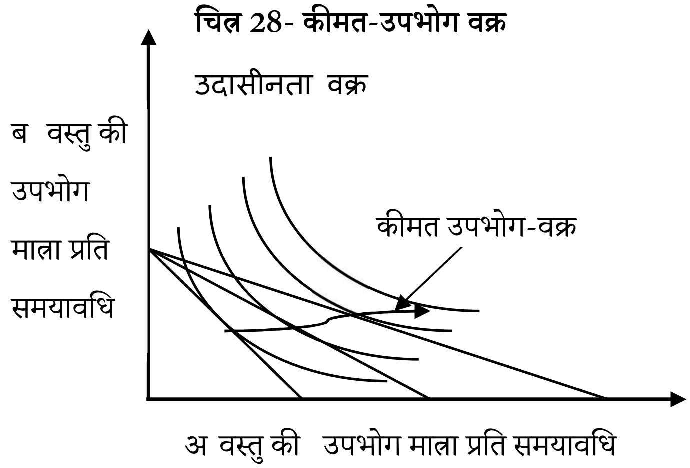
[**बाज़ार लोच का व्यक्तियों की लोच से सम्बन्ध**: अगर हमें हर उपभोक्ता की माँग की कीमत लोच का पता है तो क्या हम उस वस्तु की बाज़ार माँग की कीमत लोच ज्ञात कर सकते हैं? सुविधा के लिए कुल दो उपभोक्ता मानते हुए हम लोच की परिभाषा के आधार पर कह सकते हैं कि

$$\text{बाज़ार माँग की कीमत लोच} = (\Delta\text{बाज़ार माँग}/\text{बाज़ार माँग})/(\Delta\text{कीमत}/\text{कीमत}) = ((\Delta\,\text{माँ}1 + \Delta\,\text{माँ}2)/(\text{माँ}1 + \text{माँ}2))/(\Delta\text{कीमत}/\text{कीमत}) = ((\frac{\Delta\,\text{माँ}1}{\text{माँ}1+\text{माँ}2}) * \text{माँ}1/\text{माँ}1)/(\Delta\text{कीमत}/\text{कीमत}) + (\frac{\Delta\,\text{माँ}2}{\text{माँ}1+\text{माँ}2}) * \text{माँ}2/\text{माँ}2)/(\Delta\text{कीमत}\ )/\text{कीमत}) = \text{लो}_1 * \frac{\text{माँ}1}{\text{माँ}1+\text{माँ}2} + \text{लो}2 * \frac{\text{माँ}2}{\text{माँ}1+\text{माँ}2} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots(21)$$

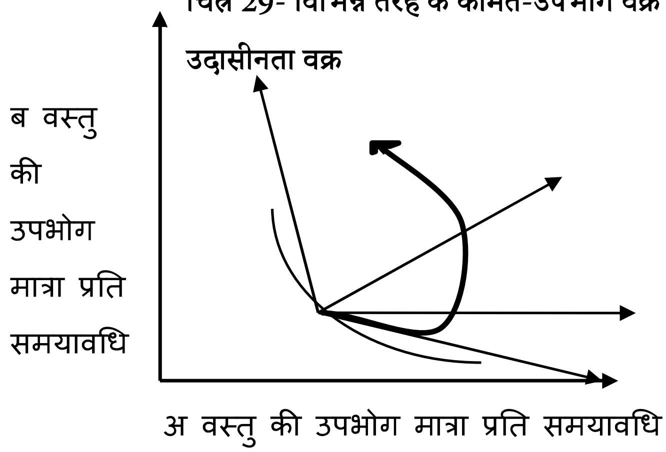
सूत्र 21 में माँ1 इंगित करता है उपभोक्ता एक की माँग एवं माँ2 इंगित करता है उपभोक्ता दो की माँग. लो1 एवं लो2 क्रमशः दोनों उपभोक्ताओं की माँग की कीमत लोच को इंगित करते हैं. उपरोक्त समीकरण से स्पष्ट है कि कुल बाज़ार माँग की लोच एक उपभोक्ता की लोच* कुल बाज़ार माँग में उस का हिस्सा + दूसरे उपभोक्ता की लोच* कुल बाज़ार माँग में उस का हिस्सा के समान होती है. इस लिए गणित की भाषा में हम बाज़ार माँग की लोच को व्यक्तियों की लोच का भारित/भारांकित योग(weighted sum) कह सकते हैं जिस में हर व्यक्ति की लोच का 'भार' कुल बाज़ार माँग में व्यक्ति के प्रतिशत हिस्से के समान होता है .]

उदासीनता-वक्र एवं लोच: उदासीनता-वक्र की सहायता से दो अन्य वक्र खींचे जा सकते हैं. इन के स्वरूप का भी लोच से सम्बन्ध होता है. पहला वक्र है कीमत-उपभोग वक्र (Price Consumption Curve-PCC). यह वक्र एक वस्तु की कीमत बदलने पर एवं अन्य बातें समान रहने पर, उपभोक्ता के उपभोग के स्तर को दिखाता है. यानी बदलती कीमत पर उपभोक्ता के उपभोग स्तर को जोड़ने वाली रेखा को कीमत-उपभोग वक्र कहते हैं. कीमत-उपभोग वक्र के आधार पर माँग-वक्र खींचा जा सकता है परन्तु कीमत-उपभोग वक्र माँग वक्र से भिन्न होता है. माँग-वक्र वस्तु की कीमत एवं उस की माँग का सम्बन्ध दर्शाता है परन्तु कीमत-उपभोग वक्र, एक वस्तु की कीमत बदलने पर उपभोक्ता का उपभोग का स्तर दिखाता है, यानी यह दोनों (या सारी) वस्तुओं के उपभोग को दिखाता है. चित्र 28 में कीमत-उपभोग वक्र दिखाया गया है. तीर की दिशा क्ष अक्ष पर इंगित वस्तु की घटती कीमत की दिशा दर्शाती है. इस चित्र में कीमत-उपभोग वक्र का एक स्वरूप दिखाया गया है. क्या कीमत-उपभोग वक्र हमेशा ऐसा ही होता है? इस के स्वरूप के बारे में हम क्या कह सकते हैं?

चित्र 28- कीमत-उपभोग वक्र



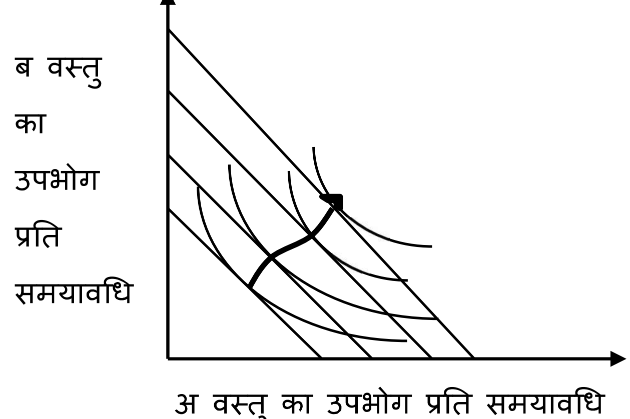
चित्र 29- विभिन्न तरह के कीमत-उपभोग वक्र



कीमत-उपभोग वक्र का स्वरूप उदासीनता-वक्र के स्वरूप पर निर्भर करेगा जो उपभोक्ता की अभिरुचि से संचालित होते हैं. फिर भी हम कुछ सामान्य निष्कर्ष निकाल सकते हैं. चित्र *29* में पांच तरह के कीमत-उपभोग वक्र दिखाए गए हैं. सब से नीचे वाला, ऋणात्मक ढलान एवं दाईं दिशा वाला, कीमत-उपभोग वक्र दिखाता है कि वस्तु अ की कीमत घटने पर वस्तु अ का उपभोग तो बढ़ता है परन्तु ब वस्तु का उपभोग घटता जाता है. इस का अर्थ है कि ब वस्तु पर होने वाला ख़र्च कम होता जा रहा है (ध्यान रहे कि ब वस्तु की कीमत में कोई बदलाव नहीं हुआ है). इस का अर्थ यह हुआ कि वस्तु अ पर होने वाला ख़र्च बढ़ता जा रहा है (क्योंकि आय में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है). ऐसा कब हो सकता है? जब वस्तु की माँग लोचदार हो (अगर इस निष्कर्ष के पीछे का कारण समझ नहीं आया तो ऊपर दी गई ख़र्च और लोच सम्बन्धी तालिका का पुन: अध्ययन करें). इस का अर्थ हुआ कि ऋणात्मक ढलान एवं दाईं दिशा वाला कीमत-उपभोग वक्र इंगित करता है कि वस्तु अ की माँग लचीली है. उस से ऊपर वाला कीमत-उपभोग वक्र क्ष अक्ष के समानांतर है. इस का अर्थ है कि ब वस्तु की खपत स्थिर है. यानी ब वस्तु पर होने वाला ख़र्च स्थिर है. अगर ब वस्तु पर होने वाला ख़र्च स्थिर है, तो इस का अर्थ हुआ कि वस्तु अ पर होने वाला ख़र्च भी स्थिर है. इस लिए क्ष अक्ष के सामानांतर कीमत-उपभोग वक्र इंगित करता है कि वस्तु अ की कीमत लोच 1 है. सब से ऊपर वाला कीमत-उपभोग वक्र क्या इंगित करता है? इस वक्र की ढलान भी ऋणात्मक है परन्तु इस की दिशा सब से नीचे वाले कीमत-उपभोग वक्र से भिन्न है. यह इंगित करता है कि वस्तु अ की कीमत कम होने पर इस की खपत कम हो रही है? यानी यह वक्र, ऋणात्मक ढलान एवं बाईं दिशा वाला कीमत-उपभोग वक्र इंगित करता है कि वस्तु अ गिफ़्फ़िन वस्तु है.

उस से नीचे का सीधी रेखा का कीमत-उपभोग वक्र क्या इंगित करता है? यह दिखाता है कि वस्तु अ की कीमत घटने पर दोनों वस्तुओं की माँग बढ़ रही है. क्योंकि ब वस्तु की कीमत में तो कोई बदलाव नहीं हुआ है, इस का अर्थ हुआ कि ब वस्तु पर होने वाला ख़र्च बढ़ रहा है. जिस का परिणाम यह होगा कि वस्तु अ पर होने वाला ख़र्च कम हो रहा है. ऐसा कब होगा? जब वस्तु अ की माँग अ-लचीली होती है, तब कीमत घटने पर वस्तु पर होने वाला ख़र्च कम हो जाता है. इस लिए अगर कीमत-उपभोग वक्र की ढलान धनात्मक है तो यह इंगित करता है कि वस्तु की कीमत लोच 1 से कम है. एक ही वस्तु किसी आय स्तर पर निम्न हो सकती है एवं किसी अन्य आय के स्तर पर सामान्य हो सकती है. माँग की लोच भी अलग-अलग कीमत पर अलग हो सकती है. इस लिए कीमत-उपभोग वक्र का स्वरूप पहले दिए गए चारों स्वरूपों का मिलाजुला स्वरूप भी हो सकता है. पाँचवाँ, टेढ़ा-मेढ़ा कीमत-उपभोग वक्र ऐसी स्थिति को इंगित करता है?

चित्र 30 – आय-उपभोग वक्र

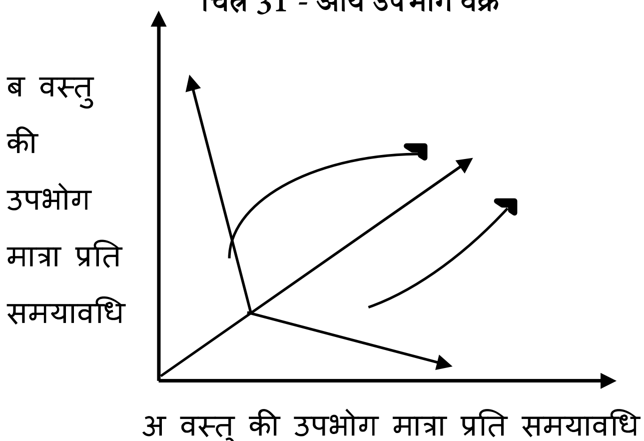


आय-उपभोग वक्र (Income Consumption Curve -ICC): आय-उपभोग वक्र आय में बदलाव होने पर उपभोक्ता के उपभोग के बिन्दुओं को जोड़ता है. चित्र 30 में आय-उपभोग वक्र दिखाया गया है. मौद्रिक आय बदलने पर एवं अन्य बातें समान रहने पर बजट-रेखा समानांतर खिसकेगी. तीर का निशान आय बढ़ोतरी की

दिशा दिखाता है. आय-उपभोग वक्र का स्वरूप क्या होगा? चित्र 31 में आय-उपभोग वक्र के कई स्वरूप दिखा रखें हैं. सुविधा के लिए हम बजट-रेखाओं एवं उदासीनता-वक्रों को नहीं खींच रहे एवं केवल संभावित आय-उपभोग वक्र इंगित कर रहे हैं.

चित्र 31 में सब से नीचे वाला, ऋणात्मक ढलान एवं दाईं दिशा वाला, आय-उपभोग वक्र इंगित करता है कि आय बढ़ने पर ब वस्तु का उपभोग कम हो रहा है एवं वस्तु अ का उपभोग बढ़ रहा है. इस का अर्थ है कि ऋणात्मक ढलान एवं दाईं दिशा वाला आय-उपभोग वक्र दर्शाता है कि ब निम्न वस्तु है एवं वस्तु अ सामान्य है. सब से ऊपर वाला यानी ऋणात्मक ढलान एवं बाईं दिशा वाला आय-उपभोग वक्र इस के विपरीत स्थिति को इंगित करता है. बीच के तीन वक्रों में अ एवं ब दोनों की माँग बढ़ रही है. यानी दोनों समान्य वस्तु हैं. अगर दोनों वस्तु सामान्य हों तब आय-उपभोग वक्र की ढलान धनात्मक होगी अन्यथा ढलान ऋणात्मक होगी.

चित्र 31 - आय उपभोग वक्र



बीच के इन तीनों वक्रों में क्या अंतर है? इन वक्रों पर आप ब/अ अनुपात को देखें. यानी वक्र के हर बिंदु के ब माप को अ माप से भाग करें एवं देखें कि दाईं ओर जाने पर इस अनुपात में क्या बदलाव होता है. आप पायेंगे कि तीनों धनात्मक ढलान वाले आय-उपभोग वक्रों में से सब से ऊपर वाले वक्र में ब/अ अनुपात दाईं ओर जाने पर घट रहा है, बीच वाले वक्र, में जो मूल बिंदु से सीधा ऊपर जा रहा है, यह स्थिर[29] है एवं सब से नीचे वाले में यह बढ़ रहा है. ध्यान रहे हम इन वक्रों की ढलान की बात नहीं कर रहे अपितु इन पर स्थित बिन्दुओं के ब/अ अनुपात की बात कर रहे हैं. बीच वाले वक्र में यह अनुपात स्थिर है. इस का अर्थ हुआ कि आय बढ़ने पर दोनों वस्तुओं की खपत का अनुपात स्थिर है; यानी दोनों वस्तुओं की खपत में समान अनुपात में बढ़ोतरी हो रही है. क्योंकि कीमतों में कोई बदलाव नहीं है एवं वस्तुओं के उपभोग में समान अनुपात में बढ़ोतरी हो रही है, तो इस का अर्थ हुआ कि उन पर होने वाले ख़र्च में भी समान अनुपात में बढ़ोतरी हो रही है. स्पष्ट रूप से दोनों वस्तुओं में समान बढ़ोतरी निश्चित तौर पर आय में बढ़ोतरी के अनुपात में ही हो सकती है, न उस से कम एवं न उस से ज़्यादा. इस लिए बीच वाले आय-उपभोग वक्र में, जो मूल बिंदु से निकलने वाली सीधी रेखा है, में दोनों वस्तुओं की माँग की आय लोच एक है.

बाकी दो आय उपभोग वक्रों के बारे में क्या कहा जा सकता है? धनात्मक ढलान वाले सब से ऊँचे आय-उपभोग वक्र में ब/अ अनुपात दाएँ जाने पर घट रहा है यानी आय बढ़ने पर ब वस्तु की खपत वस्तु अ की खपत से कम तेज़ी से बढ़ रही है. इस का अर्थ हुआ कि ब वस्तु पर होने वाले ख़र्च में बढ़ोतरी वस्तु अ पर होने वाले ख़र्च में बढ़ोतरी से कम हो रही है. इस का यह भी अर्थ हुआ कि ब वस्तु पर होने ख़र्च में बढ़ोतरी आय में होने वाली बढ़ोतरी से कम हो रही है.[30] इस का अर्थ हुआ कि ब वस्तु की माँग की आय लोच एक से कम है यानी यह आवश्यक वस्तु है न कि विलासिता की वस्तु. इस से यह भी निष्कर्ष निकलता है कि अगर ब वस्तु पर ख़र्च आय की बढ़ोतरी से कम गति से बढ़ रहा है, तो वस्तु अ पर ख़र्च आय की बढ़ोतरी से ज़्यादा तेज़ी से बढ़ रहा है. अंत: वस्तु अ की माँग की आय लोच एक से अधिक है एवं यह विलासिता की वस्तु है. धनात्मक ढलान वाले सब से नीचे वाला आय-उपभोग वक्र इस के ठीक विपरीत स्थिति को इंगित करता है. आय-उपभोग वक्र ऐसा तभी होगा जब वस्तु अ आवश्यक वस्तु हो एवं ब वस्तु विलासिता की वस्तु हो.

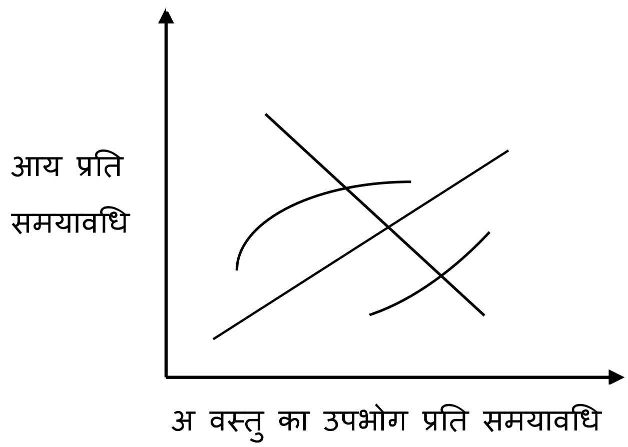
---

[29] मूल बिंदु से गुजरने वाले सभी सीधी रेखा वक्रों में ब/अ स्थिर रहता है, य अक्ष को छूने/काटने वाले सीधी रेखा के वक्रों में यह घटता जाता है एवं क्ष अक्ष को छूने/काटने वाले सीधी रेखा के वक्रों में यह बढ़ता जाता है. चित्र खींच कर आप स्वयं इस कि पुष्टि कर सकते हैं.

[30] दो संख्याओं की औसत दोनों के मध्य में ही होती है.

एंगेल्स (Engels) वक्र: आय एवं वस्तु के सम्बन्ध को दिखाने वाले वक्र को, इस वक्र के अध्येता के नाम पर, एंगेल्स (Engels) वक्र कहते हैं. इसे आय-उपभोग वक्र के आधार पर खींचा जा सकता है. चित्र 32 में एंगेल्स-वक्र दर्शाया गया है. एंगेल्स-वक्र में भी, माँग-वक्र की तरह, अपवाद स्वरूप आय, जो स्वतंत्र चर है, को य अक्ष पर दर्शाया जाता है एवं माँग, जो निर्भर चर है, को क्ष अक्ष पर. इस वक्र के चार रूप हो सकते हैं.

चित्र 32- एंगेल्स-वक्र



चित्र 32 में ऋणात्मक ढलान वाला वक्र इंगित करता है कि वस्तु अ निम्न स्तरीय वस्तु है क्योंकि आय बढ़ने पर इस की माँग घट रही है. इस के विपरीत धनात्मक ढलान वाले तीनों वक्र इंगित करते हैं कि वस्तु अ सामान्य वस्तु है. पिछली चर्चा के आधार पर हम कह सकते हैं कि धनात्मक ढलान वाले सब से ऊपर के वक्र में दाईं ओर जाने पर आय/अ का मान घट रहा है. इस का अर्थ है कि दाईं ओर जाने पर अ/आय का मान बढ़ रहा है. क्योंकि कीमत स्थिर है इस लिए बढ़ता $\frac{\text{अ}}{\text{आय}}$ का मान इंगित करता है कि वस्तु अ पर होने वाला ख़र्च आय के अनुपात में ज़्यादा बढ़ रहा है. अंत: चित्र 32 में धनात्मक ढलान वाला वक्र इंगित करता है कि वस्तु अ की माँग की आय लोच एक से अधिक है; यानी यह विलासिता की वस्तु है. इसी तरह से आप अन्य दो धनात्मक ढलान वाले वक्रों की व्याख्या कर सकते हैं.

इस अध्याय की मुख्य विषय-वस्तु इस समस्या का समाधान करना था कि अगर हमें यह देखना हो कि किस वस्तु की माँग पर कीमत अथवा अन्य चर के बदलाव का असर कम होता है और किस पर ज़्यादा, तो कैसे करें. हम ने पाया कि न मात्र ढलान देखने से और न परिवर्तन की मात्रा की तुलना करने से इस प्रश्न का उत्तर दिया जा सकता है. हम ने यह भी समझा कि ऐसा क्यों होता है. अंतत: हम ने पाया कि अगर मात्रा बदलाव के स्थान पर बदलाव अनुपात या प्रतिशत बदलाव की तुलना की जाए तो यह निर्णय किया जा सकता है कि किस वस्तु पर कीमत का प्रभाव ज़्यादा है एवं किस पर कम. इस अवधारणा यानी लोच का प्रयोग न केवल माँग पर कीमत की प्रभावशीलता का आकलन किया जा सकता है अपितु इस की सहायता से किसी भी निर्भर चर पर स्वतंत्र चर की प्रभावशीलता का आकलन किया जा सकता है. इस लिए इस अध्याय की विषय-वस्तु को अच्छे से समझना आवश्यक है.

लोच को मापने की दो बुनियादी अवधारणाएं हैं. दोनों का किन परिस्थिति में प्रयोग किया जाता है, इस का अध्ययन भी हम ने किया है. इस के पश्चात हम ने लोच और वस्तु पर होने वाले ख़र्च के सम्बन्ध की चर्चा की तथा सीधी रेखा के माँग-वक्र के सन्दर्भ में लोच की गणना के चित्र आधारित तरीके का वर्णन किया. लोच एवं उदासीनता-वक्र दोनों के प्रयोग से कीमत-उपभोग वक्र एवं आय-उपभोग वक्र का अध्ययन किया. वस्तु की प्रकृति एवं एंगेल्स वक्र, कीमत लोच के निर्धारक तत्त्वों एवं व्यक्तिगत माँग की लोच के आधार पर बाज़ार माँग की लोच की गणना इत्यादि का भी हम ने इस अध्याय में अध्ययन किया है.

प्रश्न

1. एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने पर एक निश्चित मात्रा में उस की माँग में परिवर्तन हो जाता है. दूसरी वस्तु की कीमत में उतने ही रुपयों का, वैसा ही परिवर्तन, होने पर दूसरी वस्तु की कीमत में पहले के मुकाबले उसी दिशा में दुगनी मात्रा में परिवर्तन हो जाता है. इस लिए हम कह सकते हैं कि दूसरी वस्तु की माँग पर कीमत का प्रभाव दुगना है. तार्किक रूप से इस निष्कर्ष से सहमति अथवा असहमति व्यक्त कीजिये.
2. गेहूं की प्रति एकड़ पैदावार की खाद लोच का सूत्र क्या होगा? अगर प्रतीक चिन्हों का प्रयोग करें तो हर प्रतीक चिन्ह की स्पष्ट व्याख्या भी दें.
3. निम्न स्थितियों में माँग की लोच की गणना कीजिये.

क. सोने की कीमत दुगनी होने पर माँग आधी रह जाती है.

ख. सोने की कीमत में 2000 रुपये प्रति ग्राम की बढ़ोतरी होने पर, माँग में 10% गिरावट आ जाती है.

ग. सोने की कीमत बढ़ने पर सोने पर होने वाले ख़र्च में वृद्धि हो जाती है.

4. किसी वस्तु की लोच क्या इंगित करती है? इस का क्या उपयोग है?

5. कोई बिचौलिया न हो तो भी बढ़े हुए उत्पादन के कारण घटती कीमतों का नुकसान सभी किसानों को उठाना पड़ता है परन्तु उत्पादन घटने के कारण बढ़ी हुई कीमतों का फ़ायदा ज़रूरी नहीं सब को मिले. क्या आप इस वाक्य से सहमत हैं? तर्क से अपनी बात सिद्ध करें.

6. अगर दो माँग वक्र समानांतर हों तो किसी भी कीमत पर किस माँग-वक्र की लोच ज़्यादा होगी?

7. अगर दो माँग-वक्र एक दूसरे को काटते हैं, तो इस बिंदु पर किस माँग-वक्र की लोच कम होगी?

8. ऐसा माँग-वक्र खींचे जिस की माँग की कीमत लोच शून्य हो? इस की व्याख्या भी करें कि इस माँग-वक्र की कीमत लोच शून्य क्यों है.

9. ऐसा माँग-वक्र खींचे जिस की माँग की कीमत लोच अनंत हो? इस माँग-वक्र की कीमत लोच अनंत क्यों है.

10. [अगर किसी वस्तु का माँग-वक्र निम्न स्वरूप का हो स॒ = कीमत * माँग (स॒ इंगित करता है स्थिर मान) तो इस की माँग लोच की गणना करें.]

11. अगर उपभोक्ता केवल दो ही वस्तुओं का उपभोग करता है, तो क्या ये दोनों वस्तु विलासिता की वस्तु हो सकती हैं? तर्क सहित अपनी राय रखें.

12. अगर उपभोक्ता केवल दो ही वस्तुओं का उपभोग करता है, तो क्या इन दोनों वस्तुओं की माँग की आय लोच लचीली हो सकती है? तर्क सहित अपनी राय रखें

13. इन परिस्थितियों में क्रमश: चाप लोच एवं बिंदु लोच का प्रयोग किया जाता है?

14. निम्न युग्मों में अंतर स्पष्ट करें: एंगेल्स-वक्र एवं माँग-वक्र, माँग-वक्र एवं कीमत-उपभोग वक्र, एंगेल्स-वक्र एवं आय-उपभोग वक्र.

15. एक उपभोक्ता की आय में 0.2% परिवर्तन होने पर, वस्तु अ पर होने वाले ख़र्च में 0.4% का परिवर्तन हो जाता है. वस्तु अ की प्रकृति के बारे में आप क्या कह सकते हैं?

16. अगर उपभोक्ता केवल दो ही वस्तुओं का उपभोग करता है, तो क्या इन दोनों वस्तुओं की आय लोच इकाई हो सकती है? तर्क सहित अपनी राय रखें.

17. क वस्तु की माँग 85 रुपये प्रति इकाई कीमत होने पर 590 इकाई है और कीमत 100 रुपये होने पर माँग घट कर 500 इकाई रह जाती है. क वस्तु की बिंदु एवं चाप लोच की गणना कीजिये.

18. अगर किसी वस्तु का माँग-वक्र निम्न स्वरूप का है: $D(p) = 10 - 4p$. कीमत 2 रुपया होने पर इस की कीमत लोच ज्ञात करें.

19. अगर किसी वस्तु की माँग की कीमत लोच 0.2 है, तो कीमत में 4% गिरावट होने पर माँग में कितना बदलाव होगा?

20. अगर किसी वस्तु की माँग की कीमत लोच 1.2 है, तो कीमत में 5% बढ़ोतरी होने पर उस वस्तु पर होने वाले ख़र्च में कितना परिवर्तन होगा?

21. अगर किसी वस्तु की कीमत में 3% कमी होने पर उस पर होने वाला ख़र्च 4 % बढ़ जाता है, तो उस वस्तु की माँग की कीमत लोच के बारे में आप क्या कह सकते हैं?

22. आड़ी लोच की संकल्पना पर प्रकाश डालें.

23. कीमत-उपभोग वक्र के विभिन्न स्वरूपों की व्याख्या करें.

24. एंगेल्स-वक्र के विभिन्न स्वरूपों की व्याख्या करें.

अध्याय -7

उत्पादन

इकाई आधारित अर्थशास्त्र का बुनियादी प्रस्थान बिंदु यह प्रश्न है कि वस्तुओं की कीमतों का निर्धारण कैसे होता है. दैनिक जीवन के अपने अनुभव से हम जानते हैं कि कीमतों के निर्धारण में माँग एवं आपूर्ति की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है. अब तक हमने उपभोक्ता की माँग के निर्धारक तत्त्वों का अध्ययन किया है. अब हम आपूर्ति एवं इस के निर्धारक तत्त्वों के अध्ययन की शुरुआत करेंगे.

आपूर्ति के लिए उत्पादन आवश्यक है. इस लिए इस अध्याय में हम उत्पादन का अध्ययन करेंगे. पहले अध्याय में हम उत्पादन को परिभाषित कर चुके हैं: **हर वह प्रक्रिया जो बिक्री हेतु वस्तु का उत्पादन करती है अथवा उपलब्ध वस्तु को भिन्न, अधिक उपयोगी स्वरूप (गेहूं को आटे या परांठे के रूप में) में या भिन्न समय या स्थान पर उपलब्ध कराती है एवं जिस की बिक्री संभव है, उत्पादन कहलाती है.** इस लिए उत्पादन में वस्तु का स्वरूप, स्थान एवं समय तीनों तरह के बदलाव शामिल हैं. आरंभिक अध्याय में हम उत्पादन के साधनों की भी चर्चा कर चुके हैं. संक्षेप में, उत्पादन के साधनों को तीन श्रेणियों में बाँटा जाता है- भूमि, श्रम एवं पूँजी. हालाँकि हर वस्तु के उत्पादन में कई प्रकार के संसाधनों का प्रयोग किया जाता है परन्तु सुविधा के लिए हम इन्हें उपरोक्त तीन श्रेणियों में बांटते हैं. भूमि में सभी प्रकृति प्रदत्त संसाधन शामिल हैं, श्रम में मानव द्वारा किए गए सभी काम शामिल होते हैं एवं पूँजी में मानव निर्मित सभी संसाधन शामिल होते हैं. हालाँकि उत्पादन के संसाधनों को उपरोक्त तीन श्रेणियों में बाँटा गया है परन्तु चित्रांकन की सुविधा के लिए हम यह मान कर चलेंगे कि उत्पादन में दो संसाधन ही प्रयोग किए जाते हैं. अर्थशास्त्र में हम आम तौर पर यह मान कर चलते हैं कि एक उत्पादक एक ही वस्तु का उत्पादन करता है.[31] हालाँकि वास्तविक जीवन में किस वस्तु का अथवा किस-किस वस्तु का उत्पादन करना है, एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा होता है परन्तु अर्थशास्त्र में आम तौर पर इस प्रश्न पर विचार नहीं किया गया. यह माना जाता है कि उत्पादक एक ही वस्तु का उत्पादन करता है एवं उस को मात्र यह तय करना होता है कि कितना उत्पादन करना है एवं कैसे उत्पादन करना है.

निम्न सूत्र द्वारा एक सामान्य उत्पादन फलन को दर्शाया जा सकता है.

$Q_x = F(K, L, T)$ ....(22)

इस समीकरण में Q_x इंगित करता है x वस्तु के उत्पादन की मात्रा, F इंगित करता है फलन यानी x वस्तु का उत्पादन किन चरों पर निर्भर करता है. K पूँजी (capital) को इंगित करता है, L श्रम (labour) को इंगित करता है एवं T तकनीक (technology) को इंगित करता है. यह उत्पादन फलन सामान्य स्वरूप है. हर वस्तु का उत्पादन फलन अलग-अलग चरों पर निर्भर करेगा. जैसे गेहूं के उत्पादन फलन में खाद, बीज इत्यादि शामिल होंगे. हर वस्तु का उत्पादन फलन भिन्न होगा परन्तु यह उपरोक्त सामान्य उत्पादन फलन सरीखा ही होगा.

उत्पादन फलन एक तकनीकी सम्बन्ध है. इस में कीमतों की कोई भूमिका नहीं होती. उत्पादन फलन इंगित करता है कि एक निश्चित समय अवधि में संसाधनों की निश्चित मात्रा[32] के प्रयोग से **अधिकतम** कितना उत्पादन हो सकता है. **यानी यह उत्पादन के साधनों के दक्षतम प्रयोग से होने वाले उत्पादन को इंगित करता है.** दूसरे शब्दों में कहें तो उत्पादन फलन से हमें किसी विशेष उत्पादन स्तर को प्राप्त

---

[31] हालाँकि अगर कोई उत्पादक दो अथवा दो से अधिक वस्तुओं का भी उत्पादन करता है परन्तु अगर इन का उत्पादन एक निश्चित अनुपात में ही होता है (उदाहरण के लिए गेहूं के साथ तूड़े का उत्पादन), तो भी स्थिति एक उत्पाद सरीखी ही रहेगी. परन्तु अगर कोई उत्पादक दो स्वतंत्र वस्तुओं का उत्पादन करता है, तब स्थिति अलग होगी. आम तौर पर अर्थशास्त्रियों ने इस स्थिति का अध्ययन नहीं किया. ऐसी कुछ बहुत ही सीमित परिस्थितियों का अध्ययन हम आगे चल कर करेंगे.

[32] अर्थशास्त्र में उत्पाद एवं संसाधनों की गुणवत्ता स्थिर मानी जाती है एवं अलग-अलग गुणवत्ता के संसाधनों एवं उत्पादों को अलग-अलग संसाधन/उत्पाद माना जाता है.

करने के लिए आवश्यक न्यूनतम संसाधनों की जानकारी मिलती है. अगर संसाधनों के निश्चित संयोग के प्रयोग से प्राप्त होने वाले किसी उत्पादन को बिना किसी भी संसाधन की मात्रा बढ़ाये परन्तु एक या अधिक संसाधन की कम मात्रा के प्रयोग से प्राप्त किया जा सकता है, तो संसाधनों का प्रारंभिक संयोग संसाधनों का दक्षतम प्रयोग नहीं कहलायेगा. इस लिए वह उत्पादन फलन का अंग नहीं होगा. **संसाधनों के वही संयोग तकनीकी रूप से दक्ष (technically efficient) प्रयोग कहलायेगा जब बिना किसी संसाधन की मात्रा बढ़ाये दूसरे संसाधनों की मात्रा कम कर के उत्पादन बनाए रखना संभव न हो.** वास्तविक उत्पादन अनेक कारणों से इस से कम हो सकता है परन्तु वह उत्पादन फलन से विचलन कहलायेगा. यह भी आवश्यक नहीं है कि सभी उत्पादकों का उत्पादन फलन एक जैसा हो. जिस प्रकार माँग एक समय अवधि की होती है, उसी तरह उत्पादन का सम्बन्ध भी एक निश्चित समय अवधि से होता है. उत्पादन एक प्रवाह चर है.

उत्पादन काल को चार श्रेणियों में बाँटा जाता है: अति अल्प काल, अल्प काल, दीर्घ काल एवं अति दीर्घ काल. अति अल्प काल उस समय अवधि को कहते हैं जिस अवधि में उत्पादन में प्रयोग होने वाले किसी भी संसाधन की मात्रा में बदलाव संभव न हो; अल्प काल में कुछ संसाधनों की मात्रा में बदलाव संभव होता है परन्तु सब संसाधनों की मात्रा में बदलाव सम्भव नहीं होता. दीर्घ काल में सभी संसाधनों की मात्रा में बदलाव संभव होता है परन्तु तकनीक स्थिर रहती है; अति दीर्घ काल में उत्पादन फलन के सभी चर, तकनीक समेत परिवर्तनशील होते हैं.

ध्यान देने की बात यह है कि उत्पादन काल का यह विभाजन निश्चित सैद्धांतिक अवधारणाओं पर आधारित है न कि दिनों या सप्ताहों की मात्रा पर. उदाहरण के तौर पर एक किसान को खेती की भूमि बढ़ाने में कई साल लग सकते हैं, चाय बनाने वाले के लिए दूसरा चूल्हा रखने में कुछ दिन या कुछ घंटे ही लग सकते हैं, जबकि बिजली उत्पादन क्षमता बढ़ाने में कई साल लग सकते हैं. इस लिए उत्पादन काल के विभाजन के पीछे की सैद्धांतिक अवधारणाओं को हमेशा ध्यान में रखें. समय काल की गणना यानी दिनों/हफ़्तों से यह तय नहीं होता कि यह अल्प काल है या दीर्घकाल.

उत्पादन की गणना भी कई तरीकों से की जा सकती है: कुल उत्पादन, औसत उत्पादन एवं सीमान्त उत्पादन. कुल उत्पादन का अर्थ इस के नाम से ही स्पष्ट है- यह एक समय अवधि में संसाधनों के प्रयोग से होने वाला कुल उत्पादन होता है. इसी तरह औसत उत्पादन की परिभाषा भी इस के शाब्दिक अर्थ समान ही है. कुल उत्पादन को प्रयुक्त साधन की मात्रा से भाग देने से हमें उस संसाधन की औसत उत्पादकता का पता चल जाता है. किसी संसाधन के सीमान्त उत्पादन का अर्थ है उस संसाधन के उपयोग में परिवर्तन होने पर कुल उत्पादन में परिवर्तन की दर. सीमान्त उत्पादन की अवधारणा सीमान्त उपयोगिता की अवधारणा जैसी ही है. यह अन्य संसाधनों की मात्रा स्थिर रहने पर, किसी एक संसाधन के प्रयोग की मात्रा में बदलाव होने पर प्रति इकाई कुल उत्पादन में बदलाव की दर है. गणितीय सूत्रों के प्रयोग से सीमान्त उत्पादन को किसी वस्तु के उत्पादन फलन के प्रथम अवकलज/डेरिवेटिव (derivative) से इंगित कर सकते हैं यानी कि

श्रम का सीमान्त उत्पादन $= MP_L^x = \frac{\partial TP^x}{\partial Q_L}$

यहाँ MP_L^x इंगित करता है x वस्तु के उत्पादन में श्रम (L) की सीमान्त उत्पादकता, TP^x इंगित करता है x वस्तु का कुल उत्पादन फलन एवं Q_L इंगित करता है उत्पादन में प्रयोग की गई श्रम की मात्रा.

सीमान्त उत्पादन एवं कुल उत्पादन में भी वैसा ही परस्पर सम्बन्ध है जैसा कि सीमान्त उपयोगिता एवं कुल उपयोगिता में. अगर यह आप को स्पष्ट नहीं है तो पहले दिए गए सीमान्त उपयोगिता एवं कुल उपयोगिता वक्र के सम्बन्ध को दोहरा लें. याद रहे कि कुल उत्पादन-वक्र की ढलान ही सीमान्त उत्पादन होती है. औसत उत्पादन की परिभाषा से स्पष्ट है कि यह कुल उत्पादन-वक्र को शून्य/उद्गम बिंदु से जोड़ने वाली रेखा की ढलान के समान होता है. सीमान्त उत्पादन-वक्र और औसत उत्पादन-वक्र के सम्बन्ध की चर्चा हम कुछ समय बाद करेंगे.

उत्पादन फलन का स्वरूप: इन अवधारणाओं के आधार पर अब हम विभिन्न समय-काल में उत्पादन फलन के स्वरूप की चर्चा करेंगे. स्पष्ट है कि अति अल्प काल में उत्पादन स्थिर रहता है. क्योंकि अति अल्प काल में उत्पादन में प्रयोग किए जाने वाले किसी भी संसाधन की मात्रा नहीं बदली जा सकती, इस लिए उत्पादन भी स्थिर रहता है.

अल्प काल में क्या होता है? अल्प काल की परिभाषा के अनुसार इस अवधि में कुछ संसाधनों की मात्रा स्थिर रहती है. इन को स्थिर संसाधन कहते हैं. अल्प काल में कुछ संसाधनों की मात्रा परिवर्तनशील होती है. इन को परिवर्ती या परिवर्तनशील संसाधन कहते हैं. मान लें कि पूँजी की मात्रा स्थिर रहे एवं श्रम की मात्रा बढ़ती जाए, तो श्रम की सीमान्त उत्पादकता पर क्या असर पड़ेगा? अनुभव के आधार पर यह पाया गया है कि अंततः श्रम की सीमान्त उत्पादकता घटने लग जाती है. यह नियम भी घटती सीमान्त उपयोगिता सरीखा ही है. अगर सीमान्त उत्पादकता अंतत: न घटे, यानी किसी उत्पादन प्रक्रिया में मशीनों की मात्रा स्थिर रहने पर एवं श्रमिकों की मात्रा लगातार बढ़ाए जाने पर भी श्रम की सीमान्त उत्पादकता न घटे, तो यह संभव होगा कि एक ही फैक्टरी या खेत से पूरी दुनिया की माँग पूरी हो जाए. परन्तु वास्तविक जीवन में ऐसा नहीं होता. अगर भूमि के एक छोटे टुकड़े पर काम करने वाले लोगों की संख्या बढ़ती जाएगी तो एक समय के बाद उत्पादन बढ़ने की बजाय घटने लग जाएगा क्योंकि श्रमिकों की संख्या बढ़ने से लोग एक दूसरे के आड़े आने लग जाएंगे. **इस लिए हम अन्य संसाधनों की मात्रा स्थिर रहने पर, परिवर्तनशील संसाधन की अंततः घटती सीमान्त उत्पादकता को स्वयंसिद्ध नियम के तौर पर स्वीकार करते हैं**. इसे 'बदलते अनुपात के घटते प्रतिफल का नियम' अथवा परिवर्ती अनुपात के घटते/ह्रासमान प्रतिफल का नियम (law of diminishing return to variable proportions) कहते हैं. इस लिए हम आम तौर पर सीमान्त उत्पादन-वक्र को उलटे U आकार का खींचते हैं. यद्यपि हम परम्परागत रूप में सीमान्त उत्पादन-वक्र को उलटे U आकार का मानते हैं यानी कि पहले सीमान्त उत्पादकता बढ़ती है और फिर घटती है, परन्तु इस का ऐसा होने अनिवार्य नहीं है; मात्र सीमान्त उत्पादकता का अंततः घटना अनिवार्य है.

सीमान्त उत्पादन (MP) वक्र और औसत उत्पादन (AP) वक्र का सम्बन्ध: स्पष्ट है कि जब तक सीमान्त उत्पादन औसत उत्पादन से अधिक होगा, तो औसत उत्पादन बढ़ेगा यानी औसत वक्र की ढलान धनात्मक होगी. इस के विपरीत जब सीमान्त उत्पादन औसत से कम होगा, तो औसत उत्पादन घटेगा एवं उस की ढलान ऋणात्मक होगी**. ध्यान रहे कि औसत उत्पादन-वक्र का बढ़ना घटना सीमान्त उत्पादन-वक्र के बढ़ने घटने से न जुड़ा हो कर, उन के परस्पर मान से जुड़ा है.** इसे निम्न सूत्र से दर्शा सकते हैं.

यदि सीमान्त उत्पादन $(MP) >$ औसत उत्पादन (AP)है तो, औसत उत्पादन बढ़ेगा, और
अगर सीमान्त उत्पादन $<$ औसत उत्पादन है तो, औसत उत्पादन घटेगा..............................(23)

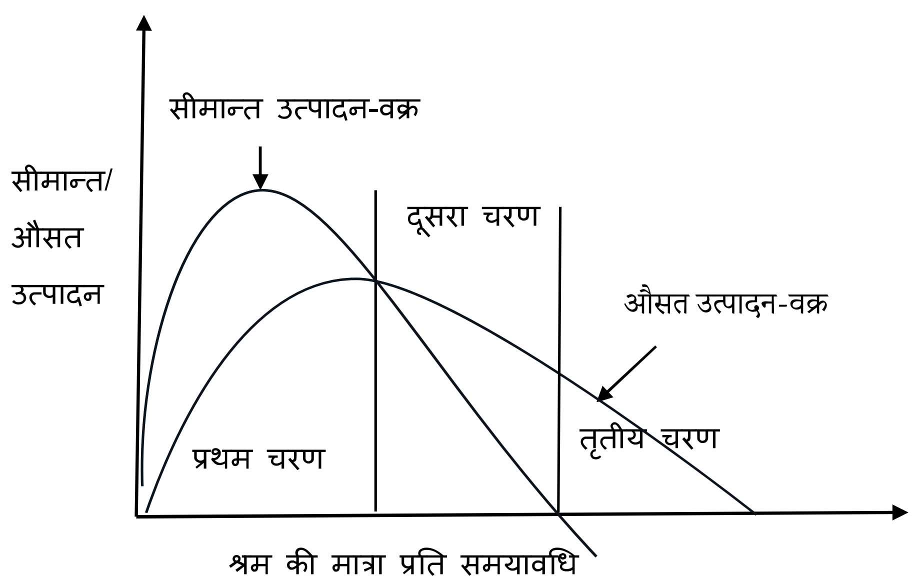
इस को इस प्रकार समझ सकते हैं. मान लो कक्षा में बैठे बच्चों की औसत लम्बाई 5 फुट है. अब अगर एक नया बच्चा (जिसे हम सीमान्त बच्चा कह सकते हैं) कक्षा में आता है जिस की लम्बाई 6 फुट है यानी औसत से अधिक है तो, स्पष्ट है कि इस बच्चे के आने के बाद कक्षा की औसत लम्बाई बढ़ जाएगी. अगर नए बच्चे की उंचाई 4 फुट है यानी औसत से कम है, तो उस के आने के बाद कक्षा के बच्चों की औसत ऊंचाई घट जाएगी.[33]

---

[33] गणित की सहायता से इस सम्बन्ध को आसानी से प्राप्त किया जा सकता है. परिभाषा अनुसार $TP = AP * L$. इस फलन का श्रम या L के साथ डेरिवेटिव लेने पर हम पाते हैं कि $MP = AP + L * \frac{dAP}{dL}$. इस का अर्थ है कि $MP - AP = L * \frac{dAP}{dL}$. इस से स्पष्ट है कि अगर MP>AP है यानी उपरोक्त समीकरण का बायाँ पक्ष धनात्मक है तो दायाँ पक्ष भी धनात्मक होना चाहिए यह तभी हो सकता है जब $\frac{dAP}{dL}$ धनात्मक हो यानी औसत उत्पादन-वक्र की ढाल धनात्मक हो यानी औसत बढ़ रहा हो. इस के विपरीत अगर MP<AP, तो परिणाम उलटा होगा यानी औसत वक्र गिरेगा. परन्तु अगर MP=AP हो तो $\frac{dAP}{dL}$ शून्य होगा यानी औसत वक्र न बढ़ रहा होगा और न घट रहा होगा. कहने की आवश्यकता नहीं है कि जब सीमान्त उत्पादन-वक्र उलटे U आकार का होता है तो औसत वक्र भी उलटे U आकार का ही होता है अपितु इस का अधिकतम स्तर सीमान्त उत्पादन के अधिकतम स्तर के दाईं ओर होता है क्योंकि सीमान्त उत्पादन के घटना शुरू होने के बाद भी औसत उत्पादन तब तक बढ़ता रहेगा जब तक कि सीमान्त उत्पादन घटते-घटते औसत उत्पादन से कम न हो जाए.

अल्पकालिक उत्पादन फलन के तीन चरण: चित्र *33* में औसत एवं सीमान्त उत्पादन-वक्र का सम्बन्ध दिखाया गया है. अल्प काल में उत्पादन के स्तर को तीन चरणों में बाँटा जा सकता है. प्रथम चरण वहाँ तक होता है जहाँ तक औसत उत्पादन बढ़ता जाता है. ध्यान रहे प्रथम चरण की सीमा का निर्धारण औसत उत्पादन से जुड़ा है न कि सीमान्त उत्पादन से. जब औसत उत्पादन घटना शुरू हो जाता है, तो उत्पादन का दूसरा चरण शुरू हो जाता है. दूसरा चरण वहाँ ख़त्म होता है जहाँ सीमान्त उत्पादन शून्य हो जाता है. इसी बिंदु पर कुल उत्पादन अधिकतम होता है. तृतीय चरण में सीमान्त उत्पादन ऋणात्मक होता है. अल्प काल के उत्पादन फलन का चरणों में विभाजन का महत्त्व तब स्पष्ट होगा जब हम फ़र्म के आपूर्ति फलन का अध्ययन करेंगे.

चित्र 33 -अल्प कालिक उत्पादन फलन के विभिन्न चरण



कुल, औसत और सीमान्त वक्र का परस्पर सम्बन्ध एक जैसा ही होता है फिर चाहे लागत-वक्र हों अथवा राजस्व या उत्पादन वक्र. इस लिए आगे बढ़ने से पहले हमें अल्पकालिक कुल उत्पादन,औसत उत्पादन एवं सीमान्त उत्पादन वक्र का सम्बन्ध भली भाँति समझ लेना चाहिए एवं एक ही चित्र में इन तीनों के चित्रांकन का पर्याप्त अभ्यास करना चाहिए. चित्र *34* में कुल, औसत एवं सीमान्त उत्पादन-वक्र का सम्बन्ध दिखाया गया है. हालाँकि इन में से किसी भी एक वक्र के आधार पर अन्य दोनों वक्र खींचे जा सकते हैं, परन्तु हमारा अनुभव है कि सब से सब से पहले कुल उत्पादन-वक्र को एवं सब से बाद नयूब औसत उत्पादन-वक्र को खींचना ज़्यादा सुविधाजनक रहता है.

चित्रांकन करते हुए हम इन बिन्दुओं को ध्यान में रखना चाहिए:

1. जब सीमान्त उत्पादन बढ़ रहा होता है तो कुल उत्पादन की ढलान बढ़ती जाती है. दूसरे शब्दों में जब तक कुल उत्पादन-वक्र की ढलान बढ़ती जाती है तब तक सीमान्त उत्पादन भी बढ़ना चाहिए.

2. जब सीमान्त उत्पादन घटने लगता है तो कुल उत्पादन की ढलान घटने लग जाती है परन्तु जब तक सीमान्त उत्पादन धनात्मक रहता है तब तक सीमान्त उत्पादन बढ़ता रहता है. दूसरे शब्दों में, जब तक कुल उत्पादन बढ़ता रहता है तब तक सीमान्त उत्पादन धनात्मक रहता है.

3. जब सीमान्त उत्पादन ऋणात्मक हो जाता है तो कुल उत्पादन घटने लग जाता है.

4. औसत और सीमान्त उत्पादन के परस्पर सम्बन्ध का वर्णन हम पहले कर चुके हैं. इस लिए उसे दोबारा यहाँ नहीं दोहराएंगे.

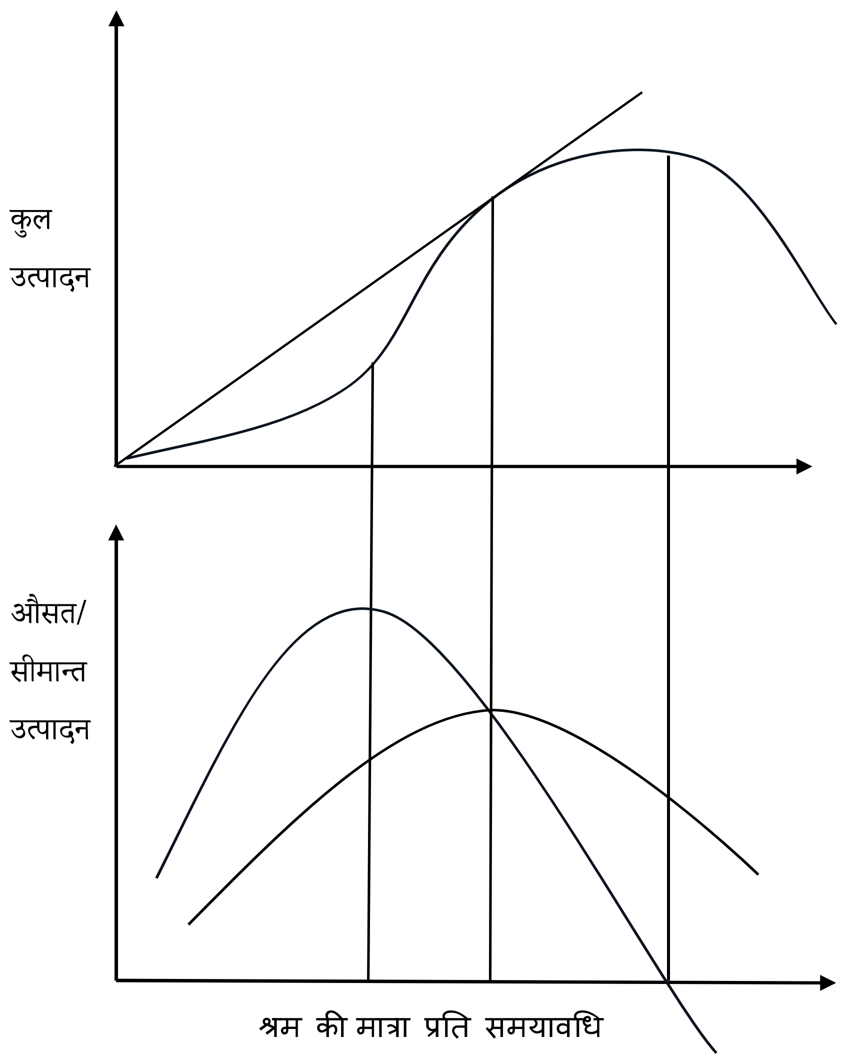
5. क्योंकि कुल उत्पादन-वक्र को उद्गम बिंदु से जोड़ने वाले वक्र की ढलान औसत उत्पादन के बराबर होती है, इस लिए जब तक कुल उत्पादन-वक्र को मूल बिंदु से जोड़ने वाली रेखा की ढलान बढ़ती जाती है, तब तक औसत उत्पादन बढ़ता जाता है. जब कुल उत्पादन को मूल बिंदु से जोड़ने वाली रेखा दाईं ओर झुकने लग जाती है, तब औसत उत्पादन घटने लग जाता है.

दीर्घ काल में उत्पादन फलन का स्वरूप: दीर्घ काल में तकनीक स्थिर रहती है परन्तु सभी संसाधनों की मात्रा बदल सकती है. सभी संसाधनों की मात्रा में बदलाव एक अनुपात में भी हो सकता है और असमान अनुपात में भी. अधिकांश तौर पर अर्थशास्त्र में उसी स्थिति का अध्ययन किया गया है कि सभी साधनों में बदलाव समान अनुपात में होता है यानी जिस अनुपात में श्रम की मात्रा में बदलाव होता है,

उसी अनुपात में पूँजी की मात्रा में बदलाव होता है. ऐसा होना अनिवार्य नहीं है परन्तु अर्थशास्त्र में आम तौर पर इस स्थिति का ही अध्ययन किया गया है.

संसाधनों में इस तरह का बदलाव होने पर उत्पादन फलन तीन तरह का व्यवहार प्रदर्शित कर सकते हैं. पैमाने का समानुपातिक बदलाव (*constant returns to scale*), पैमाने का घटता/ह्रासमान बदलाव (*decreasing returns to scale*) एवं पैमाने का वृद्धिमान बदलाव (*increasing returns to scale*). इन तीनों परिस्थितियों को क्रमशः निम्न नाम से भी पुकारा जाता है: पैमाने का स्थिर प्रतिफलपैमाने का अनुमापी प्रतिफल, पैमाने का वर्धमान प्रतिफल. पैमाने के ये नियम उस परिस्थिति में लागू होते हैं जब उत्पादन के पैमाने को या स्तर को बढ़ाया जाता है एवं सभी संसाधनों को एक अनुपात में बढ़ाया जाता है. इस के विपरीत 'बदलते अनुपात के घटते प्रतिफल का नियम' उस परिस्थिति में लागू होता है जब एक संसाधन (कारक) को बढ़ाते समय अन्य संसाधनों को स्थिर रखते हैं यानी संसाधनों का परस्पर अनुपात बदलता है. **ये दोनों तरह के नियम किन परिस्थितियों में लागू होते हैं, यह हमें स्पष्ट होना चाहिए.**

चित्र 34 – कुल, औसत एवं सीमान्त उत्पादन फलन का परस्पर सम्बन्ध



अगर जिस अनुपात में संसाधनों की मात्रा में बदलाव किया जाता है, उसी अनुपात में उत्पादन में बदलाव हो, तो उत्पादन में बदलाव को समानुपातिक बदलाव कहा जाता है. उदाहरण के तौर पर संसाधनों की मात्रा दोगुनी होने पर, अगर उत्पादन दो गुना हो जाता है तो हम कहेंगे कि इस उत्पादन फलन में समानुपातिक बदलाव का नियम लागू है. अगर संसाधनों का प्रयोग दोगुना होने पर उत्पाद दुगना न हो कर कम बढ़ता है तो हम कहेंगे कि इस उत्पादन फलन में घटता/ह्रासमान बदलाव का नियम लागू है एवं उत्पादन में दो गुना से अधिक बढ़ोतरी होने पर हम कहेंगे कि उत्पादन फलन में वृद्धिमान बदलाव का नियम लागू होता है. यह भी संभव है कि एक ही उत्पादन फलन तीनों तरह का व्यवहार करे- उत्पादन के अलग-अलग स्तर पर अलग-अलग पैमाने का प्रतिफल हो.

[गणितीय सूत्र का प्रयोग करें तो दीर्घकाल में उत्पादन-वक्र के किसी एक बिंदु को निम्न रूप से इंगित किया जा सकता है (क्योंकि दीर्घकाल में तकनीक तो स्थिर होती है, इस लिए हम इस को अनदेखा कर सकते हैं).

$$Q_{x_0} = F(K_0, L_0) \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (24)$$

समीकरण 24 में Q_{x_0} एक निश्चित उत्पादन स्तर को, K_0 एवं L_0 क्रमशः पूंजी तथा श्रम की निश्चित माला को इंगित करते हैं. अगर सभी संसाधनों की माला को m गुना कर दिया जाए, तो उत्पादन फलन का निम्न स्वरूप होगा: $Q_x = F(mK_0, mL_0)$. अगर इस समीकरण को निम्न रूप में लिखना संभव हो, तो ऐसे उत्पादन फलन को समघात/समरूप (homogenous) उत्पादन फलन कहते हैं.

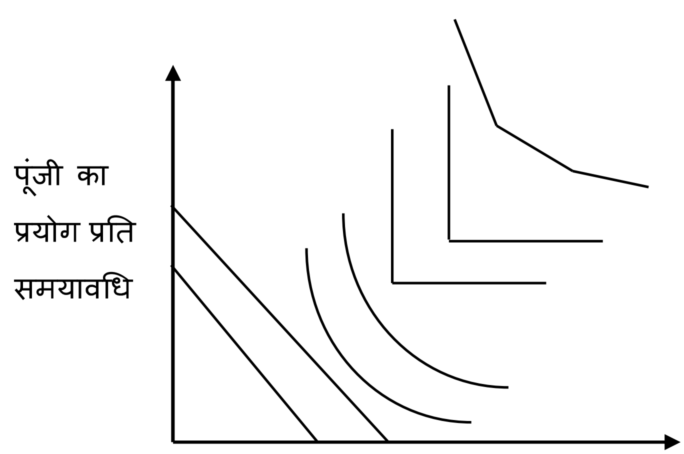
$Q_x = m^t F(K_0, L_0) = m^t Q_{x_0}$ ....(25)

यानी, अगर सभी संसाधनों की माला को m गुणा करने पर, कुल उत्पाद m के किसी गुणन में बढ़े, तो ऐसे उत्पादन फलन को समरूप उत्पादन फलन कहते हैं. उपरोक्त सूल में t को समरूपता की घात (degree of homogeneity) कहते हैं. समरूपता एवं समरूपता की घात को विस्तार से समझने के लिए उच्चतर गणित का प्रयोग करना पड़ेगा. इस लिए हम इसे यहीं छोड़ देते हैं.

अब अगर t=1 तो इस का अर्थ है कि उत्पादन में उसी अनुपात में बदलाव होगा, जितना कि संसाधनों में बदलाव हुआ है; यानी यह उत्पादन फलन पैमाने का समानुपातिक प्रतिफल/बदलाव दर्शाता है. अगर t का मान 1 से अधिक है, तो यह उत्पादन फलन पैमाने का वृद्धिमान प्रतिफल दर्शाता है. t का मान एक से कम होने पर यह इंगित करता है कि उत्पादन फलन पैमाने का घटता/ह्रासमान प्रतिफल दर्शाता है.]

सम-उत्पाद वक्र (*isoquant*): उत्पादन फलन को चित्र द्वारा दिखाने के लिए हम उदासीनता-वक्र जैसी एक अवधारणा का प्रयोग करेंगे. इसे समान उत्पाद अथवा सम-उत्पाद वक्र कहते हैं. सम-उत्पाद वक्र संसाधनों के उन समूहों को इंगित करता है जिन से समान माला में अधिकतम संभव उत्पादन होता है. सम-उत्पाद वक्र तकनीकी रूप से संसाधनों के दक्षतम उपयोग को दर्शाता है. सम-उत्पाद वक्र के किसी भी बिंदु से नीचे स्थित संसाधनों के समूह से उतना ही उत्पादन करना संभव नहीं होता.

चित्र 35 – संभावित सम-उत्पाद वक्र



सम-उत्पाद का स्वरूप कैसा होगा? चित्र 35 में सम-उत्पाद वक्र के कुछ स्वरूप दर्शाए गए हैं. अगर दोनों संसाधन एक निश्चित अनुपात में प्रयोग किए जा सकते हैं (जैसे एक ट्रैक्टर को चलाने के लिए एक व्यक्ति ही चाहिए; इस से ज़्यादा व्यक्ति होंगे या एक व्यक्ति के साथ एक से ज़्यादा ट्रैक्टर होगा, तो भी काम उतना ही होगा) तो सम-उत्पाद वक्र अंग्रेज़ी के L आकार का होगा. ऐसे सम-उत्पाद वक्र को इनपुट-आउटपुट या लीओंतीफ़ सम-उत्पाद वक्र भी कहते हैं.[34] इस के विपरीत अगर दोनों संसाधन पूरी तरह से एक दूसरे के स्थानापन्न हों (उदाहरण के लिए, अगर दो छोटी मशीन एक बड़ी मशीन के बराबर काम कर सकती हैं) तो इस स्थिति में सम-उत्पाद वक्र सीधी रेखा में होगा. अगर दोनों संसाधन पूरी तरह से एक दूसरे के स्थानापन्न हो परन्तु यह अनुपात बदलता रहता है तो सम-उत्पाद वक्र कुछ सीधी रेखाओं के जोड़ सरीखा होगा. ऐसे सम-उत्पाद वक्र को रैखिक क्रमादेशन कार्यक्रमण (*linear programming*) सम-उत्पाद वक्र कहते हैं.[35]

---

[34] इनपुट-आउटपुट समीक्षा अर्थशास्त्र में नियोजन के लिए प्रयोग की जाने वाली एक पद्धति है जिस के अविष्कारक लीओंतीफ़ (*Leontief*) थे. इस पद्धति में सम-उत्पाद वक्र का ऐसा स्वरूप माना जाता है. इस लिए यह नामकरण किया गया है.

[35] इस नामकरण का आधार यह है कि योजना निर्धारण की रैखिक क्रमादेशन (*linear programming*) पद्धति भी ऐसे उत्पादन फलन पर आधारित है.

आम तौर पर संसाधन न तो पूरी तरह से एक दूसरे के स्थानापन्न होते हैं एवं न ही पूरी तरह से विकल्पहीन होते हैं. कुछ हद तक उत्पादन के साधन एक दूसरे का स्थान ले सकते हैं. उदाहरण के लिए, मशीन और मानव श्रम आम तौर पर कुछ हद तक एक दूसरे का स्थान ले सकते हैं परन्तु पूरी तरह नहीं. इस लिए आम तौर पर सम-उत्पाद वक्र चित्र 35 में अंग्रेजी के *L* आकार एवं सीधी रेखा के बीच में दर्शाए जैसे सम-उत्पाद जैसे होते हैं. स्पष्ट रूप से अगर एक संसाधन का प्रयोग बढ़ता है, तो उतने ही उत्पादन के लिए दूसरे संसाधन का प्रयोग घटना चाहिए अन्यथा कोई उत्पादक उतने ही उत्पादन के लिए किसी संसाधन की मात्रा नहीं बढ़ाएगा. इस लिए सम-उत्पाद वक्र की ढलान ऋणात्मक होगी. अगर किसी बिंदु पर सम-उत्पाद वक्र की ढलान धनात्मक हो जाएगी तो उत्पादक धनात्मक ढलान वाले क्षेत्र में उत्पादन करेगा ही नहीं. उत्पादक केवल सम-उत्पाद वक्र के ऋणात्मक ढलान वाले हिस्से में ही रहेगा. सम उत्पाद वक्र के उन हिस्सों को जोड़ने वाली रेखा, जहाँ से सम-उत्पाद वक्र की ढलान धनात्मक हो जाती है, उन्हें मेड़ रेखा (*ridge line*) कहते हैं.[36] मेड़ रेखा दो होती हैं. नीचे वाली मेड़ रेखा पर सम-उत्पाद वक्र की ढलान शून्य होती है एवं ऊपर वाली मेड़ रेखा पर सम-उत्पाद वक्र की ढलान की ढलान अनंत होती है. जैसे कोई मेड़ ज़मीन अथवा पहाड़ के दो हिस्सों को अलग कर देती है, उसी प्रकार मेड़ रेखा भी सम-उत्पाद मानचित्र को दो हिस्सों में बाँट देती है. ऊपरी मेड़ रेखा एवं नीचे की मेड़ रेखा के बीच में ही उत्पादन करना तकनीकी रूप से दक्ष होता है एवं इन के बाहर के क्षेत्र में उत्पादन नहीं होता.

क्या सम-उत्पाद वक्र अवतल/धनुषाकारी (*concave*) हो सकता? नहीं. इस के पक्ष में दो तर्क दिये जा सकते हैं. एक तो यह कि अगर सम-उत्पाद वक्र धनुषाकारी हो, तो इस का परिणाम यह होगा कि उत्पादन में केवल एक संसाधन का प्रयोग होगा दोनों का नहीं. (ऐसा क्यों होता है यह हम आगे चल कर तब समझ पायेंगे जब हम इस विषय पर विचार करेंगे कि उत्पादक उत्पादन तकनीक का चयन कैसे करते हैं.) क्योंकि सामान्य तौर पर ऐसा नहीं होता, इस लिए हम कह सकते हैं कि सम-उत्पाद वक्र धनुषाकारी नहीं हो सकते. दूसरा तर्क यह है कि अगर सम-उत्पाद वक्र धनुषाकारी हो, तो यह तकनीकी रूप से उत्पादन के संसाधनों का दक्षतम प्रयोग नहीं होगा. इस को समझने के लिए चित्र *36* देखें जिस में एक धनुषाकारी सम-उत्पाद दर्शाया गया है. अगर सम-उत्पाद वक्र चित्र *36* सरीखा हो तो बिंदु 1, 2 एवं 3 एक समान उत्पादन इंगित करेंगे. बिंदु 2 एवं बिंदु 3 को जोड़ने वाली रेखा इन दोनों बिन्दुओं के संसाधनों को विभिन्न अनुपात में मिलाने से होने वाले उत्पादन को इंगित करती है. उदाहरण के लिए, बिंदु 2 इंगित करेगा बिंदु 2 द्वारा इंगित संसाधनों का पूरा प्रयोग एवं बिंदु 3 द्वारा इंगित संसाधनों का शून्य प्रयोग. इस के विपरीत बिंदु 3 इंगित करता है बिंदु 2 द्वारा इंगित संसाधनों का शून्य प्रयोग एवं बिंदु

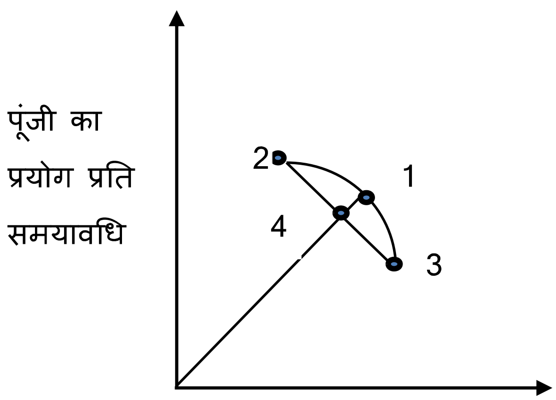
---

[36] [मेड़ रेखा सम-ढलान रेखा (*isocline*) का एक विशिष्ट रूप हैं. सम-ढलान रेखा विभिन्न सम-उत्पाद वक्र के उन बिन्दुओं को जोड़ती है जहाँ सम-उत्पाद वक्रों की ढलान एक समान होती है. सम-ढलान रेखा स्वयं उत्पादन रेखा (*product line*) का एक विशिष्ट रूप है. उत्पादन रेखा ऐसी किसी भी रेखा को कहते हैं जो विभिन्न सम-उत्पाद वक्रों को जोड़ती हो. यह उत्पादन के विस्तार की संभावनाओं को दर्शाती है. अगर दीर्घ काल में कोई उत्पादन रेखा संसाधनों की नियत कीमत पर विभिन्न सम-उत्पाद वक्रों को जोड़ती है तो उसे विस्तार रेखा (*expansion path*) कहते हैं. यह इंगित करती है कि संसाधनों की मौजूदा कीमतों पर अगर उत्पादन बढ़ाना हो, तो दीर्घ काल में इस विस्तार रेखा के अनुसार उत्पादन करना होगा. दीर्घकाल में विस्तार रेखा सीधी रेखा अथवा वक्र का रूप ले सकती है. आगे चल कर हम देखेंगे कि नियत कीमतों का अर्थ है नियत ढलान. इस लिए दीर्घ काल में विस्तार रेखा सम-उत्पाद वक्र को समान ढलान बिन्दुओं पर छूती है. अंत: विस्तार रेखा सम-ढलान रेखा भी होती है. संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि उत्पादन रेखा सब से व्यापक समुच्चय है; उत्पादन रेखा ऐसी रेखा जो विभिन्न सम-उत्पाद वक्रों को जोड़ती हैं. उत्पादन रेखाओं का एक छोटा हिस्सा उन उत्पादन रेखाओं का होता है जो विभिन्न सम-उत्पाद वक्र के समान ढलान के बिन्दुओं को जोड़ती हैं. इन उत्पादन रेखाओं को सम-ढलान रेखा कहते हैं. तीसरी श्रेणी में ऐसी सम-ढलान रेखा आती है जो सम-उत्पाद वक्र के उन बिन्दुओं को जोड़ती है जहाँ दीर्घ काल में संसाधनों की निश्चित कीमत पर आधारित सम-लागत रेखाएं सम-उत्पाद वक्र को स्पर्श करती हैं. ऐसी सम-ढलान रेखा को विस्तार रेखा कहते हैं.

इन अवधारणाओं का प्रयोग विशिष्ट उत्पादन फलन के गणितीय अध्ययन में होता है. इस लिए हम यहाँ अधिक विस्तार से इन की चर्चा नहीं करेंगे.]

3 द्वारा इंगित संसाधनों का पूरा प्रयोग. बीच की रेखा के अन्य बिंदु इन दोनों संयोगों का विभिन्न अनुपात में प्रयोग इंगित करते हैं, उदाहरण के तौर पर, 10% एवं 90%, 20% एवं 80% इत्यादि. क्योंकि बिंदु 2 एवं 3 दोनों ही एक उत्पादन स्तर को इंगित करते हैं, इस लिए इन को विभिन्न अनुपात में मिलाने पर भी कुल उत्पादन स्थिर ही रहेगा. इस का अर्थ है कि बिंदु 4 पर भी उतना ही उत्पादन होगा जितना कि बिंदु 2, 3 या 1 पर हो रहा है. परन्तु चित्र से स्पष्ट है कि बिंदु 4 पर बिंदु 1 की तुलना में दोनों संसाधनों का कम प्रयोग हो रहा है. इस लिए बिंदु 1 संसाधनों का दक्षतम प्रयोग इंगित नहीं करता. इसी तरह हम साबित कर सकते हैं कि बिंदु 2 एवं 3 के बीच स्थित वक्र रेखा का हर बिंदु बिंदु 2 एवं बिंदु 3 के बीच की सीधी रेखा के किसी-न- किसे बिंदु से कम दक्ष है. इस से साबित होता है कि धनुषाकारी सम-उत्पाद वक्र संसाधनों का दक्षतम उपयोग इंगित नहीं करता. क्योंकि सम-उत्पाद वक्र दक्ष उत्पादन इंगित करते हैं, इस लिए सम-उत्पाद वक्र धनुषाकारी नहीं हो सकते.

चित्र 36- धनुषाकारी सम-उत्पाद वक्र दक्ष नहीं



चित्र *35* में कई तरह के सम-उत्पाद वक्र दिखाए गए हैं परन्तु हम आम तौर पर सम-उत्पाद वक्र को उत्तल ही मानेंगे. सम-उत्पाद वक्र धनुषाकारी तो हो ही नहीं सकते एवं शेष अन्य रूप भी ये आम तौर पर नहीं लेते.

सम-उत्पाद वक्र की ढलान क्ष अक्ष पर इंगित संसाधन की एक इकाई बढ़ाए जाने पर बिना उत्पादन घटाए य अक्ष पर इंगित संसाधन की मात्रा में की जा सकने वाली कटौती को इंगित करती है. इस को **तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर** (*marginal rate of technical substitution* या *MRTS* अथवा एमआरटीएस) कहते हैं. तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर, उत्पादन में संसाधनों की स्थानापन्नता पर निर्भर करती है. इस लिए तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर को संसाधनों की स्थानापन्नता का संकेतक भी माना जा सकता है.[37] क्योंकि उत्तल वक्र में दाईं ओर जाने पर वक्र की निरपेक्ष ढलान घटती है, इस लिए सम-उत्पाद वक्र पर दाईं ओर जाने पर एमआरटीएस का निरपेक्ष मान भी घटता जाता है. चित्र से आप इस की पुष्टि कर सकते हैं. ऐसा क्यों होता है? जैसे-जैसे य अक्ष पर इंगित संसाधनों का प्रयोग कम होता जाता है, वैसे-वैसे उन का प्रतिस्थापन मुश्किल होता जाता है. हम ने देखा था कि ठीक इसी कारण से दाईं

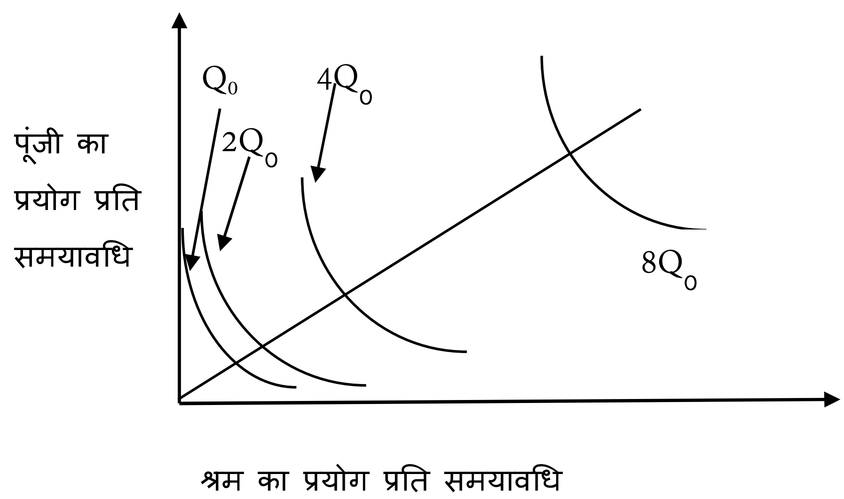
[37] [क्योंकि यह दर संसाधनों के नापने की इकाई पर निर्भर करती है, इस लिए MRTS के मान से यह आभास नहीं होता कि किसी वस्तु विशेष के उत्पादन में संसाधनों की स्थानापन्नता किसी अन्य वस्तु के उत्पादन में संसाधनों की स्थानापन्नता की तुलना में कम है अथवा अधिक है. इस लिए उत्पादन में स्थानापन्नता को नापने के लिए तकनीकी प्रतिस्थापन की लोच (elasticity of technical substitution) का प्रयोग किया जाता है. तकनीकी प्रतिस्थापन की लोच किसी एक उत्पादन स्तर अथवा किसी एक सम-उत्पाद वक्र पर संसाधनों के बीच स्थानापन्नता इंगित करती है. इस की गणना निम्न सूत्र द्वारा की जाती है: σ (उच्चारण सिग्मा) = K/L में प्रतिशत बदलाव भाग में MRTS में प्रतिशत बदलाव. क्योंकि, जैसे की हम इसी अध्याय में आगे चल कर देखेंगे, उत्पादन उसी बिंदु पर होता है जहाँ MRTS संसाधनों की कीमत यानी P_L/ P_K के समान होती है, इस लिए हम निम्न सूत्र का प्रयोग भी कर सकते हैं: σ = K/L में प्रतिशत बदलाव भाग में P_L/ P_K में प्रतिशत बदलाव. स्पष्ट तौर पर सम-उत्पाद वक्र पर दाईं ओर जाने पर K/L यानी पूंजी एवं श्रम अनुपात घटता है और उत्तल वक्र में दाईं ओर जाने पर ढलान का निरपेक्ष मान घटता है, इस लिए सम-उत्पाद वक्र पर दाईं ओर जाने पर MRTS भी घटता है. क्योंकि विभाजक एवं विभाज्य दोनों में बदलाव की दिशा एक ही है, इस लिए तकनीकी प्रतिस्थापन की लोच धनात्मक होती है.]

ओर जाने पर उदासीनता-वक्र की ढलान का निरपेक्ष मान भी घटता जाता है. वास्तव में **तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर एवं सीमान्त प्रतिस्थापन दर मिलती जुलती अवधारणाएं हैं**. एक उत्पादन के क्षेत्र में लागू होती है और सम-उत्पाद वक्र की ढलान के समान होती है, तो दूसरी उपभोग के क्षेत्र में लागू होती है एवं उदासीनता-वक्र की ढलान के समान होती है. सीमान्त प्रतिस्थापन दर की तरह ही हम तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर का भी निरपेक्ष मान लेते हैं यानी ऋणात्मक चिन्ह की अनदेखी कर देते हैं. गणितीय गणना में इस का बात का विशेष तौर पर ध्यान रखना चाहिए एवं ऋणात्मक मान का ही प्रयोग किया जाना चाहिए.

उदासीनता-वक्र की तरह ही न केवल सम-उत्पाद वक्र की ढलान ऋणात्मक एवं स्वरूप उत्तल होता है अपितु उसी तरह से उच्चतर सम-उत्पाद वक्र उच्चतर उत्पादन इंगित करता है एवं दो सम-उत्पाद वक्र एक दूसरे को छूते/काटते नहीं हैं. ध्यान रहे यहाँ हम दीर्घ काल की चर्चा कर रहे हैं यानी तकनीक स्थिर है. तकनीक बदलने पर सम-उत्पाद वक्र का मानचित्र ही बदल जाएगा.

अब हम सम-उत्पाद वक्र की सहायता से उत्पादन फलन में पैमाने के तीनों तरह बदलाव को चित्रित करेंगे. चित्र 37 में Q_0 उत्पादन का एक निश्चित स्तर इंगित करता है, $2Q_0$ उस से दोगुना, $4Q_0$ पहले से चार गुना इत्यादि. परन्तु चित्र से स्पष्ट है कि उत्पादन दो गुना होने पर भी उत्पादन के साधन दो गुना नहीं हो रहे हैं. उत्पादन के साधनों में वृद्धि दो गुना से कम हैं. यानी पहले दो सम-उत्पाद वक्र पैमाने में वृद्धिमान बदलाव दिखा रहे हैं. इसी प्रकार, आप नाप कर स्वयं देख सकते हैं कि $2Q_0$ से दोगुना उत्पादन पर उत्पादन के साधन भी दोगुने हो जाते हैं यानी इस अवस्था में यह उत्पादन फलन पैमाने का समानुपातिक बदलाव दिखा रहा है. $4Q_0$ से दोगुना उत्पादन करने के लिए संसाधनों को दोगुना से भी अधिक बढ़ाना पड़ता है; यानी इस अवस्था में उत्पादन फलन में पैमाने का घटता/ह्रासमान बदलाव हो रहा है.

चित्र 37- पैमाने के तीनों तरह के बदलाव वाला उत्पादन फलन



अति दीर्घ काल में तकनीक भी परिवर्तित हो सकती है. हम यहाँ पर इस बदलाव पर ज़्यादा चर्चा न कर के इतना ही कहेंगे कि तकनीकी बदलाव से पूरा सम-उत्पाद मानचित्र नीचे की ओर एवं कुल/औसत/सीमान्त उत्पादन-वक्र ऊपर की ओर खिसक सकता है क्योंकि नई तकनीक से कम संसाधनों के साथ उत्पादन बनाए रखा जा सकता है अथवा समान संसाधनों के साथ उत्पादन बढ़ाया जा सकता है. लेकिन न तो इस बदलाव का समानांतर होना आवश्यक है और न ही दीर्घकालीन बदलाव की यही एकमात्र दिशा हो सकती है. तकनीकी बदलाव विपरीत प्रभाव भी छोड़ सकता है.

तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर($MRTS$) और घटती सीमान्त उत्पादकता का सम्बन्ध: जब हम सम-उत्पाद वक्र के एक बिंदु से दूसरे बिंदु पर जाते हैं तो परिवर्तन को निम्न सूत्र से इंगित किया जा सकता है.

$$\Delta Q = \Delta L\, MP_L + \Delta K\, MP_K \text{..} (26)$$

परन्तु सम-उत्पाद वक्र के एक बिंदु से दूसरे बिंदु पर जाने में कुल उत्पादन स्थिर रहता है. इस लिए $\Delta Q = 0$. इस के आधार पर समीकरण 26 को निम्न रूप में लिखा जा सकता है.

$\Delta L\, MP_L + \Delta K\, MP_K = 0$ जिस से हमें निम्न समीकरण प्राप्त होता है:

$$-\frac{\Delta K}{\Delta L} = MRTS = \frac{MP_L}{MP_K} \text{...} (27)$$

यानी सूत्र 27 के अनुसार **श्रम के लिए पूँजी की तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर MP_L/MP_K के समान है.** कई बार तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर के घटने को स्वतंत्र नियम न मान कर, बदलते अनुपात के घटते प्रतिफल पर आधारित कहा जाता है. यह तर्क दिया जाता है कि जब हम अधिक श्रम का प्रयोग करते हैं तो श्रम की सीमान्त उत्पादकता घट जाती है. स्थिर उत्पादन हेतु अधिक श्रम का प्रयोग करने पर, पूँजी का प्रयोग घट जाता है एवं इस लिए पूँजी की सीमान्त उत्पादकता बढ़ जाती है. इन दोनों बदलाव के चलते दोनों का अनुपात यानी $MRTS$ घट जाता है. यह तर्क ठीक नहीं है. घटती सीमान्त उत्पादकता के नियम के अनुसार अन्ततः सीमान्त उत्पादकता घटती है; इस लिए इस का हर बिंदु पर घटना अनिवार्य नहीं है. इस लिए घटती तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर एक स्वतंत्र अवधारणा है एवं यह घटती सीमान्त उत्पादकता पर आधारित नहीं है.

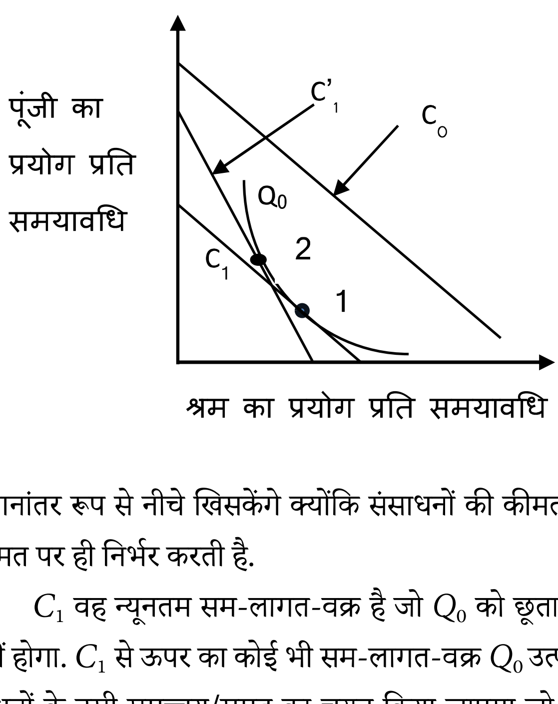
सम-उत्पाद वक्र के किस बिंदु पर उत्पादन होगा? इस प्रश्न पर विचार करने से पहले हमें एक और अवधारणा का अध्ययन करना होगा.

सम-लागत-वक्र (*Iso-cost curve*): सम-लागत-वक्र संसाधनों के उन समूहों को दिखाता है जिन की लागत समान होती है. अगर संसाधन निश्चित दाम पर उपलब्ध हैं एवं एक ख़रीदार की माँग से प्रभावित नहीं होते (जैसे कि आगे चल कर हम देखेंगे कि पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में होता है) तो, सम-लागत-वक्र का समीकरण निम्न स्वरूप का होता है जो सीधी रेखा का रूप लेता है.

$C = P_L * Q_L + P_K * Q_K$ ....(28)

समीकरण 28 सामान्य गणित पर आधारित है. स्वाभाविक रूप से कुल लागत श्रम की लागत एवं पूँजी का लागत का योग ही होगी.श्रम अथवा पूँजी की लागत श्रम अथवा पूँजी की कीमत एवं श्रम अथवा पूँजी की मात्रा की गुणा से प्राप्त होगी. समीकरण 28 को निम्न रूप में भी लिखा जा सकता है: $Q_K=C- P_L/ P_K * Q_L$ जिस से स्पष्ट है कि सम-लागत-वक्र की ढलान - P_L/ P_K है एवं इस का निरपेक्ष मान P_L/ P_K है.

चित्र 38 -उत्पादन तकनीक का चुनाव



उत्पादन तकनीक का चुनाव: सम-उत्पाद वक्र संसाधनों के उन समूहों को दर्शाता है जो समान उत्पादन देते हैं. अब प्रश्न उठता है कि वास्तव में उत्पादन सम-उत्पाद वक्र के कौन से बिंदु पर होगा? जाहिर है किसी भी उत्पादन स्तर के लिए उत्पादक उत्पादन का वह तरीका चुनेगा जहाँ पर उस की उत्पादन लागत न्यूनतम हों. मान लें कि उत्पादक चित्र 38 में दिखाए गए Q_0 वह सम-उत्पाद वक्र जितना उत्पादन करना चाहता है. उत्पादन स्तर का चुनाव कैसे होता है, इस का अध्ययन हम आगे चल कर करेंगे. फ़िलहाल के लिए मान लेते हैं कि उत्पादक Q_0 उत्पादन करना चाहता है एवं वर्तमान बाज़ार भाव पर C_0 एक सम-लागत-वक्र है. जैसे-जैसे कुल लागत कम होती जाएगी, सम-लागत-वक्र समानांतर रूप से नीचे खिसकता आयेगा. स्पष्ट रूप से सम-लागत-वक्र समानांतर रूप से नीचे खिसकेंगे क्योंकि संसाधनों की कीमतों में कोई बदलाव नहीं हो रहा एवं सम-लागत-वक्र की ढलान संसाधनों के कीमत पर ही निर्भर करती है.

C_1 वह न्यूनतम सम-लागत-वक्र है जो Q_0 को छूता है. अगर कुल लागत इस से भी कम हो जाएगी तो Q_0 उत्पादन संभव ही नहीं होगा. C_1 से ऊपर का कोई भी सम-लागत-वक्र Q_0 उत्पादन के लिए न्यूनतम लागत-वक्र नहीं होगा. इस से स्पष्ट है कि उत्पादन के साधनों के उसी समुच्चय/समूह का चयन किया जाएगा जो सम्बन्धित सम-उत्पाद वक्र को स्पर्श करने वाले सब से निम्न स्तरीय सम-लागत-वक्र पर होगा जो चित्र 38 में बिंदु 1 है. जाहिर है इस बिंदु पर सम-लागत-वक्र एवं सम-उत्पाद वक्र की ढलान एक समान होगी यानी $MRTS=P_L/ P_K$. अगर इस के विपरीत अगर किसी नियत लागत पर अधिकतम उत्पादन करना हो तो ज़ाहिर है उत्पादक को उस सम-लागत-वक्र को छूने वाले सब से ऊँचे सम-उत्पाद वक्र पर स्थित बिंदु का चयन करना होगा. वहाँ पर भी $MRTS=P_L/ P_K$.

चित्र से तो यह स्पष्ट है कि लागत न्यूनतम अथवा उत्पादन अधिकतम करने पर एमआरटीएस P_L/ P_K के समान होता है परन्तु इस का कारण किया है? इस के लिए हमें निम्न दो समीकरणों का उपयोग करना होगा: पारिभाषिक रूप से सूत्र 27 के अनुसार $MRTS = \frac{MP_L}{MP_K}$ एवं चयनित बिंदु पर $MRTS = P_L/ P_K$. इस से स्पष्ट है कि चयनित बिंदु पर

$$\frac{MP_L}{MP_K} = P_L/ P_K$$

$$\Rightarrow \frac{MP_L}{P_L} = \frac{MP_K}{P_K} \quad \text{.......................................}(29)$$

समीकरण 29 को शब्दों में व्यक्त करें तो इस का अर्थ है कि श्रम पर ख़र्च किए गए प्रति रुपये से प्राप्त सीमान्त उत्पाद पूँजी पर ख़र्च किए गए प्रति रुपये से प्राप्त सीमान्त उत्पाद के समान है. स्पष्ट रूप से ऐसा होना भी चाहिए. अगर ऐसा नहीं है तो जिस संसाधन पर प्रति रुपया अधिक सीमान्त उत्पाद मिल रहा है, उस का प्रयोग बढ़ा कर अन्य संसाधन का उपयोग घटा कर लागत कम की जा सकती है. इस लिए न्यूनतम लागत के लिए यह आवश्यक है कि संसाधनों के उस समुच्चय का चयन किया जाना चाहिए जहाँ $\frac{MP_L}{P_L} = \frac{MP_K}{P_K}$. ध्यान से देखने पर आप पायेंगे कि यह नियम सम-सीमान्त उपयोगिता का नियम सरीखा ही है.

अब अगर श्रम की कीमत बढ़ जाए तो संसाधनों के चयन पर क्या प्रभाव होगा? श्रम का प्रयोग बढ़ेगा अथवा घटेगा? उपरोक्त चर्चा से स्पष्ट है कि श्रम की कीमत बढ़ने पर श्रम पर ख़र्च किया जाने वाला प्रति रुपया पूँजी की तुलना में उत्पादन में कम योगदान देगा जिस के चलते श्रम का प्रयोग घट जाएगा और पूँजी का प्रयोग बढ़ जाएगा. यह परिवर्तन तब तक जारी रहेगा जब तक पुन: $\frac{MP_L}{P_L} = \frac{MP_K}{P_K}$ स्थापित नहीं हो जाता. पूँजी का प्रयोग बढ़ने का अर्थ है कि चयन बिंदु सम-उत्पाद वक्र पर बाईं ओर खिसक जाएगा यानी $MRTS$ बढ़ जाएगा. चित्र *38* में भी श्रम की कीमत बढ़ने पर आप ऐसा ही पाएंगे. C'_1 वह सम-लागत रेखा है जो श्रम की कीमत बढ़ने पर Q_0 सम-उत्पाद वक्र को स्पर्श भर करती है.

सम-उत्पाद वक्र की परिभाषा से हम जानते हैं कि **सम-उत्पाद वक्र का हर बिंदु तकनीकी दक्षता सुनिश्चित करता है परन्तु प्रचलित बाज़ार भाव पर इन में से एक बिंदु ही संसाधनों का आर्थिक रूप से दक्षतम प्रयोग यानी न्यूनतम लागत सुनिश्चित करता है.**

उपरोक्त चर्चा दीर्घकाल के सन्दर्भ में है. अल्प काल में क्या होगा? स्पष्ट रूप से लागत न्यूनतम रखने के लिए यह आवश्यक है कि अपरिवर्तनशील संसाधन की स्थिर मात्रा पर न्यूनतम मात्रा में परिवर्तनशील संसाधनों का प्रयोग किया जाए. इस लिए पूँजी की मात्रा अपरिवर्तनशील होने पर विस्तार रेखा, यानी उत्पादन में बढ़ोतरी का वह पथ जिस पर संसाधनों की मौजूदा कीमतों पर उत्पादन का विस्तार होता है, क्ष अक्ष के समानान्तर होगी (और श्रम की मात्रा अपरिवर्तनीय होने पर य अक्ष के समानान्तर होगी).

[अब तक हम ने एक सामान्य उत्पादन फलन के माध्यम से उत्पादन फलन सम्बन्धी अवधारणाओं का अध्ययन किया है. अब हम उत्पादन फलन को एक विशिष्ट रूप दे कर कुछ अवधारणाओं को दोहरायेंगे. एक प्रचलित उत्पादन फलन, कॉब-डॉग्लस (*Cobb-Douglas*-उत्पादन फलन के दो अध्येताओं के नाम पर इस उत्पादन फलन का नाम रखा गया है) कहलाता है. इस के अनुसार

$$Q_x = A\, K^{\propto} L^{\beta}$$

उपरोक्त सूत्र में Q_x इंगित करता है x वस्तु का उत्पादन, $A, \propto$ (उच्चारण अल्फ़ा)एवं β (उच्चारण बीटा)अचर संख्या हैं जिन का मान स्थिर रहता है (परन्तु $\propto$ एवं β दोनों का मान शून्य से अधिक परन्तु एक से कम होता है), K उत्पादन में प्रयुक्त पूँजी की मात्रा एवं L श्रम की मात्रा इंगित करता है. यह कॉब-डॉग्लस फलन का सामान्य स्वरूप है. अब अगर हम अचर संख्याओं को निश्चित मान दे दें, तो हमें कॉब-डॉग्लस उत्पादन फलन का एक विशिष्ट रूप मिल जाएगा. सुविधा के लिए हम $\propto = 0.4$ एवं $\beta = 0.5$ मान लेते हैं. अब कॉब-डॉग्लस उत्पादन फलन हो जाएगा:

$$Q_x = AK^{0.4}L^{0.5}$$

अगर हम अल्प काल में पूँजी को स्थिर माने, तो सामान्य गणित का प्रयोग करने पर हम पाते हैं कि x वस्तु के उत्पादन में श्रम का के औसत उत्पादन-वक्र एवं सीमान्त उत्पादन-वक्र निम्न स्वरूप के होंगे: $AP_L^x = A\frac{K^{0.4}L^{0.5}}{L} = AK^{0.4}L^{0.5-1} = AK^{0.4}L^{-0.5}$ एवं $MP_L^x = AK^{0.4}0.5L^{-0.5}$

सामान्य गणित के प्रयोग से हम देख सकते हैं कि इस उत्पादन फलन में पूँजी के स्थिर रहने पर श्रम का सीमान्त उत्पादन घटता जाएगा. दीर्घकाल में इस उत्पादन फलन में पैमाने का घटता/ह्रासमान प्रतिफल दर्शाता है. अगर $Q_0 = AK_0^{0.4}L_0^{0.5}$ तो

$$Q_x = A(mK_0)^{0.4}(mL_0)^{0.5} = A(m)^{0.4}(K_0)^{0.4}(m)^{0.5}(L_0)^{0.5} = (m)^{0.9}A(K_0)^{0.4}(L_0)^{0.5} = (m)^{0.9}Q_0$$

उपरोक्त समीकरण दिखाता है कि अगर सभी संसाधनों की मात्रा m गुना कर दी जाए तो उत्पादन m गुना से कम बढ़ता है. इस लिए हम कह सकते हैं कि यह फलन पैमाने का घटता/ह्रासमान प्रतिफल दर्शाता है. उपरोक्त चर्चा यह भी दर्शाती है कि यह उत्पादन फलन समरूप (*homogenous*) है एवं इस की समरूपता की घात (degree of homogeneity) 0.9 है.

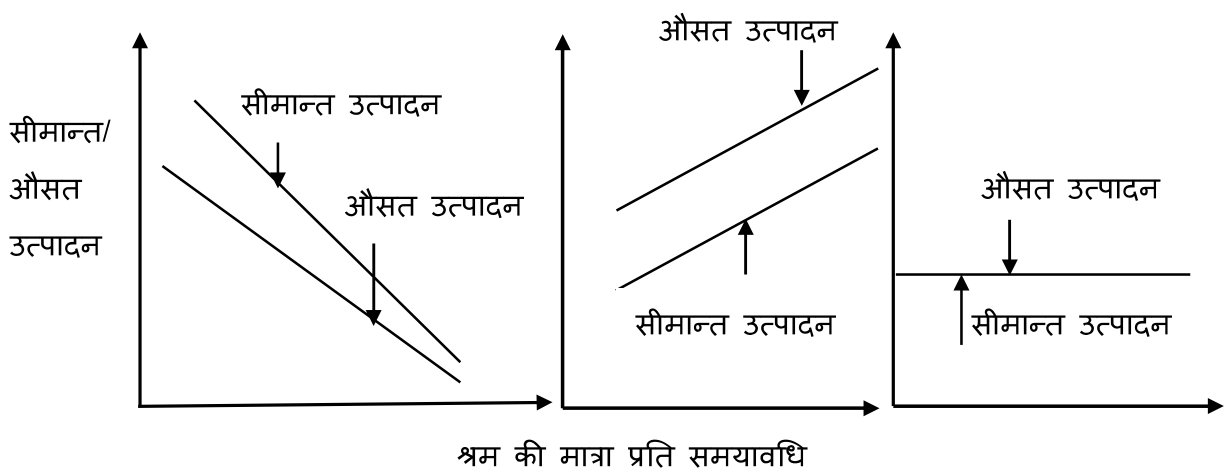
यह उत्पादन फलन का एक उदाहरण है. हम यह प्रक्रिया उत्पादन फलन के अन्य गणितीय स्वरूपों के साथ भी कर सकते हैं.]

इस अध्याय में हम ने उत्पादन फलन, उत्पादन सम्बन्धी समयावधि के विभाजन, सम-उत्पाद वक्र, पैमाने के नियम एवं अल्प काल में घटते सीमान्त उत्पाद इत्यादि की चर्चा की है. आप ने देखा होगा कि इस अध्याय में कई पुरानी अवधारणाओं का उपयोग हुआ है. इसी प्रकार से इस अध्याय की अवधारणाओं का आगे उपयोग होगा. इस लिए इन को अच्छे से समझना आवश्यक है. विशेष तौर पर समयावधि की अवधारणा, सीमान्त, औसत एवं कुल वक्र का परस्पर सम्बन्ध, तथा सम-उत्पाद वक्र का स्वरूप. इस अध्याय की सामग्री के आधार पर अगले अध्याय में हम अपने मूल प्रश्न आपूर्ति की ओर एक कदम और बढ़ायेंगे एवं उत्पादन लागत का अध्ययन करेंगे.

प्रश्न

1. उत्पादन की व्याख्या करें. (इस अध्याय में हम ने इस की चर्चा नहीं की है परन्तु हम इस का अध्ययन पहले ही कर चुके हैं). क्या दुकानदारी उत्पादक काम है?
2. उत्पादन के संसाधनों का वर्गीकरण कर के उन की स्पष्ट परिभाषा दें.
3. निम्न चित्रों में से कौन से चित्र औसत एवं सीमान्त उत्पादन के सम्बन्ध को सही से प्रदर्शित करते हैं. अपने उत्तर की तर्कपूर्ण व्याख्या करें.

चित्र अ, ब एवं स



4. निम्न को परिभाषित करें: सीमान्त उत्पादन, सीमान्त तकनीकी प्रतिस्थापन दर, सम-उत्पाद वक्र, सम-लागत-वक्र.
5. उत्पादन अवधि के वर्गीकरण पर प्रकाश डालें.

6. अगर अल्प काल में एक संसाधन की माला स्थिर रहे तो दूसरे संसाधन के सीमान्त उत्पादन के व्यवहार पर प्रकाश डालें.
7. हम आम तौर पर सम-उत्पाद वक्र को उत्तल (*convex*) क्यों मानते हैं?
8. क्या हम कह सकते हैं कि सीधी रेखा वाले हर सम-उत्पाद वक्र की ढलान हमेशा 45 डिग्री होगी? तर्कपूर्ण व्याख्या करें.
9. सम-उत्पाद वक्रों की सहायता से एक ऐसे उत्पादन फलन को चित्रित करें जिस में उत्पादन में घटता/ह्रासमान बदलाव प्रदर्शित होता हो.
10. कुल, औसत एवं सीमान्त उत्पादन के परस्पर सम्बन्ध की व्याख्या करें एवं चित्र द्वारा इंगित करें.
11. अगर अल्प काल में सीमान्त उत्पादन अंततः न घटे, तो इस का क्या प्रभाव होगा?
12. निम्न तालिका में श्रम का औसत उत्पादन दिया गया है. इस के आधार पर कुल एवं सीमान्त उत्पादन ज्ञात करें एवं तीनों का चित्रण करें. इस के बाद अभ्यास/पुष्टि के लिए पहले की गई सीमान्त उत्पादन की गणना के आधार पर औसत उत्पादन की गणना करें एवं देखे की क्या आप द्वारा की गई औसत उत्पादन की गणना प्रारम्भ में दी गई गणना से मेल खाती है.

श्रम की कुल माला	श्रम का औसत उत्पादन	कुल उत्पादन	श्रम का सीमान्त उत्पादन
1	10		
2	12		
3	11		
4	9		
5	8		
6	6		

13. [निम्न उत्पादन फलन के आधार पर श्रम के कुल उत्पादन, औसत उत्पादन एवं सीमान्त उत्पादन की गणना कर के तालिका बनाएँ एवं इन का चित्रण करें: $Q_x = K^{0.5}+L^{0.5}$. अगर आप को वर्गमूल लेने में दिक्कत होती है, तो ऐसी संख्याओं का चयन कर सकते हैं जिन का वर्गमूल आसानी से ज्ञात किया जा सकता है.]
14. उदासीनता-वक्र एवं सम-उत्पाद वक्र की समानताओं एवं विभिन्नताओं को चिह्नित करें.
15. क्या औसत एवं सीमान्त उत्पादन किन्हीं परिस्थितियों में कुल उत्पादन से भी अधिक हो सकता है? उदाहरण/तर्क सहित व्याख्या करें.
16. अल्पकालीन कुल उत्पादन-वक्र के तीनों चरणों को परिभाषित कर के इन का चित्रण करें.
17. अगर श्रम की एक अतिरिक्त इकाई के लिए पूँजी की दो इकाइयाँ त्यागी जा सकती हैं एवं उत्पादन स्तर स्थिर रहता है, तो $MRTS$ कितनी होगी एवं श्रम की सीमान्त उत्पादकता एवं पूँजी की सीमान्त उत्पादकता के बीच क्या सम्बन्ध होगा?
18. नियत उत्पादन स्तर पर न्यूनतम लागत एवं नियत लागत पर अधिकतम उत्पादन हेतु किन शर्तों का पूरा होना ज़रूरी है. अगर किसी शर्त को एक से अधिक रूप में लिखा जा सकता है, तो सभी रूपों को लिखें.
19. तकनीक में परिवर्तन का सम-उत्पाद वक्र पर क्या प्रभाव पड़ेगा?
20. उत्पादन का स्तर स्थिर होने पर श्रम की लागत घटने पर श्रम/पूँजी अनुपात पर क्या असर होगा?
21. अगर श्रम को य अक्ष पर चिह्नित किया जाए एवं पूँजी को क्ष अक्ष पर, उस अवस्था में $MRTS$ को परिभाषित करें एवं पूँजी एवं श्रम की सीमान्त उत्पादकता से इस का क्या सम्बन्ध होगा?

अध्याय - 8

उत्पादन लागत

किसी भी उत्पादक के लिए आपूर्ति सम्बन्धी निर्णय लेने में निश्चित तौर पर उत्पादन लागत भी एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण कारक होता है. इस अध्याय में हम उत्पादन लागत का अध्ययन करेंगे. स्पष्ट तौर पर उत्पादन लागत संसाधनों की उत्पादकता यानी उत्पादकता उत्पादन फलन एवं संसाधनों की कीमत पर निर्भर करेगी. उत्पादन फलन के बारे में हम पिछले अध्याय में पढ़ चुके हैं. इस अध्याय में संसाधनों की कीमत को अचल अथवा पूर्व निर्धारित मानेंगे. हम यह मान कर चलेंगे कि फ़र्म कितना भी उत्पादन करे, कितने भी उत्पादन के साधनों का प्रयोग करें, फ़र्म के लिए संसाधनों की कीमत स्थिर रहती है. संसाधनों की कीमत का निर्धारण कैसे होता है, एवं किन परिस्थितियों में संसाधनों की कीमत स्थिर रहती है, यह चर्चा हम बाद में करेंगे.

लागत की अवधारणा: हम पहले पढ़ चुके हैं कि कीमत से हमारा अभिप्राय उस राशि से है जिस कुल ख़र्च पर व्यक्ति को किसी वस्तु की एक इकाई मिलती है एवं यह केवल विक्रेता को देय राशि तक सीमित नहीं है. उदाहरण के लिए, कार ख़रीदने पर उस का पंजीकरण भी अनिवार्य रूप से कराना पड़ता है. इस लिए उपभोक्ता को कार ख़रीदने का निर्णय न केवल कार के शोरूम भाव को ध्यान में रख कर लेना पड़ेगा अपितु पंजीकरण शुल्क/बीमा इत्यादि जो भी अनिवार्य ख़र्च हैं उन सब को ध्यान में रख कर लेना पड़ेगा. लागत की गणना में हमें इस से भी आगे बढ़ना पड़ेगा.

अर्थशास्त्र में लागत के लिए अधिक उपयुक्त शब्द है **अवसर लागत** (opportunity cost) यानी **किसी संसाधन के किसी विशेष प्रयोजन हेतु प्रयोग की वास्तविक आर्थिक लागत वह आय है जो उस संसाधन के सर्वोतम वैकल्पिक प्रयोग से प्राप्त कर सकते हैं.** उदाहरण के तौर पर आप शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं. आप के लिए शिक्षा की लागत या कीमत क्या है? जाहिर है इस में फीस, किताबों का खर्चा एवं आने जाने का खर्चा शामिल तो होगा ही परन्तु आप के लिए शिक्षा की लागत मात्र इतनी ही नहीं है. शिक्षा की वास्तविक लागत में वह आय भी शामिल होगी जो फ़िलहाल आप शिक्षा न लेकर कमा सकते थे. शिक्षा प्राप्त करने के लिए नकद ख़र्च में अगर हम शिक्षा प्राप्त करने के लिए छोड़ी गई आय को जोड़ दें, तो हमें शिक्षा प्राप्त करने की असली लागत या आर्थिक लागत, जिसे अवसर लागत कहते हैं, प्राप्त होगी. एक अन्य उदाहरण लें. आप ने अपने घर के एक कमरे में दुकान शुरू की है जिस का आप को कोई किराया नहीं देना है. परन्तु अगर इस कमरे को किराए पर दिया जा सकता है, तो संभावित किराया, दुकान की आप की लागत में शामिल होना चाहिए. इस लिए अर्थशास्त्र में जब हम लागत की गणना करते हैं, तो उस में जेब से जाने वाली राशि के साथ-साथ, उत्पादन प्रक्रिया में प्रयुक्त अपने स्वयं के संसाधनों, का जो सब से बेहतर अन्य उपयोग हो सकता है, से मिलने वाली आय भी शामिल होती है.

'आर्थिक लागत' का यह व्यापक अर्थ हमें ध्यान में रखना चाहिए. यह ध्यान में रखना चाहिए कि **लागत का अर्थ नकद ख़र्च ही नहीं है, अपितु स्वयं के संसाधनों के वैकल्पिक सर्वोतम प्रयोग से मिलने वाली आय भी शामिल होती है.**

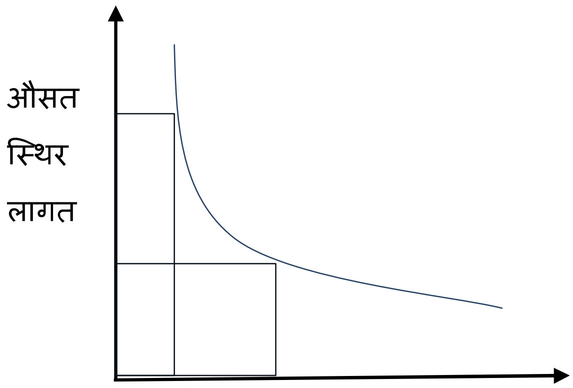
लागत के स्वरूप: उत्पादन की तरह, उत्पादन लागत के भी कई स्वरूप हो सकते हैं एवं इसे कई दृष्टिकोण से देखा जा सकता है: कुल लागत, औसत लागत एवं सीमान्त लागत. लागत को हम स्थिर लागत एवं परिवर्तनशील लागत में भी बांट सकते हैं. अति अल्प काल में सारी लागत स्थिर लागत होती है क्योंकि अति अल्प काल में उत्पादन के साधनों की मात्रा स्थिर रहती है. इस के विपरीत अल्प काल में कुछ लागत स्थिर होगी एवं कुछ परिवर्तनशील. इस के विपरीत दीर्घ काल एवं अति दीर्घकाल में सारी लागत परिवर्तनशील होती है.

अल्प काल में कुल स्थिर लागत (*Total fixed cost- TFC*), उदाहरण के तौर पर ज़मीन का ठेका या दुकान का किराया, उत्पादन स्तर से प्रभावित नहीं होती और स्थिर रहती है परन्तु औसत स्थिर लागत (*Average fixed cost -AFC*) उत्पादन बढ़ने के साथ घटती जाएगी. गणितीय सूत्र के रूप में लिखें तो x वस्तु की

$$AFC_x = \frac{TFC_x}{q_x}$$

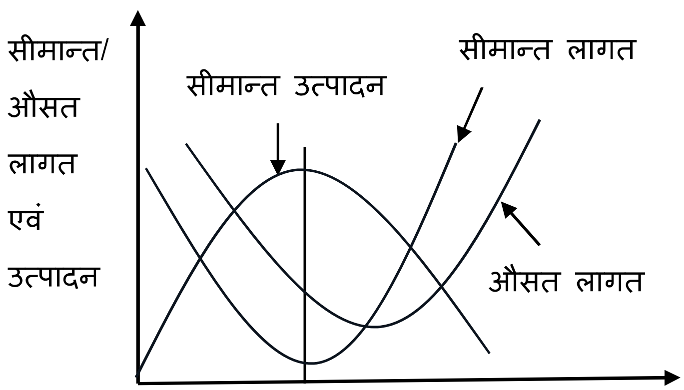
यहाँ q_x इंगित करता है x वस्तु का कुल उत्पादन (*quantity of* x). यह समीकरण स्वतः स्पष्ट है एवं तीनों चरों की परिभाषा पर आधारित है. चित्र के रूप में इस का स्वरूप चित्र *39* में इंगित है. गणित की भाषा में ऐसे समीकरण को समकोणीय/ आयताकार अतिपरवलय (*rectangular hyperbola*) कहते हैं. **इस की विशेषता यह होती है कि इस वक्र के किसी बिंदु को आयत का एक कोना मान कर एवं उद्गम बिंदु को दूसरा कोना मान कर खींची गई आयत का क्षेत्रफल स्थिर रहता है.** ऐसी आयत खींचने पर आप पायेंगे कि आयत का क्षेत्रफल ($AFC_x * q_x$) कुल स्थिर लागत के समान है जो परिभाषा के अनुसार अल्प काल में अपरिवर्तनीय ही होता है. सीमान्त स्थिर लागत क्या होगी? इस प्रश्न पर आप स्वयं विचार करें.

चित्र 39 समकोणीय/ आयताकार अतिपरवलय (*rectangular hyperbola*) वक्र



परिवर्तनशील लागत वक्रों का स्वरूप कैसा होगा? हम पढ़ चुके हैं कि आम तौर पर सीमान्त उत्पादन-वक्र उलटे *U* आकार का होता है. हम यह भी मान कर चल रहे हैं कि उत्पादन के साधनों की कीमत स्थिर है. इस लिए अगर सीमान्त उत्पादन बढ़ता है तो सीमान्त लागत कम होती जाएगी एवं अगर सीमान्त उत्पादन घटता है तो सीमान्त लागत बढ़ेगी. इस लिए सीमान्त लागत-वक्र सीमान्त उत्पादन-वक्र का उलटा होगा यानी सीधे *U* आकार का होगा.[38] इसे चित्र *40* में दिखाया गया है. सीमान्त लागत एवं औसत परिवर्तनशील लागत का सम्बन्ध भी वैसा ही होगा जैसा कि सीमान्त और औसत उत्पादन का होता है. इस की चर्चा हम पहले कर चुके हैं. जब सीमान्त लागत औसत से कम होती है तो औसत लागत घटती है एवं जब सीमान्त लागत औसत से ज़्यादा होती है, तब औसत लागत बढ़ती है.

चित्र 40 – सीमान्त उत्पादन, सीमान्त लागत एवं औसत लागत का सम्बन्ध

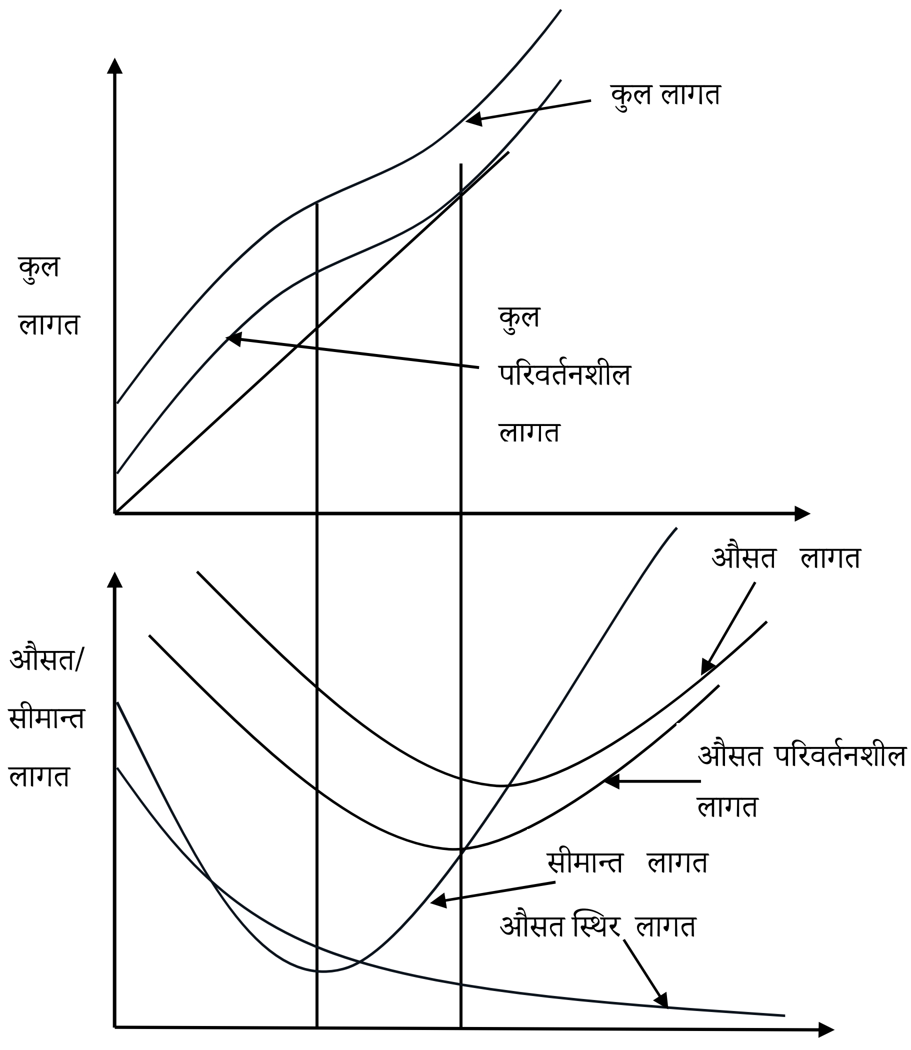


कुल परिवर्तनशील लागत-वक्र कैसा होगा? क्योंकि सीमान्त लागत धनात्मक है तो निश्चित तौर पर उत्पादन बढ़ने पर कुल परिवर्तनशील लागत बढ़ेगी यानी इस की ढलान भी धनात्मक होगी. हम यह भी जानते हैं कि सीमान्त चर कुल की ढलान के बराबर होता है. इस लिए जब तक सीमान्त लागत

---

[38] मान लें कि श्रम परिवर्तनशील संसाधन है तो हम निम्न गणितीय सूत्र का प्रयोग कर सकते हैं: $TVC_x = w * L$ जहाँ TVC_x इंगित करता है x वस्तु के उत्पादन की कुल परिवर्तनशील लागत (*total variable cost*), w इंगित करता है श्रम की कीमत (*wage rate*) एवं L इंगित करता है श्रम की मात्रा (*Labour*). अब अगर इस समीकरण का अवकलज/डेरिवेटिव लें और यह ध्यान में रखें कि फ़र्म के लिए w स्थिर है, तो हम पायेंगे कि $\frac{\delta TVC_x}{\delta x} = MC_x = w * \frac{\delta L}{\delta x} = w / \frac{\delta x}{\delta L} = w/MP_L$ यानी वस्तु की सीमान्त लागत (MC या $marginal\ cost\ of$) $=w/$श्रम की सीमान्त उत्पादकता. इस सूत्र से स्पष्ट है कि जब श्रम की सीमान्त उत्पादकता बढ़ती है, तो x वस्तु की सीमान्त लागत घटती है और सीमान्त उत्पादकता घटने पर सीमान्त लागत बढ़ेगी.

चित्र 41 – विभिन्न लागत वक्रों का परस्पर सम्बन्ध



घटेगी, तब तक कुल परिवर्तनशील लागत के बढ़ने की दर घटती रहेगी; इस की ढलान धनात्मक तो होगी पर घटती जाएगी. ध्यान दें कुल परिवर्तनशील लागत-वक्र की ढलान घटेगी न कि कुल परिवर्तनशील लागत. इस के विपरीत जब सीमान्त लागत बढ़ने लगेगी, तब कुल परिवर्तनशील लागत बढ़ती दर से बढ़ेगी यानी इस की ढलान बढ़ती जाएगी. वास्तव में, कुल, औसत एवं सीमान्त का सम्बन्ध एक सा रहेगा (जिन के बारे में हम पहले ही पढ़ चुके हैं) चाहे लागत हो, उत्पादन हो, उपयोगिता हो या राजस्व या कुछ और. ऐसा इस लिए है क्योंकि इन की परिभाषा एक है. चित्र *41* में सभी लागत-वक्र एक साथ दिखाए गए हैं. **निम्नलिखित लागत वक्रों के कुछ सामान्य गुण हैं, जो उन की परिभाषा में ही निहित है. लागत वक्रों को खींचते हुए इन का ध्यान रखना चाहिए.**

1. किसी भी उत्पादन स्तर पर कुल लागत एवं कुल परिवर्तनशील लागत का अंतर स्थिर रहता है एवं यह अंतर यह कुल स्थिर लागत के समान रहता है.

2. औसत लागत एवं औसत परिवर्तनशील लागत का अंतर उत्पादन बढ़ने के साथ घटता जाता है क्योंकि उत्पादन बढ़ने के साथ औसत स्थिर लागत घटती जाती है.

3. औसत लागत एवं कुल लागत का सम्बन्ध: क्योंकि कुल लागत को उत्पादन से भाग देने पर हमें औसत लागत प्राप्त होती है. इस लिए गणितीय दृष्टि से औसत लागत कुल लागत को मूल बिंदु से जोड़ने वाली रेखा की ढलान के बराबर होती है. इस का अर्थ है जब औसत लागत न्यूनतम होती है, उस उत्पादन स्तर पर कुल लागत-वक्र को मूल बिंदु से जोड़ने वाली रेखा की ढलान न्यूनतम होती है एवं इस के बाएँ एवं दाएँ ओर दोनों ओर जाने पर वह बढ़ने लग जाती है.

4. सीमान्त लागत कुल लागत की स्पर्श रेखा की ढलान के बराबर होती है. ध्यान रहे औसत लागत कुल लागत-वक्र को मूल बिंदु से जोड़ने वाली रेखा की ढलान के बराबर होती है जबकि सीमान्त लागत कुल लागत-वक्र की ढलान के बराबर होती है. जब तक सीमान्त लागत घटती है, तब तक कुल लागत-वक्र की ढलान/ उस की स्पर्श रेखा की ढलान भी घटती जाती है. जब सीमान्त लागत बढ़ने लगती है, तब कुल लागत-वक्र की ढलान/उस की स्पर्श रेखा की ढलान बढ़ने लगती है.

5. जब तक सीमान्त लागत औसत लागत से कम रहती है, औसत लागत घटती जाती है एवं जब सीमान्त लागत औसत लागत से बढ़ जाती है, तब औसत लागत बढ़ने लग जाती है. इस का प्रभाव यह होता है कि औसत लागत का न्यूनतम बिंदु, सीमान्त लागत के न्यूनतम स्तर के दाईं ओर होता है. औसत लागत के न्यूनतम स्तर पर उत्पादन सीमान्त उत्पादन के न्यूनतम स्तर से ज़्यादा होगा.

6. लागत-वक्र एक दूसरे से जुड़े हुए हैं. अगर हमें कुल परिवर्तनशील लागत या औसत परिवर्तनशील लागत या सीमान्त लागत में से किसी एक की भी जानकारी है तो हम शेष का पता कर सकते हैं.[39] इन में से किसी एक के साथ ही अगर हमें कुल स्थिर लागत या औसत स्थिर लागत की जानकारी हो तो कुल लागत, कुल औसत लागत एवं सीमान्त लागत की गणना की जा सकती है.

अभ्यास के लिए निम्न तालिका को पूरा करें.

कुल उत्पादन इकाई (1)	कुल लागत (2)	कुल परिवर्तनशील लागत (3)	सीमान्त लागत (4)	औसत लागत (5)	औसत स्थिर लागत (6)	औसत परिवर्तनशील लागत (7)
0	20					
1	*28*					
2	*36*					
3	*39*					
4	*44*					
5	*50*					
6	*66*					

उपरोक्त तालिका में हम पाते हैं कि शून्य उत्पादन पर भी लागत 20 रुपये है. इस का अर्थ है कि यह स्थिर लागत है. इस को कुल उत्पादन से भाग कर के हम औसत स्थिर लागत ज्ञात कर सकते हैं. कुल लागत से इस को घटा कर हम कुल परिवर्तनशील लागत की गणना कर सकते हैं. कुल उत्पादन में एक इकाई की वृद्धि होने पर कुल लागत में होने वाली वृद्धि सीमान्त लागत इंगित करती है. कुल लागत को उत्पादन से भाग देने पर हमें औसत उत्पादन लागत ज्ञात हो जाती है. इस प्रकार पूरी तालिका पूरी की जा सकती हैं.

दीर्घकालीन लागत-वक्र: अब तक हम अल्पकालिक लागत-वक्र का अध्ययन कर रहे थे. इस लिए कुछ लागत परिवर्तनशील थी और कुछ लागत स्थिर. दीर्घकालीन लागत-वक्र कैसा होगा एवं अल्पकालीन लागत-वक्र से इस का सम्बन्ध कैसा होगा, अब इस पर चर्चा करेंगे. फ़िलहाल हम यह मान कर चलते हैं कि संसाधनों की कीमत स्थिर है यानी अल्प काल एवं दीर्घ काल दोनों में संसाधनों की कीमत एक समान है. विचार करें और बताएँ कि क्या अल्पकालीन लागत दीर्घ कालीन लागत से कम हो सकती है?

दीर्घकाल में उत्पादक के पास ज़्यादा विकल्प होते हैं. वह सभी संसाधनों की मात्रा बदल सकता है. इस के विपरीत अल्पकाल में उत्पादक के पास सीमित विकल्प होते हैं क्योंकि वह कुछ संसाधनों की मात्रा नहीं बदल सकता. इस लिए जो कुछ अल्पकाल में संभव है, वह तो दीर्घकाल में संभव होता ही है, दीर्घकाल में वह भी संभव हो सकता है जो अल्पकाल में संभव नहीं होता. इस लिए किसी भी उत्पादन स्तर के लिए दीर्घकालीन कुल/औसत लागत 'न्यूनतम संभव' कुल/औसत लागत होती है. 'न्यूनतम संभव' को ठीक से समझना ज़रूरी है. दीर्घकालीन लागत की गणना भी हम इस आधार पर कर रहे हैं कि उत्पादक के लिए संसाधनों की कीमत तय है, उस के व्यवहार से संसाधनों की कीमत प्रभावित नहीं होती एवं तकनीक भी तय है. परन्तु अगर इन दोनों में से कोई भी कारक बदलता है तो

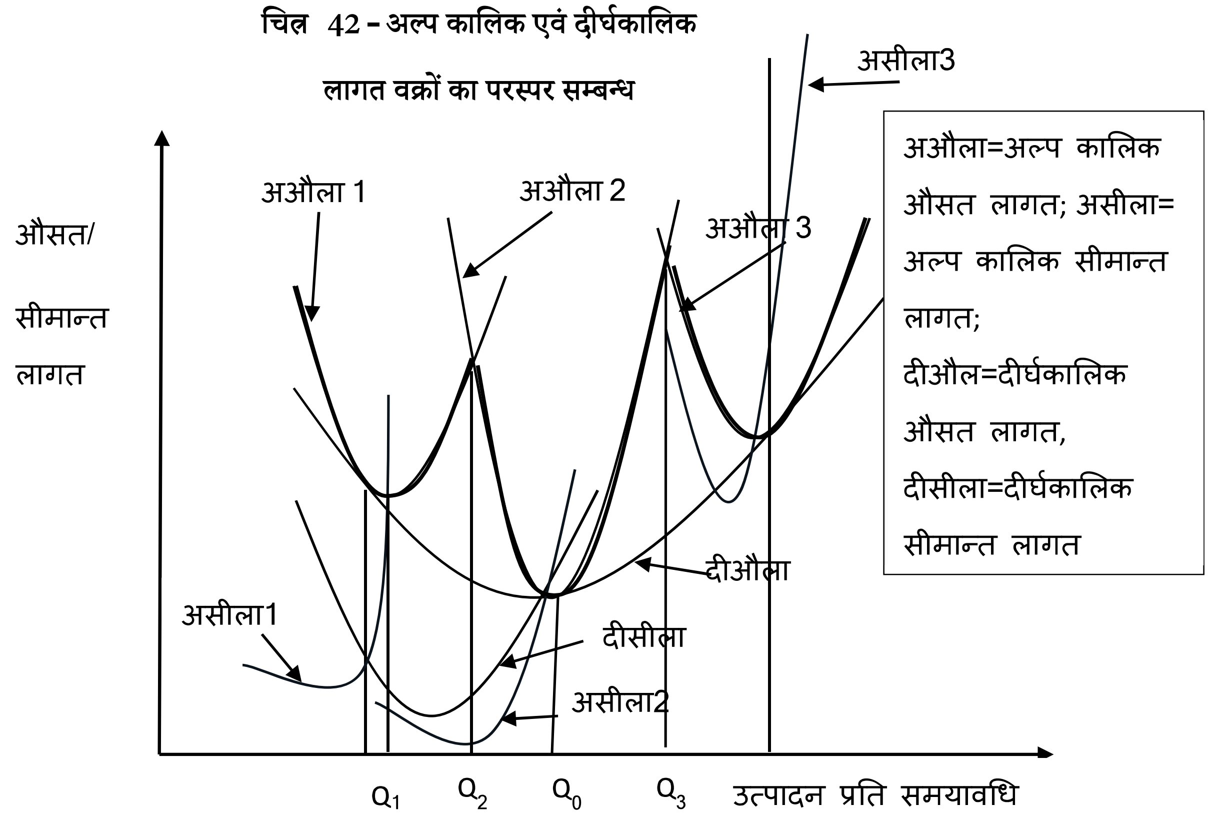
---

[39] गणितीय दृष्टि से स्पष्ट तौर पर औसत एवं कुल की अवधारणायें परस्पर जुड़ी हुई हैं. सीमान्त कुल का अवकलज/डेरिवेटिव है एवं कुल सीमान्त का **इंटिग्रल/प्रति-अवकलज/समाकलन** (integral) है. अगर हम सीमान्त लागत की गणना के लिए डेरिवेटिव का प्रयोग नहीं कर रहे, तो सीमान्त लागत के सामान्य जोड़ से कुल लागत प्राप्त की जा सकती है. उदाहरण के तौर पर 5 इकाइयों की कुल उत्पादन लागत पहली पांच इकाइयों की सीमान्त लागत के जोड़ से प्राप्त की जा सकती है.

लागत बदल सकती है. परन्तु जब तक इन दोनों कारकों में बदलाव नहीं होता (या उत्पादक के लक्ष्यों में बदलाव नहीं होता) तब तक दीर्घकालीन कुल/औसत लागत-वक्र न्यूनतम संभव कुल/औसत लागत दर्शाता है.

चित्र 42 में तीन अल्पकालिक औसत लागत-वक्र (अऔला 1 से 3) दर्शायें गए हैं. सुविधा के लिए हमने यह माना है कि किसी उद्योग में उत्पादन के लिए तीन तरह की फैक्टरी लग सकती है - थोड़े उत्पादन वाली, उस से अधिक उत्पादन वाली एवं उस से भी अधिक उत्पादन वाली. मात्र सुविधा के लिए हम तीन तरह की फैक्टरी ले रहे हैं, इन की संख्या बढ़ने से भी कोई फर्क नहीं पड़ेगा.

चित्र 42 – अल्प कालिक एवं दीर्घकालिक लागत वक्रों का परस्पर सम्बन्ध



अगर उत्पादक को अनुमान है कि उस की बिक्री Q_1 हो सकती है, तो वह कौन सी फैक्टरी लगाएगा? स्पष्ट रूप से वह छोटी फैक्टरी लगाएगा एवं उस का अल्पकालिक औसत लागत-वक्र (अऔला)1 होगा. अगर उस की बिक्री बढ़ जाती है तो भी वह उसी फैक्टरी में उत्पादन जारी रखेगा हालाँकि अब उस की औसत उत्पादन लागत बढ़ जाएगी. Q_2 तक वह उसी फैक्टरी में उत्पादन जारी रखेगा क्योंकि इस उत्पादन स्तर तक भले ही उस की औसत लागत बढ़ रही है फिर भी यह बड़ी फैक्टरी में आने वाली औसत लागत से कम है. परन्तु अगर उत्पादक को लगता है कि उस की बिक्री Q_2 से अधिक होगी, तब वह बड़ी फैक्टरी लगा लेगा जिस से उस की औसत लागत घट जाएगी. चित्र में हम देख रहे हैं कि औसत उत्पादन लागत कुछ हद तक उत्पादन बढ़ने पर घटती रहेगी परन्तु उस के बाद बढ़ने लग जाएगी परन्तु Q_3 उत्पादन स्तर तक पहुँचने तक, उसी फैक्टरी से उत्पादन किया जाएगा. Q_3 से अधिक उत्पादन के लिए ही नई फैक्टरी लगाना उपयोगी होगा. दीर्घकाल में यही उत्पादक का विस्तार पथ होगा. उपरोक्त चित्र में मोटी रेखा इस दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र को दर्शाती है. क्योंकि हम ने यह माना है कि केवल तीन स्तर की फैक्टरी ही संभव है, इस लिए इस दीर्घकालीन वक्र में तीखे मोड़ हैं. अगर हम संभावित फैक्ट्रियों की संख्या बढ़ा दें तो ये तीखे मोड़ कम हो जाएँगे. क्योंकि दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र न्यूनतम संभव औसत लागत इंगित करता है इस लिए इसे अल्प कालिक औसत लागत वक्रों की निचली सीमा (*lower envelope)* भी कहा जाता है.

चित्र 42 में स्पष्ट देखा जा सकता है कि दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र के न्यूनतम बिंदु से बाईं ओर, यानी Q_0 से बाईं ओर, अल्प कालिक एवं दीर्घकालिक औसत लागत-वक्र ऋणात्मक ढलान पर एक दूसरे को छूते हैं एवं अल्प कालिक औसत लागत-वक्र का

न्यूनतम बिंदु दोनों के स्पर्श-बिंदु से दाईं ओर है. दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र के न्यूनतम बिंदु से दाईं ओर, यानी Q_0 से दाईं ओर, स्थिति ठीक इस के विपरीत है. यहाँ अल्प कालिक एवं दीर्घकालिक औसत लागत-वक्र धनात्मक ढलान पर एक दूसरे को छूते हैं एवं अल्प कालिक औसत लागत-वक्र का न्यूनतम बिंदु दोनों के स्पर्श-बिंदु से बाईं ओर है. दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र के न्यूनतम बिंदु पर अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक न्यूनतम लागत समान होती है. दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र के न्यूनतम बिंदु के दोनों ओर एक बात समान है. अल्पकालीन औसत लागत-वक्र का न्यूनतम बिंदु उस उत्पादन स्तर पर दीर्घकालीन औसत लागत से ऊपर होता है. ऐसा क्यों होता है इस बाबत हम ऊपर चर्चा कर चुके हैं.

हम यह मान कर चलते हैं कि आम तौर पर दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र भी U आकार का होता है. निश्चित तौर पर सभी वस्तुओं का लागत-वक्र U आकार का नहीं होता. इस लिए जब हमें किसी निश्चित वस्तु के उत्पादन के सम्बन्ध में निर्णय लेना होगा, तब हम उस वस्तु के लागत-वक्र को ध्यान में रखेंगे परन्तु अगर हम किसी विशेष वस्तु की बात नहीं कर रहे, तो हम आम तौर पर इसे U आकार का मान कर चलेंगे. लागत-वक्र का U आकार दर्शाता है कि उत्पादन बढ़ने पर पहले औसत दीर्घकालीन लागत घटती जाती है परन्तु एक सीमा के बाद यह बढ़ने लग जाती है. ऐसा क्यों होता है? इस पर चर्चा करने से पहले एक अन्य विषय का अध्ययन करना ज़रूरी है.

दीर्घकालीन सीमान्त लागत-वक्र एवं अल्प कालिक सीमान्त लागत-वक्र का सम्बन्ध: जहाँ पर दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र एवं अल्पकालीन औसत लागत-वक्र एक दूसरे को छूते हैं, स्पर्श करते हैं, वहाँ पर दीर्घ कालीन और अल्प कालीन औसत लागत समान होती है. जाहिर है यहाँ पर दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन कुल लागत भी समान होंगी एवं दोनों तरह के कुल लागत-वक्र एक दूसरे को स्पर्श करेंगे. **जहाँ कुल लागत-वक्र एक दूसरे को स्पर्श करते हैं, वहाँ दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन, दोनों, सीमान्त लागत भी समान होगी क्योंकि दोनों कुल वक्रों की स्पर्श रेखा एक ही होगी.** परन्तु दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन औसत/कुल लागत के स्पर्श-बिंदु के बाएँ/दाएँ क्या होगा? स्पर्श-बिंदु के दाईं ओर अल्पकालीन लागत दीर्घकालीन लागत से ज़्यादा तेज़ी से बढ़ती है, इस लिए स्पर्श-बिंदु के दाईं ओर अल्पकालीन सीमान्त लागत दीर्घकालीन सीमान्त लागत से ज़्यादा होगी. अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक औसत/कुल लागत-वक्र के स्पर्श-बिंदु के बाईं ओर स्थिति ठीक उलटी होगी. स्पर्श-बिंदु से बाईं ओर अल्प कालिक औसत लागत दीर्घकालिक लागत से ज़्यादा होती है परन्तु स्पर्श-बिंदु तक आते-आते दोनों बराबर हो जाती हैं. इस से स्पष्ट है कि स्पर्श-बिंदु से बाईं ओर दीर्घकालीन लागत अल्पकालीन लागत की तुलना में ज़्यादा तेज़ी से बढ़ती है. इस का अर्थ है कि स्पर्श-बिंदु के बाईं ओर दीर्घकालीन सीमान्त लागत अल्पकालीन सीमान्त लागत से ज़्यादा होगी.[40] तालिका *4* में इन बातों को ही दोहराया गया है.

तालिका *4*
अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन सीमान्त लागत का परस्पर सम्बन्ध

बिंदु	दीर्घकालीन और अल्पकालीन औसत लागत के स्पर्श-बिंदु के बाईं ओर	दीर्घकालीन और अल्पकालीन औसत लागत के स्पर्श-बिंदु पर	दीर्घकालीन और अल्पकालीन औसत लागत के स्पर्श-बिंदु के दाईं ओर
सम्बन्ध	अल्पकालीन सीमान्त लागत $<$ दीर्घकालीन सीमान्त लागत	अल्पकालीन सीमान्त लागत $=$ दीर्घकालीन सीमान्त लागत	अल्पकालीन सीमान्त लागत $>$ दीर्घकालीन सीमान्त लागत

[40] इस लिए चित्रांकन में पहले उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर पहले अल्पकालिक सीमान्त लागत वक्र खींच कर अंत में दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र खींचना उपयुक्त रहता है.

स्वयं दीर्घकालिक एवं अल्पकालिक लागत वक्रों (सभी तरह के लागत वक्रों परन्तु विशेष तौर पर औसत एवं सीमान्त लागत वक्रों) को एक ही चित्र में दर्शाने का पर्याप्त अभ्यास कर लें क्योंकि भविष्य में इन का बार-बार प्रयोग होगा.

उत्पादन बढ़ने पर लागत में परिवर्तन के कारण: ऊपर हम ने कहा था कि आम तौर पर दीर्घकालीन औसत वक्र को *U* आकार का माना जाता है. *U* आकार का अर्थ है कि उत्पादन बढ़ने पर औसत लागत घट भी सकती है और बढ़ भी सकती है. अगर उत्पादन बढ़ने पर औसत लागत घटती है, तो हम इसे उत्पादन स्तर बढ़ने के कारण होने वाली बचत यानी बढ़ते पैमाने की बचत अथवा उत्पादन स्तर मूलक लाभ (*economies of scale)* कहते हैं. अगर उत्पादन बढ़ने पर औसत लागत बढ़ती है, तो इसे उत्पादन स्तर बढ़ने के कारण होने वाली हानि यानी बढ़ते पैमाने का नुकसान अथवा उत्पादन स्तर मूलक अलाभ (*diseconomies of scale)* कहते हैं. उत्पादन का स्तर बढ़ने के कारण औसत लागत में होने वाली कमी अथवा बढ़ोतरी के कारणों को दो अलग तरीकों -आतंरिक और बाह्य कारण (*internal and externa)l* , तकनीकी या वास्तविक (*real)* और मौद्रिक (*pecuniary)* - से कुल चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है. **अगर उत्पादन लागत में परिवर्तन केवल उत्पादक के अपने उत्पादन स्तर में परिवर्तन के कारण हो रहा है तो उस को हम उत्पादन स्तर की आन्तरिक बचत अथवा नुकसान मानेंगे. अगर औसत लागत में परिवर्तन उत्पादक के स्वयं उत्पादन बदलने के कारण नहीं अपितु अन्य अथवा बाह्य उत्पादकों के उत्पादन में परिवर्तन होने के कारण हो रहा है तो हम उसे बाह्य बचत अथवा नुकसान कहेंगे.**[41] आन्तरिक एवं बाह्य बचत/हानि भी दो कारणों से हो सकती हैं. **अगर औसत उत्पादन लागत में परिवर्तन संसाधनों की औसत प्रयोग मात्रा या प्रति इकाई उत्पादन में प्रयोग संसाधनों की मात्रा में बदलाव के कारण हो रहा है, तो हम उसे तकनीकी अथवा वास्तविक बचत अथवा नुकसान कहेंगे. अगर लागत में परिवर्तन संसाधनों के औसत प्रयोग में परिवर्तन के कारण न हो कर, संसाधनों की कीमतों में परिवर्तन के कारण होता है, तो हम उसे मौद्रिक बचत अथवा नुकसान कहेंगे.**

इन चार श्रेणियों के कारकों पर चर्चा करने से पहले हम यह याद कर लें कि उत्पादन लागत और उत्पादन फलन परस्पर जुड़े हुए हैं. उत्पादन फलन का अध्ययन करते हुए हम ने पिछले अध्याय में पाया था कि दीर्घकाल में उत्पादन फलन तीन तरह के हो सकते हैं. परन्तु तब हम ने इन के कारणों की चर्चा नहीं की थी. वर्तमान वर्गीकरण के आधार पर हम कह सकते हैं कि पैमाने के प्रतिफल को प्रभावित करने वाले तत्त्व आन्तरिक एवं वास्तविक श्रेणी के हो सकते हैं-यानी **चार तरह के कारकों में से केवल एक श्रेणी के कारक पैमाने के प्रतिफल को प्रभावित करते हैं. अन्य तीन श्रेणियों के कारक, मौद्रिक एवं वास्तविक बाह्य एवं आन्तरिक मौद्रिक प्रभाव, पैमाने के प्रतिफल को प्रभावित नहीं कर सकते हालाँकि ये कारक उत्पादन लागत को अवश्य प्रभावित कर सकते हैं.**

बढ़ते पैमाने की बचत एवं नुकसान के कारक: उत्पादन फलन में वृद्धिमान बदलाव का एक बड़ा कारण उत्पादन बढ़ने पर श्रम एवं मशीनों दोनों में विशेषज्ञता (*specialisation)* विकसित होना है. उत्पादन बढ़ने से मशीनों एवं मनुष्यों दोनों की विशेषज्ञता बढ़ सकती है; विशेषज्ञता बढ़ने से उत्पादकता बढ़ सकती है जिस के चलते औसत लागत घट जाती है. कपड़ों की सिलाई का उदाहरण लें. शुरुआत में माँग एवं उत्पादन कम होने के चलते एक कारीगर एवं एक सिलाई मशीन की ही ज़रूरत होगी. एक ही व्यक्ति को महिलाओं, पुरुषों, बच्चों के घर पहनने एवं बाहर पहनने के कपड़ों को सीना होगा एवं एक ही मशीन से यह काम करना होगा. अगर उत्पादन का स्तर बढ़ जाता है तो कई कारीगर एवं कई मशीनों की ज़रूरत पड़ेगी. अब यह संभव है कि एक कारीगर एक ख़ास किस्म का काम ही करें एवं उस में विशेषज्ञता हासिल करे. ऐसा करने पर उस की दक्षता बढ़ सकती है जिस के चलते उस की उत्पादकता बढ़ जाएगी एवं उत्पादन लागत कम हो जाएगी. यही स्थिति मशीनों की भी हो सकती है. एक ही मशीन से कई तरह के काम करने की बजाय, अलग-अलग कामों के लिए अधिक दक्ष अलग-अलग मशीन विकसित की जा सकती हैं. श्रमिकों एवं मशीनों द्वारा विशेषज्ञता हासिल करने से लागत कम हो जाती है. अगर दक्षता या विशेषज्ञता बढ़ना आन्तरिक उत्पादन बढ़ने के कारण संभव होता है एवं इस के चलते संसाधनों का वास्तविक प्रयोग कम हो जाता है, तो यह कारक आन्तरिक एवं वास्तविक बचत का कारण बनता है.

---

[41] बाह्य बचतें या नुकसान (external economies or diseconomies) बाह्यता (externality) से जुड़ी हैं, परन्तु बाह्यता कहीं अधिक व्यापक अवधारणा हैं. बाह्यता पर हम पुस्तक के अंतिम हिस्से में चर्चा करेंगे.

दो परिस्थितियों की तुलना करें. पहली परिस्थिति में एक इलाके में एक तरह की एक ही फैक्टरी है एवं दूसरी परिस्थिति में उसी इलाके में उस तरह की कई फैक्टरियां हैं. पहली परिस्थिति में प्रशिक्षित श्रमिक एवं मशीनों के कल पुर्जे एवं उस की मरम्मत करने की सुविधाएँ कम होंगी एवं उन की लागत ज़्यादा होगी- क्योंकि यह सुविधा अधिक दूरी पर उपलब्ध होगी. इस के विपरीत अगर एक इलाके में कई फैक्टरियां हैं तो वहाँ प्रशिक्षित श्रमिकों एवं मशीनों के कल पुर्जों की उपलब्धता तथा मरम्मत की सुविधा बेहतर हो जाएगी एवं इन की लागत में कमी आ जाएगी. यह उत्पादन लागत में बचत का बाह्य एवं मौद्रिक कारण होगा.

आम तौर पर उत्पादन बढ़ने से परिवहन एवं उत्पादन को रखने/स्टोर करने की लागत उत्पादन बढ़ने के अनुपात में नहीं बढ़ती. सामान्य गणित के अनुसार अगर हमें एक घन मीटर (एक मीटर चौड़ी, एक मीटर लम्बी एवं एक मीटर ऊँची) सामग्री को पैक करना या रखना है, तो हमें एक घन मीटर का गोदाम या बर्तन बनाना होगा जिस के लिए 6 वर्ग मीटर के बराबर सामग्री लगेगी. परन्तु अगर बर्तन या गोदाम की लम्बाई, चौड़ाई एवं ऊँचाई को दोगुना कर दें, तो इस के निर्माण में सामग्री 24 वर्ग मीटर लगेगी यानी 4 गुणा लागत आयेगी परन्तु उस में माल 8 घन मीटर आयेगा. यानी लागत 4 गुणा हुई जबकि भण्डारण क्षमता 8 गुणा बढ़ गई. निश्चित तौर पर औसत लागत घट जाएगी. ऐसे ही परिवहन लागत भी उत्पादन के अनुपात में न बढ़ कर कम बढ़ती है, जिस के चलते औसत लागत घट जाती है. कई बार अन्य कारणों से भी उत्पादन के साधन उत्पादन के अनुपात में नहीं बढ़ते. जैसे, उत्पादन बढ़ने पर गेट पर रखे चौकीदार तब तक नहीं बढ़ेंगे जब तक की नए भवन की ज़रूरत न हो जाए. एक सीमा तक उत्पादन बढ़ने पर अतिरिक्त मानव श्रम की ज़रूरत नहीं पड़ती एवं उसी कारीगर से काम चल जाता है. जैसे अगर मेहमानों की संख्या 50 की बजाय 60 हो जाए तो अतिरिक्त खाद्य सामग्री की ज़रूरत तो पड़ती है परन्तु अतिरिक्त हलवाई की नहीं. ये कारक किस श्रेणी के हैं? आन्तरिक एवं वास्तविक.

अगर एक क्षेत्र में कई फैक्टरियां लग जाती हैं और सरकार वहाँ पर बेहतर बुनियादी सुविधाएँ सड़कें, बैंक इत्यादि उपलब्ध करा देती है, तो भी लागत कम हो जाएगी. यह बाह्य बचत का कारण बनेगा क्योंकि लागत में कमी एक फैक्टरी के उत्पादन बढ़ाने के कारण नहीं हुआ अपितु फैक्ट्रियों की संख्या बढ़ने के कारण हुआ है. यह बाह्य बचत, वास्तविक एवं मौद्रिक दोनों तरह की हो सकती है.

औसत लागत घटने का एक अन्य बड़ा कारण यह है कि ज़्यादा वस्तु ख़रीदने पर कीमत कम हो जाती है. जब उत्पादन बढ़ता है तो उत्पादन में लगने वाली सामग्री की मात्रा भी बढ़ जाती है जिस से उस की कीमत कम हो जाती है. इस प्रक्रिया के चलते संसाधनों के प्रयोग में तो कोई बचत नहीं होती अपितु उन की लागत अवश्य कम हो जाती है. इस लिए यह कारक आन्तरिक एवं मौद्रिक बचत का कारण बनता है.

उपरोक्त कारणों से उत्पादन बढ़ने पर औसत लागत कम होती जाती है. अगर उत्पादन बढ़ाने पर विशेषज्ञता में बढ़ोतरी न हो और संसाधन उसी अनुपात में बढ़ाने पड़ें तो लागत स्थिर रहेगी. इस स्थिति में पैमाने का प्रतिफल स्थिर अथवा समानुपाती होगा. उदाहरण के तौर पर 2 एकड़ कपास की चुगाई की लागत एक-एकड़ की चुगाई की लागत से दोगुनी ही पड़ेगी क्योंकि इस में एक ही काम को दोहराना पड़ता है एवं इस लिए विशेषज्ञता विकास की संभावना नहीं है. इस के विपरीत कुछ परिस्थितियों में उत्पादन बढ़ने से लागत बढ़ भी सकती है. इस के भी कई कारण हो सकते हैं. एक बड़ा कारण तो यह है कि सभी उत्पादन के साधनों को उत्पादन के अनुपात में बढ़ाना कई बार संभव नहीं होता. एक जगह पर उत्पादन होने से मालिक/मैनेजर स्वयं पूरी उत्पादन प्रक्रिया पर निगाह रख सकता है परन्तु अगर दुकानों/फैक्ट्रियों की संख्या बढ़ जाती है तो सब जगह वैसी निगाह रखना संभव नहीं होता जिस के चलते औसत लागत बढ़ सकती है (आन्तरिक एवं वास्तविक कारक).

थोड़े अनाज उत्पादन के लिए सब से उत्तम ज़मीन का प्रयोग किया जा सकता है परन्तु अगर अधिक अनाज चाहिए तो संभव है हमें कम गुणवत्ता यानी कम उत्पादक ज़मीन का प्रयोग करना पड़े जिस के चलते उत्पादन लागत बढ़ जाएगी. ऐसी ही स्थिति न केवल खनिज उत्पादन में हो सकती है परन्तु अन्य वस्तुओं के उत्पादन में भी हो सकती है. पहली फैक्टरी सड़क के करीब हो परन्तु वहाँ उत्पादन बढ़ाना संभव न हो. नई फैक्टरी सड़क से दूर लगानी पड़ सकती है जिस से उत्पादन लागत बढ़ सकती है. यह आन्तरिक एवं वास्तविक हानि का कारण बन सकता है. इस के चलते पैमाने का प्रतिफल ह्रास्मान हो सकता है. परन्तु यही स्थिति बाह्य कारणों से भी हो सकती है. उदाहरण के तौर पर आप के पड़ोस में कई ट्यूबवेल लग जाने से आप का सिंचाई का खर्चा बढ़ जाता है क्योंकि आप के ट्यूबवेल का पानी

कम हो जाता है. इस स्थिति में फसल की सिंचाई की ज़रूरत में कोई बदलाव नहीं हुआ परन्तु उस की लागत बढ़ गई है. यह किस श्रेणी का कारक होगा? बाह्य एवं मौद्रिक.

उत्पादन लागत बढ़ने का एक बड़ा कारण बढ़ता प्रदूषण भी होता है. थोड़ा उत्पादन होता है तो प्रदूषण भी थोड़ा होता है. थोड़े प्रदूषण के प्रबंधन की लागत शून्य या कम हो सकती है. उत्पादन बढ़ने पर प्रदूषण ज़्यादा होता है एवं उस के प्रबंधन की लागत बहुत ज़्यादा हो सकती है. उदाहरण के लिए, अगर गाँव में एक वाहन चलता है, तो प्रदूषण होता है परन्तु उस के विशेष दुष्प्रभाव नहीं होते. अंत: उस से निपटने के लिए कोई विशेष उपाय भी नहीं करना पड़ता. परन्तु जब हजारों की संख्या में वाहन हो जाते हैं, तो न केवल प्रदूषण बढ़ता है अपितु उस के दुष्प्रभाव कई गुणा बढ़ते हैं जिन्हें अनदेखा नहीं किया जा सकता. इस लिए प्रदूषण-नियंत्रण के उपाय करने पड़ते हैं, जिस से लागत बढ़ जाती है.

ऐसा नहीं है कि ये कारक अलग-अलग वस्तुओं के उत्पादन पर लागू होंगे या एक ही वस्तु के उत्पादन में अलग-अलग उत्पादन स्तर पर ही लागू होंगे. यह भी संभव है कि ये कारक हर वस्तु के उत्पादन के हर स्तर पर प्रभावी हों परन्तु इन का प्रभाव एक जैसा न हो. उदाहरण के लिए, भोजन की व्यवस्था करने में मेहमानों की संख्या बढ़ने पर शुरुआत में हलवाईयों की संख्या उसी अनुपात में न बढ़ानी पड़े जिस के चलते औसत लागत कम हो सकती है परन्तु पर्यवेक्षण/देखरेख (*supervision)* की कमी से लागत बढ़ सकती है. यह हो सकता है कि उत्पादन के एक स्तर तक लागत घटने का प्रभाव ज़्यादा हो और औसत लागत घटती जाए परन्तु उत्पादन के लगातार बढ़ते जाने पर हो सकता लागत बढ़ाने वाला प्रभाव ज़्यादा हो जाये एवं औसत लागत बढ़ने लग जाए. यही स्थिति बाह्य कारकों पर भी लागू होती है. आप की फैक्टरी के आस-पास और फैक्टरी लगने से एक सीमा तक आप की लागत घट सकती है क्योंकि प्रशिक्षित श्रमिकों एवं अन्य सुविधाओं की उपलब्धता बढ़ सकती है परन्तु एक सीमा के बाद फैक्टरियों की संख्या बढ़ने का प्रभाव विपरीत भी हो सकता है; कई फैक्टरियां होने से मजदूरों को उपलब्ध विकल्प बढ़ जाते हैं जिस के चलते मजदूरी बढ़ सकती है.

संक्षेप में, **विभिन्न कारकों के चलते उत्पादन बढ़ने पर उत्पादकता यह घट भी सकती है एवं बढ़ भी सकती है. ऐसी ही स्थिति औसत लागत की भी होती है. लागत पर न केवल आन्तरिक कारकों का प्रभाव पड़ता है अपितु बाह्य कारकों का भी प्रभाव पड़ता है. बाह्य कारकों के प्रभाव से लागत-वक्र ऊपर अथवा नीचे खिसक सकते हैं और आन्तरिक कारकों के प्रभाव से उन का स्वरूप बदलता है. हम आम तौर पर दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र को *U* आकार का मानते हैं हालाँकि ऐसा होना अनिवार्य नहीं है.**

इस अध्याय में हम ने उत्पादन लागत, लागत के विभिन्न स्वरूपों एवं इन के परस्पर सम्बन्धों का अध्ययन किया है. मुख्य बात यह है कि अर्थशास्त्र में लागत की एक विशिष्ट अवधारणा है. आर्थिक लागत मतलब अवसर लागत, यह हमेशा ध्यान में रखा जाना चाहिए. इस अध्याय में हम ने अल्प कालिक एवं दीर्घकालिक लागत वक्रों एवं इन के विभिन्न अंगों/अवयवों के परस्पर सम्बन्धों का विस्तार से अध्ययन किया है. इस के अलावा हम ने लागत में परिवर्तन के कारणों का भी अध्ययन किया है. इन का चार श्रेणियों में वर्गीकरण महत्त्वपूर्ण है. इस के आधार पर हम पैमाने के प्रतिफल के विभिन्न स्वरूपों की भी व्याख्या कर सकते हैं. इस अध्याय की सामग्री के आधार पर अगले अध्याय में हम अपने मूल प्रश्न, आपूर्ति का अध्ययन करेंगे.

प्रश्न

1. निम्न को परिभाषित करें: अवसर लागत, स्थिर लागत, परिवर्तनशील लागत, आन्तरिक वास्तविक बचत, बाह्य मौद्रिक बचत.
2. कुल स्थिर लागत, सीमान्त स्थिर लागत एवं औसत स्थिर लागत को एक ही चित्र में दिखाएँ.
3. कहा जाता है कि दीर्घकालीन लागत-वक्र अल्पकालिक लागत वक्रों की न्यूनतम सीमा को दर्शाता है. क्या आप इस से सहमत हैं? तर्कपूर्ण व्याख्या करें.
4. पैमाने के प्रतिफल के तीनों स्वरूपों के कारकों की उदाहरण सहित चर्चा करें.
5. अगर औसत उत्पादकता बढ़ रही है तो सीमान्त लागत भी बढ़ती जाती है. क्या यह कथन सही है?
6. निम्न कथन की समीक्षा करें: अगर उत्पादन के सभी साधन पूरी तरह विभाज्य हों, तो दीर्घकाल में पैमाने का ह्रासमान प्रतिफल लागू नहीं हो सकता.

7. निम्न तालिका के रिक्त स्थानों को भरें

कुल उत्पादन इकाई (1)	सीमान्त लागत (2)	कुल परिवर्तनशील लागत (3)	कुल लागत (4)	औसत लागत (5)	औसत स्थिर लागत (6)	औसत परिवर्तनशील लागत (7)
0			15			
1	6					
2	5					
3	4					
4	7					
5	8					
6	9					

8. यदि स्तम्भ 4 पूरी तरह रिक्त हो और कुल उत्पादन 5 होने पर पांचवे स्तम्भ में पहले से 8 लिखा हो, उस स्थिति में उपरोक्त तालिका की पुन: गणना करें.

9. दीर्घकालीन सीमान्त लागत एवं अल्पकालिक सीमान्त लागत-वक्र को एक चित्र में दिखाएँ एवं इन के परस्पर सम्बन्ध की व्याख्या करें.

10. औसत लागत बढ़ने के संभावित कारणों पर प्रकाश डालें एवं इन को आन्तरिक एवं बाह्य, तथा वास्तविक एवं मौद्रिक श्रेणियों में वर्गीकृत करें.

अध्याय- 9

पूर्ण प्रतियोगिता (*Perfect Competition*)

फ़र्म को आपूर्ति सम्बन्धी निम्न तीन निर्णय लेने होते हैं: कैसे उत्पादन करना है, कितना उत्पादन करना और किस भाव पर बेचना है. यद्यपि फ़र्म को यह निर्णय भी लेना होता है कि किस वस्तु का उत्पादन करना है परन्तु अर्थशास्त्र में प्रारंभिक स्तर पर हम इस प्रश्न की अनदेखी करते हैं. इस अनदेखी का कारण यह मान्यता है कि हर फ़र्म केवल एक ही वस्तु का उत्पादन करती है. पिछले अध्याय में हम यह अध्ययन कर चुके हैं कि फ़र्म किस तरह यह निर्णय करती है कि उत्पादन कैसे करना है. इस अध्याय में हम अन्य दो प्रश्नों, कितना उत्पादन करना है एवं किस भाव पर बेचना है, का अध्ययन करेंगे. इस अध्ययन के साथ ही फ़र्म के आपूर्ति की निर्णय प्रक्रिया का हमारा अध्ययन पूरा हो जाएगा. इस के बाद हम अपने मूल प्रश्न पर आयेंगे कि कीमतों का निर्धारण कैसे होता है.

यह स्पष्ट है कि अगर किसी वस्तु या सेवा का उत्पादन केवल एक फ़र्म द्वारा किया जा रहा है, तो उस का व्यवहार अलग तरह का होगा परन्तु अगर कोई फ़र्म ऐसी वस्तु का उत्पादन कर रही है जिस के अनेक उत्पादक हैं, तो उस का व्यवहार अलग तरह का होगा. पहली स्थिति में फ़र्म को किसी अन्य फ़र्म के व्यवहार अथवा प्रतिक्रिया को ध्यान में रखने की आवश्यकता नहीं है अब कि दूसरी स्थिति में ऐसा करना अनिवार्य है. इन दोनों धुर विपरीत छोरों के बीच भी कई तरह की स्थितियां हो सकती हैं. हम एक-एक कर के विभिन्न स्थितियों में फ़र्म की निर्णय प्रक्रिया का अध्ययन करेंगे.

इस अध्याय में हम उस स्थिति अथवा बाज़ार का अध्ययन करेंगे जहाँ कोई भी उत्पादक बाज़ार भाव को प्रभावित करने की स्थिति में नहीं है. ऐसी स्थिति में उत्पादक को मौजूदा बाज़ार भाव को स्वीकार करना पड़ता है. उत्पादक को केवल यह निर्णय लेना है कि उत्पादन कितना करना है. उसे भाव तय नहीं करना क्योंकि उसे बाज़ार भाव पर ही बेचना है. बल्कि इस से भी बढ़ कर हम यह मान लेते हैं कि बाज़ार में कोई उपभोक्ता भी भाव को प्रभावित करने की स्थिति में नहीं है. ऐसे बाज़ार में 'कितना उत्पादन करना है' प्रश्न का निर्णय कैसे होता है, पर विचार करने से पहले हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि ऐसा कब होता है कि विक्रेता बाज़ार भाव स्वीकारक बन जाता है. अगला प्रश्न यह होगा कि बाज़ार भाव कैसे तय होता है एवं यह किन कारकों से प्रभावित होता है. ये दो प्रश्न ही इस अध्याय की मुख्य विषय-वस्तु है हालाँकि विषयांतर करते हुए हम कुछ और मसलों की चर्चा भी करेंगे.

एक विशेष तरह की परिस्थितियों, विशेष तरह के बाज़ार के लिए, यह अध्याय एक तरह से इकाई आधारित अर्थशास्त्र का प्रारंभिक परन्तु पूरा स्वरूप प्रस्तुत करता है. जिस प्रश्न को ले कर हम ने यह अध्ययन शुरू किया था, उस के प्रारंभिक चरण का समापन इस अध्याय में है. इस लिए यह अध्याय महत्त्वपूर्ण है एवं आगामी अध्यायों को समझने के लिए अत्यंत आवश्यक है. परन्तु इस अध्याय को समझने के लिए पिछले सभी अध्यायों को समझना आवश्यक है. इस लिए अगर पिछला कोई विषय आप को स्पष्ट नहीं है, तो इस अध्याय को पढ़ने से पहले उस को पूरी तरह समझ लें.

पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार (*perfect competition*) क्या है? ऊपर हम ने बाज़ार शब्द का प्रयोग किया है. अर्थशास्त्र में बाज़ार शब्द का अर्थ बोलचाल के बाज़ार से थोड़ा सा अलग है. एक ही शहर में अलग-अलग नाम से कई बाज़ार होते हैं. परन्तु अर्थशास्त्र में बाज़ार कोई विशेष जगह न हो कर उन सब ख़रीदारों एवं विक्रेताओं के समूह को इंगित करता है जो एक दूसरे से ख़रीद-बिक्री करते हैं. यह पूरे देश या दुनिया में फैला हुआ भी हो सकता है और एक छोटे से इलाके में सीमित भी हो सकता है. एक शहर के थोक बाज़ार में भाव अलग होते हैं एवं मोहल्ले की किराने की दुकान के भाव अलग होते हैं. हम इन्हें दो अलग-अलग बाज़ार मानते हैं क्योंकि आम तौर पर इन के विक्रेता और ख़रीदार अलग-अलग होते हैं.

मान लीजिये एक बाज़ार में निम्न गुण हैं:

1. अनेक विक्रेता हैं एवं प्रत्येक विक्रेता का उत्पादन कुल आपूर्ति का बहुत छोटा हिस्सा है.
2. अनेक क्रेता हैं एवं प्रत्येक क्रेता की माँग कुल माँग का बहुत छोटा हिस्सा है.
3. सब उत्पादकों के उत्पाद एक समान हैं. उदाहरण के तौर पर, सब एक जैसे टमाटर बेच रहे हैं.

4. सब को सब बातों की यानी सम्बन्धित सब बातों की जैसे भाव, गुणवत्ता, माँग, आपूर्ति इत्यादि की पूरी जानकारी सहज एवं नि:शुल्क उपलब्ध है.

5. इस बाज़ार में कोई भी विक्रेता और क्रेता जब चाहे तब आ सकता है और जब चाहे इस बाज़ार को छोड़ सकता है. यह तभी संभव हो सकता है जब किसी वस्तु के उत्पादन में लगे संसाधनों का किसी अन्य वस्तु के उत्पादन में प्रयोग किया जा सकता है एवं अन्य वस्तुओं के उत्पादन में लगे संसाधन इस वस्तु के उत्पादन में प्रयोग किए जा सकते हैं. यह भी आवश्यक है कि वस्तु विशेष के उत्पादन सम्बन्धी जानकारी/तकनीक भी सहज उपलब्ध है.

उपरोक्त स्थिति में क्या कोई विक्रेता या क्रेता भाव को प्रभावित कर सकता है? नहीं. ऐसा क्यों नहीं हो सकता? इस का पहला कारण तो यह है कि हर एक विक्रेता एवं क्रेता का उत्पादन या माँग कुल बाज़ार उत्पादन एवं माँग का बहुत छोटा हिस्सा है एवं इस लिए कुल माँग एवं उत्पादन पर किसी एक विक्रेता अथवा क्रेता के व्यवहार का- उस की माँग एवं आपूर्ति का- कोई ख़ास असर नहीं पड़ता. दूसरा, अगर कोई विक्रेता ज़्यादा भाव लेता है, तो क्रेता को इस का पता चल जाता है क्योंकि हमारी चौथी मान्यता के चलते क्रेता को बाज़ार भाव एवं गुणवत्ता इत्यादि की जानकारी सहज बिना विशेष प्रयास या ख़र्च किए उपलब्ध है. इस लिए वह बाज़ार भाव से ज़्यादा नहीं देगा. ठीक इसी कारण से कोई क्रेता भी यह नहीं कह सकता कि वह बाज़ार भाव नहीं देगा. क्योंकि बाज़ार में अनेक क्रेता हैं, इस लिए कोई भी विक्रेता उसे बाज़ार भाव से कम दाम पर वस्तु नहीं बेचेगा. तीसरी मान्यता के चलते सभी वस्तु एक जैसी हैं, इस लिए भी कोई उत्पादक अपने उत्पाद का अधिक दाम प्राप्त नहीं कर सकता. पाँचवीं मान्यता का क्या प्रभाव होगा, इस की चर्चा थोड़ी देर बाद करेंगे. परन्तु फ़िलहाल हम देख सकते हैं कि पहली चारों मान्यताओं के चलते कोई भी क्रेता या विक्रेता बाज़ार भाव को प्रभावित नहीं कर सकता. हम यह भी देख सकते हैं कि ये सभी मान्यताएँ आवश्यक हैं वरना कोई विक्रेता या क्रेता बाज़ार भाव को प्रभावित कर सकता है. अगर सब उत्पाद एक जैसे नहीं हैं, उन में अंतर हैं या अंतर प्रतीत होते हैं, तब बाज़ार में एक भाव न हो कर कई भाव हो सकते हैं क्योंकि विक्रेता अपने उत्पाद को बाज़ार से अलग/बेहतर बता सकता है. इसी प्रकार अगर बाज़ार भाव या उत्पाद की गुणवत्ता की जानकारी सहज बिना विशेष प्रयास या लागत के उपलब्ध होना भी ज़रूरी है. अगर बाज़ार भाव या उत्पाद की गुणवत्ता की जानकारी सहज बिना अतिरिक्त लागत के उपलब्ध नहीं है, तो भी विक्रेता अलग-अलग दाम ले सकते हैं.

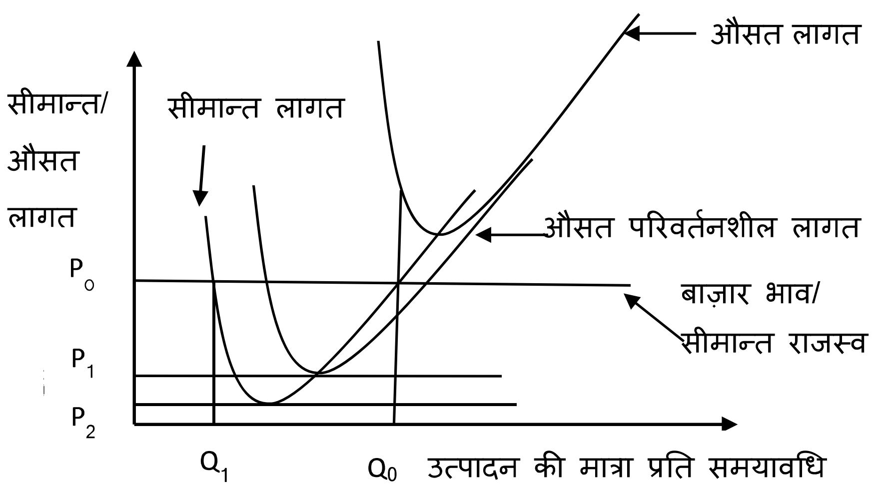
ऐसा बाज़ार जहाँ विक्रेता एवं क्रेता दोनों को बाज़ार भाव को स्वीकार करना पड़ता है एवं वे इसे प्रभावित नहीं कर सकते, पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार कहलाता है. कुछ लोग इसे पूर्ण प्रतिस्पर्धा भी कहते हैं. इस अध्याय में हम बाज़ार को पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार मान कर चलेंगे. पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में हर क्रेता/विक्रेता की प्रतियोगिता/प्रतिस्पर्धा किसी एक से न हो कर सब से है; बल्कि हम आगे चल कर देखेंगे कि यह प्रतियोगिता न केवल बाज़ार में उपस्थित सभी उत्पादकों से है परन्तु उन सभी उत्पादकों से भी है जो भविष्य में इस बाज़ार में आ सकते हैं. ऊपर वर्णित पाँचवीं मान्यता के चलते ये कोई भी उत्पादक हो सकता है.

पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार के अध्ययन की शुरुआत हम इस प्रश्न से करते हैं कि **इस बाज़ार में एक उत्पादक का औसत राजस्व (*average revenue*), कुल राजस्व एवं सीमान्त राजस्व-वक्र कैसा होगा.** पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में उत्पादक बाज़ार भाव पर जितना चाहे बेच सकता है. इस लिए बाज़ार भाव ही उस का औसत राजस्व होगा. क्योंकि अतिरिक्त मात्रा बेचने के लिए उत्पादक को भाव घटाने की आवश्यकता नहीं है, इस लिए बाज़ार भाव ही उस का सीमान्त राजस्व होगा. अंत: सीमान्त एवं औसत राजस्व-वक्र , दोनों क्ष अक्ष के समानांतर एवं एक समान होंगे. कुल राजस्व कैसा होगा? क्योंकि सीमान्त चर कुल चर की ढलान होता है एवं वर्तमान परिस्थितियों में यह स्थिर है, इस लिए कुल राजस्व-वक्र की ढलान भी स्थिर होगी. यानी कुल राजस्व-वक्र सीधी रेखा में बाएँ से दाएँ ऊपर की ओर अग्रसर होगा. बाज़ार भाव ज़्यादा होगा तो कुल राजस्व-वक्र की ढलान ज़्यादा होगी और बाज़ार भाव कम होगा, तो इस की ढलान कम होगी. कुल राजस्व की ढलान पूर्व निर्धारित न हो कर बाज़ार भाव पर निर्भर करती है. इनका परस्पर सम्बन्ध समझने के लिए दो विभिन्न बाज़ार भावों पर कुल राजस्व चित्रित करें.

कितना उत्पादन: अब हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि पूर्ण प्रतियोगिता वाले बाज़ार में उत्पादक कितना उत्पादन करेगा? निश्चित तौर पर किसी भी उत्पादक का निर्णय उस के लक्ष्य पर निर्भर करेगा. उत्पादक का लक्ष्य क्या होता है? सामान्य तौर पर अर्थशास्त्र में हम यह मान कर चलते हैं कि उत्पादक का लक्ष्य अपने लाभ को अधिकतम करना होता है. ऐसा वास्तविक जीवन में हमेशा नहीं होता. कोई काम सेवा भावना और गुज़ारे लायक कमाने के उद्देश्य से भी किया जा सकता है. ज़्यादा मुनाफा होते हुए भी कोई व्यक्ति किसी काम को धार्मिक या नैतिक दृष्टि से अनुचित मान कर करने से इनकार कर सकता है. परन्तु **अर्थशास्त्र में हम सामान्य तौर पर यही मानते हैं कि उत्पादक अपने लाभ को अधिकतम करना चाहता है.**

मान लीजिये कि पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार के उत्पादक का लागत-वक्र चित्र *43* सरीखा है एवं बाज़ार भाव P_0 है. अपने लाभ को अधिकतम करने का लक्ष्य रखने वाला यह उत्पादक अल्पकाल में कितना उत्पादन करेगा? क्योंकि पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में बाज़ार भाव ही उत्पादक का सीमान्त राजस्व होता है, इस लिए अगर सीमान्त लागत बाज़ार भाव से कम है तो उत्पादक को उत्पादन बढ़ाना चाहिए.

चित्र 43- पूर्ण प्रतियोगी उत्पादक का आपूर्ति-वक्र



जब तक बाज़ार भाव सीमान्त लागत से अधिक है, अतिरिक्त इकाई के उत्पादन से उत्पादक का लाभ बढ़ता जाएगा. इस के विपरीत अगर सीमान्त लागत सीमान्त राजस्व से अधिक है, तो उत्पादन कम करना चाहिए. हर ऐसी इकाई, जिस का सीमान्त राजस्व सीमान्त लागत से कम है, का उत्पादन करने से उत्पादक के लाभ कम होते जाते हैं. इस लिए चित्र 43 में लाभ अधिकतम करने के उद्देश्य वाला उत्पादक P_0 भाव पर Q_0 उत्पादन करेगा, न इस से कम न इस से ज़्यादा. चित्र 43 से हम देख सकते हैं कि Q_0 से कम उत्पादन करने पर उस की सीमान्त लागत सीमान्त राजस्व से कम है, इस लिए उसे Q_0 तक उत्पादन करते रहना चाहिए. परन्तु इस से अधिक उत्पादन करने पर सीमान्त लागत बाज़ार भाव एवं सीमान्त राजस्व से ज़्यादा हो जाती है. इस लिए Q_0 से अधिक उत्पादन करने पर उस को प्रति इकाई घाटा होगा.

परन्तु चित्र 43 में बाज़ार भाव और सीमान्त लागत तो Q_1 पर भी समान हैं. तो क्या फ़र्म को Q_1 पर उत्पादन बंद कर देना चाहिए? नहीं; क्योंकि Q_1से उत्पादन बढ़ाने पर सीमान्त लागत सीमान्त राजस्व से कम है इस लिए उत्पादन बढ़ाने पर लाभ बढ़ते जाएँगे.[42] इस

---

[42] गणित के माध्यम से यह आसानी से समझा जा सकता है. अगर हम लाभ को π (उच्चारण पाई) से इंगित करें, कुल राजस्व को TR (total revenue) से एवं कुल लागत (total cost) को TC से, कीमत को P से एवं उत्पादन को Q से तो इन चरों की परिभाषा के आधार पर $\pi = TR - TC$=PQ-TC. इस का उत्पादन की मात्रा के सन्दर्भ में डेरीवेटिव लेने पर हम पाते हैं कि $\frac{d\pi}{dQ}$=P-MC. गणित के नियमानुसार कोई फलन सर्वोतम (अधिकतम/न्यूनतम) उसी बिंदु पर हो सकता हैं जहाँ प्रथम डेरीवेटिव शून्य हो. इस लिए लाभ अधिकतम उस स्तर पर होगा जहां $\frac{d\pi}{dQ} = 0$ यानी जहाँ P=MC. यह शर्त चित्र 43 में Q_0 एवं Q_1 दोनों बिंदुओं पर पूरी हो जाती है. परन्तु किसी भी फलन के अधिकतम होने की गणित के नियमानुसार दूसरी शर्त यह है कि उस का दूसरा डेरीवेटिव शून्य से कम हो अर्थात $\frac{d^2\pi}{dQ^2} = \frac{dP}{dQ} - \frac{dMC}{dQ} < 0$ यानी $\frac{dP}{dQ} < \frac{dMC}{dQ}$. दूसरे शब्दों में कहें तो सीमान्त राजस्व (या इस मामले में कीमत) की ढाल

लिए इष्टतम यानी अधिकतम लाभ के लिए न केवल सीमान्त राजस्व एवं लागत बराबर होनी चाहिए अपितु इस उत्पादन स्तर पर सीमान्त लागत-वक्र का सीमान्त राजस्व-वक्र को नीचे से काटना भी आवश्यक है. दूसरे शब्दों में, अधिकतम लाभ के लिए जिस स्तर पर सीमान्त राजस्व एवं सीमान्त लागत समान होती है, उस स्तर से अधिक उत्पादन करने पर सीमान्त लागत सीमान्त राजस्व से अधिक भी होनी चाहिए.

परन्तु क्या अधिकतम लाभ लेने के लिए इतना ही पर्याप्त है? अगर बाज़ार भाव P_0 से कम हो तो कितना उत्पादन होगा? चित्र 43 से स्पष्ट है कि जब तक कीमत सीमान्त लागत से ज़्यादा है तो उत्पादन करने में फ़ायदा है. इस लिए बाज़ार भाव P_0 से कम होने पर आपूर्ति घटती चली जाएगी एवं उत्पादन का स्तर वहीं होगा जहाँ सीमान्त लागत एवं सीमान्त राजस्व बराबर होंगे. चित्र से पता चलता है कि जब तक बाज़ार भाव P_2 से ज़्यादा है तब तक सीमान्त लागत सीमान्त राजस्व से कम होगी. इस लिए उत्पादन होना चाहिए. ध्यान देने पर हम पाते हैं कि अगर बाज़ार भाव P_2 से ज़्यादा परन्तु P_1 से कम है, तो औसत परिवर्तनशील लागत बाज़ार भाव से अधिक है. यानी इन कीमतों पर भले ही सीमान्त लागत सीमान्त राजस्व से कम है लेकिन औसत राजस्व औसत परिवर्तनशील लागत से भी कम होने के कारण परिवर्तनशील लागत की भरपाई भी नहीं हो रही. इस लिए उत्पादन बंद करना बेहतर होगा. इस लिए इस उत्पादक के लिए P_1, यानी परिवर्तनशील औसत लागत का न्यूनतम स्तर, वह बाज़ार भाव है जिस से भाव नीचे चले जाने पर उत्पादन बंद करना उचित होगा. इसे उत्पादन बंदी बिंदु (Shut-down point) अथवा लाभ-अलाभ बिंदु (breakeven point) कहते हैं. इस लिए लाभ को अधिकतम करने के लिए तीसरी शर्त यह कि औसत राजस्व औसत परिवर्तनशील लागत से कम नहीं होना चाहिए.

अधिकतम लाभ के लिए तीन आवश्यक शर्तों को दोहरा लेते हैं: पहली शर्त- सीमान्त राजस्व सीमान्त लागत के समान होना चाहिए (गणितीय स्वरूप में लाभ फलन का प्रथम डेरीवेटिव शून्य हो). दूसरी शर्त- पहली शर्त पूरी करने वाले बिंदु पर सीमान्त लागत-वक्र सीमान्त राजस्व-वक्र को नीचे से काटे अथवा सीमान्त लागत-वक्र की ढलान सीमान्त राजस्व-वक्र की ढलान से ज़्यादा हो (गणितीय स्वरूप में लाभ फलन का द्वितीय डेरीवेटिव शून्य से कम हो). तीसरी शर्त - औसत राजस्व औसत परिवर्तनशील लागत (और दीर्घ काल में औसत लागत) से अधिक हो. असल में ये तीनों शर्तें न केवल अधिकतम लाभ के लिए अपितु किसी भी फलन के अधिकतम बिंदु को ज्ञात करने के लिए अनिवार्य हैं. बल्कि इस से भी बढ़ कर, पहली शर्त चाहे किसी फलन का अधिकतम बिंदु ज्ञात करना हो अथवा न्यूनतम बिंदु, दोनों परिस्थितियों में अनिवार्य हैं. न्यूनतम बिंदु का चयन करने के लिए दूसरी शर्त की दिशा बदल जाती है यानी द्वितीय डेरीवेटिव शून्य से अधिक होना चाहिए. तीसरी शर्त यह सुनिश्चित करती है कि अधिकतम अथवा न्यूनतम बिंदु न केवल आस-पास के बिन्दुओं में अधिकतम अथवा न्यूनतम है अपितु पूरे फलन का अधिकतम अथवा न्यूनतम बिंदु है.

हानि न्यूनतम करने और अधिकतम लाभ की अवधारणा में सम्बन्ध: चित्र 43 के अनुसार P_0 कीमत पर Q_0 उत्पादन करने पर उत्पादक को कितना लाभ हो रहा है? चित्र में अगर औसत लागत-वक्र को देखें तो पता चलता है कि इस बिंदु पर औसत लागत औसत राजस्व से भी अधिक है. यानी इस बिंदु पर भी फ़र्म को लाभ होने के स्थान पर हानि हो रही है. तो क्या इस बिंदु पर फ़र्म को उत्पादन बंद नहीं कर देना चाहिए? सही उत्तर होगा नहीं. थोड़ा आश्चर्यजनक लग सकता है कि एक ऐसे उत्पादक को जिस का लक्ष्य लाभ अधिकतम करना है को लाभ के स्थान पर हानि हो रही है, और हम कह रहे हैं कि फिर भी उस को उत्पादन जारी रखना चाहिए. यह एक महत्त्वपूर्ण बिंदु है. इस को समझने से अर्थशास्त्र की एक महत्त्वपूर्ण अवधारणा स्पष्ट हो जाएगी.

सीमान्त लागत वक्र की ढाल से कम होनी चाहिए. उपरोक्त चित्र में कीमत या सीमान्त राजस्व वक्र की ढाल शून्य है क्योंकि सीमान्त राजस्व स्थिर है. इस लिए पहला डेरीवेटिव शून्य के समान होने वाले बिंदु पर दूसरी शर्त पूरी हो जायेगी बशर्ते कि सीमान्त लागत की ढाल धनात्मक हो. Q_1 बिंदु पर यह शर्त पूरी नहीं होती. इसलिए Q_1 बिंदु पर लाभ अधिकतम नहीं हो सकते परन्तु Q_0 पर यह शर्त पूरी होती है. यहाँ पर सीमान्त लागत वक्र की ढलान धनात्मक है एवं यह सीमान्त राजस्व या कीमत की ढलान से ज़्यादा है. इस लिए Q_0 बिंदु पर ही उत्पादन होगा.

भले ही इस बिंदु पर फ़र्म को नुकसान हो रहा है परन्तु बाज़ार भाव औसत परिवर्तनशील लागत से ज़्यादा है. इस का अर्थ है कि उत्पादन करने से फ़र्म को अपनी परिवर्तनशील लागत से अधिक राजस्व प्राप्त हो रहा है एवं स्थिर लागत की आंशिक भरपाई हो रही है. अगर उत्पादन बंद कर दिया जाता है तो फ़र्म को स्थिर लागत के समान हानि होगी क्योंकि अल्प काल में फ़र्म के लिए सभी साधनों की मात्रा तो बदलना संभव ही नहीं होता. इस लिए अल्प काल में स्थिर लागत तो वहन करनी ही पड़ती चाहे उत्पादन हो या न हो. इस लिए अगर बाज़ार भाव औसत परिवर्तनशील लागत से अधिक है, तो फ़र्म को उत्पादन करने में ही फ़ायदा है. ऐसा करने से उस की हानि कम होगी. **हमें हमेशा यह याद रखना चाहिए कि लाभ अधिकतम करने का एक अर्थ हानि को न्यूनतम करना भी होता है.**

जिस उत्पादन स्तर पर उपरोक्त तीनों शर्तें पूरी होती हैं, वह उत्पादक का इष्टतम उत्पादन स्तर होता है. चित्र 43 से हम देख सकते हैं कि P1 से ऊपर, यानी औसत परिवर्तनशील लागत-वक्र के न्यूनतम बिंदु से ऊपर, के हर बाज़ार भाव पर सीमान्त लागत-वक्र के हर बिंदु पर ये तीनों शर्तें पूरी हो सकती हैं. इस लिए **औसत परिवर्तनशील लागत-वक्र के न्यूनतम बिंदु से ऊपर का सीमान्त लागत-वक्र ही अल्पकाल में फ़र्म का आपूर्ति-वक्र होता है. आपूर्ति-वक्र दिखाता है कि किस भाव पर लाभ अधिकतम करने का इच्छुक उत्पादक कितना उत्पादन करेगा. स्पष्ट रूप से आपूर्ति-वक्र की ढलान धनात्मक होती है (क्योंकि औसत लागत के न्यूनतम बिंदु से दाईं ओर सीमान्त लागत की ढलान धनात्मक होगी). इस लिए बाज़ार भाव बढ़ने पर आपूर्ति बढ़ती है एवं भाव घटने पर आपूर्ति कम होती है.**

अल्पकालिक उत्पादन फलन/वक्र के तीन चरण एवं आपूर्ति-वक्र: थोड़ा सा विषयांतर करते हुए हम पिछले अध्याय में वर्णित अल्प कालिक उत्पादन-वक्र के तीन चरणों का आपूर्ति-वक्र से सम्बन्ध देखने का प्रयास करते हैं. याद करें कि अल्पकालिक उत्पादन-वक्र का पहला चरण वहाँ समाप्त होता है जहाँ से परिवर्तनशील संसाधन की औसत उत्पादकता घटने लग जाती है एवं दूसरा चरण वहाँ तक जाता था जहाँ उस की सीमान्त उत्पादकता शून्य हो जाती है. तीसरे चरण में परिवर्तनशील संसाधन की सीमान्त उत्पादकता ऋणात्मक होती है. स्पष्ट है कि लाभ के उद्देश्य से उत्पादन करने वाला कोई भी उत्पादक संसाधनों का उस सीमा तक प्रयोग नहीं करेगा जहाँ संसाधन की सीमान्त उत्पादकता ऋणात्मक हो जाए. इस लिए उत्पादक तीसरे चरण में उत्पादन नहीं करेगा. इसी प्रकार पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में कोई भी उत्पादक प्रथम चरण तक अपने उत्पादन को सीमित नहीं करेगा. प्रथम चरण में परिवर्तनशील संसाधन की औसत उत्पादकता बढ़ रही है. इस लिए इस चरण में औसत परिवर्तनशील लागत घटेगी. क्योंकि पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में उत्पादक कितना भी उत्पाद बाज़ार भाव पर बेच सकता है, इस लिए जब तक औसत परिवर्तनशील उत्पादन लागत घटती रहेगी, तब तक उत्पादन बढ़ाने से उत्पादक के लाभ बढ़ते जाएँगे. इस लिए लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य से उत्पादन करने वाला कोई भी उत्पादक पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में अल्प काल के उत्पादन-वक्र के पहले चरण में उत्पादन न कर के दूसरे चरण में ही उत्पादन करेगा. दूसरे चरण में औसत उत्पादकता घटती है. परिणाम स्वरूप इस चरण में औसत परिवर्तनशील लागत बढ़ती है. हम जानते हैं कि जब औसत लागत बढ़ती है, तो सीमान्त लागत औसत परिवर्तनशील लागत से अधिक होती है. इस कारण दूसरे चरण में औसत राजस्व जिस बिंदु पर सीमान्त लागत के बराबर होता है, वहाँ यह औसत परिवर्तनशील लागत से अधिक भी होता है. इस लिए ये दोनों निष्कर्ष- **कि पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में फ़र्म का आपूर्ति-वक्र परिवर्तनशील औसत लागत के ऊपर का सीमान्त लागत-वक्र ही होता है और उत्पादन दूसरे चरण में ही होगा- परस्पर संगत निष्कर्ष हैं.** वास्तव में अल्पकालीन उत्पादन फलन का दूसरा चरण एवं परिवर्तनशील लागत के न्यूनतम बिंदु से दाईं ओर का हिस्सा, एक ही स्थिति को इंगित करते हैं. ये दोनों एक ही स्थिति को इंगित करने के दो भिन्न तरीके मात्र हैं.

आपूर्ति को प्रभावित करने वाले कारक: उत्पादक का उद्देश्य निश्चित तौर पर उस की आपूर्ति को प्रभावित करता है. उत्पाद का बाज़ार भाव तो आपूर्ति को प्रभावित करता ही है.[43] उत्पादन तकनीक उत्पादकता के माध्यम से भी आपूर्ति को प्रभावित करती है. संसाधनों

---

[43] क्योंकि फ़िलहाल हम यह मान कर चल रहे हैं कि उत्पादक एक ही वस्तु का उत्पादन करता है, इस लिए अन्य वस्तुओं की कीमत की आपूर्ति में कोई भूमिका नहीं रहेगी. परन्तु अगर उत्पादक एक से अधिक वस्तुओं का उत्पादन करता है या कर सकता है, तो न केवल उस वस्तु का भाव अपितु अन्य वस्तुओं का भाव भी आपूर्ति को प्रभावित करेगा. उदाहरण के तौर पर अगर किसान एक से अधिक फसलों को बो सकता है तो सभी फसलों के दाम उस की किसी एक वस्तु की आपूर्ति को प्रभावित करेंगे.

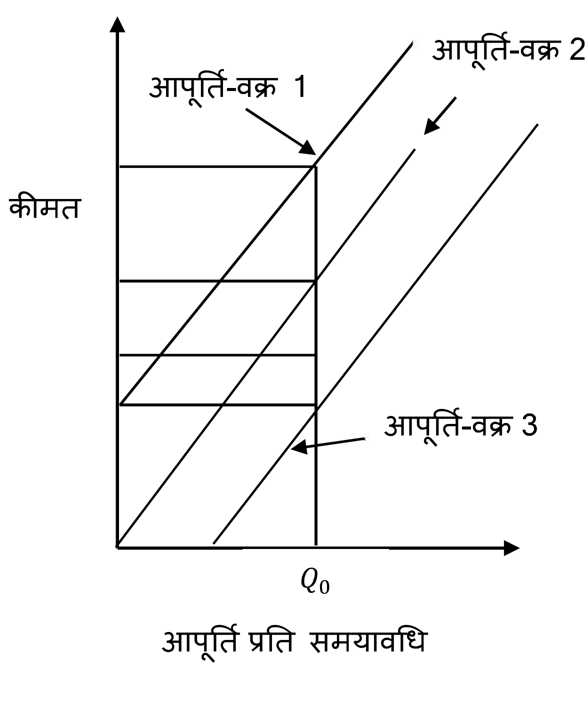
की कीमतें उत्पादन लागत को प्रभावित करती हैं, इस लिए ये भी आपूर्ति को प्रभावित करती हैं. वर्तमान चर्चा पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार के सन्दर्भ में है. आगे चल कर हम देखेंगे कि अगर बाज़ार में पूर्ण प्रतियोगिता नहीं है, तो उत्पादक का आपूर्ति-वक्र भिन्न होता है. इस लिए बाज़ार का स्वरूप भी आपूर्ति का एक महत्त्वपूर्ण कारक है. यह भी स्पष्ट है कि सरकार की नीति, नियम कायदे भी बाज़ार को प्रभावित करते हैं. इन सभी तत्त्वों पर किसी उत्पादक का आपूर्ति-वक्र निर्भर करता है.

दैनिक अनुभव से हम जानते हैं कि आपूर्ति (एवं माँग भी) न केवल बाज़ार भाव से प्रभावित होती हैं अपितु भविष्य के बाज़ार भाव की अपेक्षा या संभावना से भी प्रभावित होते हैं. भारत में जनवरी-फरवरी में बजट सम्बन्धी भविष्यवाणियां होने लगती हैं एवं उस से बाज़ार में माँग एवं आपूर्ति प्रभावित होती है. परन्तु हम पढ़ चुके हैं कि आम तौर पर अर्थशास्त्र में आपूर्ति (एवं माँग) के कारकों की चर्चा इस मान्यता पर आधारित है कि विभिन्न समय-काल एक दूसरे से स्वतंत्र हैं यानी आज का निर्णय कल के निर्णय को प्रभावित नहीं करता. इस लिए हम भविष्य के बाज़ार भाव के अनुमान को आपूर्ति के कारक के रूप में नहीं चिह्नित करते. माँग की तर्ज़ पर ही, अन्य चरों/कारकों को स्थिर मान कर आपूर्ति एवं बाज़ार भाव के सम्बन्ध को आपूर्ति फलन/वक्र कहते हैं. बाज़ार भाव को छोड़ कर आपूर्ति को प्रभावित करने वाले अन्य सभी कारकों को आपूर्ति-वक्र को खिसकाने वाले/ स्थानांतरित करने वाले चर कहा जाता है.

फ़र्म के आपूर्ति-वक्र से उद्योग या बाज़ार के आपूर्ति-वक्र तक: हमारी अब तक की चर्चा सभी फ़र्मों पर लागू होती है. इस लिए सभी फ़र्म अपनी आपूर्ति इसी आधार पर तय करेंगी. आधार एक सा होगा परन्तु इस का अर्थ यह नहीं है कि अल्पकालीन आपूर्ति-वक्र एक समान होंगे. फ़र्मों के उत्पादन फलन एवं लागत-वक्र अलग-अलग हो सकते हैं, इस लिए उन के आपूर्ति-वक्र भी अलग-अलग हो सकते हैं. परन्तु सभी फ़र्मों के आपूर्ति-वक्र उपरोक्त तीनों शर्तों के अनुसार होंगे. फ़र्मों के आपूर्ति वक्रों से हम बाज़ार का आपूर्ति-वक्र ज्ञात कर सकते हैं. यह बिलकुल वैसे ही होगा जैसे परस्पर स्वतंत्र उपभोक्ताओं माँग-वक्र के आधार पर बाज़ार माँग-वक्र ज्ञात किया जाता है. इस लिए हम यहाँ उस को दोहराएंगे नहीं. अगर आप को बाज़ार माँग-वक्र कैसे ज्ञात किया जाता है, ठीक से ध्यान में नहीं आ रहा तो पाँचवें अध्याय के सम्बन्धित हिस्से को दोबारा पढ़ लें. क्योंकि हर फ़र्म के आपूर्ति-वक्र की ढलान धनात्मक होती है. इस लिए बाज़ार के आपूर्ति-वक्र की ढलान भी धनात्मक होती है.

आपूर्ति लोच: मुख्य विषय, बाज़ार भाव निर्धारण पर जाने से पहले हम आपूर्ति लोच की चर्चा कर लें. आपूर्ति की कीमत लोच, माँग की कीमत लोच की तरह, कीमत में बदलाव का आपूर्ति पर प्रभाव का मापक है. इस की गणना हम माँग की कीमत लोच की तरह ही आपूर्ति में प्रतिशत बदलाव भाग में कीमत में प्रतिशत बदलाव द्वारा करते हैं. सैधांतिक रूप में आपूर्ति की कीमत लोच माँग की लोच जैसी ही है परन्तु एक महत्त्वपूर्ण अंतर है. यह ऋणात्मक न हो कर धनात्मक होती है. ऐसा इस लिए है क्योंकि आपूर्ति-वक्र की ढलान माँग-वक्र की ढलान के विपरीत धनात्मक होती है.

चित्र 44 आपूर्ति-वक्र की कीमत लोच



हालाँकि आपूर्ति की लोच और माँग की लोच की बुनियादी परिभाषा एक सी है फिर भी गणना करने के सरल तरीकों (short cuts) में कुछ अंतर आ जाते हैं. उदाहरण के तौर पर सीधी रखा के माँग-वक्र में हम ने पाया था कि माँग-वक्र के ठीक बीच में माँग की कीमत लोच इकाई होती है, उस से नीचे माँग की लोच 1 से कम और मध्य बिंदु से ऊपर 1 से अधिक होती है. परन्तु आपूर्ति की कीमत लोच इकाई का अंदाज़ा हम अलग तरीके से लगा सकते हैं. ध्यान रहे बुनियादी गणित वही है परन्तु गणना का सरल मार्ग कुछ अलग है. चित्र 44 में हम ने तीन तरह के आपूर्ति-वक्र खींचे हैं. इन तीनों आपूर्ति वक्रों की विशेषता क्रमशः यह है कि आपूर्ति-वक्र 1 य

अक्ष को उद्गम/शून्य बिंदु से ऊपर छूता है, वक्र 2 ठीक शून्य बिंदु से निकलता है एवं वक्र 3 को अगर बढ़ाया जाए तो यह य अक्ष को शून्य बिंदु से नीचे छूता है. आपूर्ति की कीमत लोच की परिभाषा अनुसार

$$\text{आपूर्ति की कीमत लोच} = e_s = \frac{\frac{\Delta\text{आपूर्ति}}{\text{आपूर्ति}}*100}{\frac{\Delta\text{कीमत}}{\text{कीमत}}*100} = \frac{\Delta\text{आपूर्ति}}{\text{आपूर्ति}} * \frac{\text{कीमत}}{\Delta\text{कीमत}} = \frac{1}{\frac{\Delta\text{कीमत}}{\Delta\text{आपूर्ति}}} * \frac{\text{कीमत}}{\text{आपूर्ति}} = \frac{1}{\text{आपूर्ति}-\text{वक्र की ढलान}} *$$

$$\frac{\text{कीमत}}{\text{आपूर्ति}} = \frac{\text{आपूर्ति}-\text{वक्र को मूल बिंदु को जोड़ने वाली रेखा की ढलान}}{\text{आपूर्ति}-\text{वक्र की ढलान}} \ldots\ldots\ldots.\ldots.(30)$$

समीकरण 30 का प्रयोग करते हुए, पहले हम आपूर्ति-वक्र 2, जो शून्य बिंदु से निकलता है, पर आपूर्ति की कीमत लोच की गणना करेंगे. इस आपूर्ति-वक्र में किसी भी बिंदु पर आपूर्ति-वक्र को मूल बिंदु को जोड़ने वाली रेखा की ढलान एवं आपूर्ति-वक्र की ढलान एक समान है. इस लिए समीकरण 30 के अनुसार आपूर्ति-वक्र 2 की आपूर्ति की कीमत लोच 1 है एवं यह स्थिर है. इस आपूर्ति-वक्र के हर बिंदु पर लोच 1 ही होगी. परन्तु आपूर्ति-वक्र 1 के किसी बिंदु को उद्गम बिंदु को जोड़ने पर आप पाते हैं कि आपूर्ति-वक्र को मूल बिंदु को जोड़ने वाली रेखा की ढलान आपूर्ति-वक्र की ढलान से ज़्यादा है (क्योंकि समान बिंदु से प्रारंभ हो कर बाईं ओर समान दूरी करने पर यानी क्ष अक्ष तक पहुँचने पर भी आपूर्ति-वक्र में गिरावट कम है). इस लिए समीकरण 30 से स्पष्ट है कि आपूर्ति-वक्र 1 में लोच एक से अधिक होगी. परन्तु आपूर्ति-वक्र 1 के हर बिंदु पर आपूर्ति लोच स्थिर नहीं रहेगी (क्योंकि आपूर्ति-वक्र को मूल बिंदु को जोड़ने वाली रेखा की ढलान स्थिर नहीं है जबकि आपूर्ति-वक्र की ढलान स्थिर है). आपूर्ति-वक्र 3 में स्थिति विपरीत है. आपूर्ति-वक्र 3 के किसी भी बिंदु को उद्गम बिंदु से जोड़ने पर आप पाते हैं कि इस रेखा की ढलान आपूर्ति-वक्र की ढलान से कम है (क्योंकि समान बिंदु से प्रारंभ हो कर क्ष अक्ष पर समान दूरी करने पर भी आपूर्ति-वक्र में अधिक गिरावट है). इस लिए समीकरण 30 से स्पष्ट है कि आपूर्ति-वक्र 3 में आपूर्ति लोच 1 से कम होगी एवं यह स्थिर भी नहीं होगी.

संक्षेप में, अगर आपूर्ति-वक्र मूल बिंदु से निकलता है एवं सीधी रेखा के रूप में है तो आपूर्ति की कीमत लोच 1 होगी. ऐसे हर आपूर्ति-वक्र के हर बिंदु पर यह स्थिर रहेगी. अगर आपूर्ति-वक्र य अक्ष को शून्य बिंदु से ऊपर छूती हुई रेखा के रूप में है तो आपूर्ति की कीमत लोच 1 से अधिक होगी परन्तु यह स्थिर नहीं होगी. इस के विपरीत अगर आपूर्ति-वक्र को बढ़ाने पर यह य अक्ष को शून्य बिंदु से नीचे छूता है तो आपूर्ति की कीमत लोच 1 से कम होगी एवं यह भी स्थिर नहीं होगी.

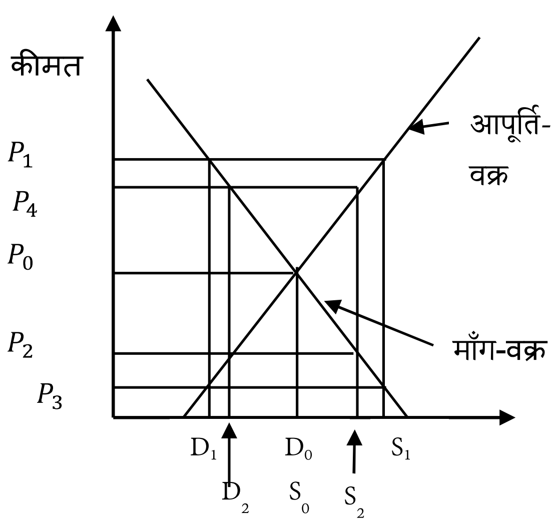
अगर आपूर्ति-वक्र सीधी रेखा में न हो तो आपूर्ति की कीमत लोच के बारे में क्या कहा जा सकता है ? इस स्थिति में आपूर्ति-वक्र के जिस बिंदु की कीमत लोच ज्ञात करनी है, उस बिंदु पर स्पर्श रेखा खींचे और उसे य अक्ष तक पहुँचायें. तदोपरांत समीकरण 30 का प्रयोग कर सकते हैं. अगर स्पर्श रेखा उद्गम बिंदु से हो कर गुज़रती है, तो आपूर्ति की कीमत लोच 1 होगी एवं इसी प्रकार क्रमशः अन्य परिस्थितियों में होगा. **हमें यह निष्कर्ष याद नहीं रखना अपितु स्वयं गणना कर के इस निष्कर्ष पर पहुँचना है.** माँग की कीमत लोच की तरह आपूर्ति की कीमत लोच की गणना भी दो तरीकों से हो सकती है-बिंदु लोच एवं चाप लोच. ध्यान रहे बिंदु लोच की गणना तभी संभव है जब आपूर्ति-वक्र की जानकारी हो और चाप लोच की गणना की आवश्यकता तब पड़ती है जब आपूर्ति फलन की जानकारी उपलब्ध न हो और आपूर्ति-वक्र के मात्र दो बिन्दुओं की जानकारी ही उपलब्ध हो.

आपूर्ति की कीमत लोच को प्रभावित करने वाले तत्त्व: ये तत्त्व भी कीमत लोच को प्रभावित करने वाले तत्त्वों सरीखे ही हैं. इस लिए हम इन पर संक्षिप्त चर्चा ही करेंगे. क्योंकि उत्पादन में परिवर्तन करने में समय लगता है, इस लिए अगर कीमत के बदलाव के प्रभाव के आकलन की समयावधि लम्बी है, तो आपूर्ति लोच ज़्यादा होगी और अगर समयावधि कम है, तो लोच कम होगी. निश्चित तौर पर कीमत लोच उत्पादन फलन पर भी निर्भर करती है. अगर उत्पादन में ऐसे संसाधनों का प्रयोग होता है जो बहुत उद्योगों में प्रयोग होते हैं, तो लोच ज़्यादा होगी. अगर किसी वस्तु के उत्पादन में विशेष किस्म के संसाधन लगते हैं, तो लोच कम होगी. इस का कारण यह है कि अगर उत्पादन में प्रयोग किए जाने वाले संसाधन बहु-उपयोगी हैं, तो उन का इस उद्योग में अन्य उद्योगों से स्थानांतरण आसानी से हो सकता है. अगर किसी वस्तु के उत्पादन में विशिष्ट किस्म के संसाधनों का प्रयोग होता है, तो माँग बढ़ने पर उन का उत्पादन बढ़ाना पड़ेगा, जिस में ज़्यादा

समय लग सकता है, जबकि पहली परिस्थिति में माल उनका स्थानान्तरण करना पड़ता है. इस लिए विशिष्ट संसाधनों के प्रयोग वाली वस्तु की आपूर्ति की कीमत लोच कम होगी. उदाहरण के लिए, कश्मीरी सेब की आपूर्ति लोच सेब की तुलना में कम होगी क्योंकि कश्मीरी सेब सीमित क्षेत्र में ही पैदा हो सकता है. इस लिए कीमत बढ़ने पर भी उस का उत्पादन ज़्यादा नहीं बढ़ सकता जबकि सेब ज़्यादा व्यापक क्षेत्र में पैदा होता है, इस लिए उस की आपूर्ति की कीमत लोच ज़्यादा होगी. बेर की आपूर्ति की कीमत लोच गेहूं या सब्ज़ी की आपूर्ति की कीमत लोच से कम होगी क्योंकि गेहूं या सब्जी की तुलना में बेर का उत्पादन बढ़ाने में ज़्यादा समय लगता है. माँग की कीमत लोच की तरह आपूर्ति की कीमत लोच इस बात पर भी निर्भर करती है कि वस्तु की परिभाषा क्या है. गेहूं की आपूर्ति लोच ज़्यादा होगी या खाद्यान्न की? निश्चित तौर पर गेहूं की आपूर्ति लोच ज़्यादा होगी क्योंकि गेहूं की कीमत में बदलाव होने पर अन्य कृषि उपयोग से रकबा गेहूं में बदला जा सकता है. इस के विपरीत कुल खाद्यान्न का रकबा बढ़ाना तुलनात्मक रूप से कठिन है क्योंकि लगभग सारी कृषि लायक भूमि पर खेती हो रही है. कारों का कुल उत्पादन बढ़ाने की तुलना में, मारुति कम्पनी के लिए किसी एक मॉडल की कार का उत्पादन बढ़ाना आसान है. इस लिए किसी एक मॉडल की कार की आपूर्ति लोच कारों की आपूर्ति लोच की तुलना में ज़्यादा होगी.

बाज़ार भाव निर्धारण: अब तक की चर्चा में हमने यह माना है कि फ़र्म बाज़ार भाव को ध्यान में रख कर अपना उत्पादन का स्तर तय करती है. पिछले अध्यायों में हमने यह माना था कि उपभोक्ता बाज़ार भाव को ध्यान में रख कर अपने उपभोग के स्तर को तय करता है. परन्तु यह **बाज़ार भाव तय कैसे होता है? अब तक की सारी चर्चा इस प्रश्न का जवाब ढूँढने की तैयारी थी.** अब हम यह जवाब ढूंढेंगे. चित्र 45 में वस्तु अ का बाज़ार माँग-वक्र एवं बाज़ार आपूर्ति-वक्र दिए हुए हैं. हम जानते हैं कि माँग-वक्र की ढलान ऋणात्मक होती है एवं आपूर्ति-वक्र की ढलान धनात्मक होती है.

चित्र 45 बाज़ार संतुलन



माँग/आपूर्ति प्रति समयावधि

मान लें कि बाज़ार भाव P_1है. इस भाव पर क्रेता कितना ख़रीदना चाहेंगे और विक्रेता कितना बेचना चाहेंगे? यह जानकारी हमें माँग-वक्र एवं आपूर्ति-वक्र से प्राप्त हो सकती है. इन वक्रों को देखने पर आप पायेंगे कि P_1 कीमत पर माँग D_1 है और आपूर्ति S_1. यानी कि माँग और आपूर्ति समान नहीं है. उत्पादक बाज़ार में जितना उत्पाद ले कर आयें हैं वह बाज़ार भाव पर बिक नहीं सकता क्योंकि बाज़ार भाव पर माँग कुल उत्पादन से कम है. अब क्या होगा? क्योंकि सभी उत्पादकों का माल P_1कीमत पर बिक नहीं रहा, इस लिए कुछ उत्पादक अपना दाम कम कर देंगे. अगर उत्पादन शीघ्र ख़राब/नष्ट होने वाला है तो निश्चित तौर पर ऐसा होगा. अगर उत्पादन शीघ्र नष्ट होने वाला नहीं है, तो भी उत्पादक अंदाज़ा लगाएगा कि बाज़ार भाव P_1 नहीं रह सकता, यह तो घटेगा. वह संभावित बाज़ार भाव का अंदाज़ा लगाएगा और उत्पादन कम कर देगा. मान लीजिये उत्पादकों ने अंदाज़ा लगाया कि बाज़ार भाव P_2 रहने वाला है (हालाँकि अलग-अलग उत्पादकों का अंदाज़ा अलग-अलग होगा परन्तु सुविधा के लिए हम मान लेते हैं कि यह एक ही होगा. आगे चल कर आप देखेंगे कि ऐसा मानने से निष्कर्षों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता). P_2 कीमत पर आपूर्ति तो केवल S_2 होगी परन्तु बाज़ार भाव घटने से माँग बढ़ कर D_2 हो गई है. इस स्थिति में सब उपभोक्ताओं की माँग पूरी नहीं होगी. कीमतें बढ़ने लगेंगी. अति अल्प काल में कीमत बढ़ कर इतनी हो जाएगी कि उत्पादन एवं माँग बराबर हो जाए. यह P_4 कीमत पर होगा. इस कीमत पर सब माल तो बिक जाएगा परन्तु यह भाव स्थाई नहीं रहेगा. उत्पादकों ने P_2 भाव की आशा कि थी परन्तु उन्हें भाव मिल गया P_4, इस लिए भविष्य में वे अपना उत्पादन बढ़ा देंगे. कीमत बढ़ने-घटने की यह प्रक्रिया कब तक चलेगी? जब बाज़ार भाव P_0 हो जाएगा तो माँग एवं आपूर्ति बराबर हो जाएगी. इस स्थिति में, कीमत में बदलाव का कोई कारण नहीं होगा.

संतुलन (equilibrium): संतुलन उस अवस्था को कहते हैं जब, बिना बाह्य प्रभाव के, बदलाव नहीं होता. संतुलन की स्थिति में, बिना बाह्य बदलाव के, आन्तरिक प्रतिभागियों का व्यवहार अपरिवर्तनशील रहता है. ऐसा कब होगा? जब मौजूदा परिस्थितियों में सभी प्रतिभागी - चाहे उपभोक्ता हों चाहे उत्पादक, अपने इष्टतम स्तर पर हों. ऐसा होने पर ही वे अपने वर्तमान व्यवहार को ही मौजूदा परिस्थितियों में बनाए रखते हैं. चित्र 45 में P_0 बिंदु ऐसा ही बाज़ार भाव है जहाँ उपभोक्ता एवं उत्पादक दोनों अपने इष्टतम स्तर पर हैं. इस लिए हम कहते हैं कि बाज़ार संतुलन में है. संतुलन की अवधारणा का हम बार-बार प्रयोग करेंगे. इस लिए इस अवधारणा को ठीक से समझना आवश्यक है.

बाज़ार को संतुलन प्राप्त करने में कितना समय लगेगा, इस के बारे में हम कुछ नहीं कह सकते. हम यह भी नहीं जानते कि बाज़ार भाव P_1 से धीरे-धीरे कम हो कर P_0 पर पहुंचेगा या P_0 से नीचे-ऊपर होते हुए P_0 पर पहुंचेगा. हम मात्र इतना कह सकते हैं कि जब तक बाज़ार भाव P_0, यानी भाव जहाँ माँग और आपूर्ति बराबर हैं, यानी ऐसा भाव जहाँ उपभोक्ताओं एवं उत्पादकों दोनों की अपेक्षा पूरी हो रही हैं, नहीं हो जाता, तब तक भाव बदलता रहेगा. क्योंकि उपभोक्ता एवं उत्पादक दोनों बाज़ार भाव के अनुरूप अपना व्यवहार – माँग एवं उत्पादन – तय करते हैं, इस लिए बाज़ार भाव बदलने पर माँग एवं उत्पादन बदलते रहते हैं. जब बाज़ार भाव पर माँग एवं आपूर्ति समान हो जायेंगी, तब कीमत में बदलाव होना बंद हो जाएगा क्योंकि अब दोनों वर्गों की अपेक्षा फलीभूत हो रही हैं. जब तक बाज़ार भाव ऐसा नहीं है, जहाँ पर उपभोक्ता एवं उत्पादक दोनों की अपेक्षा पूरी हो रही है यानी जिस पर माँग एवं आपूर्ति समान हैं, तब तक बाज़ार के प्रतिभागियों का व्यवहार बदलता रहेगा और जब तक प्रतिभागियों का व्यवहार बदलेगा, कीमतें बदलती रहेंगी एवं कीमतों के बदलने के साथ ही उपभोक्ता एवं उत्पादक की इष्टतम माँग/उत्पादन/व्यवहार बदलता रहेगा.

उपरोक्त चित्र 45 में P_1भाव की अपेक्षा में उत्पादन S_1हुआ परन्तु माँग केवल D_1है. सारा समान तो P_3भाव पर ही बिक सकता है. P_3 को हम बाज़ार ख़ाली करने वाला भाव (market clearing price) कहते हैं यानी ऐसा भाव जिस पर सारा उत्पाद बिक जाता है. क्या इस कीमत को संतुलन बिंदु मान सकते हैं? नहीं. यद्यपि इस कीमत पर कुल माँग एवं कुल आपूर्ति तो बराबर हैं परन्तु अपेक्षित माँग एवं आपूर्ति बराबर नहीं हैं. इस कीमत पर उत्पादकों की अपेक्षाएं पूरी नहीं हो रही. **बाज़ार संतुलन के लिए केवल माँग एवं आपूर्ति का समान होना आवश्यक नहीं है अपितु यह भी आवश्यक है कि अपेक्षित माँग, बाज़ार माँग के एवं अपेक्षित आपूर्ति, बाज़ार आपूर्ति के बराबर हो. बाज़ार संतुलन के लिए यह आवश्यक है कि उत्पादक एवं उपभोक्ता दोनों अपने इष्टतम स्तर पर हों.**

संतुलन के प्रकार: चित्र 45 में वर्णित संतुलन की स्थिति में मान लें किसी आपात कारण से उत्पादन S_0 न हो कर S_2 ही रह जाता है, तो बाज़ार भाव बढ़ कर P_4 हो जाएगा. ऐसा होने पर फिर से बाज़ार में कीमत का बदलाव शुरू हो जाएगा. अंततः बाज़ार बिना किसी बाहरी दखल के वापिस उसी संतुलन की स्थिति में पहुँच जाएगा. ऐसे संतुलन को, जो विस्थापित होने पर पुन: वहीं स्थापित हो जाए, टिकाऊ संतुलन (stable equilibrium) कहते हैं. अगर संतुलन की अवस्था से प्रतिस्थापन होने पर वापिस वही स्थिति स्थापित नहीं होती, तो उस संतुलन को अस्थिर संतुलन कहते हैं. छत से लटकी हुई गेंद टिकाऊ संतुलन इंगित करती है क्योंकि विस्थापित होने पर गेंद वापिस उसी स्थान पर आ जाती है. इस के विपरीत ढलान पर टिकी हुई गेंद संतुलन में तो है परन्तु यह संतुलन टिकाऊ न हो कर अस्थिर (unstable) है. जब तक इस पर कोई बाह्य ताकत का प्रयोग न हो, गेंद वहीं टिकी रहेगी परन्तु अगर एक बार वहाँ से गेंद हिल गई तो वह वापिस अपने आप पुरानी स्थिति में नहीं पहुँचेगी.

संतुलन का अध्ययन तीन तरह का हो सकता है. उपरोक्त उदाहरण निश्चल संतुलन अध्ययन (static equilibrium analysis) का है. निश्चल संतुलन का अर्थ है किन्हीं तय परिस्थितियों में संतुलन के गुणों की व्याख्या. दूसरा अध्ययन तुलनात्मक निश्चल संतुलन अध्ययन (comparative static equilibrium analysis) हो सकता है जिस में निश्चल संतुलन की दो या दो से अधिक अवस्थाओं की तुलना की जाती है. तुलनात्मक निश्चल संतुलन अध्ययन में संतुलन की दो या दो से अधिक अवस्थाओं की तुलना तो की जाती है परन्तु एक संतुलन से दूसरे संतुलन बिंदु तक पहुँचने की प्रक्रिया का अध्ययन नहीं किया जाता. इस के विपरीत गतिमान संतुलन अध्ययन (dynamic equilibrium analysis) में संतुलन की एक अवस्था से दूसरी अवस्था तक पहुँचने की प्रक्रिया का अध्ययन

किया जता है. स्पष्ट रूप से गतिमान संतुलन अध्ययन अधिक उपयोगी होता है परन्तु ऐसा अध्ययन अधिक जटिल भी होता है. इस लिए इस पुस्तक में हम गतिमान संतुलन का अध्ययन न कर के निश्चल संतुलन अध्ययन एवं तुलनात्मक निश्चल संतुलन अध्ययन ही करेंगे.

एक अन्य दृष्टि से देखें तो संतुलन का अध्ययन आंशिक (partial) या सर्व व्यापक (general) हो सकता है. सर्व व्यापक संतुलन में हम पूरी अर्थव्यवस्था यानी सभी बाज़ारों, सभी उपभोक्ताओं एवं सभी उत्पादकों के संतुलन का अध्ययन एक साथ करते हैं. इस के विपरीत आंशिक संतुलन अध्ययन में हम एक समय पर एक बाज़ार या स्थिति का अध्ययन करते हैं. उदाहरण के लिए, हम ने एक वस्तु, अ, की माँग का अध्ययन करते हुए बाकी वस्तुओं की कीमत को स्थिर माना था. अन्य वस्तुओं की कीमत स्थिर होने का अर्थ है कि अ वस्तु की माँग का अध्ययन करते हुए हम यह मान कर चले कि अन्य वस्तुओं का बाज़ार संतुलन में है जबकि वास्तविकता यह है कि न केवल अ वस्तु की माँग अन्य वस्तुओं की कीमत से प्रभावित होती है अपितु अन्य वस्तुओं की माँग भी अ वस्तु की कीमत से प्रभावित होती है. इस लिए जब तक अ वस्तु का बाज़ार संतुलन में नहीं है, अन्य वस्तुओं की कीमत भी स्थिर नहीं हो सकती. अंत: कुछ हद तक आंशिक संतुलन अध्ययन अवास्तविक है परन्तु यह तुलनात्मक रूप से आसान है. इस लिए अधिकांशतः हम आंशिक संतुलन का ही अध्ययन करते हैं. सर्व व्यापक संतुलन अध्ययन यानी पूरी अर्थव्यवस्था के संतुलन का इकट्ठा अध्ययन गतिमान संतुलन अध्ययन की तरह अधिक जटिल होता है. इस लिए इस पुस्तक में हम इस का अध्ययन नहीं करेंगे.

आंशिक संतुलन अध्ययन का दूसरा उदाहरण अ वस्तु के आपूर्ति-वक्र का अध्ययन है. अ वस्तु के आपूर्ति-वक्र के अध्ययन के लिए अ वस्तु के लागत वक्रों की जानकारी आवश्यक है. अ वस्तु के लागत वक्रों का अध्ययन करते हुए हम यह मान कर चले हैं कि उत्पादन के साधनों की कीमत पहले से तय है, स्थिर है यानी उत्पादन के साधनों का बाज़ार संतुलन में है. जबकि वास्तविकता यह है (हम आगे चल कर इस का विस्तार से अध्ययन करेंगे) कि उत्पादन के साधनों की कीमत भी उन की माँग पर निर्भर करेगी एवं उत्पादन के साधनों की कुल माँग अ वस्तु के उत्पादन के स्तर से भी प्रभावित होगी.

संतुलन सम्बन्धी इन बुनियादी अवधारणओं की चर्चा के बाद हम वापिस बाज़ार संतुलन पर आते हैं. क्या बाज़ार भाव P_0 बिलकुल नहीं बदलेगा? नहीं संतुलन का यह अर्थ नहीं है कि बाज़ार भाव बिलकुल भी नहीं बदलता. संतुलन का अर्थ मात्र इतना है कि जब तक बाज़ार के प्रतिभागियों को छोड़ कर अन्य कारणों से, यानी बाह्य कारणों से, कुल माँग एवं कुल आपूर्ति में बदलाव नहीं होता, तब तक, बाज़ार भाव में भी बदलाव नहीं होगा. वर्तमान उदाहरण में अगर अ वस्तु के उत्पादन में प्रयुक्त होने वाले संसाधनों की कीमत में बदलाव हो जाता है, तो अ वस्तु का आपूर्ति-वक्र बदल जाएगा जिस के चलते संतुलन की अवस्था में अ वस्तु की कीमत एवं मात्रा दोनों में बदलाव संभव है. थोड़ी देर में हम इन बदलावों के प्रभावों का अध्ययन करेंगे. यह तुलनात्मक निश्चल संतुलन अध्ययन का एक उदाहरण होगा.

क्या बाज़ार संतुलन में लाभ होना अनिवार्य है? हम फ़र्म के अल्प कालिक आपूर्ति-वक्र की चर्चा करते हुए जान चुके हैं कि बाज़ार भाव पर उत्पादक को लाभ भी हो सकता है और हानि भी. अगर हानि हो तो भी वह अल्प काल में उत्पादन के स्तर को बनाए रख सकता है. परन्तु क्या दीर्घ काल में भी ऐसा हो सकता है? इस की चर्चा करने से पहले शून्य लाभ की स्थिति का मूल्यांकन कर लें.

शून्य लाभ का अर्थ है कि उत्पादक अपनी पूरी लागत प्राप्त कर रहा है. ध्यान दें कि अर्थशास्त्र में लागत का अर्थ है अवसर लागत. अवसर लागत में उत्पादक के अपने संसाधनों जैसे मेहनत, पूँजी, भूमि की वैकल्पिक स्रोत से मिल सकने वाली अधिकतम आय भी शामिल होती है. अंत: अगर उत्पादक को अपनी पूरी लागत के बराबर राजस्व प्राप्त हो रहा है, तो इस का अर्थ है कि उत्पादन के सभी संसाधनों को उन की अवसर लागत या अधिकतम वैकल्पिक आय प्राप्त हो रही है. इस लिए वर्तमान उत्पादन को छोड़ कर कोई अन्य विकल्प उपलब्ध नहीं है जहाँ इन संसाधनों को इस से बेहतर आय प्राप्त हो सकती है. इस लिए शून्य लाभ के बावजूद उत्पादक उत्पादन करता रहेगा.[44]

---

[44] लाभ को दो तरह से परिभाषित किया जाता है. आम तौर पर बोलचाल एवं बाज़ारी अथवा लेखाविधि (accounting) में अपने साधनों के प्रयोग की लागत को हम शून्य मानते हैं और नकद ख़र्च से अतिरिक्त मिलने वाले राजस्व को लाभ या मुनाफा कहते हैं. परन्तु अर्थशास्त्र

परन्तु अगर उत्पादक को लाभ मिल रहा है तो क्या होगा? लाभ होने का अर्थ है कि फ़र्म को अन्यत्र मिलने वाले राजस्व से अधिक राजस्व मिल रहा है. इस के चलते जो फ़र्म इस वस्तु का उत्पादन का नहीं कर रहीं, वे भी इस वस्तु का उत्पादन शुरू कर देंगी, यानी इस उद्योग/बाज़ार में उत्पादन बढ़ जाएगा. उत्पादन बढ़ने पर बाज़ार भाव गिरेगा क्योंकि मौजूदा भाव पर तो अतिरिक्त उत्पादन नहीं बिक पायेगा. भाव गिरने पर निश्चित तौर पर लाभ कम हो जाएगा. परन्तु जब तक लाभ मिलेंगे, तब तक नए उत्पादक इस बाज़ार में आते रहेंगे, उत्पादन बढ़ता रहेगा, भाव गिरता रहेगा एवं लाभ कम होता चला जाएगा. यह प्रक्रिया तब तक चलेगी, जब तक लाभ शून्य नहीं हो जाते. हम इतना भर कह सकते हैं कि जब तक लाभ शून्य नहीं हो जाते बाज़ार संतुलन में नहीं होगा एवं उत्पादकों के आने की प्रक्रिया चलती रहेगी. इस स्थिति में संतुलन तक पहुँचने का रास्ता क्या होगा, लाभ धीरे धीरे शून्य होगा या लाभ हानि के बीच झूलता हुआ शून्य पर पहुंचेगा, इस के बारे में हम कुछ नहीं कह सकते. यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि उत्पादकों की संख्या में बदलाव से बाह्य बचतों अथवा हानि के चलते लागत वक्रों में भी बदलाव आ सकता है जिस के चलते सभी उत्पादकों के आपूर्ति वक्रों में भी बदलाव संभव है.

प्रश्न उठ सकता है कि क्या ऐसा हो सकता है कि उत्पादक जब चाहें इस बाज़ार में आ सकते हैं? नहीं. वास्तविक जीवन में बहुत बार ऐसा संभव नहीं होता. कई परिस्थितियों में उद्योग में प्रवेश के लिए सरकार की अनुमति आवश्यक होती है जो हो सकता है न मिले. परन्तु पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार की ऊपर दी हुई हमारी परिभाषा के अनुसार ऐसा संभव होता है. पूर्ण प्रतियोगिता उसी बाज़ार में संभव होती है जहाँ बाज़ार में फ़र्मों का निर्बाध आना-जाना संभव हो. इस लिए पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में उत्पादक की प्रतियोगिता न केवल वर्तमान में उस बाज़ार में उपस्थित फ़र्मों से होती है अपितु उन सब फ़र्मों से भी होती है जो इस बाज़ार के संभावित उत्पादक हो सकती हैं.

अगर लाभ की बजाय हानि हो रही हो, तो क्या होगा? अल्प काल में अगर हानि स्थिर लागत से कम है, तो फ़र्म के पास कोई विकल्प नहीं होता और स्थिर लागत से अधिक हानि होने पर फ़र्म उत्पादन बंद कर सकती है. इस के विपरीत अगर दीर्घ काल में फ़र्म को हानि हो रही है, तो इस का अर्थ है कि फ़र्म को अपने संसाधनों की अवसर लागत, वह कीमत जो वे अन्यत्र प्राप्त कर सकते थे, भी नहीं मिल रही है. इस लिए लाभ लक्षित करने वाले उत्पादक इस बाज़ार को छोड़ कर अन्यत्र चले जाएँगे. इस का प्रभाव यह होगा कि आपूर्ति कम हो जाएगी. आपूर्ति कम होने पर भाव बढ़ जाएँगे. यह प्रक्रिया तब तक चलेगी जब तक फ़र्म शून्य लाभ की स्थिति में नहीं आ जाती.

इस लिए हम कह सकते हैं कि **पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में दीर्घकाल में बाज़ार तभी संतुलन में होगा जब लाभ शून्य होंगे**, न कम न ज़्यादा. यह एक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष है. इस लिए आगे बढ़ने से पहले यह सुनिश्चित कर लें कि आप को यह निष्कर्ष, लाभ की परिभाषा एवं इस निष्कर्ष के पीछे के कारण अच्छी तरह समझ में आ गए हैं.

पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार के गुण: स्पष्ट रूप से पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार का एक गुण तो यह हो गया कि दीर्घकाल में संतुलन की स्थिति में लाभ शून्य होते हैं. जब तक लाभ शून्य नहीं हो जाते, तब तक इस बाज़ार में नए उत्पादकों का आना या पुराने उत्पादकों का इस बाज़ार को छोड़ कर जाना चलता रहेगा एवं बाज़ार संतुलन में नहीं होगा. दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह प्रक्रिया अवश्यंभावी है. पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में इस को रोकना संभव नहीं है.

पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार के संतुलन में होने पर बाज़ार भाव क्या होगा? शून्य लाभ का अर्थ है कि बाज़ार भाव औसत लागत के बराबर है. अगर ये दोनों चर समान नहीं होंगे, तो लाभ शून्य नहीं हो सकता. परन्तु इस के साथ ही हम यह बात भी जानते हैं कि कोई भी फ़र्म तभी संतुलन में हो सकती है, एवं फ़र्म का उत्पादन का स्तर वहीं इष्टतम हो सकता है, जहाँ सीमान्त राजस्व एवं सीमान्त लागत समान

में अपने संसाधनों की भी अवसर लागत को यानी इन के वैकल्पिक प्रयोग से मिलने वाली अधिकतम आय को हम लागत में शामिल करते हैं एवं केवल इस से अधिक राजस्व को ही लाभ कहते हैं. इस लिए बोलचाल एवं बाज़ारी अथवा लेखाविधि हिसाब क़िताब में जिसे लाभ कहते हैं उसे, अर्थशास्त्र के नज़रिये से दो हिस्सों में बांट सकते हैं: सामान्य लाभ (Normal profit) एवं असामान्य लाभ (super normal profit). अपने संसाधनों की अवसर लागत को सामान्य लाभ कहते हैं एवं उस से अतिरिक्त लाभ को असामान्य लाभ कहते हैं. इस लिए अर्थशास्त्र में जब हम कहते हैं कि लाभ शून्य होंगे, इस का अर्थ है असामान्य लाभ शून्य होंगे. दूसरे शब्दों में, जब अर्थशास्त्र के अनुसार लाभ शून्य होते हैं, तब भी बोलचाल की भाषा के अनुसार सामान्य लाभ तो उत्पादक को मिल रहे होते हैं.

हों. अगर ऐसा नहीं होगा, तो फ़र्म संतुलन में नहीं होगी और अगर फ़र्म संतुलन की स्थिति में नहीं है, तो बाज़ार कैसे संतुलन में हो सकता है? इस का अर्थ है कि शून्य लाभ की स्थिति में निम्न शर्त पूरी होनी चाहिए: **बाज़ार भाव=औसत कीमत= सीमान्त लागत.** लागत वक्रों के अध्ययन से हम जानते हैं कि ऐसा केवल दीर्घकालीन लागत-वक्र के न्यूनतम स्तर पर ही संभव है. इस लिए पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में दीर्घकालीन संतुलन दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र के न्यूनतम स्तर पर ही होगा. इस तथ्य से पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार का एक अन्य गुण चिह्नित होता है: **पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में उत्पादन लागत न्यूनतम संभव होती है.** यह पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार का एक महत्त्वपूर्ण गुण है परन्तु **यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि 'न्यूनतम संभव लागत' का अर्थ है वर्तमान परिस्थितियों में न्यूनतम संभव लागत जो तकनीक और संसाधनों की कीमत बदलने पर बदल सकती है.**

क्योंकि हम यह मान कर चल रहे हैं कि औसत लागत-वक्र उलटे U सरीखे होते हैं, इस का अर्थ है कि पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में संतुलन की स्थिति में उत्पादन क्षमता का पूरा प्रयोग होता है. आगे चल कर हम देखेंगे कि अन्य बाज़ारों में ऐसा नहीं होता. इस लिए पूर्ण उत्पादन क्षमता का पूरा प्रयोग भी पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार का एक महत्त्वपूर्ण गुण है.

क्योंकि पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में एक ही भाव होता है, इस लिए सभी फ़र्मों के दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र का न्यूनतम स्तर एक समान होगा. परन्तु इस का यह अर्थ कदापि नहीं है कि सभी फ़र्मों के उत्पादन की मात्रा भी समान होगी या उन के लागत-वक्र एक जैसे होंगे. पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार की हमारी मान्यताओं या परिभाषा में ऐसा कुछ भी नहीं है जो समान उत्पादन मात्रा अथवा समान लागत-वक्र सुनिश्चित कर सके. इस के विपरीत एक समान भाव होना, पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार की परिभाषा/मान्यताओं में निहित अनिवार्यता है. इस लिए संतुलन की स्थिति में सभी फ़र्मों की औसत उत्पादन लागत समान होगी परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि उन के उत्पादन की मात्रा भी एक समान हो.

माँग-वक्र के अध्ययन से हम जानते हैं कि कोई भी विवेकशील उपभोक्ता किसी वस्तु के लिए उस से मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता से अधिक भुगतान नहीं करता. इस लिए हम कह सकते हैं कि पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में न केवल उत्पादन न्यूनतम संभव लागत पर होता है अपितु उपभोक्ता उत्पाद के लिए उस से मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता के बराबर भुगतान ही करता है. बल्कि यह भी कहा जा सकता है कि पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में **दीर्घकालीन संतुलन की स्थिति में सीमान्त लागत एवं सीमान्त उपयोगिता बराबर होती है** यानी कि उत्पादन उस सीमान्त लागत तक ही होता है जहाँ वह सीमान्त उपयोगिता के बराबर होती है न उस से कम न उस से ज़्यादा. यह भी पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार का एक महत्त्वपूर्ण गुण है.

पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में विज्ञापन पर भी ख़र्च नहीं होगा या मात्र सूचना देने के लिए आवश्यक नाम मात्र का ख़र्च होगा. क्योंकि पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार एक ऐसा बाज़ार होता है जिस में कोई भी उत्पादक जितना चाहे बेच सकता है परन्तु बेचना उसे बाज़ार भाव पर ही पड़ता है, इस लिए विज्ञापन से न तो उत्पादक अपनी माँग बढ़ा सकता और न ही अधिक दाम ले सकता. इस लिए पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में विज्ञापन पर विशेष ख़र्च नहीं होता. इस निष्कर्ष से हम सहज अंदाज़ा लगा सकते हैं कि अपने आस-पास हम जिन वस्तुओं के बड़े पैमाने पर विज्ञापन देखते हैं, वे पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार के उत्पाद नहीं हैं.

अगर पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में कोई नई तकनीक आती है जिस से उत्पादन लागत कम हो जाती है एवं जिस को सहज अपनाया जा सकता है (यानी उसे अपनाने पर कोई रोक टोक, जैसे पेटंट, नहीं है) तो आम तौर पर वह शीघ्र ही फ़ैल जाती है. सभी उत्पादक उसे अपना लेते हैं. ऐसा इस लिए होता है क्योंकि उत्पादन लागत घटने से बाज़ार भाव कम होगा एवं अगर कोई उत्पादक नई तकनीक नहीं अपनाता, तो वह जल्द ही बाज़ार से बाहर हो जाएगा.

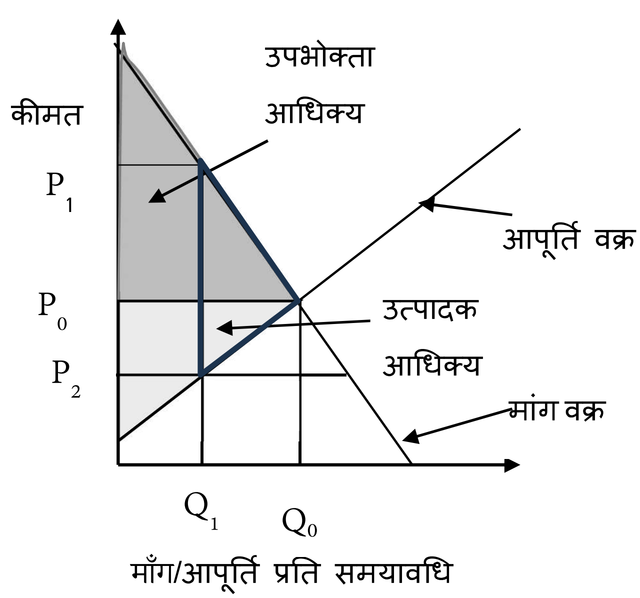
जहाँ एक ओर पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में नई तकनीक का फ़ैलाव बहतु तेज़ी से होता है, दूसरी ओर ऐसे बाज़ार में नई तकनीक की खोज पर अधिक निवेश नहीं होता. अगर कोई उत्पादक किसी ऐसी नई तकनीक विकसित करने पर निवेश करता है जिस से उत्पादन लागत कम हो जाती है परन्तु जिस को सहज ही अन्य उत्पादक भी अपना सकते हैं, तो सफलता मिलने पर भी वह लम्बे समय तक इस का फ़ायदा नहीं उठा सकता. शीघ्र ही अन्य उत्पादकों द्वारा नई तकनीक अपनाने के कारण बाज़ार भाव कम हो जाएगा. इस लिए पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में नई तकनीक विकसित करने पर विशेष निवेश नहीं होता.

अब उपरोक्त चर्चा के सन्दर्भ में एक विशेष परिस्थिति पर विचार करें. मान लें कि नई तकनीक से उत्पादन लागत घट जाती है परन्तु उस के लिए नई मशीन/फैक्टरी लगानी पड़ेगी. हम यह भी मान लेते हैं कि पुरानी मशीन/फैक्टरी की बिक्री से शून्य राजस्व प्राप्त हो सकता है. इस परिस्थिति में क्या हर उत्पादक को नई मशीन लगानी चाहिए? विचार करने पर हम पायेंगे कि जब तक नई तकनीक की औसत लागत पुरानी तकनीक की परिवर्तनशील औसत लागत से ज़्यादा है, तब तक नई मशीन नहीं लगाई जानी चाहिए. क्यों? पुरानी तकनीक से उत्पादन करने पर वास्तविक लागत तो परिवर्तनशील लागत ही है क्योंकि स्थिर संसाधनों की अवसर लागत हम शून्य मान रहे हैं. इस लिए अगर नई तकनीक की औसत लागत पुरानी तकनीक की परिवर्तनशील औसत लागत से अधिक है, तो नई तकनीक आने के बावजूद पुरानी मशीनों/तकनीक से उत्पादन करना बेहतर है.

पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार के दीर्घकालीन संतुलन के इन गुणों के कारण – न्यूनतम संभव लागत पर उत्पादन, शून्य लाभ, बाज़ार भाव सीमान्त उपयोगिता के बराबर, सीमान्त लागत एवं सीमान्त उपयोगिता का समान होना, एवं इन गुणों की प्राप्ति बिना किसी के दखलंदाजी के, जैसे अदृश्य शक्ति ऐसा कर रही हो – ही मुक्त बाज़ार को अर्थव्यवस्था के लिए आदर्श व्यवस्था माना जाता है. इन गुणों की पड़ताल हम पुस्तक के अंतिम हिस्से में करेंगे परन्तु फ़िलहाल के लिए दो-तीन बातों की ओर ध्यान आकर्षित करना आवश्यक है. एक तो यह कि **बाज़ार संतुलन के ये गुण पूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था में ही प्राप्त होते हैं, हर तरह के बाज़ार में नहीं.** दूसरा **ये गुण पूर्ण प्रतियोगिता वाले बाज़ार में भी दीर्घकालीन संतुलन की अवस्था में ही प्राप्त होते हैं, न कि हर समय. और दीर्घकालीन संतुलन प्राप्त करने में कितना समय लगेगा, इस बाबत अर्थशास्त्र कुछ भी कहने कि स्थिति में नहीं है.**

अगले अध्यायों में पूर्ण प्रतियोगिता के अलावा अन्य तरह के बाज़ारों की स्थिति में आपूर्ति इत्यादि का अध्ययन करेंगे परन्तु उस से पहले एक महत्त्वपूर्ण अवधारणा का अध्ययन करना आवश्यक है जिस का मुक्त बाज़ार व्यवस्था के मूल्यांकन से भी सम्बन्ध है.

चित्र 46- उपभोक्ता एवं उत्पादक आधिक्य



उपभोक्ता एवं उत्पादक आधिक्य (consumer and producer surplus): चित्र 46 के अनुसार बाज़ार संतुलन P_0 कीमत पर एवं Q_0 उत्पादन पर होगा. इस परिस्थिति में उपभोक्ता Q_0 तक हर इकाई के लिए P_0 कीमत देगा परन्तु माँग-वक्र से स्पष्ट है कि वह Q_1 इकाई के लिए P_1 कीमत देने को तैयार है. इस को समझने के लिए हमें माँग-वक्र कैसे प्राप्त किया गया था इस पर ध्यान देना होगा. P_1 कीमत पर उपभोक्ता Q_1 मात्रा ख़रीदने को तैयार था परन्तु इस से अधिक नहीं क्योंकि इस बिंदु पर उस की सीमान्त उपयोगिता कीमत के बराबर थी. यानी उपभोग की Q_1 इकाई से उसे P_1 के बराबर संतुष्टि मिल रही थी. परन्तु बाज़ार भाव तो P_0 *होने के चलते उसे* Q_1 इकाई के लिए मात्र P_0 *भुगतान करना पड़ रहा है. यानी इस अवस्था में उसे संतुष्टि* P_1 *के बराबर हो रही है परन्तु उसे इस की लागत मात्र* P_0 *चुकानी पड़ रही है. इस का अर्थ है कि उसे* Q_1 *इकाई से* $P_1 - P_0$ *के बराबर अतिरिक्त संतुष्टि प्राप्त हो रही है. ऐसा केवल* उपभोग की Q_1 इकाई के लिए नहीं हो रहा अपितु Q_0 से पूर्व की हर उपभोग इकाई पर ऐसा हो रहा है कि उसे मिलने वाली संतुष्टि उस द्वारा दिए गए भुगतान से अधिक है. P_0 *कीमत पर* Q_0 *मात्रा का उपभोग करने पर उसे माँग-वक्र के नीचे और क्ष अक्ष से ऊपर के क्षेत्र के बराबर कुल संतुष्टि प्राप्त हो रही है. इस के लिए उसे जो भुगतान करना पड़ रहा है वह* P_0 और Q_0 बिंदु के बीच की आयत के क्षेत्र के बराबर है. *इन दोनों के अंतर को यानी* P_0 *कीमत पर* Q_0 उपभोग करने पर उसे मिलने

वाली सतुष्टि एवं इस के लिए किए गए भुगतान के अंतर को *उपभोक्ता आधिक्य* (consumer surplus) *कहते हैं. यह चित्र 46 में* P_0 कीमत रेखा के ऊपर एवं माँग-वक्र के बीच के त्रिकोणीय क्षेत्र के समान है जिस गहरे रंग से दर्शाया गया है.

इसी प्रकार हम देख सकते हैं कि उत्पादक Q_1 इकाई P_2 कीमत पर दे सकता है क्योंकि Q_1 इकाई की सीमान्त लागत P_2के समान है. परन्तु बाज़ार भाव P_0 है. इस लिए इस इकाई के लिए उसे P_0- P_2 के बराबर अतिरिक्त राजस्व मिल रहा है. ऐसे ही Q_0से पहले उत्पादित हर इकाई से उसे कुछ मात्रा में अतिरिक्त राजस्व मिल रहा है. Q_0उत्पादन करने पर उत्पादक की कुल लागत इस बिंदु तक आपूर्ति-वक्र से नीचे और क्ष अक्ष से ऊपर के तिकोने से क्षेत्र के बराबर है जबकि उसे इस के एवज में P_0 और Q_0 बिंदु के बीच की आयत के क्षेत्र के बराबर राजस्व प्राप्त हो रहा है. इस लिए आपूर्ति-वक्र से ऊपर एवं P_0 कीमत रेखा से नीचे का तिकोना क्षेत्र उत्पादक को मिलने वाले अतिरिक्त राजस्व को इंगित करता है (इसे हल्के रंग से दर्शाया गया है). इसे उत्पादक आधिक्य (*producer surplus*) कहते हैं.

उत्पादक आधिक्य एवं उपभोक्ता आधिक्य दोनों को मिला कर जो आधिक्य बना, वह इस वस्तु के उत्पादन एवं उपभोग से समाज अथवा अर्थव्यवस्था को मिलने वाला शुद्ध आधिक्य है, समाज की संतुष्टि में शुद्ध बढ़ोतरी है. यह इंगित करता है कि इस वस्तु का Q_0 मात्रा में उत्पादन एवं उपभोग कर के समाज की संतुष्टि एवं लाभ में इतनी बढ़ोतरी हुई है. ध्यान दें कि Q_0 मात्रा के उत्पादन की लागत को हम उत्पादक को मिलने वाले राजस्व से घटा चुके हैं.

मौजूदा लागत वक्रों की स्थिति में, पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार संतुलन में ही कुल आधिक्य अधिकतम होता है. चित्र 46 से यह देखा जा सकता है कि पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार बाज़ार संतुलन की स्थिति को छोड़ कर, अन्य किसी भी कीमत पर जो कुल आधिक्य होगा वह इस से कम होगा. स्पष्ट रूप से अगर उत्पादन Q_0से अधिक होता है तो सीमान्त लागत ही सीमान्त उपयोगिता से अधिक हो जाएगी. ऐसा होने पर निश्चित तौर पर आधिक्य बढ़ने की बजाय घट जाएगा. दूसरी ओर अगर कीमत बढ़ कर P_1 हो जाती है और उत्पादन घट जाता है, तो उपभोक्ता आधिक्य घट जाएगा एवं इस का एक हिस्सा उत्पादक आधिक्य में जुड़ कर उसे बढ़ा देगा. परन्तु कुल आधिक्य घट जाएगा क्योंकि कुल माँग/उत्पादन घट जाएगा. इस लिए Q_1 Q_0 क्षेत्र के ऊपर मोटी रेखा से घिरे क्षेत्र में स्थित आधिक्य नष्ट हो जाएगा. अगर कीमत घट कर P_2 हो जाती है, तब उत्पादक आधिक्य घट जाएगा और उपभोक्ता अधिक्य बढ़ जाएगा लेकिन इस स्थिति में भी कुल आधिक्य घट जाएगा. इन दोनों कीमतों पर उत्पादन/बिक्री तो मात्र Q_1 होगी. इस लिए Q_1 Q_0 क्षेत्र के ऊपर मोटी रेखा से घिरे क्षेत्र में स्थित आधिक्य नष्ट हो जाएगा. यह आधिक्य में ऐसी कमी है जिस का लाभ न उपभोक्ता को मिलेगा और न उत्पादक को. यह ऐसा निखालिस घाटा है जिस की एवज़ में किसी को लाभ नहीं मिलता. ऐसे निखालिस नुकसान को अंग्रेज़ी में 'डेड वेट लॉस' (dead weight loss) कहते हैं..

बाह्य चरों में बदलाव का संतुलन बिंदु पर प्रभाव: मान लीजिये कि एक पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार P_0, Q_0 बिंदु पर दीर्घकालीन संतुलन में है. अब अगर सरकार उत्पादकों पर 50 रुपए का एक मुश्त कर (lumpsum tax)– यानी कर की मात्रा स्थिर है एवं उत्पादन की मात्रा से इस का कोई सम्बन्ध नहीं है - लगा देती है, तो इस का बाज़ार संतुलन पर क्या असर होगा. स्पष्ट है कि अल्प काल में उत्पादन एवं बिक्री पर इस का कोई असर नहीं होगा. क्यों? यह एक मुश्त कर है, इस लिए चाहे कितना भी उत्पादन हो, यह तो भरना ही पड़ेगा. P_0 बाज़ार भाव पर अन्य लागतों की भरपाई तो हो रही है, इस लिए अल्प काल में ऐसे एक मुश्त कर का उत्पादन पर कोई असर नहीं होगा. दीर्घकाल में क्या होगा? दीर्घ काल में इस नए कर के चलते, औसत उत्पादन लागत बढ़ जाएगी. औसत लागत में कितनी वृद्धि होगी? 50 रुपए या इस से कम या ज़्यादा? कुल लागत 50 रुपये बढ़ जाएगी परन्तु औसत लागत में वृद्धि 50 रुपये न हो कर 50 रुपए भाग में उत्पादन का स्तर होगी. कुल उत्पादन बढ़ेगा या घटेगा या स्थिर रहेगा? क्योंकि औसत लागत बढ़ गई है, इस लिए न्यूनतम औसत लागत भी बढ़ जाएगी, जिस के चलते दीर्घकालीन संतुलन की स्थिति में बाज़ार भाव भी बढ़ जाएगा. अगर बाज़ार भाव बढ़ जाएगा, तो निश्चित तौर पर माँग भी घट जाएगी यानी कि उत्पादन भी घट जाएगा. ध्यान रहे यह सब दीर्घकालीन संतुलन की स्थिति में होगा. यह चर्चा

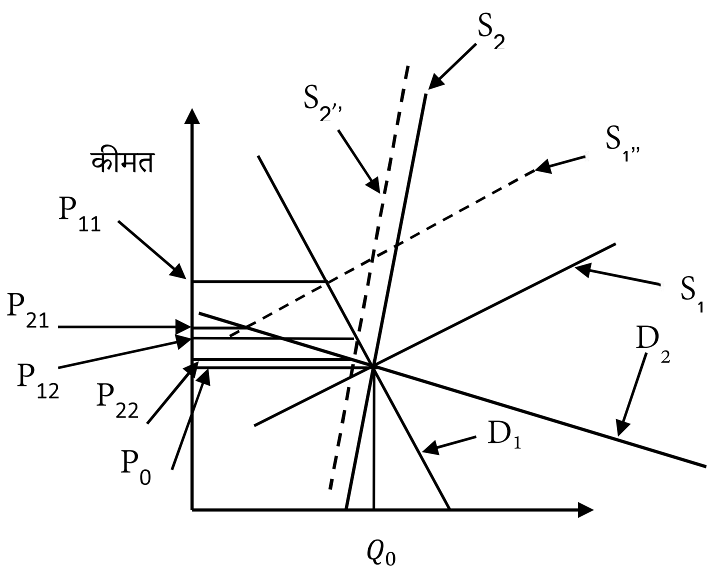
तुलनात्मक निश्चल संतुलन अध्ययन का एक उदाहरण है. इस समीक्षा में हमने देखा कि बाह्य चरों में बदलाव का संतुलन बिंदु में क्या प्रभाव पड़ता है एवं दोनों परिस्थितियों के संतुलन बिन्दुओं की तुलना की है.

बाह्य चरों में कई तरह के बदलाव हो सकते हैं. उदाहरण स्वरूप हम कुछ और परिवर्तनों की चर्चा यहाँ करेंगे. उन के अलावा भी आप को अन्य चरों के बदलाव का अध्ययन करना चाहिए.

अगर एक मुश्त कर के स्थान पर प्रति इकाई 50 रुपये कर लगा (या बढ़ा) दिया जाए तो इस का क्या प्रभाव पड़ेगा? इस से स्थिर लागत बढ़ेगी या सीमान्त लागत? प्रति इकाई कर लगने से सीमान्त लागत एवं औसत लागत बढ़ जाएगी. सीमान्त लागत एवं औसत लागत दोनों 50 रुपये बढ़ जाएँगी. हम जानते हैं कि औसत परिवर्तनशील लागत से ऊपर का सीमान्त लागत-वक्र उत्पादक का आपूर्ति-वक्र होता है. इस का अर्थ यह हुआ कि कर बढ़ने से आपूर्ति-वक्र ऊपर की ओर खिसक जाएगा. जिस का स्पष्ट प्रभाव यह होगा कि बाज़ार भाव बढ़ जाएगा और उत्पादन कम हो जाएगा.

परन्तु बाज़ार भाव कितना बढ़ेगा? चित्र 47 से हम देख सकते हैं कि यह माँग-वक्र एवं आपूर्ति-वक्र की लोच पर निर्भर करेगा. चित्र 47 में P_0, Q_0बिंदु पर दो माँग-वक्र एवं दो आपूर्ति-वक्र - D_1, D_2, S_1 एवं S_2 – एक दूसरे को काटते हुए दिखाए गए हैं. इन वक्रों की ढलान अलग है. समीकरण 15 एवं 30 से स्पष्ट है कि किसी बिंदु पर वक्रों की ढलान अलग होने पर उन की लोच भी अलग होती है. इस लिए इन चारों वक्रों की लोच भी भिन्न है परन्तु ये चारों वक्र एक ही बाज़ार संतुलन को इंगित करते हैं यानी बाज़ार भाव एवं माँग अथवा उत्पादन एक ही है. इन में से किस माँग और आपूर्ति-वक्र की लोच ज़्यादा है एवं किस की कम है, इस की व्याख्या आप स्वयं करें. इस के लिए आप को ढलान एवं लोच के सम्बन्ध को ध्यान में रखना होगा. आवश्यकता पड़ने पर लोच सम्बन्धित अध्याय को दोहरा लें.

चित्र 47- प्रति इकाई कर का बाज़ार पर प्रभाव



चित्र 47 में कर बढ़ने पर नए आपूर्ति-वक्र भी दिखाएँ गए हैं. इन को बिंदीदार रेखा से चित्रित किया गया है. S_1 बदल कर $S_{1''}$ बन जाएगा एवं S_2 बदल कर $S_{2''}$ बन जाएगा. $S_{1''}$ एवं $S_{2''}$ क्रमशः अपने पुराने वक्रों से ऊपर की ओर एक सामान दूरी से खिसके हैं क्योंकि कर वृद्धि एक समान ही है. दिखने में ऐसा लगता है कि S_1 अधिक खिसका है और S_2 कम. परन्तु अगर आप नापेंगे, यानी किसी भी उत्पादन स्तर पर नए एवं पुराने आपूर्ति वक्रों के बीच का अंतर नापेंगे, तो पाएँगे कि दोनों वक्र समान दूरी से खिसके हैं. दोनों नए आपूर्ति-वक्र पुराने आपूर्ति वक्रों के समानांतर भी हैं.

स्वयं चित्र खींचते हुए दो बातों का ध्यान रखना चाहिए. एक तो यह कि दोनों आपूर्ति वक्रों एवं दोनों माँग वक्रों की ढलान में जितना ज़्यादा अंतर होगा, उतना ही चित्र बेहतर बनेगा. दूसरी ध्यान में रखने वाली बात यह है कि S_1 की $S_{1''}$ तथा S_2 की $S_{2''}$ से लम्बवत दूरी एक समान होनी चाहिए यानी $S_{1''}$ एवं $S_{2''}$ एक दूसरे को ठीक P_0, Q_0के ऊपर काटेंगे. अब ये नए दो आपूर्ति-वक्र और दो माँग-वक्र मिल कर कुल चार संतुलन के बिन्दुओं को इंगित करते हैं. इन से सम्बन्धित बाज़ार भावों को हम ने P_{11} (माँग-वक्र D_1 एवं आपूर्ति-वक्र $S_{1''}$ का मिलन स्थल; यानी P के साथ नीचे लिखा पहला अंक माँग वक्र इंगित करता है एवं दूसरा अंक आपूर्ति-वक्र इंगित करता है), P_{21} (माँग-वक्र D_2 एवं आपूर्ति-वक्र $S_{2''}$ का मिलन स्थल) इत्यादि द्वारा चित्रित किया है. चित्र और अधिक जटिल न हो जाए, इस लिए इन चारों बाज़ार भावों से सम्बन्धित मात्रा को नहीं दर्शाया गया है हालाँकि इन को भी इसी तरह Q_{11} इत्यादि द्वारा दर्शाया जा सकता है.

चित्र से स्पष्ट है कि कर बढ़ने पर कीमत बढ़ेगी एवं उत्पादन घटेगा परन्तु कीमत में बदलाव की मात्रा माँग एवं आपूर्ति की लोच पर निर्भर करेगी. कर बढ़ने का कीमत एवं मात्रा पर क्या प्रभाव पड़ेगा, इसे आप स्वयं व्यक्त करें. इस के लिए एक माँग-वक्र एवं दो आपूर्ति वक्रों को अथवा एक आपूर्ति-वक्र एवं दो माँग-वक्र ले कर विवेचना करें एवं तालिका 5 को चित्र 47 की सहायता से पूरा करें. यह तालिका पूरी करने में आप को काफ़ी समय लग सकता है, परन्तु यह उपयोगी होगा एवं इस प्रक्रिया में आप कई अवधारणाओं को दोहरा पायेंगे. तालिका 5 में कम/अधिक से अभिप्राय दोनों वक्रों में कीमत वृद्धि की तुलना से है ना कि कर की मात्रा से.

तालिका 5

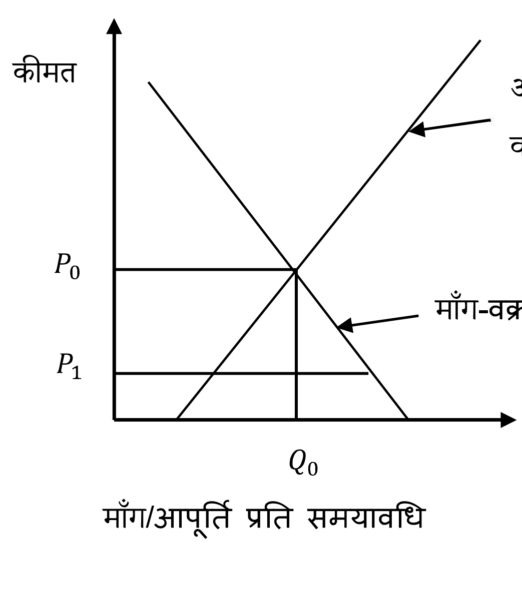
लोच एवं कर में बदलाव का सम्बन्ध

आपूर्ति की कीमत लोच ज़्यादा होने पर	कीमत में वृद्धि .... (कम/अधिक) होती है.	माँग में कमी .... (कम/अधिक) होती है.
माँग की कीमत लोच ज़्यादा होने पर	कीमत में वृद्धि .... (कम/अधिक) होती है.	माँग में कमी .... (कम/अधिक) होती है.

माँग में बदलाव का प्रभाव: मान लें कि हम मोटर साइकिल बाज़ार का अध्ययन कर रहे हैं. फ़िलहाल यह बाज़ार संतुलन की स्थिति में है. बाज़ार भाव P_0 है और माँग एवं उत्पादन Q_0 है. अगर पेट्रोल की कीमत बढ़ जाए तो मोटर साइकिल बाज़ार के संतुलन पर क्या असर होगा, नया संतुलन बिंदु की तुलना में कहाँ पर होगा?

हम जानते हैं कि किसी वस्तु की माँग अन्य वस्तुओं की कीमत पर भी निर्भर करती है. पेट्रोल मोटर साइकिल की पूरक वस्तु है. इस लिए पेट्रोल महँगा होने पर मोटर साइकिल का माँग-वक्र नीचे की ओर खिसक जाएगा. अगर पेट्रोल उत्पादकों द्वारा प्रयुक्त संसाधन नहीं है, तो इस के महँगा होने पर भी मौजूदा उत्पादकों के मोटर साइकिल के आपूर्ति-वक्र में कोई बदलाव नहीं होगा. इस का स्पष्ट अर्थ है कि मोटर साइकिल बाज़ार में कीमत कम हो जाएगी और उत्पादन भी कम हो जाएगा. इस के विपरीत किसी वस्तु की माँग बढ़ने पर बाज़ार भाव बढ़ जाएगा. अगर माँग में परिवर्तन से पहले बाज़ार दीर्घकालीन संतुलन की स्थिति में था, तो अब बाज़ार भाव में बदलाव के चलते उत्पादकों को हानि या लाभ होने लग जाएगा एवं बाज़ार संतुलन में नहीं रहेगा. हानि होने पर कुछ उत्पादक बाज़ार छोड़ देंगे तो लाभ होने पर नए उत्पादक आ जाएँगे. इस के चलते न केवल उत्पादन प्रभावित होगा अपितु फ़र्मों के आने जाने से बाह्य बचतों या हानि के चलते लागत-वक्र भी खिसक सकते हैं. इस लिए माँग बदलने पर नए संतुलन बिंदु पर कीमत स्थिर भी रह सकती है और बढ़-घट भी सकती है. अगर उत्पादन बढ़ने पर कीमत स्थिर रहती है तो ऐसे बाज़ार को स्थिर लागत बाज़ार कहा जाता है, अन्यथा क्रमशः बढ़ती/घटती लागत बाज़ार कहा जाता है. माँग में बदलाव के चलते दीर्घकालीन संतुलन बिन्दुओं के समूह को पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार का दीर्घकालीन आपूर्ति-वक्र कहा जाता है.

चित्र 48- बाज़ार में हस्तक्षेप का प्रभाव



इस तरह से अन्य बाह्य बदलावों का भी संतुलन बिंदु पर प्रभाव का अध्ययन किया जा सकता है. इस का पर्याप्त अभ्यास किया जाना चाहिए. ये सब उदाहरण तुलनात्मक निश्चल संतुलन अध्ययन के उदाहरण हैं.

बाज़ार में हस्तक्षेप के प्रभाव: बाह्य बदलाव बाज़ार में हस्तक्षेप का रूप भी ले सकता है. चित्र 48 में गेहूं के माँग-वक्र एवं आपूर्ति-वक्र का संतुलन दिखाया गया है. हो सकता है कि

सरकार/समाज[45] को लगे कि गेहूं का बाज़ार भाव P_0 बहुत ज़्यादा है; इस भाव पर देश की अधिकांश जनता भोजन से वंचित रह जाएगी. कुछ लोगों के कुत्ते भी रोटी खायेंगे और किसी के बच्चे को भी रोटी नहीं मिलेगी. मान लें कि सरकार/समाज को लगता है कि P_1 गेहूं का उपयुक्त भाव है. इस लिए कानून बना कर इस से अधिक भाव पर गेहूं बेचने को अपराध घोषित कर दिया जाता है. अब क्या होगा? P_1 भाव पर माँग एवं आपूर्ति एक समान नहीं है; माँग ज़्यादा है और आपूर्ति कम है. इस के दो प्रभाव हो सकते हैं. क्योंकि माँग आपूर्ति से ज़्यादा है तो इस लिए एक प्रभाव तो यह हो सकता है कि गेहूं की कालाबाजारी होने लग जाए. कागजों में तो कीमत P_1 दर्शाई जाए, रसीद तो इतने की ही काटी जाए, परन्तु ग्राहक से ज़्यादा लिया जाए. दूसरा प्रभाव यह हो सकता है कि उत्पादक अपने पसंद के लोगों को बेचे और बाकियों को कहे कि गेहूं ख़त्म हो गया है. वास्तविक जीवन में दोनों तरह के काम भी हो सकते हैं- भाव भी ज़्यादा लिया जाए और अपने पसंद के लोगों को ही दिया जाए. बाज़ार कोई भी तरीका अपनाए परन्तु भाव नियंत्रित करने का मूल उद्देश्य कि गेहूं सब को खाने को मिले, यह तो पूरा नहीं हो पायेगा.

इस लिए कीमत नियंत्रण का कानून बनाने के साथ ही यह भी ज़रूरी है कि कड़ाई से उस का पालन भी हो एवं एक व्यक्ति/परिवार की खपत-मात्रा पर भी नियंत्रण रखा जाए. यानी कि प्रति-व्यक्ति या प्रति परिवार एक समयावधि में एक निश्चित मात्रा ही मिलनी चाहिए. ऐसी व्यवस्था को अंग्रेज़ी में rationing यानी नियंत्रित बिक्री कहते हैं. इस लिए ही राशन की दुकान पर निश्चित भाव पर निश्चित मात्रा ही मिलती है. कीमत नियंत्रण के साथ 'पहले आओ, पहले पाओ' की व्यवस्था नहीं लागू की जा सकती क्योंकि नियंत्रित कीमत पर माँग एवं आपूर्ति समान नहीं होते. युद्ध, अकाल, आपदा की स्थिति में दुनिया भर में कीमत नियंत्रण एवं नियंत्रित वितरण की व्यवस्था लागू की जाती है. भले ही पूरी तरह से कालाबाजारी पर रोक न लग पाए परन्तु बाज़ार में ऐसा बाह्य हस्तक्षेप ज़रूरी वस्तुओं का तुलनात्मक रूप से बेहतर वितरण सुनिश्चित करता है.

अगर सरकार द्वारा घोषित अधिकतम कीमत P_1 हो यानी बाज़ार संतुलन बिंदु से अधिक हो तो इस का क्या प्रभाव होगा? इस पर स्वयं विचार करें.

अगर सरकार अधिकतम कीमत की बजाय न्यूनतम कीमत घोषित करे तो क्या होगा? मान लीजिए सरकार को लगता है कि चित्र 48 में वर्णित बाज़ार भाव P_0 पर किसानों को बहुत नुकसान हो जाएगा, उन का जीना मुश्किल हो जाएगा. इस लिए अगर सरकार P_2 को न्यूनतम बिक्री मूल्य धोषित करे एवं इस से कम दाम पर ख़रीदना अपराध घोषित कर दे,[46] तो उस का प्रभाव किया होगा? P_2 कीमत पर माँग कम होगी और आपूर्ति ज़्यादा होगी. अगर वास्तव में यह भाव कड़ाई से लागू हो जाता है, तो कुछ किसानों का कुछ माल बिक जाएगा परन्तु शेष का माल बिक ही नहीं पायेगा. **न्यूनतम कीमत घोषित करने के साथ, सरकार को इस कीमत पर ख़रीद करने के**

---

[45] आमतौर पर सरकार एवं समाज को अलग-अलग समझा जाता है. चुनाव से निकली/संविधान से निकली व्यवस्था को सरकार माना जाता है. समाज को इस से अलग माना जता है. बहुत बार नागरिकों द्वारा सरकार विरोधी प्रदर्शन भी होते हैं, जिन से स्पष्ट पता चलता है कि सरकार एवं समाज/नागरिकों की सोच अलग है. परन्तु सरकार समाज के प्रतिनिधि के तौर पर ही स्वीकार्य है, उस का औचित्य समाज के प्रतिनिधि के तौर पर ही है, अन्यथा नहीं. यह बात अलग है कि प्रतिनिधि स्वहित पोषण में लग जाएँ एवं उस के हित को अनदेखा कर दें जिस के कि वे प्रतिनिधि हैं. परन्तु सिद्धांत रूप में सरकार समाज की प्रतिनिधि होती है. इस लिए इस पुस्तक में हम सरकार एवं समाज को समानार्थी मान कर चलेंगे.

[46] फ़िलहाल देश में न्यूनतम समर्थन मूल्य की घोषणा का अर्थ मात्र इतना है कि सरकार इस दाम पर ख़रीदेगी एवं सरकार इस से कम दाम नहीं देगी. फ़िलहाल केंद्रीय सरकार ने न्यूनतम समर्थन मूल्य से कम दाम पर ख़रीदना अपराध घोषित नहीं किया है. 2021 में देश की कई विधान सभाओं में कुछ फसलों के लिए इस आशय के प्रस्ताव अवश्य पारित किए थे कि न्यूनतम समर्थन मूल्य से कम कीमत पर ख़रीदी गैर कानूनी होगी.

लिए भी आगे आना होगा तभी किसानों को प्रभावी रूप से यह भाव मिल पायेगा.[47] दूसरी ओर, अगर कानून तो बन गया परन्तु कड़ाई से लागू नहीं किया गया तो इस का प्रभाव यह होगा कि रसीद तो न्यूनतम घोषित मूल्य, P_2 की कटेगी परन्तु वास्तव में इतना भाव मिलेगा नहीं.

कुछ ऐसा ही आज भी हो रहा है. मान्यता प्राप्त सभी शिक्षण संस्थाओं में चाहे वे निजी संस्थान हों, शिक्षकों को सरकारी वेतन-दरमान से कम वेतन-दर नहीं दिया जा सकता. परन्तु वास्तविकता यह है कि बहुत बार निजी शिक्षण संस्थान में कार्यरत अध्यापकों को सरकारी वेतमान से कम वेतन-दर दिया जाता है. ऐसा भी देखा गया है कि निजी कालेज में पढ़ाने वाले शिक्षक सरकारी स्कूलों में भी खुशी-खुशी पढ़ाने को तैयार हो जाते हैं. इस के कई कारण हो सकते हैं परन्तु एक बड़ा संभावित कारण तो यह हो सकता है कि उन्हें कालेज में पढ़ाते हुए कालेज शिक्षक का सरकारी वेतन-दर मान नहीं मिलता एवं निजी कालेज में मिलने वाला वेतन-दर सरकारी स्कूल में मिलने वाले वेतन-दर से भी कम होता है.

उपरोक्त चर्चा से दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं. अगर सरकार/समाज को बाज़ार में हस्तक्षेप करना है तो न केवल कानून बनाना होगा परन्तु उस के कड़ाई से पालन की व्यवस्था भी करनी होगी. इस के साथ ही यह भी आवश्यक है कि कीमत नियंत्रण के साथ-साथ वितरण/उत्पादन को भी नियंत्रित करना ही होगा. सरकार/समाज स्वयं बाज़ार में एक प्रतिभागी के रूप में शामिल हो कर न्यूनतम/अधिकतम दाम को सरलता से प्रभावी बना सकता है.

इस अध्याय में हम ने पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार की संरचना के मूल तत्त्वों का अध्ययन किया है. हमें यह स्पष्ट होना चाहिए कि किस प्रकार ये तत्त्व मिल कर यह सुनिश्चित करते हैं कि कोई भी उपभोक्ता या उत्पादक अपने निर्णयों या व्यवहार से बाज़ार भाव को प्रभावित नहीं कर सकता. यह भी स्पष्ट होना चाहिए कि इन में से कोई भी तत्त्व उपस्थित न होने पर पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार का यह मूल गुण बना नहीं रह सकता. इस के बाद, हम ने फ़र्म के अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक आपूर्ति वक्रों का अध्ययन किया. इस पूर्व तैयारी के बाद हम यह समझ पाए कि पूर्ण प्रतियोगिता बाज़ार में कीमतों का निर्धारण कैसे होता है. हम ने संतुलन, संतुलन की प्रक्रिया एवं इस की विभिन्न अवधारणाओं का भी अध्ययन किया. इस प्रक्रिया में हम एक विचित्र निष्कर्ष पर पहुंचे कि एक ऐसा उत्पादक जिस का उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना हो, वह अल्प काल में हानि उठा कर भी उत्पादन कर सकता है एवं दीर्घकाल के संतुलन की स्थिति में इस का लाभ शून्य ही होगा. इस विचित्र निष्कर्ष को समझने के लिए लाभ के दो अर्थों- बोलचाल में लाभ का अर्थ एवं अर्थशास्त्र में लाभ की परिभाषा- के अंतर को समझना आवश्यक है. पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में संतुलन की स्थिति के गुणों को भी हम ने चिह्नित किया. इन की समीक्षा हम बाद में करेंगे. इस सन्दर्भ में उपभोक्ता एवं उत्पादक आधिक्य की अवधारणा का भी हम ने अध्ययन किया है.

बाह्य चरों में परिवर्तन का संतुलन बिंदु पर प्रभाव एवं बाज़ार में समाज/सरकार के हस्तक्षेप का अध्ययन न केवल अपने आप में महत्त्वपूर्ण है अपितु इस प्रक्रिया में अब तक तो जो हम ने पढ़ा है, उस की दोहराई भी हो जाती है.

अब हम बाज़ार के एक विशिष्ट रूप, पूर्ण प्रतियोगिता, के अंतर्गत कीमत निर्धारण कैसे होता है, वह हम देख चुके हैं. आने वाले अध्यायों में हम देखेंगे कि अगर बाज़ार की संरचना पूर्ण प्रतियोगिता से भिन्न हो, तो कीमत निर्धारण कैसे होता है एवं उन परिस्थितियों में बाज़ार संतुलन के गुण क्या होते हैं. परन्तु आगे के अध्यायों में अब तक पढ़ी सामग्री, विशेष तौर पर इस अध्याय में पढ़ी सामग्री का बार-बार प्रयोग होगा. इस लिए इस सामग्री को आत्मसात करना आवश्यक है.

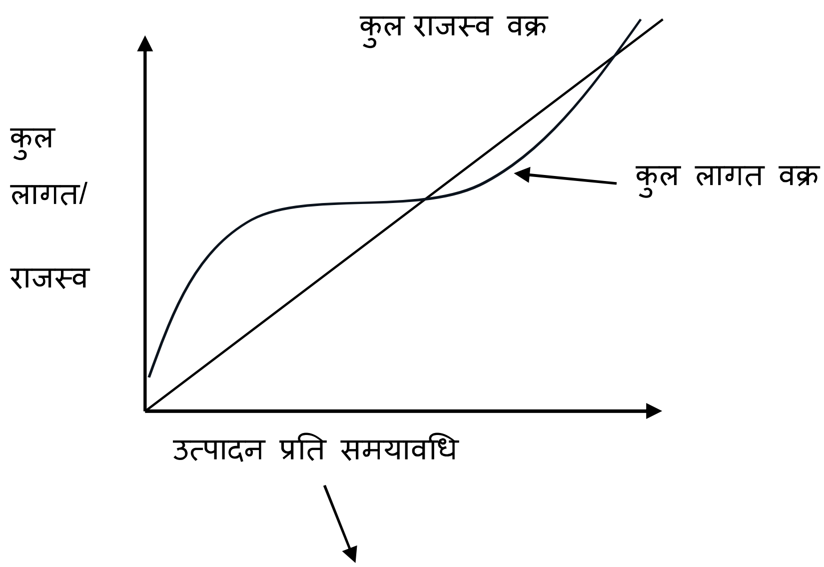
प्रश्न

1. पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार का मूल गुण क्या है एवं इस के लिए आवश्यक शर्तें क्या हैं?

---

[47] अगर न्यूनतम कीमत की घोषणा उत्पादकों की आय बढ़ाने के उद्देश्य से न कर के किसी अन्य उद्देश्य से की जाती है, उदाहरण के लिए खपत को कम करने के लिए, तो कीमत नियंत्रण कानून के साथ-साथ सरकार को उत्पादन नियंत्रण के उपाय भी करने होंगे यानी कि उत्पादन की भी 'राशनिंग' (rationing) करनी होगी.

2. पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार के उत्पादक के इष्टतम उत्पादन स्तर की क्या शर्तें हैं? कारणों सहित इन की व्याख्या करें.
3. संतुलन, निश्चल संतुलन, आंशिक संतुलन अध्ययन को परिभाषित करें.
4. पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार का संतुलन किन परिस्थितियों में विस्थापित हो सकता है?
5. पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार के प्रतिभागी का दीर्घकालीन आपूर्ति फलन कैसा होता है.
6. अगर माँग-वक्र की ढलान धनात्मक हो और आपूर्ति-वक्र की ढलान ऋणात्मक हो, तो क्या बाज़ार संतुलन टिकाऊ होगा? चित्र की सहायता से स्पष्ट करें.
7. निम्न को परिभाषित करें: उपभोक्ता आधिक्य, उत्पादक आधिक्य, सामान्य लाभ, असामान्य लाभ, आपूर्ति, इष्टतम स्तर.
8. पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार के दीर्घकालीन संतुलन के गुणों का वर्णन करें.
9. उत्पादन के साधनों की कीमतें कम होने पर पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार के दीर्घकालीन संतुलन बिंदु पर क्या प्रभाव पड़ेगा? तर्क पूर्ण व्याख्या करें.
10. अति अल्प काल में माँग में वृद्धि का बाज़ार भाव एवं उपभोग पर पड़ने वाले प्रभाव का वर्णन करें.
11. काला बाजारी एवं राशन व्यवस्था का क्या कोई परस्पर सम्बन्ध है? अपने उत्तर को स्थापित करें.
12. क्या कुल राजस्व-वक्र क्ष अक्ष के साथ हमेशा 45^0 का कोण बनाता है? अपने उत्तर को स्थापित करें.
13. निम्न चित्र के लागत-वक्र का 'उत्पादन बंदी' दाम चिह्नित करें. लाभ वक्र को भी अंकित करें. बाज़ार भाव घटने का कुल राजस्व-वक्र पर क्या असर होगा?



14. निम्न आपूर्ति वक्रों के आधार पर बाज़ार आपूर्ति-वक्र ज्ञात करें. इसे चित्र एवं गणितीय गणना दोनों तरीकों से करें. इस के अलावा चारों आपूर्ति वक्रों के आपूर्ति की कीमत लोच वक्र की भी गणना करें. पड़ताल करें कि क्या बाज़ार लोच विभिन्न उत्पादकों की लोच का भारित/भारांकित योग (weighted sum) है.

$$Q_x^1 = 2P_x,\ Q_x^2 = 2P_x - 5, Q_x^3 = 2P_x + 7$$

15. एक उत्पादक का कुल राजस्व-वक्र य अक्ष को कहाँ पर छूएगा एवं क्यों? पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में इस की ढलान स्थिर होती है या परिवर्तनशील?
16. क्या संतुलन की स्थिति में सीमान्त लागत-वक्र का ढलान ऋणात्मक हो सकती है? तर्कसंगत व्याख्या करें.
17. एक बाज़ार में आपूर्ति-वक्र $S_x = 2P_x + 7$ है एवं माँग-वक्र $SD_x = 10 - P_x$. क्या कीमत 2 होने पर बाज़ार का संतुलन में होना संभव है? अगर नहीं, तो किस कीमत पर यह बाज़ार संतुलन में होगा?

18. आपूर्ति को प्रभावित करने वाले कारकों का विश्लेषण करें.

19. किसी उत्पादक के अल्प कालिक लागत-वक्र चित्रित कर के, बाज़ार भाव के वे बिंदु चिह्नित करें जहाँ उत्पादक को हानि हो रही है, लाभ शून्य हैं एवं लाभ शून्य से अधिक हैं.

20. क्या यह संभव है कि किसी बाज़ार में सब उत्पादक संतुलन में हैं परन्तु बाज़ार संतुलन की स्थिति में नहीं है? अपने उत्तर की तर्क पूर्ण व्याख्या करें.

21. एक वस्तु का उत्पादन फलन ऐसा है कि उस में हर उत्पादन स्तर पर पैमाने का वृद्धिमान बदलाव लागू होता है. क्या इस वस्तु का बाज़ार पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार हो सकता है?

22. क्या आप इस से सहमत हैं कि अंततः बढ़ती औसत लागत पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार की अनिवार्य शर्त है? व्याख्या करें.

23. अध्याय में दिए गए चित्र 47 में D_1 एवं D_2 में से कौन से माँग-वक्र की कीमत लोच P_0 भाव पर ज़्यादा है? प्रति इकाई सीमान्त उत्पादन में 2 रुपये की बढ़ोतरी होने पर, बाज़ार भाव में बढ़ोतरी 2 रुपये होगी या इस से कम या इस से ज़्यादा? किस माँग-वक्र में भाव ज़्यादा बढ़ेगा? इस के आधार पर कर में बढ़ोतरी का, उपभोक्ता पर पड़ने वाले भार एवं माँग की लोच के सम्बन्ध की व्याख्या करें.

24. अध्याय में दिए गए चित्र 47 में S_1 एवं S_2 में से कौन सा आपूर्ति-वक्र की कीमत लोच P_0 भाव पर ज़्यादा है? प्रति इकाई सीमान्त उत्पादन लागत में 1 रुपये की बढ़ोतरी होने पर, बाज़ार भाव में बढ़ोतरी 1 रुपये होगी या इस से कम या इस से ज़्यादा? किस आपूर्ति-वक्र में भाव ज़्यादा बढ़ेगा? इस के आधार पर सीमान्त लागत में, बढ़ोतरी का उपभोक्ता पर पड़ने वाले भार एवं आपूर्ति की कीमत लोच के सम्बन्ध की व्याख्या करें.

25. क्या आप निम्न वक्तव्य से सहमत हैं: सीधी रेखा के आपूर्ति-वक्र में कीमत की आपूर्ति लोच स्थिर रहती है? कारण दें.

26. अगर एक-एकड़ ज़मीन से एक किसान को निम्न तालिका अनुसार उत्पादन मिलता है. अनाज का विक्रय मूल्य 10 रुपया प्रति किलोग्राम है. अगर खाद की कीमत 30 रुपया प्रति किलोग्राम हो, तो यह किसान कितनी खाद का प्रयोग करेगा? अगर खाद की कीमत 50 रुपया प्रति किलोग्राम हो तो कितनी खाद का प्रयोग होगा?

खाद की मात्रा किलोग्राम	0	1	2	3	4	5	6
उत्पादन किलोग्राम	90	105	113	118	122	125	126

27. अगर पैमाने का प्रतिफल स्थिर है एवं एक उत्पादक के लिए संसाधनों की कीमत भी स्थिर हो तो दीर्घकाल में सीमान्त लागत-वक्र क्ष अक्ष के समानान्तर रेखा का स्वरूप लेगा. इस कथन का मूल्यांकन करें.

28. अगर एक पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार संतुलन में हो और सरकार उस पर एक मुश्त कर लगा दे, तो निम्न पर क्या असर पड़ेगा: उद्योग में उत्पादकों की संख्या, उद्योग के आपूर्ति-वक्र पर एवं वस्तु के बाज़ार भाव पर.

अध्याय -10

एकाधिकारी बाज़ार (Monopoly)

पिछले अध्याय में हम ने पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार, यानी ऐसा बाज़ार जिस में उत्पादक एवं उपभोक्ता दोनों को बाज़ार भाव स्वीकार करना पड़ता है, का अध्ययन किया है. इस अध्याय में हम इस के ठीक विपरीत स्थिति के बाज़ार का अध्ययन करेंगे.

ऐसा बाज़ार जिस में उत्पादक स्वयं बाज़ार भाव का निर्धारण कर सकता है एकाधिकारी बाज़ार कहलाता है. निश्चित तौर पर एकाधिकारी बाज़ार में एक ही उत्पादक होना चाहिए वरना वह बाज़ार भाव तय नहीं कर सकता. परन्तु बाज़ार भाव तय करने के लिए **एकाधिकारी को न केवल वस्तु का एक मात्र उत्पादक होना चाहिए अपितु तीन अन्य शर्तें भी पूरी होनी चाहिएँ.** पहली शर्त यह है कि उस वस्तु की निकट स्थानापन्न वस्तु नहीं होनी चाहिए. उदाहरण के लिए, कोलगेट नामक टूथ पेस्ट का उत्पादन एक ही कम्पनी कर सकती है. परन्तु क्या यह कम्पनी कोलगेट टूथ पेस्ट का दाम तय करने के लिए स्वतंत्र है? नहीं, क्योंकि बाज़ार में कई अन्य तरह के टूथ पेस्ट उपलब्ध हैं. अगर कोलगेट टूथ पेस्ट के दाम बहुत ज़्यादा बढ़ जाते हैं, तो उपभोक्ता कोलगेट को छोड़ कर अन्य टूथ पेस्ट ख़रीदने लग जाएँगे. इस लिए किसी उत्पादक का वास्तविक एकाधिकार तभी हो सकता है जब उस के उत्पाद के निकट स्थानापन्न वस्तु न हों.

निकट स्थानापन्न वस्तुओं से हमारा अभिप्राय दो तरह की निकटता से है. आम तौर पर स्थानापन्न वस्तुओं से अभिप्राय ऐसी वस्तुओं से होता है जो एक जैसी आवश्यकता की पूर्ति कर सकती हों. इस तरह की स्थानापन्न वस्तुओं को हम तकनीकी तौर पर स्थानापन्न वस्तु मान सकते हैं. दो तरह की टूथ पेस्ट ऐसी तकनीकी स्थानापन्न वस्तु हैं. परन्तु एकाधिकार की परिभाषा के लिए वस्तुओं का तकनीकी तौर पर स्थानापन्न वस्तु होना ज़रूरी तो है परन्तु पर्याप्त नहीं है. उन का आर्थिक तौर पर स्थानापन्न वस्तु होना भी आवश्यक है; उनके दाम लगभग मिलते-जुलते होने चाहिए. उदाहरण के लिए, सड़क पर ठेले पर मिलने वाली चाय और महंगे पांच सितारा होटल में मिलने वाली चाय तकनीकी तौर पर एक दूसरे की स्थानापन्न वस्तु हैं क्योंकि दोनों चाय हैं परन्तु महंगे पांच सितारा होटल का एकाधिकार इस लिए ख़त्म नहीं हो जाएगा कि उस के पिछवाड़े में एक ठेले पर चाय बेचने वाला आ गया है. ऐसा इस लिए है कि दोनों चाय विक्रेताओं के ग्राहक बिलकुल अलग-अलग हैं. आम तौर पर महंगे पांच सितारा होटल में चाय पीने वाले ठेले पर चाय नहीं पीएंगे और ठेले पर चाय पीने वाले महंगे पांच सितारा होटल में तो शायद चाय पी भी नहीं सकते. **इस लिए एकाधिकार के लिए यह आवश्यक है कि वस्तु के निकट आर्थिक एवं तकनीकी स्थानापन्न उत्पाद उपलब्ध न हों.**

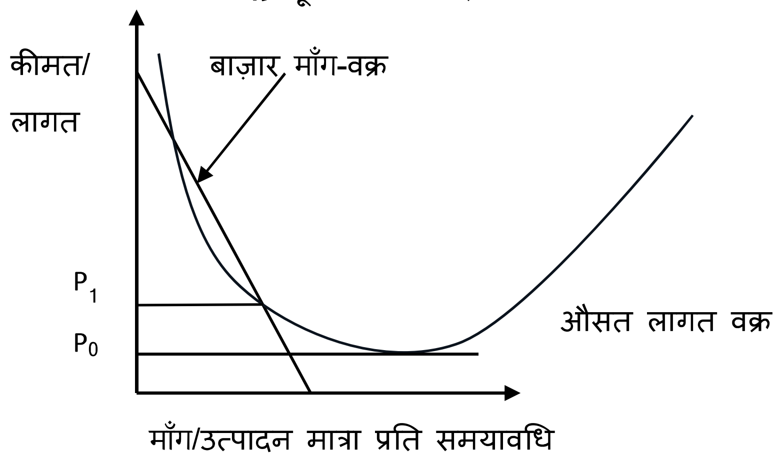
एकाधिकार के लिए दूसरी आवश्यक शर्त यह है कि न केवल वह वस्तु का एक मात्र उत्पादक हो अपितु उस बाज़ार में किसी अन्य उत्पादक का प्रवेश संभव भी न हो. स्पष्ट है कि भले ही एक गाँव में किसी वस्तु की एक ही दुकान हो, परन्तु अगर दूसरी दुकान खोलना सहज ही संभव हो. तो उस दुकानदार का व्यवहार उस स्थिति से अलग होगा जब दूसरी दुकान खोलना संभव ही न हो.

तीसरी आवश्यक शर्त यह है कि उपभोक्ता अनेक होने चाहिए. अगर किसी वस्तु का एक ही उत्पादक है परन्तु उस वस्तु का उपभोक्ता भी एक ही है, तो एक मात्र उत्पादक भी अपनी मर्जी से दाम तय नहीं कर सकता. एक उपभोक्ता एवं एक उत्पादक वाले बाज़ार को द्विपक्षीय/दो-तरफा एकाधिकार (bilateral monopoly) कहते हैं. इस का अध्ययन हम अलग से करेंगे. उपरोक्त सभी शर्तों के पूरा होने पर ही कोई बाज़ार एकाधिकारी हो सकता है.

एकाधिकार के कारण: एकाधिकार कई कारणों से हो सकता है. अगर किसी वस्तु का उत्पादन फलन ऐसा है कि उत्पादन बढ़ने पर औसत लागत लगातार घटती जाती है, और शून्य भाव पर भी किसी वस्तु की माँग उस मात्रा से कम है जिस मात्रा पर उत्पादन लागत न्यूनतम है, तो निश्चित तौर पर उस में एकाधिकारी उत्पादन ही संभव है. उदाहरण के लिए, चित्र 49 को देखें. ऐसे बाज़ार में पूर्ण प्रतियोगिता हो ही नहीं सकती. किसी भी बाज़ार भाव पर उत्पादन बढ़ाने से औसत लागत घटती जाती है. इस लिए हर उत्पादक अपना लाभ बढ़ाने के लिए अपना उत्पादन बढ़ाएगा. इस के चलते कुल उत्पादन बढ़ जाएगा जिस के चलते बाज़ार भाव कम हो जाएगा. परन्तु जब तक बाज़ार भाव P_0 से ऊपर रहेगा, तब तक हर उत्पादक उत्पादन बढ़ा कर अपनी औसत लागत कम कर सकता है. इस प्रक्रिया में दाम लगातार गिरते रहेंगे. दाम P_1 से कम होने पर उत्पादकों को हानि होने लग जाएगी, जिस के चलते उत्पादक बाज़ार छोड़ कर अन्यत्र चले जाएँगे.

परन्तु जब तक औसत लागत घट रही है, तब तक उत्पादन बढ़ने, कीमत घटने, हानि होने और उत्पादकों के बाज़ार छोड़ कर चले जाने की यह प्रक्रिया चलती रहेगी. यह प्रक्रिया तब तक चलेगी, जब तक बाज़ार में एक ही उत्पादक नहीं रह जाएगा. इस लिए ऐसे बाज़ार में एक ही उत्पादक होगा. **ऐसे बाज़ार को 'प्राकृतिक एकाधिकारी' बाज़ार कहते हैं.**

चित्र 49-पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार असंभव



प्राकृतिक कारणों के अलावा, कानूनी कारणों से भी एकाधिकार हो सकता है. उदाहरण के लिए, भारत में परमाणु ऊर्जा उत्पादन इकाई केवल सरकार ही लगा सकती है. इस लिए भारत में परमाणु ऊर्जा बाज़ार एकाधिकारी बाज़ार है. एकाधिकार का एक कारण यह भी हो सकता है कि किसी वस्तु के उत्पादन में प्रारंभिक लागत बहुत अधिक हो एवं सीमान्त लागत तुलनात्मक रूप से बहुत कम. रेलवे में ऐसा ही होता है. एक बार पटरी बिछ जाने के बाद, उस पर गाड़ियों की संख्या बढ़ा कर यातायात की सुविधा देने की लागत नई पटरी बिछा कर यातायात सुविधा देने से कहीं कम होती है. इस लिए दुनिया भर में रेलवे के बुनियादी ढाँचे पर एकाधिकार ही होता है. एकाधिकार का एक कारण यह भी हो सकता है कि उत्पादक के पास ऐसी तकनीक अथवा संसाधन हो जो और किसी के पास न हो. अगर देश में कच्चे लोहे के खनिज की एक ही खान हो, तो यह स्टील निर्माण में भी एकाधिकार का कारण बन सकता है.

लेकिन एकाधिकार आर्थिक बल प्रयोग से भी उत्पन्न हो सकता है. एक साधन संपन्न उत्पादक दूसरे उत्पादक के आते ही कीमतों को इतना गिरा देता है कि दूसरा उत्पादक हानि सहन ही न कर पाए. दूसरे उत्पादक के छोड़ के जाने के बाद फिर कीमत बढ़ा कर अपने नुकसान की भरपाई कर लेता है. ऐसी कीमत निर्धारण को परभक्षी/नाशकारी कीमत निर्धारण नीति (predatory pricing policy) कहते हैं. कई बार वास्तव में ऐसा करना आवश्यक भी नहीं होता क्योंकि ऐसा होने की संभावना ही दूसरे उत्पादक को इस बाज़ार में आने से रोक देती है. परन्तु एकाधिकार का आधार आर्थिक बल प्रयोग होना आवश्यक नहीं है. यह बल भौतिक अथवा राजनैतिक भी हो सकता है. ईस्ट इंडिया कम्पनी, जिसे इंग्लैंड की संसद से भारत के लिए व्यापार का एकाधिकार प्राप्त था, ने युद्ध के माध्यम से भारत के बाज़ार पर एकाधिकार प्राप्त कर लिया था. आज भी ऐसा भी होता है. आर्थिक ताकत के साथ-साथ छल-बल से भी अपराधी तत्त्व अपना एकाधिकार स्थापित कर लेते हैं. स्थानीय स्तर की ठेकेदारी में कई बार यह देखा जाता है. इस लिए केवल आर्थिक कारणों से ही नहीं, अन्य कारणों से भी बाज़ार एकाधिकारी हो सकता है.

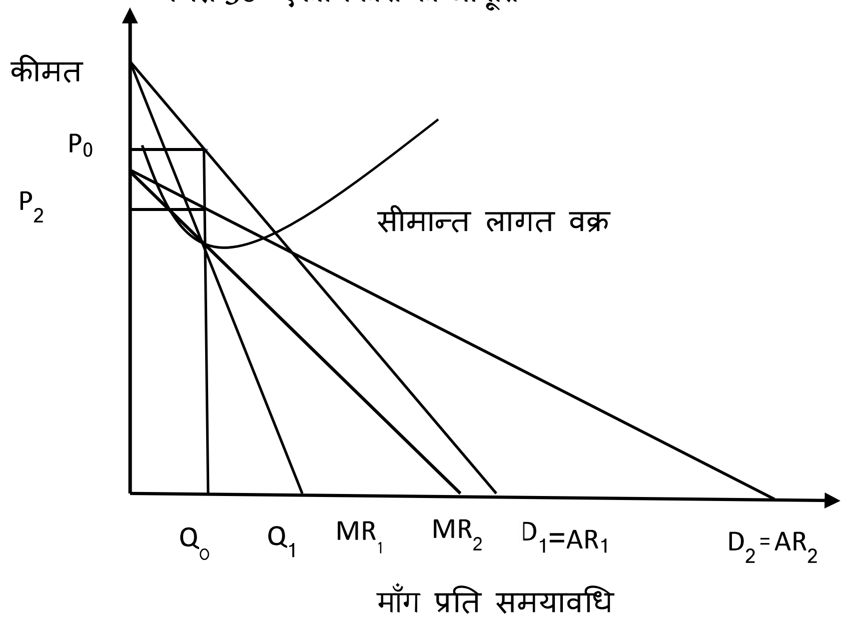
एकाधिकारी के राजस्व-वक्र एवं आपूर्ति-वक्र: हम यह मान कर चलेंगे कि एकाधिकारी का उद्देश्य भी लाभ अधिकतम करना है. पूर्ण प्रतियोगी का औसत राजस्व बाज़ार भाव के समान होता है एवं राजस्व-वक्र क्ष अक्ष के समानांतर सीधी रेखा होता है. एकाधिकारी का औसत राजस्व-वक्र कैसा होगा? चित्र 50 में D_1 एक एकाधिकारी का माँग-वक्र है. फ़िलहाल के लिए D_2 एवं MR_2 को अनदेखा कर दें. इन वक्रों का प्रयोग आगे करेंगे.

स्पष्ट तौर पर P_0 कीमत पर माँग Q_0 होगी. इस का अर्थ है कि अगर इस बाज़ार का एकाधिकारी Q_0 मात्रा बेचना चाहता है तो उसे भाव P_0 ही रखना होगा. इस का अर्थ है कि P_0 ही उस का औसत राजस्व होगा. इसी प्रकार हम देख सकते हैं कि अगर उत्पादक Q_1 मात्रा बेचना चाहता है तो उसे भाव P_1 रखना होगा. इस लिए एकाधिकारी बाज़ार का माँग-वक्र ही उत्पादक का औसत राजस्व-वक्र बन जाता है.

परन्तु उत्पादक कितना भाव रखना चाहेगा? कितना भाव रखने पर उस के लाभ अधिकतम होंगे? क्या अधिकतम संभव भाव रखना उचित होगा? नहीं. क्यों? एकाधिकारी भाव अपनी मर्जी का रख सकता है परन्तु बिक्री कितनी होगी, यह वह तय नहीं कर सकता.

बिक्री की मात्रा तो उपभोक्ताओं की माँग से तय होती है. अधिक बिक्री करनी होगी तो भाव तो घटाना होगा. एकाधिकारी उत्पादक बिक्री की मात्रा या भाव, दोनों में से एक चीज़ तय करने को स्वतंत्र है, दोनों को नहीं.

चित्र 50- एकाधिकारी की आपूर्ति



ऐसे उत्पादक का सीमान्त राजस्व-वक्र कैसा होगा? औसत फलन एवं सीमान्त फलन के सम्बन्ध से हम जानते हैं कि अगर औसत घटता है तो सीमान्त उस से कम होता है. क्योंकि एकाधिकारी बाज़ार में औसत राजस्व घट रहा है इस लिए सीमान्त राजस्व औसत राजस्व से कम होगा. गणित का प्रयोग कर के हम देख सकते हैं कि सीधी रेखा के माँग-वक्र में सीमान्त राजस्व-वक्र की ढलान औसत राजस्व-वक्र की ढलान दे दोगुनी होगी. माना कि निम्न माँग-वक्र है: $P = 50 - 2Q$ तो कुल राजस्व फलन होगा: कुल राजस्व= TR= $PQ = 50Q - 2Q^2$. इस फलन का अवकलज/डेरिवेटिव लेने पर हमें प्राप्त होता है: $\frac{dTR}{dQ} = MR = 50 - 4Q$. इस से स्पष्ट हो जाता है कि मात्रा की एक इकाई बढ़ने पर सीमान्त राजस्व में 4 इकाई गिरावट आयेगी यानी सीमान्त राजस्व-वक्र की ढलान -4 है. इस तरह से हम पाते हैं कि अगर औसत राजस्व-वक्र की ढलान -2 है, तो सीमान्त राजस्व-वक्र की ढलान -4 है, यानी माँग-वक्र की ढलान से दोगुनी. आप अन्य कोई माँग-वक्र ले कर इस तथ्य की पुष्टि कर सकते हैं.

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि सीधी रेखा के माँग-वक्र/राजस्व-वक्र का सीमान्त राजस्व दो गुनी तेज़ी से नीचे आता है, हम सीमान्त राजस्व को इस तरह से खींच सकते हैं कि वह क्ष अक्ष तो औसत राजस्व से आधी दूरी पर छुए.[48]

इस उत्पादक को क्या भाव रखना चाहिए? [49] पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में उत्पादक के आपूर्ति-वक्र का अध्ययन करते हुए हम ने देखा था कि जब तक सीमान्त राजस्व सीमान्त लागत से अधिक है तब तक उत्पादन किया जाना चाहिए एवं जब सीमान्त राजस्व सीमान्त लागत से कम हो जाये तो उत्पादन बंद कर देना चाहिए. वही तर्क यहाँ भी लागू होगा क्योंकि उत्पादक का लक्ष्य वही है- लाभ को अधिकतम करना; बदला है तो केवल उत्पादक के औसत एवं सीमान्त राजस्व-वक्र का स्वरूप. इस लिए एकाधिकारी उत्पादक के लिए भी इष्टतम उत्पादन के नियम वही रहेंगे जो पूर्ण प्रतियोगी उत्पादक के थे: (क) सीमान्त राजस्व सीमान्त लागत के समान हो, (ख) सीमान्त लागत-

---

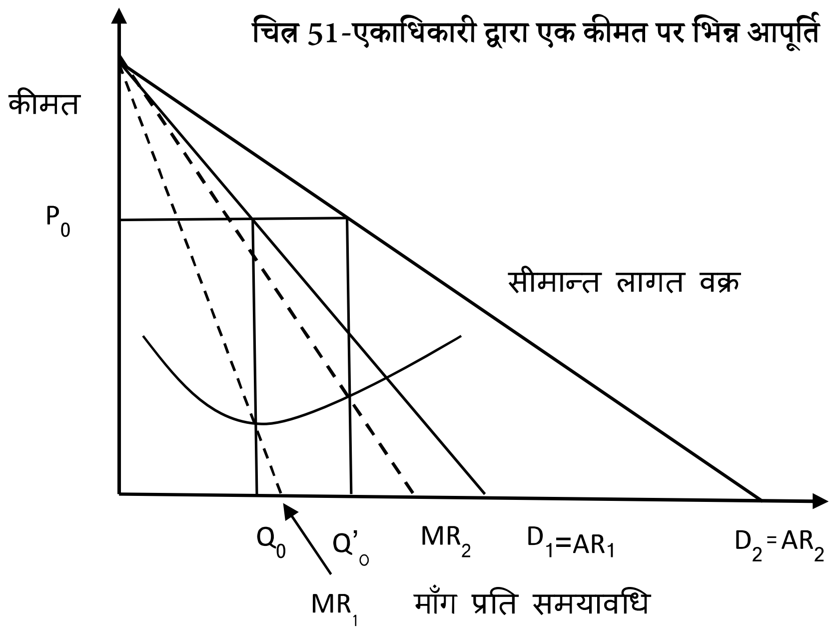
[48] अगर माँग-वक्र सीधी रेखा के रूप में नहीं है, तो जिस बिंदु पर सीमान्त राजस्व ज्ञात करना हो, माँग-वक्र के उस बिंदु पर स्पर्श रेखा को औसत राजस्व वक्र मान कर उस की ढाल से दुगनी ढाल का सीमान्त राजस्व वक्र खींच कर के उस उत्पादन स्तर पर सीमान्त राजस्व प्राप्त कर सकते हैं.

[49] अगर एक उत्पादक की एक से अधिक फैक्ट्रियां हैं, तो भी बुनियादी तौर पर निम्न व्यवस्था ही लागू होगी. उत्पादन का स्तर ज्ञात करने के लिए सभी फैक्ट्रियों के सीमान्त लागत वक्र को उसी प्रकार जोड़ कर जैसे विभिन्न उपभोक्ताओं के माँग-वक्र को जोड़ कर बाज़ार माँग-वक्र ज्ञात किया जाता है, उत्पादक का सीमान्त लागत वक्र ज्ञात किया जाता है. जहाँ पर यह वक्र सीमान्त राजस्व वक्र को नीचे से काटेगा, वह इष्टतम उत्पादन स्तर होगा. सभी फैक्ट्रियों में कुल उत्पादन का बंटवारा इस प्रकार होगा कि हर फैक्टरी में उत्पादन की सीमान्त लागत समान हो.

वक्र सीमान्त राजस्व को नीचे से काटे एवं (ग) अल्प काल में औसत राजस्व औसत परिवर्तनशील लागत से कम न हो तथा दीर्घकाल में औसत राजस्व औसत लागत से कम न हो. अगर इन नियमों के कारण आप को समझ में नहीं आ रहे तो पिछले अध्याय को दोहरा लें. चित्र 50 में P_0 Q_0 ही इष्टतम उत्पादन एवं दाम इंगित करते हैं. क्योंकि एकाधिकारी बाज़ार में केवल एक ही उत्पादक होता है, इस लिए उत्पादक का संतुलन बिंदु ही बाज़ार का संतुलन बिंदु होगा.

एकाधिकारी उत्पादक का आपूर्ति-वक्र कैसा होगा? चित्र 50 में हम देखते हैं कि अगर माँग-वक्र D_1 है, तो उत्पादक का इष्टतम उत्पादन स्तर Q_0 होगा और वह दाम P_0 रखेगा. परन्तु अगर माँग-वक्र D_2 है तो इष्टतम उत्पादन स्तर तो उतना ही रहेगा परन्तु अब उसे इतनी मात्रा बेचने के लिए भाव P_2 रखना होगा. यानी एक ही मात्रा दो भिन्न कीमतों पर बेची जा सकती है. चित्र 51 में ठीक इस का उलटा हो रहा है. एक ही दाम पर अलग-अलग मात्रा की बिक्री हो रही है. (इस चित्र को खींचते हुए सीमान्त लागत-वक्र सब से अंत में खींचे एवं ऐसे खींचे कि समान भाव पर बिक्री अलग-अलग हो.) हम ने देखा है कि एक एकाधिकारी एक ही भाव पर अलग-अलग मात्रा बेच सकता है एवं एक ही मात्रा अलग-अलग भाव पर बेच सकता है, इस लिए हम कह सकते हैं कि **एकाधिकारी को कोई स्वतंत्र आपूर्ति-वक्र नहीं होता; एकाधिकारी का उत्पादन स्तर एवं बिक्री मूल्य माँग-वक्र से प्रभावित होता है.**

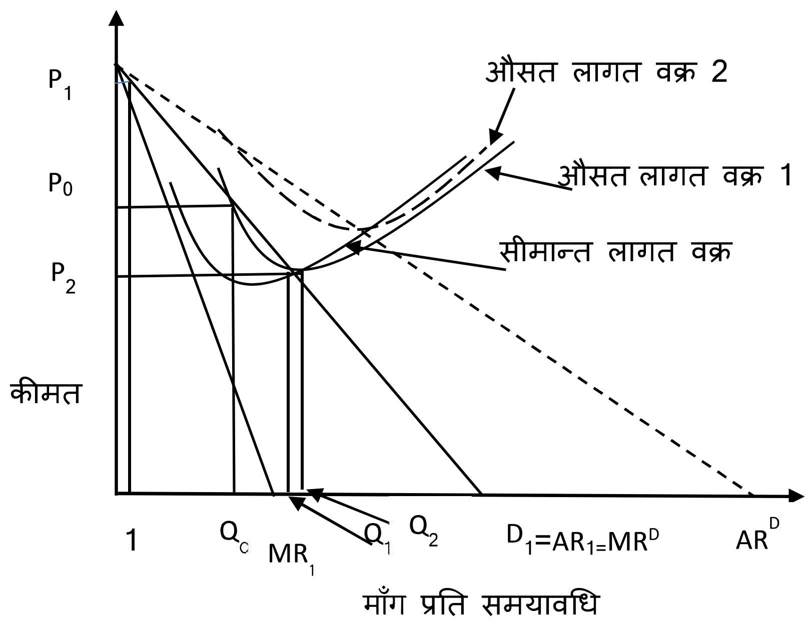
चित्र 51-एकाधिकारी द्वारा एक कीमत पर भिन्न आपूर्ति



एकाधिकारी के लाभ: एकाधिकारी को निश्चित तौर पर लाभ ही होता होगा; आखिर वह एक मात्र उत्पादक है. नहीं. पूर्ण प्रतियोगी की तरह और उन्हीं कारणों से एकाधिकारी को भी अल्प काल में हानि हो सकती है. परन्तु दीर्घकाल में तो अवश्य लाभ होता होगा? **हो सकता है परन्तु लाभ होना अनिवार्य नहीं है.** अगर एकाधिकारी को हानि होती है, तो वह उत्पादन बंद कर देगा क्योंकि हानि होने का अर्थ है कि उसे संसाधनों की वह अवसर लागत भी नहीं मिल रही जो अन्यत्र मिल सकती है. शून्य लाभ होने पर क्या एकाधिकारी उत्पादन बंद कर देगा? नहीं; क्योंकि शून्य लाभ होने का अर्थ है कि उस के संसाधनों को उन की अवसर लागत मिल रही है. ऐसी स्थिति में वह उत्पादन छोड़ कर कहाँ जाएगा? क्या करेगा? इस लिए शून्य लाभ होने पर भी एकाधिकारी उत्पादन करता रहेगा. लाभ होने पर क्या होगा? पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में तो लाभ होने पर बाज़ार में दूसरे उत्पादक प्रवेश कर जाते हैं एवं अंततः लाभ शून्य हो जाते हैं. एकाधिकार में प्रवेश संभव नहीं है. इस लिए एकाधिकारी बाज़ार में दीर्घकाल संतुलन की स्थिति में भी लाभ हो सकते हैं जबकि पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में दीर्घकालीन संतुलन की स्थिति में लाभ शून्य होते हैं. पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार एवं एकाधिकारी बाज़ार में यह एक महत्त्वपूर्ण अंतर है.

एक विरोधाभास: चित्र 52 में कितना उत्पादन होगा? फ़िलहाल के लिए बिंदीदार रेखा द्वारा दर्शाए गए वक्रों को अनदेखा कर दें. अगर माँग-वक्र D_1 हो और प्रभावी औसत लागत-वक्र 1 हो, तो कितना उत्पादन होगा? इस चित्र में हम पाते हैं कि उत्पादन के हर स्तर पर सीमान्त राजस्व, सीमान्त लागत से कम है. इस लिए किसी भी भाव पर उत्पादन संभव नहीं है. परन्तु इस चित्र में Q_0 एवं Q_1 के बीच औसत राजस्व औसत लागत से अधिक है. यानी इन दोनों मात्राओं के बीच में किसी स्तर पर उत्पादन करने पर लाभ हो सकता है. ये दोनों निष्कर्ष एक दूसरे के विपरीत हैं. कौन सा ठीक है? अथवा यह विरोधाभास क्यों?

चित्र 52- विरोधाभास एवं कीमत विभेद की आवश्यकता



अगर उत्पादन के हर स्तर पर सीमान्त लागत सीमान्त राजस्व से अधिक है, तो क्या औसत लागत कभी भी औसत राजस्व से कम हो सकती है? कदापि नहीं. क्यों? हम जानते हैं कि कुल लागत एवं कुल राजस्व क्रमशः सीमान्त लागत एवं राजस्व का योग या समाकलन (integral) होता है. अगर उत्पादन के हर स्तर पर सीमान्त लागत सीमान्त राजस्व से अधिक है तो उत्पादन के हर स्तर पर कुल लागत भी कुल राजस्व से अधिक होगी. अब अगर उत्पादन के हर स्तर पर कुल लागत कुल राजस्व से ज़्यादा है, तो किसी भी उत्पादन स्तर पर औसत लागत औसत राजस्व से कम हो ही नहीं सकती. इस लिए चित्र 52 में दिखाए गए वक्रों के बीच में सामंजस्य नहीं है. ऐसी स्थिति हो ही नहीं सकती कि हर स्तर पर सीमान्त लागत सीमान्त राजस्व से अधिक हो परन्तु कहीं-कहीं औसत लागत औसत राजस्व से कम हो. यह उदाहरण एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित करता है. **चित्र खींचते वक्त हाथ/पेन्सिल तो कैसे भी घूम सकती है परन्तु हमें हमेशा चित्र के पीछे के अर्थशास्त्र/गणित को ध्यान में रखते हुए ही चित्र बनाने चाहिए.**

अगर वास्तविक औसत लागत-वक्र चित्र 52 में बिंदीदार रेखा से दर्शाए औसत लागत वक्र 2 जैसा हो, तो क्या होगा? इस स्थिति में कितना उत्पादन होगा? स्पष्ट रूप से इस स्थिति में कोई भी एक भाव ऐसा नहीं है जिस पर औसत राजस्व औसत लागत से अधिक हो. इस लिए इस स्थिति में उत्पादन शून्य होगा. परन्तु एकाधिकारी के पास एक ऐसा विकल्प है जो पूर्ण प्रतियोगी उत्पादक के पास नहीं होता. अगर एकाधिकारी वस्तु की एक-एक इकाई की बोली लगाए तो क्या होगा? पहली इकाई के लिए कितनी बोली लगेगी? प्रस्तुत चित्र 52 से क्या आप कोई अंदाज़ा लगा सकते हैं? प्रस्तुत माँग-वक्र से स्पष्ट है कि पहली इकाई के लिए उपभोक्ता P_1 कीमत देने को तैयार हो जाएँगे. (ऐसा क्यों होगा, अगर यह आप को सहज स्पष्ट नहीं है तो माँग-वक्र की अवधारणा को दोहरा लें.) परन्तु अगली इकाई के लिए इस से कम क्योंकि अगली इकाई की सीमान्त उपयोगिता घट जाएगी. इसी प्रकार Q_0 वाली इकाई के लिए P_0 कीमत मिल सकती है. इस प्रकार हम देख सकते हैं कि अगर एक-एक वस्तु की बोली लगा कर बेचा जाए तो फ़िलहाल जिस वक्र को हम ने औसत राजस्व-वक्र के रूप में चिह्नित किया है, वह वास्तव में सीमान्त राजस्व-वक्र बन जाएगा. नए सीमान्त राजस्व-वक्र को हम ने MR^D से इंगित किया है (D का प्रयोग क्यों किया गया है, यह थोड़ी देर में स्पष्ट हो जाएगा). इस नई परिस्थिति में हम पाते हैं कि अब सीमान्त राजस्व उत्पादन के कुछ स्तरों पर सीमान्त लागत से अधिक है और Q_2 बिंदु पर सीमान्त लागत-वक्र सीमान्त राजस्व-वक्र MR^D को नीचे से काटता है. इस बिंदु पर उत्पादक के संतुलन की दो शर्तें तो पूरी हो जाती हैं- सीमान्त लागत एवं सीमान्त राजस्व समान हैं एवं सीमान्त लागत सीमान्त राजस्व-वक्र को नीचे से काटता है. परन्तु तीसरी शर्त का क्या? क्या इस बिंदु पर औसत राजस्व औसत लागत से अधिक है?

अगर Q_2 वाली इकाई का सीमान्त राजस्व P_2 है तो निश्चित तौर पर यहाँ पर औसत राजस्व तो P_2 से अधिक होगा क्योंकि इस से पूर्व की इकाइयाँ तो P_2 से ज़्यादा राजस्व ला रही हैं. इस का अर्थ है कि इन परिस्थितियों में, जब हर इकाई को अलग दाम पर बेचा जाता है, तो उस स्थिति मैं औसत राजस्व-वक्र माँग-वक्र (जो इस स्थिति में सीमान्त राजस्व-वक्र बन गया है), के ऊपर होगा**.** नए राजस्व-

वक्र को हम ने AR^D से दर्शाया है.[50] **इस स्थिति में यह संभव है, परन्तु अनिवार्य नहीं, कि औसत राजस्व-वक्र औसत लागत-वक्र से ऊपर भी चला जाए.** इसे हम ने AR^D से दर्शाया है. अगर ऐसा हो जाता है तो इस एकाधिकारी के लिए उत्पादन करना संभव होगा एवं यह Q_2 उत्पादन इस के लाभ को अधिकतम करेगा.

कीमत-विभेद (price discrimination): ऐसे व्यवहार को, जब एक समरूप वस्तु को भिन्न-भिन्न दामों पर बेचा जाता है, कीमत-विभेद कहते हैं. इस लिए कीमत-विभेद की स्थिति में हम ने सीमान्त एवं औसत राजस्व-वक्र को इंगित करने के लिए D अक्षर का प्रयोग किया है. कई बार कीमत-विभेद करने के लिए एक ही वस्तु में दिखावटी अथवा छोटे मोटे फर्क कर दिए जाते हैं. पैकिंग बदल दी जाती है या नाम बदल दिया जाता है. एक ही कम्पनी के बोतल बंद पानी के विभिन्न ब्रांडो के दाम में दुगने-तिगुने का फर्क भी पाया जाता है जबकि कम्पनी दोनों तरह के पानी को अच्छा बताती है. अगर दो बिलकुल भिन्न वस्तु भिन्न दामों पर बेची जाती हैं तो उसे कीमत-विभेद नहीं कहते. लेकिन अगर बुनियादी तौर पर एक ही वस्तु, जिस की उत्पादन लागत भी लगभग एक सी हो, अलग-अलग दामों पर बेची जाती है, तो इसे कीमत-विभेद कहते हैं. एकाधिकारी के पास कीमत-विभेद का विकल्प होता है जबकि पूर्ण प्रतियोगी उत्पादक कीमत-विभेद नहीं कर सकता.

कीमत-विभेद के प्रकार: कीमत-विभेद भी तीन तरह का हो सकता है. उपरोक्त उदाहरण, **जब हर इकाई अलग-अलग दाम पर बेची जाती है, प्रथम श्रेणी का कीमत-विभेद (price discrimination of first degree) कहलाता है.** नामी डाक्टर या वकील सामने वाले की आर्थिक स्थिति देख कर फीस माँग लेते हैं. बहुत अमीर से बहुत अधिक एवं कम अमीर से उस से कम. इस प्रकार वह कोई फीस निश्चित न कर के मौके के अनुसार फीस ले सकते हैं. यह एक तरीके से प्रथम श्रेणी का कीमत-विभेद है. **अगर एक ही उपभोक्ता को कुछ इकाइयाँ एक दाम पर बेची जाती हैं एवं अन्य इकाइयाँ किसी और दाम पर, तो इसे द्वितीय श्रेणी का कीमत-विभेद कहते हैं.** उदाहरण के लिए, बिजली/पानी में एक सीमा तक खपत पर दाम कुछ लगता है एवं उस से अधिक होने पर कुछ और. इस के विपरीत **तृतीय श्रेणी के कीमत-विभेद में अलग-अलग श्रेणी के उपभोक्ताओं से अलग-अलग दाम लिए जाते हैं**. उदाहरण के लिए, बिजली के घरेलू उपयोग के लिए भुगतान की दर अलग होती है और व्यावसायिक/औद्योगिक/कृषि उपभोग के लिए अलग. यह तीसरी श्रेणी के कीमत-विभेद का उदाहरण है.

कीमत-विभेद कब संभव होता है? तृतीय श्रेणी का विभेद तभी संभव एवं उपयोगी हो सकता है जब उपभोक्ताओं की दो अथवा दो से अधिक ऐसी श्रेणियां हो जिन्हें आसानी से अलग-अलग चिह्नित किया जा सके, जिन के उपभोग की कीमत लोच अलग हो (इस पर हम थोड़ी देर में चर्चा करेंगे) एवं उपभोक्ता वस्तु ख़रीद कर उस वस्तु को फिर बेच न सकता हो. बिजली-पानी ऐसी ही वस्तु हैं जिन की आम तौर पर पुन: बिक्री संभव नहीं होती. शिक्षा-शुल्क में स्त्री एवं पुरुषों के बीच विभेद संभव है क्योंकि महिला की फीस जमा कर के पुरुष परीक्षा नहीं दे सकता. परन्तु महिला-पुरुष के बीच किताबों के भाव में कीमत-विभेद संभव नहीं है क्योंकि महिला छात्र सस्ती किताब ले कर पुरुष छात्र को बेच सकती है. दूसरी श्रेणी का कीमत-विभेद तभी संभव है अगर उपभोक्ता की खपत का हिसाब रखना संभव हो. बिजली-पानी की खपत में ऐसा हो सकता है. रेलवे में भी ऐसा होता है कि अधिक लम्बी यात्रा होने पर प्रति किलोमीटर किराया घट जाता है. परन्तु फिल्म देखने में फ़िलहाल ऐसा नहीं हो सकता. भविष्य में फिल्म देखने के लिए अगर 'आधार' अनिवार्य हो जाए, तो फिल्म देखने में भी खपत का रिकार्ड रखना संभव हो सकता है. तब फिल्म देखने में भी द्वितीय श्रेणी का विभेद संभव हो सकता है. प्रथम श्रेणी का कीमत-विभेद तभी संभव है जब हर इकाई की बोली लगाना संभव हो अथवा उपभोक्ता के माँग-वक्र का अंदाज़ा लगाना संभव हो. आम तौर पर हर इकाई की बोली लगाना तो संभव नहीं होता परन्तु कुछ हद तक उपभोक्ता के माँग-वक्र का अंदाज़ा लगाया जा सकता है. ऐसी स्थिति में प्रथम श्रेणी का कीमत-विभेद संभव है.

---

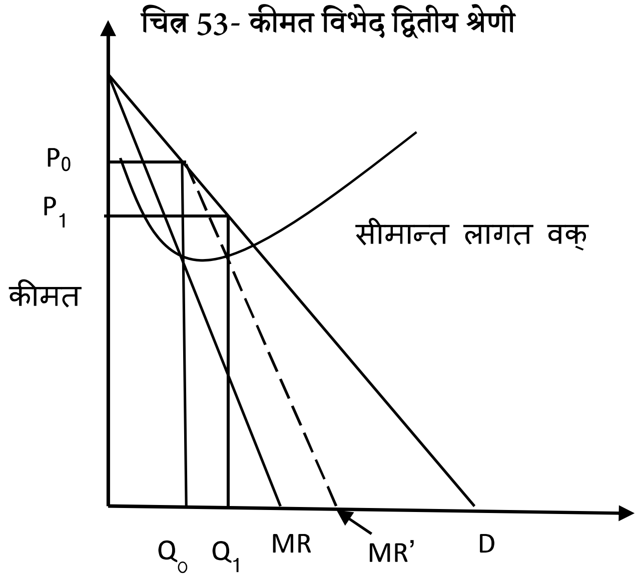
[50] सीधी रेखा के मांग वक्र में AR^D की ढलान माँग वक्र की ढलान से आधी होगी. इस का कारण ठीक वही है जिस कारण से सीमान्त राजस्व वक्र की ढलान औसत राजस्व वक्र से दोगुनी होती है. उपरोक्त स्थिति में माँग वक्र ही सीमान्त राजस्व वक्र है. इस लिए औसत राजस्व वक्र की ढलान माँग वक्र की ढलान से आधी होगी.

इन उदाहरणों से स्पष्ट है उपयुक्त परिस्थितियों में एक ही उत्पादक सभी तरह का कीमत-विभेद कर सकता है. बिजली में द्वितीय एवं तृतीय दोनों तरह का कीमत-विभेद होता है. अलग-अलग श्रेणियों के उपभोक्ताओं से भी अलग-अलग दाम वसूले जाते हैं एवं एक ही उपभोक्ता से भी उपभोग के स्तर के अनुसार अलग-अलग भाव लिए जाते हैं.

कीमत-विभेद एवं उत्पादन की मात्रा: निम्न चर्चा में हम यह मान कर चलेंगे कि संतुलन की तीसरी शर्त कि औसत लागत औसत राजस्व से कम है, पूरी होती है. इस का हम बार-बार ज़िक्र नहीं करेंगे परन्तु ध्यान रहे इस शर्त का पूरा होना आवश्यक है. ऊपर हम ने प्रथम श्रेणी के विभेद का ज़िक्र उस स्थिति में किया था जब बिना ऐसे विभेद के उत्पादन संभव ही नहीं था. परन्तु प्रथम श्रेणी का विभेद तब भी हो सकता है जब बिना विभेद के भी उत्पादन संभव हो. प्रथम श्रेणी के विभेद के लिए उत्पादन निर्धारण की प्रक्रिया का अध्ययन हम ऊपर कर चुके हैं. इस स्थिति में बाज़ार माँग-वक्र ही सीमान्त राजस्व-वक्र बन जाता है. इस लिए उत्पादन उस स्तर पर होगा जहाँ सीमान्त लागत-वक्र सीमान्त राजस्व-वक्र को नीचे से काटेगा. इस तरह के विभेद में कुल उत्पादन बिना विभेद की स्थिति से अधिक होता है क्योंकि कीमत-विभेद की स्थिति में सीमान्त राजस्व बिना कीमत-विभेद की स्थिति के सीमान्त राजस्व से ज़्यादा होता है.

द्वितीय श्रेणी के विभेद में क्या होगा? चित्र 53 में बिना कीमत-विभेद के उत्पादन का स्तर Q_0 होगा और कीमत P_0 होगी. अब अगर उत्पादक के लिए द्वितीय श्रेणी का विभेद संभव है तो अतिरिक्त इकाइयों की बिक्री के लिए सीमान्त राजस्व बदल कर MR' हो जाएगा जो चित्र में बिंदीदार रेखा से दिखाया गया है. (MR' खींचने के लिए हमने Q_0 को शून्य बिंदु माना है) क्योंकि केवल अतिरिक्त इकाइयों का दाम कम होगा, इस लिए हम पाते हैं कि MR' बिना कीमत-विभेद के सीमान्त राजस्व MR से अधिक है. अब यह एकाधिकारी उत्पादक P_1 भाव पर Q_1-Q_0 मात्रा में अतिरिक्त इकाई बेच सकता है. P_1 भाव पर इस से कम या अधिक इकाइयाँ बेचने से उत्पादक के लाभ इष्टतम नहीं होंगे. द्वितीय श्रेणी विभेद की यह प्रक्रिया तब तक चल सकती है जब तक अतिरिक्त इकाइयों से मिलने वाला सीमान्त राजस्व सीमान्त लागत को ऊपर से काटता है. जितनी ज़्यादा श्रेणियां होती हैं, उतना ही व्यवहारिक रूप से विभेद लागू करना मुश्किल होता जाता है क्योंकि निगरानी एवं गणना प्रणाली जटिल होती जाती है. इस लिए दूसरी श्रेणी का विभेद करते हुए भी उत्पादक ज़्यादा श्रेणियां बनाने से परहेज़ करते हैं. यह भी आवश्यक नहीं है कि पहली श्रेणी Q_0 तक हो; यह इस से पहले भी ख़त्म हो सकती है. जितनी ज़्यादा श्रेणियां होंगी, उतना दूसरी श्रेणी का विभेद पहली श्रेणी के विभेद के करीब पहुँच जाएगा और जटिलता बढ़ती जाएगी. स्पष्ट रूप से द्वितीय श्रेणी के कीमत-विभेद से बिना कीमत-विभेद की स्थिति की तुलना में उत्पादन बढ़ जाता है.

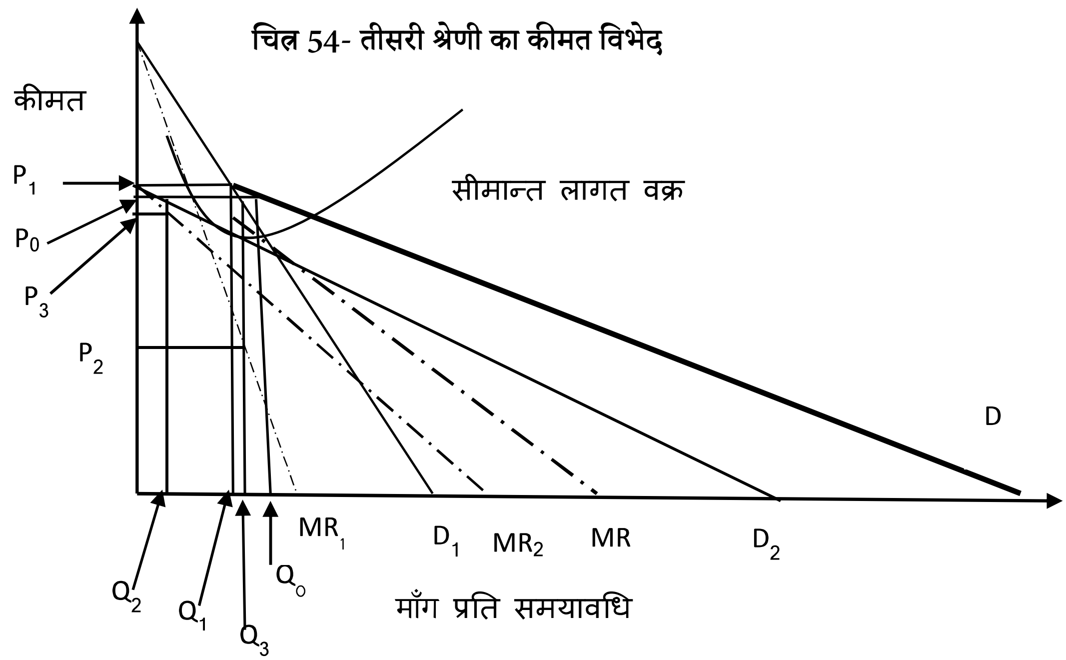
चित्र 53- कीमत विभेद द्वितीय श्रेणी



तृतीय श्रेणी के विभेद में क्या होगा? चित्र 54 में उपभोक्ताओं की दो श्रेणियों के माँग-वक्र अलग-अलग दिखाए गए हैं. यह चित्र कुछ जटिल है. ध्यान से देखना होगा. वैसे तो हर चित्र को आप को स्वयं बनना चाहिए परन्तु इस चित्र को विशेष तौर अपने आप अवश्य बना कर देखें.

इस चित्र में D_1 एवं D_2 उपभोक्ताओं की दो विभिन्न श्रेणियों के माँग-वक्र हैं. ये शहरी-ग्रामीण हो सकते हैं या पुरुष एवं महिला या कोई अन्य दो तरह के उपभोक्ताओं की श्रेणियां हो सकती हैं जो निम्न शर्तों को पूरा करती हों- पहली शर्त यह है उपभोक्ताओं का श्रेणी विभाजन स्पष्ट एवं आसान हो, [51] दूसरी शर्त यह है कि उपभोक्ता वस्तु ख़रीद कर उसे पुन: बाज़ार में बेच न सके एवं तीसरी शर्त यह है कि दोनों श्रेणियों की माँग की लोच भिन्न हो. माँग की लोच में भिन्नता का महत्त्व हम आगे चल देखेंगे.

[51] विवाहित एवं अविवाहित में कीमत विभेद करना व्यवहार्य नहीं होगा क्योंकि इस की पहचान अथवा पड़ताल करना मुश्किल होगा.



चित्र 54 में हम पाते हैं कि P_1 कीमत स्तर तक केवल D_1 श्रेणी के उपभोक्ता ही माँग करते हैं. इस भाव तक D_1 ही कुल माँग-वक्र रहता है. इस लिए Q_1 माँग मात्रा तक MR_1 ही प्रभावी सीमान्त राजस्व-वक्र रहता है. इस चित्र में सीमान्त राजस्व बिंदीदार रेखा द्वारा दिखाया गया है. Q_1 के बाद दूसरी श्रेणी के उपभोक्ता भी शामिल हो जाते हैं एवं अब कुल माँग-वक्र दोनों श्रेणियों की माँग को मिला कर D माँग-वक्र बन जाता है. ध्यान रहे Q_1 मात्रा के बाद ही D माँग का सीमान्त राजस्व प्रभावी होता है जिसे चित्र में MR से दर्शाया गया है. MR को खींचने के लिए हम यह

तालिका 6
चित्र 54 का विवरण

D_1=पहली श्रेणी का माँग-वक्र= सामान्य रेखा	MR_1=पहली श्रेणी की माँग का सीमान्त राजस्व-वक्र कुल माँग Q_1तक बिना कीमत-विभेद के यही बाज़ार सीमान्त राजस्व-वक्र भी होगा = बिंदीदार रेखा	P_1, Q_1 वह कीमत एवं मात्रा जहाँ तक केवल पहली श्रेणी के उपभोक्ताओं की माँग की पूर्ति होगी
D_2=दूसरी श्रेणी का माँग-वक्र= सामान्य रेखा	MR_2 =दूसरी श्रेणी की माँग का सीमान्त राजस्व-वक्र है = बिंदीदार रेखा	P_0, Q_0 बिना कीमत-विभेद के संतुलन बिंदु
D=कुल माँग-वक्र; Q_1 से पहले D_1 ही कुल माँग-वक्र होगा और Q_1 के बाद = मोटी रेखा	MR=बिना कीमत-विभेद के कुल माँग का सीमान्त राजस्व-वक्र; Q_1 से पहले MR_1 ही कुल माँग का सीमान्त राजस्व-वक्र होगा और Q_1 के बाद = मोटी बिंदीदार रेखा	Q_2 वह मात्रा जो बिना कीमत-विभेद के P_0 भाव पर दूसरी श्रेणी के उपभोक्ताओं को बेची जाएगी; पहली श्रेणी की मात्र Q_3
	P_3 वह सीमान्त राजस्व जो बिना कीमत-विभेद के दूसरी श्रेणी के उपभोक्ताओं से बाज़ार भाव P_0 पर प्राप्त होगा	P_2 वह सीमान्त राजस्व जो बिना कीमत-विभेद के पहली श्रेणी के उपभोक्ताओं से बाज़ार भाव P_0 पर प्राप्त होगा

कल्पना करते हैं कि कुल माँग-वक्र D में तीखा मोड़ होने की बजाय यह सीधी रेखा में य अक्ष तक गया हैं. वहाँ से हम सीमान्त राजस्व-वक्र खींचते हैं जिस की ढलान D से दो गुनी है. परन्तु Q_1 से पहले हम इसे कल्पना में खींचते हैं क्योंकि Q_1 के बाद ही यह प्रभावी होता है. इस चित्र में हम पाते हैं कि सीमान्त लागत-वक्र बाज़ार सीमान्त राजस्व-वक्र, MR को Q_0 पर नीचे से काटता है. इस स्थिति में बिना

कीमत-विभेद के यह उत्पादक Q_0 उत्पादन करेगा एवं इसे P_0 कीमत पर बेचेगा. Q_0 मात्रा में से Q_2 मात्रा D_2 श्रेणी के उपभोक्ताओं को बेची जाएगी एवं शेष मात्रा Q_3, D_1 श्रेणी के उपभोक्ताओं को. क्योंकि उपरोक्त चित्र काफ़ी जटिल है, इस लिए इस चित्र का विवरण तालिका 6 में भी दर्शाया गया है

इस चित्र को देखने से स्पष्ट है कि अगर वस्तु का बाज़ार भाव एक ही रहता है, P_0, तो पहली श्रेणी के उपभोक्ताओं से प्राप्त होने वाला सीमान्त राजस्व P_2 के बराबर होगा जबकि दूसरी श्रेणी के उपभोक्ताओं से प्राप्त होने वाला राजस्व P_3 है. दोनों श्रेणी के उपभोक्ताओं से प्राप्त सीमान्त राजस्व भिन्न हैं. अब अगर पहली श्रेणी, जहाँ सीमान्त राजस्व कम है, के उपभोक्ताओं को बिक्री कम कर के, कुल बिक्री स्थिर रखते हुए, उतनी मात्रा श्रेणी दो जहाँ सीमान्त राजस्व अधिक है, के उपभोक्ताओं को बेची जाती है तो कुल राजस्व बढ़ जाएगा. ऐसा करने के बावजूद कुल लागत वही रहेगी क्योंकि हम कुल बिक्री स्थिर मान कर चल रहे हैं. कुल राजस्व बढ़ गया जबकि कुल लागत स्थिर रही, तो ज़ाहिर है कुल लाभ बढ़ जाएगा. ऐसा हम तब तक करते रह सकते हैं जब तक दोनों श्रेणी में बिक्री से एक सामान सीमान्त राजस्व नहीं प्राप्त हो जाता. दोनों श्रेणीयों से समान सीमान्त राजस्व पाने के लिए एवं पहली श्रेणी में बिक्री कम करने के लिए, इस श्रेणी के उपभोक्ताओं से अधिक भाव लेना पड़ेगा. इसी तरह दूसरी श्रेणी में बिक्री बढ़ाने के लिए यहाँ भाव घटाने पड़ेंगे यानी कीमत-विभेद करना होगा. **बिना कीमत-विभेद के न तो दोनों श्रेणियों की बिक्री में कमी/बढ़ोतरी नहीं की जा सकती और न ही दोनों श्रेणियों से समान सीमान्त राजस्व प्राप्त किया जा सकता है.**

परन्तु **दूसरी श्रेणी का कीमत-विभेद तभी लाभकारी हो सकता है जब दोनों श्रेणी के उपभोक्ताओं की माँग की कीमत लोच में अंतर हो.** सीमान्त राजस्व, औसत राजस्व या कीमत एवं लोच के परस्पर सम्बन्ध की सहायता से इसे आसानी से देखा जा सकता है जो निम्न सूत्र अनुसार होता है: सीमान्त राजस्व $= MR = p\left(1 - \frac{1}{|e|}\right)$.[52] इस सूत्र से स्पष्ट हो जाता है कि अगर माँग की लोच दोनों श्रेणियों में समान है, तो समान कीमत पर सीमान्त राजस्व भी दोनों श्रेणी के लिए एक समान होगा.इस लिए इस स्थिति में कीमत विभेद की आवश्यकता ही नहीं होगी. अगर दाम एक है परन्तु माँग की कीमत लोच, e, भिन्न है, तो सीमान्त राजस्व भिन्न होगा एवं कीमत विभेद लाभ बढ़ा देगा.

किस श्रेणी के माँग-वक्र में समान कीमत पर सीमान्त राजस्व अधिक होगा? यह समीकरण दर्शाता है कि समान भाव पर जिस बाज़ार में लोच ज़्यादा होगी, वहाँ सीमान्त राजस्व भी ज़्यादा होगा क्योंकि p का गुणक यानी $\left(1 - \frac{1}{|e|}\right)$ कम लोच वाली माँग की तुलना में अधिक होगा. इस लिए कीमत-विभेद करते हुए उस बाज़ार में कीमत कम कर के बिक्री बढ़ानी होगी जिस की माँग की कीमत लोच अधिक है. यानी अधिक लचीले बाज़ार में कीमत-विभेद की स्थिति में दाम, दूसरे बाज़ार की तुलना में कम होंगे.

प्रसंगवश इस समीकरण से यह भी स्पष्ट है कि अगर माँग की कीमत लोच का मान एक से कम है तो सीमान्त राजस्व शून्य से कम होगा. इस लिए **एकाधिकारी कभी भी माँग-वक्र के उस बिंदु पर बिक्री नहीं करेगा जहाँ उस की कीमत लोच का मान एक से कम हो.** यह निष्कर्ष बिना उपरोक्त सूत्र के प्रयोग के भी प्राप्त किया जा सकता है. अगर माँग बेलोचदार है तो इस का अर्थ है कि कीमत बढ़ने पर माँग में अनुपातिक कटौती कम होगी, जिस के चलते कुल राजस्व बढ़ जाएगा और उत्पादन कम होने से कुल लागत भी घट जाएगी (अगर यह स्पष्ट नहीं है तो लोच सम्बन्धी अध्याय को दोहरा लें). इस लिए लाभ बढ़ जाएँगे. यह प्रक्रिया तब तक चलती रहेगी जब तक माँग बेलोचदार है. कीमत बढ़ाने से कुल राजस्व तभी कम हो सकता है जब माँग लोचदार हो जाए. इस लिए एकाधिकारी कभी माँग-वक्र के बेलोचदार हिस्से पर संतुलन में नहीं हो सकता.

---

[52] $MR = \frac{dTR}{dq} = \frac{dpq}{dq} = p\frac{dq}{dq} + q\frac{dp}{dq} = p + q\frac{dp}{dq} = p\left(1 + \frac{q}{p}\frac{dp}{dq}\right) = p\left(1 - \frac{1}{|e|}\right)$.

स्पष्ट रूप से तृतीय श्रेणी के कीमत विभाजन से उत्पादक का राजस्व तो निश्चित तौर पर बढ़ जाएगा परन्तु अगर दोनों माँग-वक्र सीधी रेखा में हैं, तो उत्पादन का स्तर स्थिर रह सकता है.[53] इस अपवाद को छोड़ कर आम तौर पर कीमत-विभेद से उत्पादन भी बढ़ जाता है.

कीमत-विभेद उचित या अनुचित? कीमत-विभेद उपभोक्ता के हित में होता है या नहीं? कीमत-विभेद दोनों तरह का हो सकता है. जैसा कि चित्र 52 में दिखाया गया है, अगर बिना कीमत-विभेद के उत्पादन सम्भव ही नहीं हो, तो कीमत-विभेद उपभोक्ताओं के हित में भी हो सकता है. ऐसी परिस्थिति में कीमत-विभेद के चलते ही उत्पादन संभव हो सकता है. अन्य परिस्थितियों में, अगर कीमत-विभेद एकाधिकारी द्वारा अपने लाभ को बढ़ाने के लिए किया जाता है, तो यह उपभोक्ता के हित में नहीं होगा. ऐसा करने से उपभोक्ता आधिक्य कम हो जाएगा और उत्पादक आधिक्य बढ़ जाएगा. परन्तु अगर कमज़ोर तबकों को वस्तु उपलब्ध कराने के उद्देश्य से कीमत-विभेद किया जाता है (जैसे लड़कियों की मुफ़्त शिक्षा) तो यह उचित भी हो सकता है. ऐसी व्यवस्था जहाँ एक वर्ग उच्च दाम देता है और दूसरा वर्ग कम दाम देता है, आड़ी सब्सिडी (cross subsidy) देना कहलाता है. यदि अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में पूर्ण प्रतियोगिता है एवं राष्ट्रीय/स्थानीय बाज़ार में एकाधिकार है, तो भी तृतीय श्रेणी का कीमत-विभेद संभव हो सकता है और कुछ परिस्थितियों में आवश्यक भी.

बाह्य कारकों में बदलाव का एकाधिकारी संतुलन पर प्रभाव: अगर माँग बढ़ जाती है, तो एकाधिकारी संतुलन पर क्या प्रभाव पड़ेगा? माँग बढ़ने पर सीमान्त राजस्व ऊपर की ओर खिसक जाएगा. इस लिए उत्पादन निश्चित तौर पर बढ़ेगा परन्तु कीमत पर प्रभाव अनिश्चित है. क्यों? हम इस अध्याय के शुरू में ही देख चुके हैं कि एकाधिकारी बाज़ार में कीमत एवं आपूर्ति को कोई निश्चित सम्बन्ध नहीं होता.

एक मुश्त कर का एकाधिकारी पर तब तक कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा (क्योंकि एक मुश्त कर सीमान्त लागत को प्रभावित नहीं करता) जब तक कि एक मुश्त कर की मात्रा उस के लाभ को पूरी तरह ख़त्म करके उसे हानि में न धकेल दे. लाभ पर लगने वाले कर का क्या प्रभाव पड़ेगा? अगर लाभ से अभिप्राय आर्थिक लाभ से है, तो इस कर का भी उत्पादन की मात्रा एवं कीमत पर कोई असर नहीं होगा क्योंकि इस से सीमान्त लागत प्रभावित नहीं होगी. परन्तु आम तौर पर लाभ की शासकीय परिभाषा में अपने संसाधनों की अवसर लागत को भी लाभ माना जाता है. इस स्थिति में, लाभ कर का प्रभाव सीमान्त लागत को बढ़ाने का होगा, जिस के चलते उत्पादन घटेगा और कीमत बढ़ेगी.

अगर उत्पादन पर प्रति इकाई कर लगाया या बढ़ाया जाता है तो उस का क्या प्रभाव होगा? निश्चित तौर पर इस का यह असर होगा कि सीमान्त लागत एवं औसत लागत दोनों उसी मात्रा में बढ़ जाएँगे. सीमान्त लागत बढ़ने का प्रभाव यह होगा कि उत्पादन घट जाएगा और उत्पादन घटने का प्रभाव यह होगा कि बाज़ार भाव बढ़ जाएगा. कीमत में बदलाव, कर में बदलाव से कितना कम या अधिक होगा? पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार का अध्ययन करते हुए चित्र 47 में हम ने देखा था कि लोच बदलने से कीमत में बदलाव की मात्रा बदल सकती है. वैसा ही चित्र बना कर आप देख सकते हैं कि माँग की लोच का प्रभाव एकाधिकार में भी बाज़ार भाव के परिवर्तन पर पड़ेगा. वास्तव में बाज़ार भाव में परिवर्तन कर/लागत में बढ़ोतरी से कम, ज़्यादा या समान भी हो सकता है.[54]

---

[53] इस मुद्दे पर अधिक चर्चा के लिए H R Varian "Intermediate Microeconomics" (WW Norton & Company, 1987) p 433 देखें.

[54] उदाहरण के लिए अगर माँग-वक्र $Q = \lambda P^{-2}$ हो (पड़ताल करें कि क्या यह माँग के नियम के अनुरूप है), MC=K (यानी सीमान्त लागत स्थिर है) एवं अतिरिक्त लागत प्रति इकाई ΔK हो तो गणना करने पर हम पायेंगे कि प्रति इकाई कर बढ़ने के प्रभाव स्वरूप बाज़ार भाव कर से भी ज़्यादा बढ़ जाएगा. इस माँग-वक्र के आधार पर $TR=PQ= \lambda P^{-1} = (\lambda Q)^{1/2}$. इस लिए $MR= \lambda^{1/2} * (1/2) * (Q)^{-1/2}$. MR को MC यानी K के समान रख कर गणना करने पर $Q= \lambda /4K^2$ एवं $P=2K$ होगी. कर बढ़ने पर $MC=K+\Delta K$ हो जायेगी. अब इस को MR के समान रखने पर हम पायेंगे कि $Q= \lambda /4(K+\Delta K)^2$ हो जायेगी एवं इस आधार पर

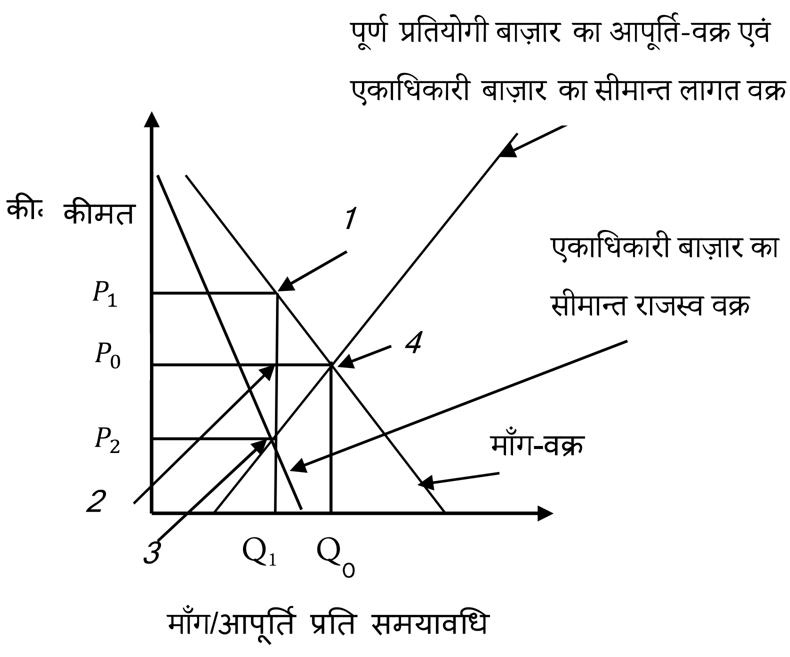
एकाधिकारी एवं पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार की तुलनापूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में दीर्घकालीन संतुलन कि स्थिति में उत्पादन न्यूनतम संभव दाम पर होता है, हर फ़र्म अपने इष्टतम उत्पादन स्तर पर उत्पादन करती है एवं लाभ शून्य होते हैं. अगर यही बाज़ार एकाधिकारी बाज़ार में परिवर्तित हो जाए और **लागत में कोई बदलाव न हो**, तो एकाधिकारी बाज़ार में दीर्घकालीन संतुलन की स्थिति में पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार की तुलना में उत्पादन कम होगा या ज़्यादा? भाव ज़्यादा होगा या कम?

एकाधिकारी बाज़ार में भी उत्पादन उस स्तर पर होता है जहाँ सीमान्त लागत एवं सीमान्त राजस्व बराबर होते हैं. परन्तु पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार के विपरीत, जहाँ औसत राजस्व एवं सीमान्त राजस्व बराबर होते हैं, एकाधिकारी बाज़ार में सीमान्त राजस्व औसत राजस्व से कम होगा. इस का अर्थ है कि एकाधिकारी बाज़ार में उत्पादन पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना में कम होगा, उत्पादन कम होगा तो निश्चित तौर पर बाज़ार भाव ज़्यादा होगा (क्योंकि पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार के एकाधिकारी बाज़ार में बदलने का माँग पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा). कीमत-विभेद संभव होने पर भाव और भी बढ़ जाएगा.

पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार संतुलन की स्थिति में लाभ शून्य होते हैं. एकाधिकारी बाज़ार में क्या होगा? एकाधिकारी बाज़ार में अधिकांश तौर पर लाभ धनात्मक होंगे परन्तु हमेशा ऐसा होना ज़रूरी नहीं है. निश्चित तौर पर एकाधिकारी को दीर्घकाल में हानि नहीं होगी हालाँकि अल्प काल में एकाधिकारी को भी हानि हो सकती है.

दीर्घकालीन संतुलन की स्थिति में पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में उत्पादन लागत-वक्र के न्यूनतम स्तर पर होता है एवं उत्पादन क्षमता का पूरा प्रयोग होता है. यह सुनिश्चित होता है मनचाही मात्रा बेच पाने की संभावना, घटती लागत एवं प्रतियोगिता के चलते. एकाधिकारी बाज़ार में इन में से कोई भी कारक प्रभावी नहीं होता. इस लिए एकाधिकारी बाज़ार में उत्पादन का स्तर न्यूनतम लागत स्तर से कम, अधिक अथवा समान हो सकता है. इस लिए उत्पादन क्षमता ख़ाली भी रह सकती है, उस का अतिरिक्त दोहन भी हो सकता है एवं उस का पूर्ण प्रयोग भी संभव है. क्या होगा, यह माँग-वक्र पर निर्भर करेगा.

चित्र 55- पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार के एकाधिकारी बाज़ार में परिवर्तन का प्रभाव



क्योंकि एकाधिकारी बाज़ार में भाव सीमान्त राजस्व से अधिक होता है और सीमान्त उपयोगिता बाज़ार भाव के बराबर होती है, इस लिए ऐसे बाज़ार में संतुलन की स्थिति में सीमान्त उपयोगिता सीमान्त लागत से अधिक होगी. यह पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार के विपरीत है जहाँ सीमान्त लागत एवं सीमान्त उपयोगिता बराबर होती हैं. इस के चलते, एकाधिकारी बाज़ार में उपभोक्ता का आधिक्य घटेगा एवं इस कटौती का एक हिस्सा उत्पादक के आधिक्य का रूप ले लेगा. परन्तु कुल मिला कर उत्पादक एवं उपभोक्ता आधिक्य घट जाएगा.[55]

चित्र 55 में पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार के एकाधिकारी बाज़ार में परिवर्तित होने की

कीमत P= 2(K+ΔK). इस से स्पष्ट है कि कर में ΔK की बढ़ोतरी होने पर कीमत में बढ़ोतरी इस से दो गुणा हो जायेगी. यह गणना करते हुए हम यह मान कर चले हैं संतुलन बिंदु पर तीसरी शर्त यानी कि औसत राजस्व औसत लागत से अधिक है.

[55] निम्न चर्चा चित्र 46 के सन्दर्भ में हुई चर्चा का दोहराव है.

स्थिति को दिखाया गया है. पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में बाज़ार संतुलन P_0 Q_0 बिंदु पर होगा जिसे अंक 4 से इंगित किया गया है. एकाधिकारी बाज़ार बन जाने पर बाज़ार संतुलन P_1 Q_1 बिंदु पर होगा जिसे अंक 1 से इंगित किया गया है. इस से स्पष्ट हो जाता है कि P_1, 1, 2, एवं P_0 बिंदु से घिरे आयताकार का क्षेत्र उपभोक्ता आधिक्य की बजाय उत्पादक आधिक्य का हिस्सा बन जाता है. परन्तु इस के साथ ही 1,3 एवं 4 बिंदु से घिरा त्रिकोणीय क्षेत्र के बराबर आधिक्य, जिस में उपभोक्ता एवं उत्पादक आधिक्य दोनों शामिल हैं, नष्ट हो जाता है. इसे डेड वेट लॉस (dead weight loss) कहते हैं क्योंकि यह ऐसा नुकसान है जिस का किसी को लाभ नहीं मिलता; उपभोक्ता एवं उत्पादक आधिक्य में हुई ये कटौती किसी अन्य के आधिक्य में शामिल नहीं होती. इस लिए बाज़ार के एकाधिकारी बन जाने कि स्थिति में न केवल उपभोक्ताओं का आधिक्य कम हो जाता है अपितु कुल आधिक्य भी कम हो जाता है.

चित्र 55 की स्थिति में अगर एकाधिकारी प्रथम श्रेणी का कीमत-विभेद करे तो क्या होगा? कितना उत्पादन होगा? क्योंकि प्रथम श्रेणी के कीमत-विभेद में माँग-वक्र ही सीमान्त राजस्व-वक्र बन जाता है. इस लिए इस स्थिति में उत्पादन पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार के समान Q_0 होगा. उपभोक्ता का आधिक्य शून्य हो जाएगा क्योंकि वस्तु की हर इकाई अधिकतम संभव कीमत अथवा सीमान्त उपयोगिता के भाव पर बेची जाएगी. इस स्थिति में उत्पादक आधिक्य बढ़ कर पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार के कुल आधिक्य के समान हो जाएगा.

ध्यान रहे कि पूर्ण प्रतियोगिता से तुलना सम्बन्धी उपरोक्त सभी निष्कर्ष उसी स्थिति में लागू होते हैं जब एकाधिकारी बाज़ार एवं पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार की उत्पादन लागत एक समान रहती है. अगर एकाधिकार होने से उत्पादन लागत कम हो जाती है, तो ये निष्कर्ष लागू नहीं होंगे.

क्योंकि एकाधिकारी बाज़ार में उत्पादक पर कोई बाहरी दबाव नहीं होता, इस लिए तकनीकी बदलाव को लागू करने में विलम्ब हो सकता है. यह भी संभव है कि यह लागू ही न हो. उदाहरण के लिए, अगर कोई नई तकनीक विकसित हुई है जिस से उत्पादन लागत घट सकती है परन्तु इस के लिए नई फैक्टरी लगानी पड़ती है, तो यह संभावना है कि नई तकनीक लागू ही न की जाए. ऐसा इस लिए होता है क्योंकि एकाधिकारी बाज़ार में नई तकनीक लागू करने की कोई बाध्यता नहीं है. अपितु एकाधिकारी अपने हित में नई तकनीक विकसित करने के प्रयास अवश्य करेंगे क्योंकि अगर कोई नई तकनीक उन के हित में विकसित होती है, तो वे लम्बे समय तक उस का लाभ उठा सकते हैं. ध्यान दें कि पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में स्थिति ठीक इस के विपरीत रहती है – नई तकनीक विकसित करने के लिए निवेश की संभावना कम होती है परन्तु नई तकनीक बाज़ार में आने पर अन्य उत्पादकों द्वारा अपनाने की उच्च संभावना होती है.

एकाधिकारी बाज़ार में भी पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार की तरह विज्ञापन पर ज़्यादा ख़र्च नहीं किया जाएगा क्योंकि एकाधिकारी का कोई प्रतियोगी ही नहीं होता.[56] पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार के विपरीत एकाधिकारी उत्पादक कीमत-विभेद कर सकता है. हालाँकि कीमत-विभेद आम तौर पर उपभोक्ता के आधिक्य को कम कर देता है, परन्तु, जैसा हम ने ऊपर देखा है, कुछ परिस्थितियों में कीमत-विभेद उत्पादन संभव भी बना सकता है.

क्या एकाधिकारी बाज़ार अच्छा है? आम तौर पर एकाधिकार उत्पादन कम कर देता है, भाव बढ़ा देता है एवं कुल आधिक्य भी घटा देता है. इस के अलावा यह उत्पादक को उपभोक्ताओं के प्रति उदासीन भी बना सकता है. इस लिए दुनिया भर में एकाधिकारी बाज़ार को रोकने के प्रयास किए जाते हैं और अगर एकाधिकार को रोकना संभव न हो तो कई तरह के उपाय कर के इस के दुष्प्रभावों को सीमित करने के प्रयास किए जाते हैं. ऐसे उपायों में इन का राष्ट्रीयकरण करना, इन के लाभ को कर के माध्यम से कम करना एवं अन्य तरीकों से इन को नियंत्रित करना शामिल हैं. परन्तु अगर एकाधिकार लागत को घटा देता है, तो एकाधिकार उपयोगी भी हो सकता है. लगातार गिरती उत्पादन लागत वाले उद्योग में तो एकाधिकार ही एकमात्र उपयुक्त व्यवस्था है. इस लिए ऐसे उद्योगों को प्राकृतिक एकाधिकार कहते हैं.

पेटेंट व्यवस्था (यानी नई विकसित तकनीक पर आविष्कारक को एकाधिकार) एकाधिकार का एक महत्त्वपूर्ण कारण है. नई मानव उपयोगी तकनीक विकसित करने को बढ़ावा देने के लिए कई लोग आविष्कारक को पुरस्कृत करने के लिए पेटेंट को आवश्यक

---

[56] हालाँकि माँग बढ़ाने के लिए एकाधिकारी विज्ञापन पर ख़र्च कर सकता है.

मानते हैं. इस के विरोध में यह तर्क दिया जाता है कि आविष्कार की प्रक्रिया में कई लोगों का योगदान होता है. जो प्रयोग फेल होते हैं, उन से भी आविष्कारकों की सहायता मिलती है- वे इन राहों पर न चल कर अपनी ऊर्जा नई दिशा में लगा सकते हैं. अगर असफल प्रयोगों की जानकारी सार्वजनिक न होती तो क्या मालूम आविष्कारक इन्हीं प्रयोगों को दोहराने में अपनी ऊर्जा ख़र्च कर देते. कहावत है कि दीवार तोड़ने का श्रेय आखिरी धक्का मारने वाले का ही नहीं होता; दीवार के टूटने में पहले के असफल प्रयासों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है क्योंकि इन के चलते दीवार कमज़ोर हो जाती है. इस के अलावा इस बात पर भी विवाद रहा है कि पेटेंट कितनी अवधि के लिए मिले.

[**एक बाज़ार के लिए उपयुक्त उपाय पूरी अर्थव्यवस्था के लिए अनुपयुक्त**: अर्थशास्त्र में हम आम तौर पर आंशिक संतुलन का अध्ययन करते हैं. एक उद्योग अथवा बाज़ार का अध्ययन करते हुए हम यह मान कर चलते हैं कि अन्य उद्योग संतुलन में हैं एवं बने रहेंगे. इस लिए इस उद्योग की माँग भी यथावत बनी रहेगी. परन्तु अगर अर्थव्यवस्था के मुख्य उद्योग में एकाधिकार पनपता है एवं इस के उत्पादन में गिरावट आती है, तो न केवल पूरी अर्थव्यवस्था में गिरावट आती है अपितु इस बड़े उद्योग की माँग भी कम हो सकती है. कई छोटे राष्ट्रों में एक ही उद्योग जैसे ईंख अथवा केले का उत्पादन ही मुख्य उद्योग है. अब तक के हमारे अध्ययन से यह स्पष्ट है कि किसी उद्योग में एकाधिकारी बाज़ार विकसित होने पर, इस का उत्पादन कम हो जाता है एवं दाम बढ़ जाते हैं. अगर यह उद्योग अर्थव्यवस्था का मुख्य उद्योग है, तो इस में कार्यरत श्रमिक भी अर्थव्यवस्था में कार्यरत श्रमिकों का बड़ा हिस्सा होंगे. इस लिए इस महत्त्वपूर्ण क्षेत्र में एकाधिकार पनपने के चलते हुई उत्पादन में कटौती से अर्थव्यवस्था में श्रमिक वर्ग के बड़े हिस्से को मिलने वाली आय कम हो जाएगी. इस के साथ ही, एकाधिकारी उत्पाद के भाव बढ़ने से जिन श्रमिकों की मौद्रिक आय कम नहीं भी हुई है, उन के पास भी अन्य वस्तुओं पर ख़र्च करने लायक आय में कमी आ जाएगी. इन दोनों प्रभावों के चलते अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों द्वारा बनाई जा रही उपभोग की वस्तुओं की माँग घट जाएगी. अंत: अन्य उद्योगों में भी उत्पादन घट जाएगा. इस का अर्थ है कि अर्थव्यवस्था के मुख्य एवं बड़े उद्योग में एकाधिकार के चलते, न केवल उस उद्योग में उत्पादन कम होता है बल्कि अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में भी उत्पादन कम हो सकता है. एकाधिकार के चलते पूरी अर्थव्यवस्था में गिरावट आती है, तो निश्चित तौर पर एकाधिकारी उद्योग के उत्पादन की माँग में भी गिरावट आयेगी क्योंकि उपभोक्ताओं की आय कम हो गई है. एकाधिकारी उद्योग की माँग में गिरावट आयेगी तो निश्चित तौर पर इस का उत्पादन, भाव एवं लाभ, तीनों और भी कम होंगे.]

इस अध्याय में हम ने एकाधिकारी बाज़ार की परिभाषा, एकाधिकार विकसित होने का कारणों, एकाधिकार बाज़ार के संतुलन का अध्ययन किया है एवं इस की तुलना पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार से की है. एकाधिकारी बाज़ार में कीमत-विभेद की संभावना उत्पन्न हो जाती है. कीमत-विभेद के विभिन्न प्रकारों एवं इन के प्रभावों का भी हम ने अध्ययन किया है. हम ने पाया कि लगातार घटती औसत उत्पादन लागत एवं चंद अन्य परिस्थितियों को छोड़ कर, आम तौर पर एकाधिकार उपभोक्ता एवं अर्थव्यवस्था के हित में नहीं होता. इस लिए पूरी दुनिया में एकाधिकार को सीमित अथवा नियंत्रित करने के प्रयास किए जाते हैं.

एकाधिकार एवं पूर्ण प्रतियोगिता, बाज़ार के उत्तर-दक्षिण ध्रुव सरीखे दो चरम सिरे हैं. इन दोनों के ध्रुवों के बीच में कई तरह के बाज़ार होते हैं जो वास्तविक अर्थव्यवस्था के अधिक समीप होते हैं. अगले अध्यायों में हम ऐसे दो अन्य तरह के बाज़ारों का अध्ययन करेंगे.

प्रश्न

1. एकाधिकारी उत्पादक बाज़ार की परिभाषा दें एवं एकाधिकार के कारकों का वर्णन करें.
2. एकाधिकारी के इष्टतम उत्पादन स्तर पर क्या शर्त पूरी होनी चाहिएँ?
3. चित्र द्वारा यह साबित करें कि एकाधिकारी उत्पादक एक ही बाज़ार भाव पर विभिन्न मात्रा उपलब्ध करा सकता है. (संकेत: सीमान्त लागत-वक्र सब से अंत में अंकित करें.)
4. व्याख्या सहित चित्र द्वारा एकाधिकारी का शून्य लाभ पर संतुलन बिंदु दर्शायें.
5. अगर औसत लागत-वक्र, हर उत्पादन स्तर पर माँग-वक्र से ऊपर है, तो उत्पादन नहीं हो सकता. क्या आप इस निष्कर्ष से सहमत हैं? तर्क पूर्ण व्याख्या करें.

6. क्या एकाधिकारी बाज़ार माँग-वक्र के उस बिंदु पर संतुलन में हो सकता है जहाँ माँग की लोच बलोचदार हो यानी एक से कम हो?

7. एकाधिकारी बाज़ार में माँग-वक्र P=40-3Q है. इस एकाधिकारी का सीमान्त राजस्व-वक्र ज्ञात करें. आप किसी भी विधि का, चाहें तो तालिका विधि अथवा डेरिवेटिव का प्रयोग कर सकते हैं. एकाधिकारी किस दाम पर 10 इकाइयों की आपूर्ति करेगा?

8. निम्न को परिभाषित करें: निकट स्थानापन्न वस्तु, प्राकृतिक एकाधिकार, परभक्षी कीमत निर्धारण नीति (predatory pricing policy).

9. एकाधिकारी हमेशा लाभ में ही होते हैं. क्या आप इस निष्कर्ष से सहमत हैं? तर्क पूर्ण व्याख्या करें.

10. अगर भारत सरकार उत्पादन शुल्क बढ़ा दे, तो एकाधिकारी के उत्पादन स्तर पर क्या प्रभाव पड़ेगा? क्या लाभ पर कर की दर बढ़ाने का प्रभाव भी ऐसा ही होगा या इस से भिन्न होगा?

11. उत्पादक एवं उपभोक्ता आधिक्य के सन्दर्भ में डेड वेट लॉस (Dead weight loss) की व्याख्या करें? यह क्यों उत्पन्न होते हैं?

12. कीमत-विभेद को परिभाषित करें. एक पैकेट बंद दूध उत्पादक पूरी वसा वाला, टोंड एवं डबल टोंड दूध के लिए अलग-अलग दाम वसूलता है. क्या इसे कीमत-विभेद कह सकते हैं?

13. विभिन्न श्रेणियों के कीमत-विभेद को परिभाषित करें एवं यह भी चिह्नित करें कि किन परिस्थितियों में यह संभव होता है.

14. कीमत-विभेद की स्थिति में किस श्रेणी के उपभोक्ता अधिक दाम देंगे- जिन की माँग की लोच कम है या ज़्यादा?

15. कीमत-विभेद का उपभोक्ता पर क्या असर होता है?

16. एकाधिकार उपभोक्ता हित में नहीं है. इस निष्कर्ष की समीक्षा करें.

17. एक मुश्त कर का दीर्घकाल में एकाधिकारी के उत्पादन एवं कीमत पर क्या असर पड़ेगा.

18. अगर दो उपभोक्ताओं की माँग की कीमत लोच एक समान है तो क्या तीसरी श्रेणी का कीमत-विभेद उपयोगी होगा?

अध्याय - 11

एकाधिकारी प्रतियोगिता बाज़ार (Monopolistic Competition)

पिछले अध्यायों में हम ने एकाधिकारी एवं पूर्ण प्रतियोगी बाज़ारों का अध्ययन किया है. इन दोनों तरह के बाज़ार में उत्पाद समरूप होते हैं. परन्तु हम पाते हैं कि वास्तव में बाज़ार मिलते-जुलते परन्तु भिन्न उत्पादों से भरे पड़े हैं. कितनी तरह के साबुन, टूथ पेस्ट बाज़ार में मिलते हैं और उन के दाम में भी अंतर होता है. इस के अलावा इन दोनों बाज़ारों में विज्ञापन का कोई विशेष महत्त्व नहीं है परन्तु वास्तव में अर्थव्यवस्था में विज्ञापन सर्वव्यापी हैं. कई बड़े प्रचार माध्यम तो विज्ञापनों के भरोसे ही चलते हैं. इन के अलावा यह भी पाया जाता है कि औसत लागत-वक्र के घट रहे हिस्से पर होने के बावजूद उत्पादकों के उत्पादन स्तर में लगातार बढ़ोतरी नहीं होती जैसा कि पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में अपेक्षित है. वस्तु की एक कीमत होने की बजाय मिलती-जुलती कीमतों का एक झुंड जैसा पाया जाता है. इस से स्पष्ट है कि एकाधिकारी एवं पूर्ण प्रतियोगी बाज़ारों के अलावा अन्य किस्म के बाज़ार भी होते हैं. इस अध्याय में हम ऐसे ही एक बाज़ार का अध्ययन करेंगे.

एकाधिकारी एवं पूर्ण प्रतियोगी बाज़ारों के बारे में अर्थशास्त्रियों के बीच काफ़ी हद तक एक राय है परन्तु अब हम जिन बाज़ारों का अध्ययन करेंगे, उन की अलग-अलग अर्थशास्त्रियों ने अपने-अपने ढंग से व्याख्या की है. यहाँ हम कुछ चिह्नित माडलों की ही चर्चा करेंगे.

अगर एक बाज़ार में निम्न गुण हों: अनेक उत्पादक और अनेक उपभोक्ता हों, उत्पाद समरूप न हो कर, एक से न हो कर, भिन्नता लिए हों (भले ही यह भिन्नता वास्तविक न हो कर ऊपरी या दिखावटी हो), हर उत्पादक अपने विशिष्ट उत्पाद का एकमात्र विक्रेता हो, बाज़ार में उत्पादकों के आने जाने पर कोई प्रतिबन्ध न हो, तो ऐसे बाज़ार को हम **एकाधिकारी प्रतियोगिता बाज़ार (monopolistic competition) कहते हैं.** एकाधिकारी प्रतियोगिता बाज़ार में शुद्ध एकाधिकारी एवं पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार दोनों के कुछ-कुछ अंश पाए जाते हैं. ऐसे बाज़ार में उत्पादक अपने विशिष्ट उत्पाद का एकमात्र उत्पादक होता है, इस लिए वह अपने उत्पाद का भाव स्वयं तय कर सकता है. परन्तु क्योंकि उस के उत्पाद के निकट स्थानापन्न वस्तु उपलब्ध हैं, इस लिए वह शुद्ध एकाधिकारी नहीं है. अगर वह भाव ज़्यादा बढ़ा देता है, तो उस के उत्पाद के उपभोक्ता मिलते-जुलते दूसरे उत्पाद ख़रीदने लग जाएँगे. क्योंकि उस का उत्पाद भिन्न है, चाहे वास्तव में भिन्न है अथवा उपभोक्ताओं को भिन्न लगता है, इस लिए अन्य उत्पादक पूरी तरह उस का मुकाबला नहीं कर सकते एवं कुछ सीमा तक वह कीमत स्वीकारक न हो कर कीमत निर्धारक हो सकता है. क्योंकि ऐसे बाज़ार में उत्पादक कुल बाज़ार का एक छोटा हिस्सा है, इस लिए वह यह मान कर निर्णय लेता है कि उस के निर्णय की कोई प्रतिक्रिया नहीं होगी. इस लिए वह स्वतंत्र रूप में उत्पादन सम्बन्धी निर्णय लेता है. पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार की तरह ही उत्पादक की प्रतियोगिता न केवल वर्तमान उत्पादकों से है अपितु संभावित उत्पादकों से भी है क्योंकि इस बाज़ार में प्रवेश निर्बाध है.

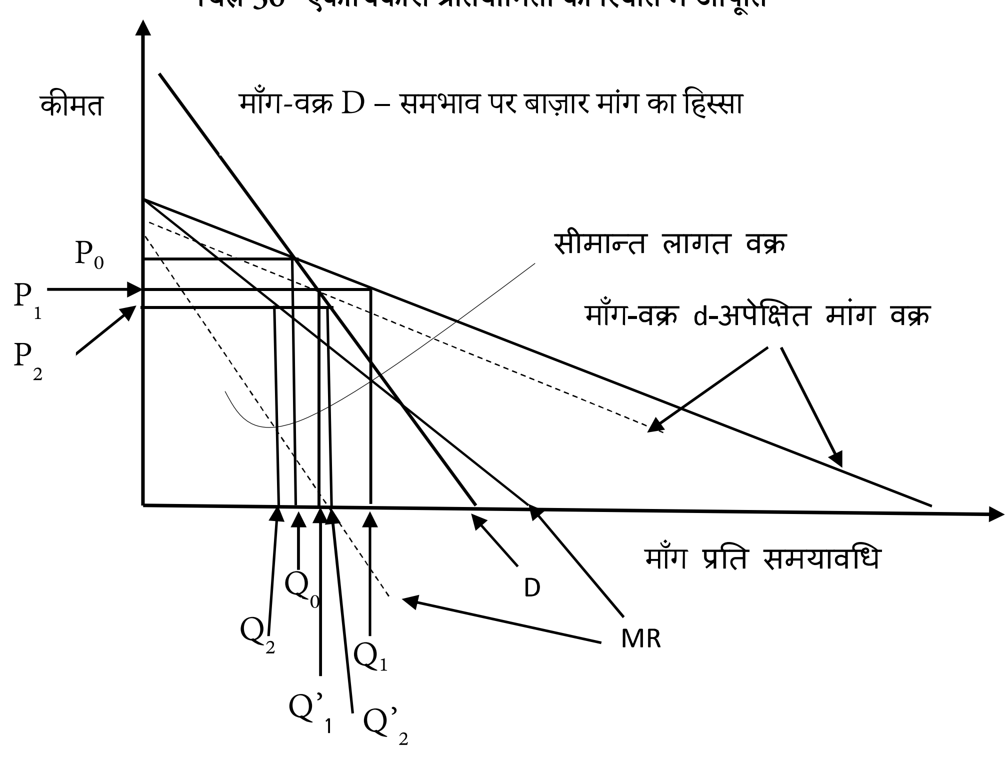
जब समरूप वस्तुओं की बिक्री होती है तो उस वस्तु के सभी ग्राहक एवं विक्रेता मिल कर उस वस्तु का बाज़ार बनाते हैं. परन्तु **एकाधिकारी प्रतियोगिता बाज़ार को कैसे परिभाषित करें** क्योंकि यहाँ तो सभी उत्पाद समरूप नहीं होते? इस परिस्थिति में यह सुझाव दिया गया कि बाज़ार की बजाय हम 'वस्तु-समूह' की अवधारणा का प्रयोग करें. परन्तु ऐसा करने से समस्या ख़त्म नहीं हो जाती. वस्तु-समूह को कैसे परिभाषित करें? क्या पेट्रोल एवं डीज़ल को एक 'वस्तु-समूह' माना जाए या नहीं? हम उन सब वस्तुओं को एक बाज़ार या वस्तु-समूह में शामिल कर लेते हैं जो, तकनीकी एवं आर्थिक, दोनों तौर पर एक दूसरे का स्थान ले सकते हैं. अंत: **हम उन सब वस्तुओं को एक बाज़ार में शामिल कर लेते हैं जिन की कीमत एवं आड़ी (cross) लोच उच्च होती है.** जिन वस्तुओं के तकनीकी विकल्प नहीं होंगे, उन की कीमत लोच कम होगी. अगर दो वस्तु तकनीकी तौर पर एक दूसरे का स्थान ले सकती हैं परन्तु आर्थिक तौर पर नहीं, तो उन की आड़ी लोच कम होगी. इस लिए हम एकाधिकारी प्रतियोगिता बाज़ार में उन सब वस्तुओं को लेते हैं जिन की कीमत एवं आड़ी कीमत लोच उच्च होती है. हस्पताल, होटल, भोजनालय, वाहन वर्कशाप, विभिन्न तरह के कारीगर इत्यादि एकाधिकारी प्रतियोगिता बाज़ार के

उदाहरण हैं. इन के उत्पाद एवं सेवाएँ एक-सी होती हैं परन्तु हर एक की अपनी कुछ विशिष्टता भी होती है. इस लिए ये कुछ हद तक एकाधिकारी एवं कुछ हद तक पूर्ण प्रतियोगी की तरह व्यवहार करते हैं.

एकाधिकारी प्रतियोगिता बाज़ार की व्याख्या करने के लिए हम **चैम्बरलिन (Chaimberlin) के मॉडल** को आधार बनायेंगे. सुविधा के लिए हम यह मान लेते हैं कि एकाधिकारी प्रतियोगिता बाज़ार में सभी उत्पादक एक जैसे हैं. बाज़ार में उन का बराबर का हिस्सा है. इस के अलावा उन सब के लागत-वक्र भी एक से हैं. इस लिए हम किसी भी उत्पादक को इस बाज़ार का प्रतिनिधि उत्पादक मान सकते हैं. यह मान्यता मात्र सुविधाजनक है परन्तु इस से निकले निष्कर्षों के लिए आवश्यक नहीं हैं.

ऐसे बाज़ार में उत्पादक के सामने दो तरह के माँग-वक्र होते हैं. एक माँग-वक्र उस परिस्थिति में प्रभावी होता है जब सभी उत्पादक एक ही भाव रखें. इस को उत्पादक का बाज़ार में हिस्सा माँग-वक्र (share of market demand curve) अथवा सम-भाव माँग-वक्र (यानी जब सभी उत्पादक एक भाव रखें) भी कह सकते हैं. इसे हम D से अंकित करेंगे. इस से विपरीत दूसरा माँग-वक्र उस परिस्थिति में प्रभावी होगा, जब केवल यह उत्पादक अपने दाम परिवर्तित करे. इस लिए इसे अपेक्षित माँग-वक्र (expected demand curve) भी कह सकते हैं. इसे हम d से अंकित करेंगे. इन दोनों तरह के माँग वक्रों, 'सम-भाव माँग-वक्र' D तथा 'अपेक्षित माँग-वक्र' d में से किस की कीमत लोच ज़्यादा होगी तथा उत्पादक किस माँग-वक्र को ध्यान में रख कर निर्णय लेगा? विचार करने पर आप पायेंगे कि उत्पादक के लिए निर्णायक माँग-वक्र तो d ही हो सकता है क्योंकि एक उत्पादक तो अपना दाम ही तय कर सकता है न कि बाज़ार भाव. जहाँ तक लोच का सम्बन्ध है d यानी अपेक्षित माँग-वक्र की लोच ही ज़्यादा होगी क्योंकि अगर केवल एक उत्पादक दाम घटाएगा तो उस की माँग में वृद्धि उस स्थिति की तुलना में ज़्यादा बढ़ेगी जब सभी उत्पादक अपने दाम घटा देते हैं एवं कीमत बढ़ाने में स्थिति इस के विपरीत होगी. चित्र 56 में यह स्थिति दर्शाई गई है.

चित्र 56- एकाधिकारी प्रतियोगिता की स्थिति में आपूर्ति

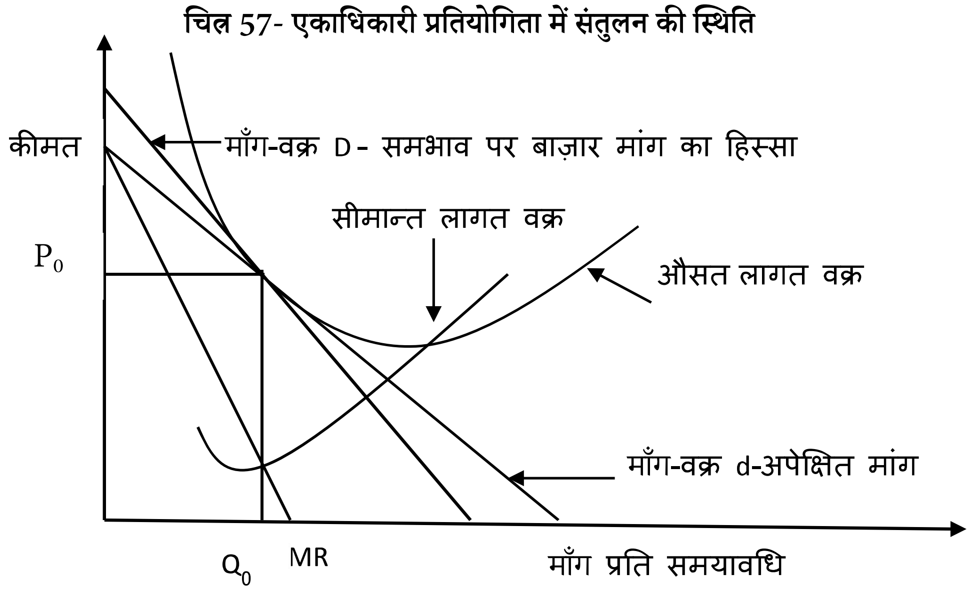


चित्र 56 में मोटी रेखा माँग-वक्र D इंगित करती है और पतली रेखा माँग-वक्र d एवं उस के अनुरूप सीमान्त राजस्व-वक्र इंगित करती है. बिंदीदार रेखा से इंगित वक्रों की चर्चा बाद में करेंगे. मान लें कि बाज़ार भाव P_0 है. क्या यह भाव इस उत्पादक के लिए इष्टतम भाव है? नहीं क्योंकि कि इस भाव पर वह Q_0 बिक्री ही कर सकता है परन्तु इस स्तर पर उस का सीमान्त राजस्व सीमान्त लागत से अधिक है. इस लिए अधिकतम लाभ के लिए उसे उत्पादन बढ़ाना चाहिए और कीमत कम करनी चाहिए. इस उत्पादक के लिए इष्टतम भाव P_1 है जिस पर वह Q_1 मात्रा बेच पायेगा. ऐसा करने पर उस का सीमान्त राजस्व सीमान्त लागत के समान होगा. इस मात्रा से अधिक बेचने पर सीमान्त राजस्व सीमान्त लागत से कम हो जाएगा. परन्तु क्या वह P_1 भाव पर Q_1 मात्रा बेच पायेगा? हमारी मान्यता के अनुसार बाज़ार में सभी उत्पादक एक सरीखे हैं. इस लिए

वर्तमान स्थिति में सभी का इष्टतम भाव P_1 है. इस लिए अगर सभी अपना भाव घटा कर P_1 कर देते हैं, तो वह माल Q'_1 मात्रा बेच पायेंगे न कि Q_1 क्योंकि इस स्थिति में प्रभावी माँग-वक्र D होगा न कि d. इस लिए हम d को अपेक्षित माँग-वक्र एवं **D को प्रभावी माँग-वक्र (realized demand curve) भी कहते हैं.** यह बात रेखांकित की जाए कि **यद्यपि सभी उत्पादक एक समान भाव, P_1, रखते हैं परन्तु वे इस निष्कर्ष पर स्वतंत्र तौर पर पहुँचते हैं न कि परस्पर तालमेल से. आगे चल कर हम वह स्थिति भी देखेंगे जब तालमेल से एक भाव तय होता है. इस लिए यह अंतर नोट करना महत्त्वपूर्ण है.**

बाज़ार भाव P_1 होने पर d वक्र यानी अपेक्षित माँग-वक्र नीचे की ओर खिसक जाएगा. नए अपेक्षित माँग वक्र एवं इस से सम्बन्धित नए सीमान्त राजस्व-वक्र को हम ने बिंदीदार रेखा से दर्शाया है. उत्पादक ने भाव P_1 यह सोच कर किया था कि बिक्री Q_1 होगी परन्तु बिक्री हुई Q'_1. क्योंकि उत्पादक की अपेक्षा फलीभूत नहीं हुई, इस लिए वह पुन: अपने इष्टतम भाव की गणना करेगा. अब कि बार इष्टतम भाव P_2 पाया जाता है जिस पर अपेक्षित बिक्री Q_2 है. इस कीमत पर वास्तविक बिक्री Q'_2 होगी. इस का कारण वही रहता है; उत्पादक गणना d को ध्यान में रख कर करता है परन्तु सभी उत्पादक एक सरीखे हैं, इस लिए सभी ऐसा करते हैं तो प्रभावी माँग-वक्र D हो जाता है. **उत्पादक द्वारा भाव बदलने की यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है, जब तक उत्पादक की अपेक्षित बिक्री एवं प्रभावी बिक्री समान नहीं हो जाती.** जब उत्पादक की अपेक्षित बिक्री ही प्रभावी बिक्री हो जाती है तब बाज़ार भाव ही इष्टतम भाव हो जाता है एवं उत्पादक संतुलन में हो जाता है. इस स्थिति को चित्र 57 में दर्शाया गया है. यहाँ अपेक्षित इष्टतम स्तर एवं वास्तविक स्थिति एक ही है.

चित्र 57- एकाधिकारी प्रतियोगिता में संतुलन की स्थिति



जब किसी उत्पादक की अपेक्षित बिक्री एवं प्रभावी बिक्री एक समान हो जाती है, तो निश्चित तौर पर वह अपने व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं करेगा. परन्तु क्या ऐसा होने पर बाज़ार भी संतुलन में होगा? नहीं, ऐसा होना आवश्यक नहीं है. पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार की तरह एकाधिकारी प्रतियोगिता बाज़ार में भी बाज़ार संतुलन तभी होगा जब लाभ शून्य हों. अगर वर्तमान बाज़ार भाव पर लाभ हो रहे हैं, तो इस उद्योग में अन्य उत्पादकों का प्रवेश होता रहेगा एवं यदि हानि होती है, तो उत्पादक बाज़ार छोड़ कर जाते रहेंगे. जब तक उत्पादकों का प्रवेश एवं निकास लगा रहेगा तब तक D वक्र -जो कुल बाज़ार में उत्पादक का हिस्सा दर्शाता है - भी बदलता रहेगा. **एकाधिकारी प्रतियोगिता बाज़ार एवं इस के उत्पादक तभी संतुलन में होंगे जब न केवल सभी उत्पादकों का अपेक्षित भाव एवं बाज़ार भाव एक हो अपितु इस भाव पर शून्य लाभ भी हों.** इस स्थिति को चित्र 57 में दर्शाया गया है. शून्य लाभ के लिए आवश्यक है कि बाज़ार भाव औसत लागत के समान हो.

चित्र 57 में P_0 Q_0 बिंदु पर उत्पादक एवं बाज़ार दोनों संतुलन की स्थिति में हैं. उत्पादन के इष्टतम स्तर की तीनों शर्तों को पूरा करने के साथ-साथ इस बिंदु पर एकाधिकारी प्रतियोगिता बाज़ार की दो विशेष शर्तें भी पूरी हो रही हैं- उत्पादक की अपेक्षित बिक्री ही उस की प्रभावी बिक्री है एवं बाज़ार भाव औसत लागत के समान है यानी लाभ भी शून्य हैं.

एकाधिकारी प्रतियोगिता बाज़ार एवं पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार की तुलना: दोनों परिस्थितियों में एक समानता तो यह है कि दीर्घकालीन संतुलन की स्थिति में लाभ शून्य हैं परन्तु इस के साथ ही एक महत्त्वपूर्ण अंतर भी है. एकाधिकारी प्रतियोगिता बाज़ार में संतुलन बिंदु औसत लागत के न्यूनतम बिंदु पर न हो कर औसत लागत-वक्र के गिरते हुए हिस्से पर होता है. क्यों? एकाधिकारी प्रतियोगिता बाज़ार

में दीर्घकालीन संतुलन की स्थिति में लाभ शून्य होते हैं. इस का अर्थ है कि माँग-वक्र एवं औसत लागत-वक्र इस बिंदु पर एक दूसरे को स्पर्श मात्र करते हैं यानी उन की ढलान एक समान है. क्योंकि माँग-वक्र की ढलान ऋणात्मक है, इस लिए संतुलन बिंदु पर औसत लागत-वक्र की ढलान भी ऋणात्मक होगी.

उपरोक्त निष्कर्ष से ही कुछ और बातें भी तय हो जाती हैं. एकाधिकारी प्रतियोगिता बाज़ार में भाव पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार की तुलना में अधिक होंगे, बाज़ार भाव सीमान्त लागत से अधिक होगा और उत्पादन क्षमता का पूरा दोहन नहीं होगा. कुछ उत्पादन क्षमता ख़ाली रहेगी. पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना में अगर भाव अधिक रहेंगे एवं उत्पादन कम रहेगा, तो निश्चित तौर पर उपभोक्ता एवं उत्पादक आधिक्य भी पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना में कम रहेगा.

इस के अलावा एकाधिकारी प्रतियोगिता बाज़ार में कुछ नई बातें भी जुड़ जाती हैं. एकाधिकारी प्रतियोगिता बाज़ार में कीमत घटा कर माँग बढ़ाने की बजाय 'भाव से भिन्न' अथवा 'ग़ैर-कीमत प्रतियोगिता' (non-price competition) महत्त्वपूर्ण हो जाती है. एकाधिकारी प्रतियोगी उत्पादक अपने एकाधिकार को बढ़ाने के लिए एवं प्रतियोगिता को सीमित करने के लिए अपने उत्पाद को विशिष्ट, बाज़ार में उपलब्ध उत्पादों से भिन्न साबित करने के भरसक प्रयास करेगा. मुख्य उत्पाद के साथ कुछ अतिरिक्त सेवाएँ उपलब्ध कराई जा सकती हैं. इस के लिए पैकिंग इत्यादि में बदलाव कर के भिन्न दिखने के प्रयासों के साथ-साथ विज्ञापन पर भी विशेष ध्यान दिया जाएगा. बिक्री बढ़ाने के लिए विशेष प्रयास किए जाएँगे, विशेष विभाग बनाया जाएगा (हम देख सकते हैं कि एकाधिकारी एवं पूर्ण प्रतियोगी उत्पादक को बिक्री बढ़ाने के लिए विशेष प्रयास करने की कोई ज़रूरत नहीं होती). उत्पादक 'विक्रय' पर भी ख़र्च करेंगे. विक्रय लागत उत्पादन लागत के अलावा होगी. 'विक्रय लागत' का मकसद माँग को अपने उत्पाद के अनुरूप बनाना होता है. ये तत्त्व ऐसे हैं जो पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकारी बाज़ार में नहीं पाए जाते. जिस हद तक एकाधिकारी प्रतियोगी उत्पादक अपने उत्पाद को विशिष्ट साबित कर पाते हैं, उतनी ही उन की एकाधिकारी शक्ति ज़्यादा होगी एवं उतना ही वे अपने उत्पाद का मूल्य निर्धारण करने में स्वतंत्र हो जाएँगे.

एकाधिकारी शक्ति का मापक: पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में कीमत सीमान्त लागत के बराबर होती है एवं एकाधिकारी बाज़ार में कीमत सीमान्त लागत से अधिक होती है. इस अंतर को आधार बना कर लर्नर (Lerner) ने एकाधिकारी शक्ति का एक मापक (Measure of monopoly power) सुझाया था, जिसे उन के नाम पर L से दर्शाया जाता है. इस के अनुसार एकाधिकारी शक्ति का मापक = L = ((कीमत -सीमान्त लागत)/कीमत) है. इस के अनुसार कीमत एवं सीमान्त लागत में जितना ज़्यादा अंतर ज़्यादा होगा, उतनी एकाधिकारी शक्ति अधिक होगी. पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में कीमत सीमान्त लागत के समान होती है, इस लिए एकाधिकारी शक्ति शून्य होती है और जैसे-जैसे एकाधिकारी शक्ति बढ़ती जाती है, कीमत सीमान्त लागत से बढ़ती जाती है, यानी L का मान बढ़ता जाता है. L का मान शून्य एवं एक के बीच होता है.

[क्योंकि एकाधिकारी बाज़ार में भी इष्टतम उत्पादन स्तर पर सीमान्त लागत सीमान्त राजस्व के बराबर होती है, इस लिए हम एकाधिकारी शक्ति के मापदंड की गणना दूसरे तरीके से भी कर सकते हैं. इस के लिए हम सीमान्त राजस्व $=$ कीमत $\left(1-\frac{1}{|e|}\right)$ सूत्र का प्रयोग करेंगे. एकाधिकारी शक्ति का मापदंड = L = (कीमत- सीमान्त राजस्व)/कीमत =(कीमत -कीमत $\left(1-\frac{1}{|e|}\right)$)/कीमत = कीमत (1-1+1/$|e|$)/कीमत $= 1/|e|$. **अंतः** L =$\frac{1}{|e|}$**. इस का अर्थ है कि जितनी एकाधिकारी की माँग की लोच कम होगी, उतनी उस की एकाधिकारी शक्ति अधिक होगी.** इस लिए अपने उत्पाद को विशिष्ट रूप दे कर एकाधिकारी प्रतियोगिता बाज़ार के उत्पादक अपने उत्पाद की माँग को बेलोचदार बनाने का प्रयास करते हैं.]

उपरोक्त चर्चा में हम ने यह माना है कि सभी उत्पादक एक जैसे हैं जिस के चलते कुल बाज़ार माँग सब उत्पादकों में बराबर बंटी है एवं लागत भी एक समान है. इस लिए इस बाज़ार का संतुलन मूल्य भी एक है. परन्तु अगर हम सभी उत्पादकों की समानता की मान्यता हटा दें, तो एक भाव की बजाय हमें मिलते-जुलते भावों का झुरमुट देखने को मिलेगा, परन्तु अन्य निष्कर्षों पर, उदाहरण के तौर पर शून्य लाभ, कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा.

इस अध्याय के शुरू में हम ने अर्थ जगत के कुछ ऐसे बिन्दुओं को ज़िक्र किया था जो एकाधिकारी एवं पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में नहीं पाए जाते परन्तु वास्तव में अर्थ जगत में पाए जाते हैं. एकाधिकारी प्रतियोगिता बाज़ार उन सब बिन्दुओं को तार्किक साबित करता है. इस लिए यह मॉडल वास्तविक जगत के ज़्यादा समीप है.

एकाधिकारी प्रतियोगिता बाज़ार में भाव प्रतियोगी बाज़ार से अधिक एवं मात्रा कम होती है, इस लिए क्या हम कह सकते हैं कि यह उपभोक्ता के हित में नहीं है? चैम्बरलेन का यह मानना था कि इस तुलना के आधार पर हम यह नहीं कह सकते कि एकाधिकारी प्रतियोगिता बाज़ार उपभोक्ता के हित में नहीं है. चैम्बरलेन के अनुसार एकाधिकारी प्रतियोगिता बाज़ार अधिक दाम की एवज़ में उपभोक्ता को अधिक विविधता उपलब्ध कराता है. इस विचार की आलोचना में यह तथ्य रेखांकित किया गया है कि एकाधिकारी प्रतियोगिता बाज़ार में उत्पादों का वास्तव में भिन्न होना आवश्यक नहीं है, उन का भिन्न प्रतीत होना ही पर्याप्त है. 'विक्रय ख़र्च' विशेष तौर पर विज्ञापन पर होने वाले ख़र्च का बड़ा हिस्सा अपने उत्पाद को 'भिन्न' प्रतीत कराने पर ही ख़र्च होता है, जिस से उपभोक्ता को कोई विशेष लाभ नहीं होता. विज्ञापन पर होने वाला भारी भरकम ख़र्च न केवल लागत बढ़ा देता है अपितु नए उत्पादकों का बाज़ार में प्रवेश मुश्किल बना देता है.

चैम्बरलेन के मॉडल की यह कह कर भी आलोचना की गई है कि इस मॉडल के अनुसार उत्पादक बार-बार स्वतंत्र रूप से निर्णय लेता है, हर बार उस का निर्णय सही साबित नहीं होता, उसे अपेक्षित बिक्री प्राप्त नहीं होती परन्तु फिर भी वह अपना व्यवहार नहीं बदलता; यह सही नहीं है. यह दावा किया गया कि उत्पादक अपने अनुभव से सीखेंगे, उनको परस्पर निर्भरता का अहसास होगा एवं वह स्वतंत्र निर्णय लेने के स्थान पर परस्पर तालमेल से निर्णय लेने लग जाएँगे. यह तर्क ठीक नहीं है. अगर उत्पादक को परस्पर निर्भरता का अहसास हो भी जाता है, तो भी अनेक उत्पादक होने के कारण उन का परस्पर तालमेल कर के निर्णय लेना मुश्किल हो सकता है.

कुछ आलोचकों का यह भी कहना है कि अगर उत्पादों में विभिन्नता है, तो नई फ़र्मों का प्रवेश निर्बाध नहीं हो सकता. निश्चित तौर पर अगर टूथपेस्ट ख़रीदने की इच्छा रखने वाला कहता है कि 'कोलगेट देना', वनस्पति घी माँगने वाला कहता है कि 'डालडा देना', तो नए उत्पादकों को अपने उत्पाद की बिक्री में दिक्कत आयेगी. परन्तु इस के साथ ही, पहले से बाज़ार में कई मिलते-जुलते उत्पाद होने के कारण, उपभोक्ता नए उत्पादों के लिए मानसिक रूप से तैयार होते हैं. बाज़ार में मिलते-जुलते उत्पादों के चलते उपभोक्ता कुछ हद तक उत्पाद का प्रयोग बदलते रहते हैं. यह आदत उन्हें किसी नए उत्पाद का भी प्रयोग करने के लिए तैयार कर सकती है. इस लिए नए उत्पादकों का प्रवेश सुगम बना रह सकता है.

इन दोनों कारणों से एकाधिकारी प्रतियोगिता बाज़ार में प्रतियोगिता कम हो सकती है एवं लाभ शून्य होने के प्रक्रिया पर रोक लग सकती है.

लेकिन एकाधिकारी प्रतियोगिता बाज़ार मॉडल की सब से बड़ी आलोचना यह है कि दुनिया भर की बड़ी कम्पनियाँ जिन बाज़ारों में हैं, वहाँ उत्पादकों की संख्या बहुत कम होती है. बहुत से महत्त्वपूर्ण उद्योगों में उत्पादकों की संख्या बहुत सीमित होती है अथवा बाज़ार के बड़े हिस्से पर चंद उत्पादकों का ही नियंत्रण होता है. दुनिया की अधिकांश बड़ी कम्पनियाँ इस स्थिति में हैं. पूरी दुनिया के खाद-बीज व्यापार के बड़े हिस्से पर मात्र तीन कम्पनियों का कब्ज़ा है. ऐसे बाज़ार का अध्ययन हम अगले अध्याय में करेंगे.

इस अध्याय में हम ने पूर्ण प्रतियोगी एवं एकाधिकारी उत्पादक, दोनों के मिले-जुले गुणों वाले एकाधिकारी प्रतियोगिता बाज़ार का अध्ययन किया है. यह अध्ययन चैम्बरलेन के मॉडल पर आधारित है. यह मॉडल वास्तविक अर्थ जगत के कुछ ऐसे बिन्दुओं को स्थापित कर पाया जिन की तार्किकता पूर्ण प्रतियोगी एवं एकाधिकारी बाज़ार मॉडल नहीं स्थापित कर पाए थे.

प्रश्न

1. वास्तविक अर्थ जगत के कौन से बिंदु ऐसे हैं जो न एकाधिकारी उत्पादक बाज़ार के अनुरूप हैं और न पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार के.
2. एकाधिकारी प्रतियोगिता बाज़ार के चैम्बरलिन मॉडल की व्याख्या करें.
3. 'भाव से भिन्न' अथवा 'ग़ैर-कीमत' प्रतियोगिता से क्या अभिप्राय है एवं इस का उद्देश्य क्या होता है?
4. एकाधिकारी प्रतियोगिता बाज़ार के दीर्घकालीन संतुलन के लिए आवश्यक शर्तों की सूची बनाएँ एवं तर्कपूर्ण व्याख्या करें.
5. एकाधिकारी प्रतियोगिता बाज़ार के पूर्ण प्रतियोगी तथा एकाधिकारी बाज़ार से तुलना करते हुए समानता एवं अंतर स्पष्ट करें.

6. एकाधिकारी प्रतियोगिता बाज़ार उस स्थिति में दीर्घकालीन संतुलन में क्यों नहीं हो सकता जब d माँग-वक्र अथवा अपेक्षित माँग-वक्र औसत लागत-वक्र से ऊपर हो ?

7. D माँग-वक्र अथवा समभाव माँग-वक्र एवं d माँग-वक्र अथवा अपेक्षित माँग-वक्र में क्या अंतर होता है ?

8. एकाधिकारी शक्ति के लर्नर मापदंड की व्याख्या करें.

अध्याय – 12

अल्पाधिकारी बाज़ार (Oligopoly)

आधुनिक अर्थव्यवस्था में कई उद्योगों में या तो चंद ही उत्पादक होते हैं या भले ही अनेक छोटे उत्पादक भी हों परन्तु चंद बड़े उत्पादक ही कुल बाज़ार के बड़े हिस्से की आपूर्ति करते हैं. उदाहरण के लिए, भारत में वर्तमान में जियो, एयर टेल, वोडाफोन-आईडिया और भारत संचार निगम (महानगर निगम समेत) कुल चार ही फ़र्म मोबाईल फ़ोन सेवा बाज़ार में हैं. लगभग ऐसी ही स्थिति कार उत्पादन, हवाई यात्रा परिवहन इत्यादि क्षेत्रों में है.

ऐसे उद्योग अथवा बाज़ार को, जहाँ चंद बड़े विक्रेता बाज़ार के बड़े हिस्से की आपूर्ति करते हों, अल्पाधिकारी बाज़ार (oligopoly) कहते हैं. ऐसे बाज़ार में उत्पादक समरूप वस्तुओं का उत्पादन भी कर सकते हैं एवं मिलती-जुलती वस्तुओं का उत्पादन भी कर सकते हैं. अगर अल्पाधिकारी समरूप वस्तुओं का उत्पादन करते हैं तो इसे शुद्ध अल्पाधिकारी बाज़ार कहते हैं जैसे पेट्रोल, डीज़ल, रसोई गैस उद्योग इत्यादि. वाहन उद्योग में अल्पाधिकारी मिलती-जुलती वस्तुओं का उत्पादन करते हैं. अगर किसी बाज़ार में उत्पादकों की संख्या बड़ी हो परन्तु थोड़े से उत्पादक बाज़ार के बड़े हिस्से की आपूर्ति करते हैं, तो अन्य छोटे उत्पादकों के स्वतंत्र निर्णय की क्षमता सीमित हो जाती है एवं उस उद्योग में उन का प्रभाव सीमित हो जाता है. ऐसे बाज़ार को भी अल्पाधिकारी बाज़ार कहते हैं.

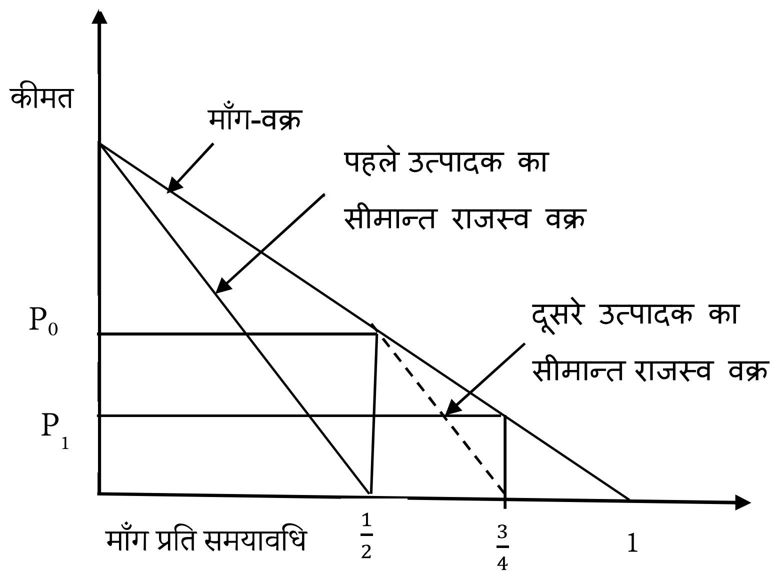
अल्पाधिकारी बाज़ार में उत्पादकों को परस्पर निर्भरता का अहसास होता है; वे जानते हैं कि उन के निर्णय दूसरों को प्रभावित करेंगे एवं इस लिए दूसरे उत्पादक उस पर अपनी प्रतिक्रिया देंगे. इस लिए अल्पाधिकारी बाज़ार में निर्णय दूसरे उत्पादकों की प्रतिक्रिया को ध्यान में रख कर लिए जाते हैं. **अल्पाधिकारी बाज़ार में परस्पर निर्भरता का यह अहसास एवं इस के आधार पर निर्णय लेना, कई स्वरूप ले सकता है. इस लिए अल्पाधिकारी बाज़ार की व्याख्या के कई मॉडल हैं. मोटे तौर पर इन मॉडलों को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है. मिली-भगत अथवा साँठ-गाँठ का (collusive) अल्पाधिकारी बाज़ार और दूसरा बिना मिली-भगत अथवा साँठ-गाँठ का (non-collusive) यानी स्वतंत्र निर्णय का अल्पाधिकारी बाज़ार.** मिली-भगत के अल्पाधिकारी बाज़ार के भी दो स्वरूप हो सकते हैं. एक तरह की मिली-भगत में उत्पादक प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में औपचारिक तालमेल करते हैं परन्तु मिली-भगत बिना औपचारिक तालमेल के भी हो सकती है. पहले हम बिना मिली-भगत के अल्पाधिकारी बाज़ार यानी स्वतंत्र निर्णय के अल्पाधिकारी बाज़ार के कुछ माडलों का अध्ययन करेंगे एवं उस के बाद मिली-भगत के अल्पाधिकारी बाज़ार का.

आगे बढ़ने से पहले यह समझाना आवश्यक है कि **अल्पाधिकारी बाज़ार किन परिस्थितियों में पनपता है**? मोटे तौर पर अल्पाधिकारी बाज़ार भी उन्हीं कारणों से पनपता है जिन कारणों से एकाधिकारी बाज़ार विकसित होता है. अल्पाधिकारी बाज़ार में प्रतियोगिता का पूर्ण क्षरण न हो कर प्रतियोगिता नितांत सीमित हो जाती है. अल्पाधिकारी बाज़ार में उत्पाद समरूप भी हो सकता है जैसे बिजली, पेट्रोल इत्यादि एवं उत्पादन में भिन्नता भी हो सकती है जैसे कार, बैंक उद्योग इत्यादि. किसी उद्योग में अल्पाधिकारी बाज़ार के विकसित होने एवं बने रहने का एक कारण यह भी होता है कि उस उद्योग में नए उत्पादकों के प्रवेश की राह में रोड़े (barriers to entry) होते हैं अथवा खड़े किए जाते हैं. उत्पादकों का व्यवहार ऐसा होता है कि नए उत्पादकों के प्रवेश को कठिन बना दिया जाए

बिना साँठ-गाँठ का अथवा स्वतंत्र निर्णय प्रक्रिया का अल्पाधिकारी बाज़ार: सुविधा के लिए हम यह मान लेते हैं कि किसी वस्तु के दो ही उत्पादक हैं. ऐसे बाज़ार को द्वि-विक्रेता अधिकारी (duopoly) कहा जाता है. इसे हम अल्पाधिकारी बाज़ार का एक चरम मॉडल मान सकते हैं. कूर्नो (Cournot) द्वारा सुझाए गए मॉडल में प्राकृतिक रूप से उपलब्ध झरने के पानी के विक्रय का उदाहरण लिया गया है. इस में वस्तु की उत्पादन लागत शून्य मानी गई है. ऐसी स्थिति में बाज़ार भाव एवं उत्पादन कितना होगा?

मान लें कि शुरू में एक ही ऐसा झरना है जिस के पानी में कोई विशेष गुण है. इस स्थिति में इस झरने का मालिक एकाधिकारी सरीखा व्यवहार ही करेगा. हम पढ़ चुके हैं कि एकाधिकारी का अधिकतम लाभ उस उत्पादन स्तर पर होता है जहाँ सीमान्त राजस्व सीमान्त लागत के समान हो. क्योंकि वर्तमान स्थिति में सीमान्त लागत शून्य है, इस लिए झरने के पानी का बाज़ार भाव वहाँ पर होगा जहाँ पर सीमान्त राजस्व शून्य होगा. चित्र 58 में इस स्थिति को दर्शाया गया है.

चित्र 58 द्वि-विक्रेता अधिकारी (duopoly) का कूर्नो (Cournot) माडल



एकाधिकारी झरने के मालिक का भाव P_0 होगा. अगर शून्य बाज़ार भाव पर अधिकतम माँग को हम 1 मान लें, तो एकाधिकारी द्वारा पानी का कुल माँग का ½ होगा. (ऐसा क्यों होगा? अगर यह स्पष्ट नहीं है तो सीमान्त राजस्व-वक्र की ढलान के बारे में सोचें/पढ़ें) अब मान लें कि एक दूसरे झरने का पता चलता है जिस के पानी में वही गुण हैं जो पहले झरने के पानी में है. दूसरे झरने के मालिक को क्या भाव रखना चाहिए? दूसरे झरने के मालिक को यह पता है कि एक झरना पहले से है जिस का पानी उस के झरने सरीखा ही है. अब उस को अपना भाव तय करने से पहले यह विचार करना होगा कि उस के निर्णय पर पहले झरने के मालिक की प्रतिक्रिया क्या होगी. पहले झरने के मालिक की प्रतिक्रिया दो तरह की हो सकती है. वह अपना भाव स्थिर रख सकता है अथवा वह अपना उत्पादन स्थिर रख सकता है. कुर्नो ने यह माना कि पहले झरने का मालिक अपने उत्पादन को स्थिर रखेगा. अगर दूसरे झरने का मालिक यह मानता है कि पहले झरने का मालिक अपने उत्पादन को स्थिर रखेगा, तो उसे कितना उत्पादन करना चाहिए? दूसरे झरने के मालिक के लिए प्रभावी माँग-वक्र ½ से 1 के बीच का ही होगा. इस के अनुसार उस का सीमान्त राजस्व बिंदीदार रेखा से दिखाया गया है. यह सीमान्त राजस्व-वक्र ½ माँग स्तर को शून्य मानकर चित्रित किया गया है. एकाधिकारी बाज़ार के अध्ययन से स्पष्ट है कि दूसरे झरने का मालिक शेष माँग के आधे के बराबर यानी कुल माँग के ¼ हिस्से के बराबर उत्पादन करेगा एवं इस का अपेक्षित भाव P_1 होगा. परन्तु दोनों झरनों का पानी तो एक सा है. इस लिए दो भाव तो बाज़ार में चल नहीं सकते. इस लिए अगर पहले झरने के मालिक को अपना उत्पादन स्थिर रखना है, तो भाव घटा कर P_1 करना होगा.

इस स्थिति में दूसरे उत्पादक को अपना अपेक्षित भाव मिल रहा है एवं अपेक्षित बिक्री हो रही है, परन्तु पहले उत्पादक के लिए वर्तमान स्थिति अपेक्षित नहीं है. उस का पहला निर्णय उस स्थिति में लिया गया था जब वह एकाधिकारी उत्पादक था परन्तु अब स्थिति बदल चुकी है. अब उस को क्या करना चाहिए? मान लें कि पहला उत्पादक भी दूसरे उत्पादक की तरह यह सोच कर निर्णय लेता है कि दूसरा उत्पादक अपना उत्पादन स्थिर रखेगा, तो पहले उत्पादक को कितना उत्पादन करना चाहिए? दूसरा उत्पादक एक चौथाई बाज़ार की पूर्ति कर रहा है तो पहले उत्पादक को शेष तीन चौथाई बाज़ार के आधे का उत्पादन करना चाहिए (अगर यह बात स्पष्ट नहीं है कि शेष बाज़ार के आधे का उत्पादन करना क्यों उचित होगा, तो शून्य सीमान्त लागत मान कर, ऐसे एकाधिकारी की आपूर्ति प्रक्रिया को दोहरा लें जिस का सामना सीधी रेखा के माँग-वक्र से हो). ऐसा करने पर कुल उत्पादन ¼ +3/8 यानी कुल 5/8 भाग उत्पादन होगा एवं उस के अनुरूप बाज़ार भाव होगा जो P_1 से भिन्न होगा.

अब पहले उत्पादक को अपेक्षित भाव मिल रहा है परन्तु दूसरे उत्पादक को नहीं. इस लिए दूसरे उत्पादक को अपने इष्टतम स्तर की पुन: गणना करनी पड़ेगी क्योंकि पहले उत्पादक ने अपना उत्पादन बदल दिया है. इस लिए अब दूसरा उत्पादक यह मान कर की पहला उत्पादक अपना नया उत्पादन स्तर स्थिर रखेगा शेष 5/8 के आधे के बराबर उत्पादन करेगा. अब कुल उत्पादन बढ़ कर 3/8 +5/16 यानी 11/16 हो जाएगा. यह प्रक्रिया तब तक चलती रहेगी जब तक दोनों उत्पादक 1/3 हिस्से के बराबर उत्पादन नहीं करने लग जाते. इस स्थिति में वे पायेंगे कि उन का इष्टतम उत्पादन स्तर एवं वर्तमान उत्पादन स्तर एक ही है. आप देख सकते हैं कि (1-1/3)का आधा 1/3 ही होता है. इस स्थिति में कुल उत्पादन 2/3 हो जाएगा एवं बाज़ार भाव उस के अनुरूप होगा. यह बाज़ार के लिए

संतुलन की स्थिति होगी क्योंकि **इस स्थिति में हर उत्पादक का दूसरे उत्पादक के उत्पादन स्तर को ध्यान में रखते हुए इष्टतम उत्पादन स्तर एवं वर्तमान उत्पादन स्तर, अपेक्षित एवं प्रभावी स्तर समान ही है.**

इस संतुलन की स्थिति में उद्योग का सीमान्त राजस्व ऋणात्मक होगा क्योंकि सीमान्त राजस्व तो ½ उत्पादन स्तर पर ही शून्य हो जाता है एवं इस से अधिक उत्पादन होने पर तो सीमान्त राजस्व घटता जाएगा. इस लिए अगर ये दोनों उत्पादक परस्पर ताल मेल से निर्णय लें और अपना उत्पादन घटा कर ¼ -¼ कर लें तो उन के लाभ बढ़ जाएँगे.

इस के साथ ही, यह भी स्पष्ट है कि अगर उन में से कोई एक धोखा दे कर भाव कम कर ले, और पकड़ा न जाए, तो वह अपनी बिक्री बढ़ा कर अपना लाभ और भी बढ़ा सकता है. अगर एक उत्पादक धोखा दे कर उत्पादन बढ़ा लेता है, तो निश्चित तौर पर भाव भी कम हो जाएगा क्योंकि अधिक सामग्री तो कम दाम पर ही बेची जा सकती है. धोखा देने वाले उत्पादक को भाव कम मिलेगा परन्तु उस की बिक्री ज़्यादा होगी जिस से उस का कुल राजस्व बढ़ सकता है, ऐसी संभावना हो सकती है. इस के विपरीत जिस उत्पादक ने धोखा नहीं दिया उस को मिलने वाला भाव कम हो जाएगा परन्तु उस की बिक्री तो उतनी ही रहेगी. इस लिए धोखा न देने वाला उत्पादक तो निश्चित तौर पर घाटे में रहेगा.

अल्पाधिकारी बाज़ार के बारे में यह एक महत्त्वपूर्ण दो धारी निष्कर्ष है- अगर अल्पाधिकारी परस्पर तालमेल से निर्णय लें तो स्वतंत्र निर्णय लेने के मुकाबले वे अपना लाभ बढ़ा सकते हैं. परन्तु अपने साथी उत्पादक को धोखा दे कर अपना मुनाफा और भी बढ़ाया जा सकता है. **इस लिए अल्पाधिकारी बाज़ार में परस्पर तालमेल करने और फिर धोखा देने, दोनों की संभावना होती है.**

एक और स्थिति पर विचार करें. **अगर दोनों उत्पादक यह सोच कर निर्णय लें कि दूसरा उत्पादक अपना उत्पादन स्थिर न रख कर अपना भाव स्थिर रखेगा, तब क्या होगा? बरट्रेंड (Bertrand) ने इस स्थिति की व्याख्या की है.** जब दूसरे झरने का मालिक बाज़ार में आता है, तो उस समय पहला उत्पादक P_0 दाम पर बिक्री कर रहा होता है. अब दूसरा उत्पादक यह मान कर कि पहला उत्पादक अपना भाव स्थिर रखेगा, अपना दाम P_0 से कुछ कम रखेगा. ऐसा होने पर पहले झरने का मालिक पायेगा कि उस की बिक्री शून्य हो गई है क्योंकि समान वस्तु के लिए कोई उपभोक्ता अधिक दाम नहीं देगा. हो सकता है तुरंत बिक्री शून्य न हो परन्तु जैसे-जैसे लोगों को कम भाव पर वह वस्तु मिलने की जानकारी मिलेगी, उस की बिक्री कम होती चली जाएगी. प्रतिक्रिया स्वरूप पहला उत्पादक अपना भाव दूसरे उत्पादक के भाव से थोड़ा कम कर के पूरे बाज़ार पर कब्ज़ा करने का प्रयास करेगा. इस से दूसरे उत्पादक की बिक्री घटने लग जाएगी. इस लिए अब दूसरा उत्पादक दाम पहले उत्पादक से थोड़ा कम कर देगा.

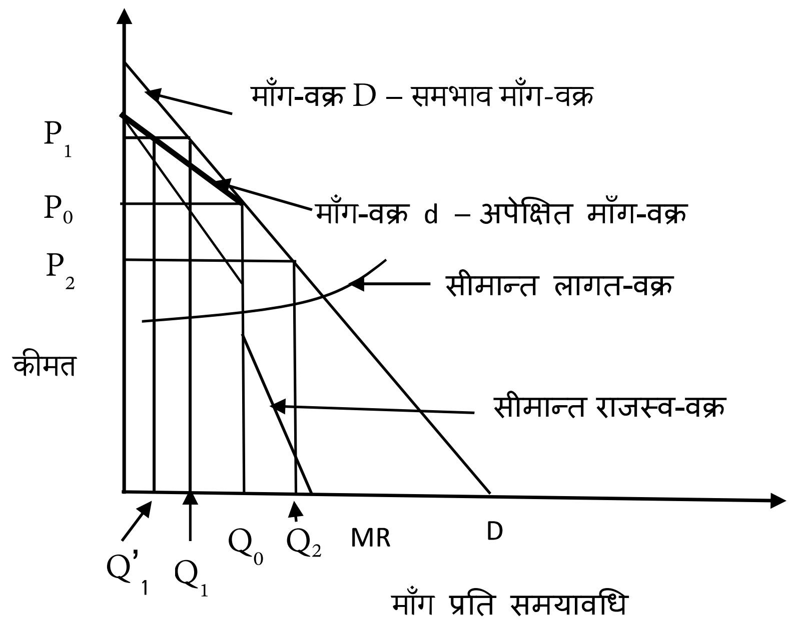
यह प्रक्रिया कब तक चलेगी? जब तक भाव लागत स्तर तक नहीं गिर जाते जो कि वर्तमान स्थिति में शून्य है. अगर यह बाज़ार पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार होता तो क्या दाम होता और कितना उत्पादन होता? क्योंकि सीमान्त लागत शून्य है, इस लिए पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में भी भाव शून्य होता एवं अधिकतम सम्भव बिक्री होती. हैरानी की बात यह है कि यही स्थिति तब भी बन रही है जब अनेक उत्पादक न हो कर मात्र दो उत्पादक हैं परन्तु दोनों स्वतंत्र रूप में निर्णय ले रहे हैं. **इस से यह निष्कर्ष निकलता है कि पूर्ण प्रतियोगिता के लिए उत्पादकों की संख्या महत्त्वपूर्ण न होकर उन का स्वतंत्र रूप से निर्णय लेना महत्त्वपूर्ण है.**

चाहे कुर्नो की व्याख्या लें चाहे बरट्रेंड की, दोनों स्थिति में हम पाते हैं कि अगर अल्पाधिकारी स्वतंत्र रूप से निर्णय लेते हैं, तो उन का लाभ घट जाता है. तालमेल से निर्णय ले कर अल्पाधिकारी अपने लाभ बढ़ा सकते हैं. परन्तु अल्पाधिकारी उत्पादक के लाभ बढ़ने का अर्थ है उपभोक्ताओं का नुकसान. इस लिए पूरी दुनिया में उत्पादकों की परस्पर मिली-भगत को ग़ैर-कानूनी करार दिया गया है. इस के बावजूद अल्पाधिकारी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से मिली-भगत करने के प्रयास करते हैं. उस स्थिति का अध्ययन करने से पहले हम स्वतंत्र व्यवहार के एक अन्य मॉडल स्वीजी (Sweezy) का अध्ययन करेंगे.

स्वीजी (Sweezy) मॉडल: चित्र 59 में एक अल्पाधिकारी उत्पादक के उत्पाद का माँग-वक्र दिखाया गया है. यदि सभी उत्पादक समान भाव रखें, उस स्थिति में D इस उत्पादक के उत्पाद का माँग-वक्र है. इसे बाज़ार में हिस्सा माँग-वक्र अथवा सम-भाव माँग-वक्र भी कह सकते हैं. वर्तमान बाज़ार भाव P_0 है. क्योंकि यह उत्पादक एक विशिष्ट उत्पाद का उत्पादन करता है, इस लिए इसे लगता है कि कुछ हद तक वह अपने उत्पाद के दाम को परिवर्तित कर सकता है. परन्तु इसे अपने प्रतियोगी की संभावित प्रतिक्रिया का भी ध्यान रखना होगा.

मान लें कि उत्पादक को लगता है कि अगर वह अपने दाम घटाता है, तो अन्य उत्पादक भी दाम घटा देंगे परन्तु अगर वह दाम बढ़ाता है, तो अन्य उत्पादक अपने दाम नहीं बढ़ाएँगे, तब इस का माँग-वक्र कैसे होगा?

चित्र 59 स्वीजी (Sweezy) माडल



मान लें कि वर्तमान बाज़ार भाव P_0 है. अगर वह अपनी भाव बढ़ा कर P_1 कर देता है तो उस की माँग का स्तर क्या हो जाएगा? क्या यह Q_1 हो जाएगा. नहीं यह Q_1 नहीं होगा. क्यों? P_1 दाम पर माँग Q_1 उसी स्थिति में होगी अगर सभी उत्पादक अपने दाम बढ़ा देते हैं. D माँग-वक्र इसी मान्यता पर आधारित है. परन्तु फ़िलहाल हम उस स्थिति का विश्लेषण कर रहे हैं, जब केवल यह उत्पादक दाम बढ़ाता है. तब क्या होगा? क्योंकि केवल इस उत्पादक के दाम बढ़ें हैं, इस लिए इस की माँग दो कारणों से घट जाएगी. माँग इस लिए घटेगी क्योंकि दाम बढ़ें हैं परन्तु इस उत्पादक की माँग इस से भी अधिक घटेगी क्योंकि इस के कुछ उपभोक्ता इस के उत्पाद का प्रयोग करने के स्थान पर अन्य उत्पादकों के उत्पादों का प्रयोग करना शुरू कर देंगे. इस लिए P_1 दाम पर इस की माँग घट कर Q'_1 रह जाएगी. परन्तु अगर यह उत्पादक अपने दाम घटाता है तो क्या होगा? क्या P_2 माँग पर माँग Q_2 से अधिक हो जाएगी? नहीं; यह Q_2 ही रहेगी. ऐसा इस लिए होगा क्योंकि इस उत्पादक की मान्यता यह है कि अगर वह अपने दाम घटाता है, तो अन्य उत्पादक भी अपने दाम घटा देंगे. इस परिस्थिति में D माँग-वक्र ही प्रभावी होगा. यानी बाज़ार भाव से दाम घटाने पर D प्रभावी होगा परन्तु दाम बढ़ाने पर मोटी रेखा से इंगित d माँग-वक्र ही प्रभावी वक्र होगा. याद रहे कि D माँग-वक्र तब प्रभावी होगा, जब यह उत्पादक बाज़ार भाव पर माल बेचेगा अथवा अपना दाम घटाएगा एवं d माँग-वक्र तब प्रभावी होगा, जब केवल यह उत्पादक दाम बढ़ाएगा. इस लिए प्रस्तुत स्थिति में उत्पादक के सामने उपस्थित माँग वक्र में बाज़ार भाव P_0 पर तीखा मोड़ होगा. इस लिए ऐसे अल्पाधिकारी के मांग वक्र को सकोण/मुड़ा हुआ माँग-वक्र (Kinky demand curve) कहते हैं.

इस परिस्थिति में, इस उत्पादक को क्या दाम रखना चाहिए? इस के लिए हमें इस के सीमान्त राजस्व-वक्र एवं लागत-वक्र को चित्रित करना होगा. सीधी रेखा के औसत राजस्व-वक्र/माँग-वक्र के अनुरूप सीमान्त राजस्व-वक्र खींचने की प्रक्रिया वही रहेगी जिसे एकाधिकारी उत्पादक के लिए हम ने अपनाया था- सीधी रेखा के औसत माँग-वक्र होने पर सीमान्त राजस्व-वक्र की ढलान दुगनी हो जाती है. इस लिए सीमान्त राजस्व-वक्र माँग-वक्र की तुलना में क्ष अक्ष को आधी दूरी पर छूता है.

Q_0 उत्पादन स्तर तक प्रभावी माँग-वक्र d अर्थात मोटी रेखा वाला माँग-वक्र होगा. इस लिए इस उत्पादन स्तर तक सीमान्त राजस्व-वक्र भी इस के अनुरूप होगा. चित्र 59 में इसे सीधी पतली रेखा से इंगित किया गया है. परन्तु Q_0 से अधिक उत्पादन करने पर प्रभावी औसत राजस्व/माँग-वक्र D होगा. इस लिए इस के अनुरूप सीमान्त राजस्व-वक्र खींचना होगा. ऐसा करने पर हम पाते हैं कि Q_0 उत्पादन बिंदु पर सीमान्त राजस्व में टूटन आ जाती है. ऐसा इस लिए होता है क्योंकि Q_0 पर माँग-वक्र की ढलान एवं लोच में एकदम से बदलाव आ जाता है. माँग यकायक कम लचीली हो जाती है. हम पढ़ चुके हैं कि सीमान्त राजस्व= कीमत $(1-1/|e|)$. इस लिए अगर माँग की लोच में एकाएक बदलाव आता है, जो माँग-वक्र में तीखे मोड़ के स्तर पर आता है, तो इस समीकरण से स्पष्ट है कि सीमान्त राजस्व में भी एकाएक गिरावट आयेगी. **आगे की चर्चा के लिए यह समझना ज़रूरी है कि सीमान्त राजस्व-वक्र में टूटन क्यों आती है एवं कहाँ आती है.** यह स्पष्ट नहीं है तो पिछली पंक्तियों को दोबारा पढ़ें.

चित्र 59 में सीमान्त लागत-वक्र सीमान्त राजस्व-वक्र के टूटे हुए हिस्से से गुज़र रहा है. इस का प्रभाव यह है कि इस उत्पादक के माँग-वक्र में जहाँ तीखा मोड़ है, उस से कम उत्पादन पर, सीमान्त राजस्व सीमान्त लागत से अधिक है एवं उस से अधिक उत्पादन पर, सीमान्त राजस्व सीमान्त लागत से कम है. इस लिए यही उत्पादन स्तर इस उत्पादक के लिए इष्टतम उत्पादन स्तर है (बशर्ते कि तीसरी शर्त पूरी होती हो यानी कि इस उत्पादन स्तर पर औसत लागत औसत राजस्व यानी बाज़ार भाव से कम हो). इस स्थिति में बाज़ार भाव एवं उत्पादक का इष्टतम भाव एक समान हैं.

इस स्थिति में अगर लागत में बदलाव आता है परन्तु अगर बदला हुआ लागत-वक्र भी सीमान्त राजस्व के टूटे हुए हिस्से से गुज़रता है, तो भी कीमत में कोई बदलाव नहीं होगा. इस लिए ऐसे बाज़ार में कुछ हद तक लागत में बदलाव होने पर भी बाज़ार भाव स्थिर रहेगा. इसी तरह, अगर माँग बढ़ जाती है, तो सीमान्त राजस्व-वक्र भी बदल जाएगा परन्तु यह संभव है कि फिर भी सीमान्त लागत-वक्र सीमान्त राजस्व-वक्र के टूटे हिस्से से गुज़रे. ऐसा होने पर यद्यपि उत्पादन बढ़ जाएगा परन्तु कीमत में बदलाव नहीं होगा. ऐसा वास्तव में पाया भी जाता है. इसे कीमत जड़ता/स्थिरता (price rigidity) कहते हैं.[57]

अब तक की चर्चा में हम ने 'तय भाव' अथवा 'बाज़ार भाव' वाक्यांश का प्रयोग किया है जो यह आभास देता है कि अल्पाधिकारी बाज़ार में एक ही भाव होता है. ऐसा तभी हो सकता है जब उत्पाद समरूप हों जैसे पेट्रोल अथवा बिजली. परन्तु **अगर अल्पाधिकारी बाज़ार में वस्तु विभेद है, सभी उत्पाद समरूप न हो कर वैविध्य पूर्ण हैं, तो एक बाज़ार भाव होने की बजाय भाव समूह, भावों का झुरमुट जैसा होगा जैसे कि कार अथवा मोटर साइकिल बाज़ार में होता है. विभिन्न उत्पादकों का भाव बिलकुल एक समान होने की बजाय मिलता-जुलता होता है.**

यद्यपि नया लागत-वक्र भी सीमान्त राजस्व की टूटन वाले हिस्से से गुज़रे, तब भी एक स्थिति में लागत बढ़ने पर कीमत बढ़ सकती है. अगर लागत में बदलाव सार्वभौमिक है, यानी सभी उत्पादकों की लागत बढ़ जाती है, तो सभी उत्पादक अपने भाव बढ़ा देंगे क्योंकि अब उन्हें लगेगा कि सभी उत्पादक अपने दाम बढ़ायेंगे. इस परिस्थिति में उत्पादक को लगेगा कि प्रभावी माँग-वक्र सीधी रेखा वाला D होगा एवं सीमान्त राजस्व-वक्र में कोई टूटन नहीं होगी. इस स्थिति में भाव बढ़ जाएँगे, उत्पादन कम हो जाएगा एवं माँग-वक्र में तीखा मोड़ बाईं ओर खिसक जाएगा.

स्वीज़ी का मॉडल आधुनिक बाज़ार के कई हिस्सों में पाई जाने वाली कीमतों में जड़ता/स्थिरता/अलचीलेपन की तो बखूबी व्याख्या करता है परन्तु बाज़ार भाव निर्धारण कैसे होता है, इस की कोई व्याख्या नहीं करता. यह इस मॉडल की मुख्य कमी है.

अल्पाधिकारी के स्वतंत्र व्यवहार के माडलों के बाद, अब हम मिली-भगत के अल्पाधिकारी बाज़ार का अध्ययन करेंगे.

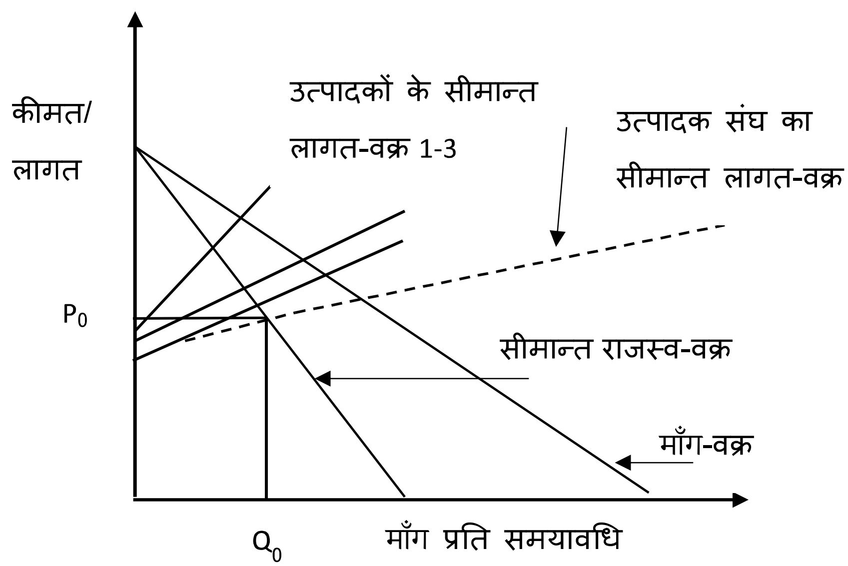
मिली-भगत का अल्पाधिकारी बाज़ार: मिली-भगत दो तरह से हो सकती है. यह प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से औपचारिक हो सकती है अथवा यह अनौपचारिक हो सकती है. औपचारिक मिली-भगत पर आधारित व्यवस्था को 'मिली-भगत का उत्पादक संघ' अथवा संक्षेप में उत्पादक संघ (cartel) कहते हैं. क्योंकि उत्पादकों की मिली-भगत से उपभोक्ताओं के हित प्रभावित होते हैं, इस लिए आम तौर पर इसे अवैध माना जाता है. इस लिए अगर अल्पाधिकारी बाज़ार प्रभावी रूप में उत्पादक संघ का स्वरूप लेता भी है तो भी यह आम तौर पर कानूनी रूप नहीं लेता. जब मिली-भगत की व्यवस्था अपेक्षाकृत अधिक अनौपचारिक रूप लेती है तो ऐसी व्यवस्था को कीमत नेतृत्व (price leadership) कहते हैं.

उत्पादक संघ मॉडल में प्रभावी रूप में बाज़ार एकाधिकारी हो जाता है. उत्पादन सम्बन्धी मुख्य निर्णय - भाव एवं मात्रा सम्बन्धी निर्णय- मिल कर लिए जाते हैं. उत्पादक संघ को हम एक तरह से ऐसा एकाधिकारी उत्पादक मान सकते हैं जिस की कई उत्पादन इकाइयाँ हों. ऐसे उत्पादक संघ का लक्ष्य क्या होगा? सर्व प्रथम हम यह मान कर उत्पादक संघ का अध्ययन करेंगे कि इस का उद्देश्य सभी

[57] कई बार ऊपरी तौर पर कीमत में बदलाव न कर के पैकेट के वज़न अथवा गुणवत्ता में बदलाव कर के प्रभावी तौर पर कीमत बढ़ा दी जाती है. यह कीमत स्थिरता नहीं है. कीमत स्थिरता उस स्थिति को कहते हैं जब प्रभावी तौर पर भी कीमत में कोई बदलाव नहीं होता.

अल्पाधिकारियों के कुल संकलित लाभ को अधिकतम करना है (Joint profit maximizing model). चित्र 60 में यह दिखाया गया है.

चित्र 60- उत्पादक संघ द्वारा आपूर्ति



उत्पादक संघ को कितना उत्पादन करना चाहिए एवं किस भाव पर बिक्री करनी चाहिए, यह जानने के लिए हमें उत्पादक संघ के लागत-वक्र, विशेष तौर पर सीमान्त लागत-वक्र की जानकारी होनी चाहिए. चित्र 60 में हमने सुविधा के लिए तीन उत्पादक लिए हैं. चित्र में तीनों के सीमान्त लागत-वक्र दर्शाए गए हैं. परन्तु उत्पादक संघ का सीमान्त लागत-वक्र क्या होगा? उत्पादक संघ के सीमान्त लागत-वक्र को हम तीनों उत्पादकों के सीमान्त लागत-वक्र के क्षैतिज (आड़ा) (horizontal) योग से प्राप्त कर सकते हैं. किसी एक चिह्नित सीमान्त लागत पर तीनों उत्पादकों के कुल उत्पादन के योग से हमें उत्पादक संघ के सीमान्त लागत-वक्र का एक बिंदु प्राप्त होगा. इस प्रकार किसी अन्य चिह्नित सीमान्त लागत पर तीनों उत्पादकों के कुल उत्पादन के योग से हमें उत्पादक संघ के सीमान्त लागत-वक्र का एक और बिंदु प्राप्त होगा. इस प्रक्रिया को दोहरा कर हम उत्पादक संघ का सीमान्त लागत-वक्र प्राप्त कर सकते हैं.

फ़िलहाल हम यह मान कर चल रहे हैं कि प्रभावी रूप से उत्पादक संघ एकाधिकारी सरीखा व्यवहार करेगा. इस लिए इस का इष्टतम उत्पादन स्तर वह होगा जहाँ उत्पादक संघ का सीमान्त लागत-वक्र सीमान्त राजस्व-वक्र को नीचे से काटता है. कीमत माँग-वक्र से तय होगी बशर्ते कि कीमत औसत लागत से अधिक हो. उत्पादक संघ की सीमान्त लागत का इष्टतम बिंदु तय होने के बाद विभिन्न उत्पादकों के बीच कुल उत्पादन का बंटवारा उन के सीमान्त लागत-वक्र के अनुरूप हो जाएगा.

उपरोक्त चर्चा से स्पष्ट है कि उत्पादन एवं बिक्री सम्बन्धी उत्पादक संघ की निर्णय प्रक्रिया और एक ऐसे एकाधिकारी की निर्णय प्रक्रिया जिस की एक से अधिक फैक्टरियां हो, सिद्धांत रूप में एक जैसी ही हैं एवं उन का इष्टतम उत्पादन स्तर एक जैसा होगा.

व्यवहारिक रूप में **अल्पाधिकारी उत्पादकों के एकाधिकारी सरीखे उत्पादक संघ एवं वास्तविक एकाधिकारी में कई महत्त्वपूर्ण अंतर होते हैं.** सब से बड़ा मुद्दा यह है कि लाभ का बंटवारा कैसे हो? एक से अधिक फैक्टरी वाले एकाधिकारी उत्पादक को सारे लाभ मिलते हैं भले ही लाभ किसी भी फैक्टरी में हों. परन्तु अल्पाधिकारियों का उत्पादक संघ लाभ का बंटवारा सदस्यों में कैसे करे? यदि यह तय किया जाए कि हर उत्पादक को समान लाभ मिले, तो इस पर यह आपत्ति हो सकती है कि उत्पादक संघ के लिए थोड़ा लाभ अर्जित करने वाले को भी बराबर का हिस्सा मिल रहा है. इस के विपरीत अगर यह तय किया जाए कि हर अल्पाधिकारी उस के उत्पादन से होने वाले मुनाफे को रखे, तो यह लाभ का बंटवारा असमान हो सकता है क्योंकि सभी उत्पादकों के लागत-वक्र एवं उत्पादन स्तर भिन्न होंगे. विचार करने पर हम पायेंगे कि लाभ वितरण का कोई भी सर्वमान्य तथ्यपरक अथवा तार्किक उपाय नहीं हो सकता. **लाभ वितरण का कोई भी उपाय परस्पर मोल-भाव से ही तय हो सकता है.**

लाभ वितरण का कोई सर्वमान्य, तथ्यपरक अथवा तार्किक उपाय न होने के अलावा, एक अन्य समस्या भी उत्पादक संघ के सामने खड़ी होती है. जब भी बाज़ार भाव सीमान्त लागत से अधिक होता है, तब हर उत्पादक द्वारा धोखा देने की संभावना रहती है. हर उत्पादक के निजी हित में होगा कि वह उत्पादन को उस स्तर तक बढ़ा दे जहाँ बाज़ार भाव सीमान्त लागत के समान हो जाए. ऐसा करने

पर कुल उत्पादन बढ़ जाने से अतिरिक्त उत्पादन की बिक्री करने के लिए प्रभावी रूप से भाव भी घटाना पड़ेगा. इस लिए न केवल लाभ/उत्पादन वितरण का स्वीकार्य नियम विकसित करना होगा, अपितु सदस्यों पर नियमित निगाह रखने की व्यवस्था भी करनी होगी. हालाँकि, अगर उत्पादक संघ के कुल लाभ, अल्पाधिकारियों द्वारा प्रतियोगिता की दशा में मिलने वाले लाभ से कहीं ज़्यादा हों, तो यह संभावना बढ़ जाती है कि मोल -भाव कर के लाभ वितरण का कोई ऐसा तरीका निकल आये जिस में सब उत्पादकों के लाभ बढ़ जाएँ एवं अनुशासन बना रहे.

अल्पाधिकारियों के उत्पादक संघ को एक अन्य समस्या का भी सामना करना पड़ता है. बहु-फैक्ट्रियों के एकाधिकारी उत्पादक के पास लागत-वक्र सम्बन्धी सभी आंकड़े होते हैं. इस के विपरीत अल्पाधिकारियों के उत्पादक संघ को लागत सम्बन्धी आंकड़े अपने सदस्यों से प्राप्त करने होते हैं. इस संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि सदस्य अपने निज हित में सही आंकड़े न दे. उदाहरण के तौर पर, अगर किसी अल्पाधिकारी का सीमान्त लागत-वक्र अन्य उत्पादकों से कहीं ऊँचा है और वह उत्पादक संघ को सही जानकारी देता है, तो यह संभव है कि उत्पादक संघ उस की फैक्टरी में उत्पादन बंद करने का निर्णय ही ले ले. इस लिए यद्यपि सैद्धांतिक रूप से अल्पाधिकारी उत्पादक संघ एवं एकाधिकारी का इष्टतम उत्पादन स्तर एक सा होना चाहिए, व्यवहारिक रूप से उत्पादक संघ का उत्पादन उस से अधिक होता है. उत्पादक संघ के लिए लाभ अधिकतम करने के साथ-साथ अन्य उत्पादकों के उद्योग में शामिल होने के संभावना को रोकना भी आवश्यक होता है अन्यथा उत्पादक संघ का अस्तित्व ही खतरे में पड़ सकता है. इस लिए भी उत्पादक संघ सचेत रूप से लाभ अधिकतम नहीं भी कर सकता.

क्योंकि उत्पादक संघ के निर्णय परस्पर बातचीत/समझौतों से तय होते हैं, इस लिए उद्योग की बदली हुई परिस्थितियों में उत्पादक संघ की प्रतिक्रिया में एकाधिकारी उत्पादक की तुलना में विलम्ब होता है. इस लिए उत्पादक संघ के दामों में अपेक्षाकृत स्थिरता पाई जाती है. ध्यान दें कि स्वीज़ी ने अल्पाधिकारी बाज़ार में कीमतों की स्थिरता की व्याख्या एक तरीके से व्याख्या की थी और यहाँ उसी स्थिति की एक अन्य वैकल्पिक व्याख्या प्रस्तुत की गई है .

जैसा हम ने पहले ज़िक्र किया था, आम तौर पर उत्पादक संघ अवैध होते हैं. इस लिए इन्हें छुप कर काम करना पड़ता है. विवाद की स्थिति में कानूनी प्रक्रियाओं का उपयोग नहीं किया जा सकता. इस लिए इन को अस्थिरता का सामना करना पड़ता है. परन्तु एक अन्य कारण से भी उत्पादक संघ व्यावहारिक नहीं हो पाते. उत्पादक संघ में शामिल सभी अल्पाधिकारियों को वास्तव में अपनी स्वतंत्रता छोड़ कर एक मैनेजर सरीखे रूप में काम करना पड़ता है. एक उद्यमी को कर्मचारी के रूप में काम करना कई बार अस्वीकार्य हो सकता है. इस लिए भी कई बार उत्पादक संघ व्यावहारिक रूप से सफ़ल नहीं हो पाते.

बाज़ार का बंटवारा: इस लिए कई बार अल्पाधिकारी बाज़ार में मिली-भगत, संयुक्त लाभ अधिकतम करने वाले उत्पादक संघ की बजाय 'बाज़ार के बंटवारे' का स्वरूप ले लेती है. बाज़ार के बंटवारे से अल्पाधिकारियों की परस्पर प्रतियोगिता पर कुछ हद तक रोक भी लगती है एवं इस के साथ ही अल्पाधिकारियों की स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता काफ़ी हद तक बनी रहती है. परन्तु बाज़ार का बंटवारा भी अवैध होता है. बाज़ार का बंटवारा कई रूप ले सकता है. यह निश्चित कीमत स्वीकार करते हुए अन्य तरीकों से उत्पादकों की प्रतियोगिता का रूप ले सकता है. बाज़ार का बंटवारा भौगोलिक बंटवारे का रूप भी ले सकता है (इन जिलों/राज्यों में ठेके तुम लो, और शेष में हम लेंगे) या अन्यथा भी (उदाहरण के तौर पर छोटे हवाई जहाज तुम बेचो, बड़े हम बेचेंगे). विभिन्न उत्पादकों का उद्योग की कुल माँग में प्रतिशत हिस्सा (quota) भी निश्चित किया जा सकता है.

परन्तु इन सब तरीकों से बाज़ार का बंटवारा भी आपसी समझौते, भले ही यह परोक्ष रूप ले, से ही संभव है. कीमत क्या हो? जिन उत्पादकों की लागत कम है वे कम कीमत रखना चाहेंगे और जिन की ज़्यादा है, वे उच्च कीमत रखना चाहेंगे. उत्पादन हिस्सा किस आधार पर तय हो? उत्पादन क्षमता के आधार पर अथवा पूर्व में बिक्री के आधार पर? दोनों स्थितियों में बढ़ा चढ़ा कर अधिक उत्पादन कोटा लेने के प्रयास रहेंगे. ख़ैर किसी भी तरह से समझौता होने पर भी धोखा दे कर निज हित साधने की संभावना रहती ही है. कीमत तय होने के बाद, अल्पाधिकारी के लिए भी पूर्ण प्रतियोगी जैसी स्थिति हो जाती है, जब तक कीमत सीमान्त लागत से अधिक है, उत्पादन बढ़ा कर मुनाफ़ा बढ़ाया जा सकता है.

नेतृत्वकारी उत्पादक द्वारा कीमत निर्धारण: औपचारिक मिली-भगत चाहे उत्पादक संघ का स्वरूप ले या 'बाज़ार के बंटवारे' का, समस्याएँ लगभग एक सी रहती हैं. इस लिए आम तौर पर अल्पाधिकारी मिली-भगत एक अन्य अनौपचारिक रूप लेती है; मूक विमर्श के चलते किसी अथवा किन्हीं फ़र्मों की कीमत निर्धारण में नेतृत्वकारी भूमिका स्वीकार कर ली जाती है. अन्य उत्पादक बिना किसी औपचारिक निर्णय के नेतृत्वकारी उत्पादक द्वारा तय कीमत को स्वीकार कर लेते हैं. सभी अल्पाधिकारी उत्पादक नेतृत्वकारी उत्पादक के दाम को स्वीकार कर के, अन्य तरीकों से प्रतियोगिता करने को स्वतंत्र होते हैं. इस तरह से वे कुछ सीमाओं के अन्दर रह कर अपनी उद्यमी वाली भूमिका का भी आनंद ले सकते हैं. हाल में आप ने देखा होगा कि आम तौर सब से पहले अमूल अपने दूध के दाम बढ़ाने की घोषणा करती है एवं आगामी 1-2 दिनों में वीटा सरीखे अन्य दुग्ध उत्पादक संघ भी अपने दाम बढ़ा देते हैं. यह कीमत निर्धारण में अमूल की नेतृत्वकारी भूमिका इंगित करता है.

कीमत निर्धारण में नेतृत्वकारी भूमिका कौन सा उत्पादक निभा सकता है? क्या नेतृत्वकारी भूमिका में ऐसा उत्पादक होना चाहिए जो सब से बड़ा उत्पादक हो, या ऐसा हो जो सब से कुशल यानी सब से कम लागत वाला उत्पादक हो अथवा सब से अनुभवी उत्पादक हो? वास्तविक जीवन में सभी तरह के उत्पादक कीमत निर्धारण में नेतृत्वकारी भूमिका निभाते पाए गए हैं. आदर्श स्थिति में नेतृत्वकारी भूमिका में उत्पादक कुशल एवं बड़ा, दोनों गुण वाला होना चाहिए. अगर नेतृत्वकारी उत्पादक विशाल है परन्तु कुशल नहीं है, तब कम कीमत वाला उत्पादक उस से कम दाम रख कर अधिक मुनाफा कमा सकता है एवं बाज़ार भाव गिरा सकता है. दूसरी ओर अगर कीमत निर्धारक कुशल है, उस की उत्पादन लागत कम है परन्तु उत्पादन क्षमता भी कम है, तो बड़े उत्पादक कुछ समय के लिए घाटा सह कर भी भाव गिरा कर अथवा बड़े पैमाने पर विज्ञापन अथवा विक्रय ख़र्च बढ़ा कर उसे बाज़ार से बाहर कर सकते हैं. कीमत निर्धारण की ऐसी नीति को परभक्षी कीमत निर्धारण नीति यानी दूसरे को नष्ट करने की नीति कहते हैं. इस लिए कीमत निर्धारण में नेतृत्वकारी भूमिका सफलता पूर्वक निभाने के लिए उच्च उत्पादन क्षमता एवं उच्च कुशलता दोनों होनी चाहिये. इस के अलावा नेतृत्वकारी भूमिका निभाने के इच्छुक उत्पादक को उद्योग के अन्य उत्पादकों के हितों को भी ध्यान में रखना होगा. अगर वह केवल अपना मुनाफा देखेगा एवं अन्य उत्पादकों के हितों की अनदेखी कर देगा, तो अनौपचारिक मिली-भगत के टूटने की संभावना बढ़ जाती है जो किसी भी उत्पादक के हित में नहीं होता. सफ़ल कीमत नेतृत्व व्यवस्था बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि अन्य उत्पादक न केवल नेता द्वारा तय कीमत को स्वीकार करें परन्तु यह भी आवश्यक है कि उस भाव पर माँग के अनुरूप उत्पादन भी हो. अगर तय भाव के अनुरूप उत्पादन नहीं होता, तो तय भाव भी प्रभावी नहीं हो सकता.

कई अर्थशास्त्रियों का मानना है कि नेतृत्वकारी भूमिका आम तौर पर ऐसी अनुभवी फ़र्म निभाती है जिस के बारे में उद्योग को आम तौर पर विश्वास होता है कि उसे बाज़ार की परिस्थितियों को बेहतर समझ है. वायु दाब नापने के यंत्र के नाम पर ऐसी व्यवस्था को बैरोमीट्रिक (barometric) नेतृत्व कहते हैं.

अल्पाधिकारी बाज़ार में उत्पादकों को परस्पर निर्भरता का अहसास होता है. इस लिए निर्णय लेते हुए उन्हें अन्य उत्पादकों की संभावित प्रतिक्रिया को भी ध्यान में रखना होता है. परस्पर निर्भरता का अहसास एवं इस से निपटने के कई तरीके हो सकते हैं. इस लिए **अल्पाधिकारी उद्योग के बारे में कोई एक मॉडल जैसे कि पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार अथवा एकाधिकारी बाज़ार में संभव था, संभव नहीं है.** फिर भी कुछ निष्कर्ष अल्पाधिकारी बाज़ार के बारे में भी निकाले गए हैं.

अल्पाधिकारी बाज़ार के बारे में कुछ निष्कर्ष: अल्पाधिकारी बाज़ार में कीमत-आपूर्ति का कोई निश्चित सम्बन्ध नहीं होता क्योंकि यह अल्पाधिकारियों के परस्पर तालमेल पर निर्भर करता है. अल्पाधिकारी बाज़ार में 'कीमत प्रतियोगिता' के साथ-साथ प्रतियोगिता के अन्य रूपों, जैसे विज्ञापन युद्ध का महत्त्व बढ़ जाता है. अपने उत्पाद को विशिष्ट एवं भिन्न साबित करने पर ज़ोर दिया जाता है. उत्पाद वैविध्य बढ़ने की संभावना रहती है. एक ही कम्पनी द्वारा कई तरह के साबुन बनाना एवं सब को उत्कृष्ट बताना, एक कार कम्पनी द्वारा कई तरह की कार बनाना, इस बढ़ते वैविध्य के ही उदाहरण हैं.

एकाधिकारी के लिए कीमत तय करना या उत्पादन की मात्रा तय करने में कोई अंतर नहीं होता क्योंकि एक तय होने पर दूसरा स्वयं तय हो जाता है. इस लिए एकाधिकारी के लिए उत्पादन स्तर तय करना अथवा बिक्री कीमत तय करना दोनों समरूप नीतिगत प्रश्न हैं.

बल्कि असल में तो एकाधिकारी को कीमत अथवा उत्पादन निर्धारण भी नहीं करना पड़ता. लागत वक्र एवं माँग वक्र के आधार पर निर्णय स्वयं हो जाता है. इस के विपरीत अल्पाधिकारी बाज़ार में कीमत निर्धारण एवं उत्पादन निर्धारण पूरी तरह से परस्पर जुड़े प्रश्न नहीं होते, एक के तय होने से दूसरा अपने आप तय नहीं हो जाता. 'ग़ैर-कीमत' प्रतियोगिता की संभावना कीमत एवं बिक्री के सम्बन्ध को जटिल बना देती है. इस लिए अल्पाधिकारी बाज़ार में कीमत निर्धारण निर्णायक नीतिगत प्रश्न हो जाता है न कि उत्पादन मात्रा निर्धारण के समरूप प्रश्न. प्रशासनिक तौर पर कीमतों (administered prices) का निर्धारण किया जाता है एवं उस के बाद बिक्री अधिकतम करने के प्रयास किए जाते हैं. ऐसी स्थिति में बिक्री व्यवस्था तथा बिक्री ख़र्च भी रणनीति के महत्त्वपूर्ण अंश हो जाते हैं. आम तौर पर कीमतों में बार-बार बदलाव के स्थान पर तुलनात्मक रूप से स्थिरता पाई जाती है. बिक्री व्यवस्था, विज्ञापन, वस्तु के स्वरूप, प्रस्तुति अथवा मात्रा में बदलाव की संभावना ज़्यादा होती है.

अल्पाधिकारी बाज़ार में आम तौर पर कीमत सीमान्त लागत से अधिक रहती है एवं उत्पादक दीर्घ काल में भी लाभ अर्जित करते रह सकते हैं. अल्पाधिकार की स्थिति बनाए रखने के लिए उद्योग में अन्य उत्पादकों के प्रवेश को रोकने के प्रयास किए जाते हैं. विज्ञापन युद्ध इस का एक माध्यम है. जब टूथपेस्ट के स्थान पर ग्राहक कोलगेट माँगता है, तो नए उत्पादकों का प्रवेश मुश्किल हो जाता है. ऐसी स्थिति में नए उत्पादक को शुरू से ही बड़े पैमाने पर विज्ञापन पर ख़र्च करना पड़ेगा. इस से निवेश लागत बढ़ जाएगी. इस से नया प्रवेश मुश्किल हो जाता है. विज्ञापन प्रवेश रोकने का एक मात्र हथियार नहीं है. केवल कम्पनी शो रूम से ही बिक्री भी नई कम्पनी के प्रवेश को मुश्किल बना देती है. नई कम्पनी को भारी भरकम ख़र्च कर के शुरू से ही देश भर में शोरूम खोलने होंगे क्योंकि बिक्री का कोई और माध्यम तो होगा नहीं. एक ही कम्पनी कई तरह के साबुन बना कर नई कम्पनियों के प्रवेश को मुश्किल बना देती हैं. इन सब तरीकों से नई कम्पनी की प्रवेश लागत बढ़ जाती है. इस के चलते बड़ी पूँजी वाली कम्पनियाँ ही प्रवेश का प्रयास कर सकती हैं न कि कोई छोटा मोटा उत्पादक. आपात काल के बाद भारत में जब पेप्सी और कोकाकोला का पुन: प्रवेश हुआ तो इन्होने अपने फ्रिज दुकानों में रखवा कर (उस से पहले भारत में दुकानों में किसी शीतल पेय की कम्पनी के फ्रिज नहीं होते थे) अन्य उत्पादकों का बाज़ार में बने रहना मुश्किल कर दिया. अमेज़न, फिल्प्कार्ट जैसे कम्पनियाँ बरसों तक अरबों का नुकसान सहन कर बाज़ार में अपनी पैठ बनाती रही हैं. एक बार बाज़ार पर कब्ज़ा हो जाने पर मुनाफा वसूल कर के सारे घाटों की पूर्ति कर ली जाती है. परभक्षी कीमत निर्धारण नीति अथवा प्रवेश रोकने की नीति के आधार पर कीमत निर्धारण अल्पाधिकारी बाज़ार के महत्वपूर्ण आयाम हैं.

अल्पाधिकारी बाज़ार में तकनीकी नवाचार को बढ़ावा दिया जाता है क्योंकि नए उत्पादकों का प्रवेश मुश्किल होने के कारण नवाचार से लम्बे समय तक लाभ उठाया जा सकता है. इस के साथ ही प्रतियोगिता का दबाव न होने के कारण नई तकनीक को अपनाने की कोई बाध्यता भी नहीं होती. नवाचार सम्बन्धी यह स्थिति पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार के बिल्कुल विपरीत है.

क्योंकि उत्पादकों की मिली-भगत उपभोक्ताओं के हित में नहीं होती, इस लिए पूरी दुनिया में अल्पाधिकारियों की मिली-भगत को रोकने के उपाय किए जाते हैं. भारत में भी पहले एकाधिकार और प्रतिबंधात्मक व्यापार प्रथा आयोग (Monopoly and Restrictive Trade Practices Commission) के तहत ये उपाय किए जाते थे और अब भारतीय प्रतिस्पर्धा आयोग (Competition Commission of India) यह दायित्व निभाता है.

इस अध्याय में हम ने अल्प प्रतियोगी यानी अल्पाधिकारी बाज़ार का अध्ययन किया है. इस बाज़ार की विशिष्टता यह है कि उत्पादकों की संख्या कम होने के कारण उन्हें परस्पर निर्भरता का अहसास होता है एवं उत्पादक को अपनी निर्णय प्रक्रिया में दूसरे उत्पादकों की प्रतिक्रिया को भी ध्यान में रखना पड़ता है. हम ने देखा कि अगर अल्पाधिकारी स्वतंत्र रूप से निर्णय लेते हैं तो परस्पर मिली-भगत की तुलना में घाटे में रहते हैं. हम ने यह भी पाया कि जहाँ मिली-भगत से उन के लाभ बढ़ सकते हैं, वहाँ मिली-भगत का निर्णय होने के बाद धोखा देने से उन के लाभ और भी बढ़ सकते हैं. हम ने मिली-भगत के विभिन्न स्वरूपों का भी अध्ययन किया है. हम ने यह पाया कि अल्पाधिकारी बाज़ार में कीमतों में स्थिरता होने के साथ-साथ अन्य तरीकों से प्रतियोगिता एवं बिक्री व्यवस्था का महत्त्व बढ़ जाता है.

इस के साथ ही अधिकतम लाभ के उद्देश्य से काम करने वाले उत्पादक बाज़ारों का हमारा प्रारम्भिक अध्ययन पूरा होता है. हाल के वर्षों में बाज़ार विश्लेषण के अन्य मॉडल आये हैं जो यह मान कर चलते हैं कि उत्पादक का लक्ष्य लाभ अधिकतम करना न हो कर अन्य

लक्ष्य होते हैं. इन की संक्षिप्त चर्चा हम आगे करेंगे. फ़िलहाल के लिए हम आपूर्ति अध्ययन को यहाँ समाप्त करते हैं. अब तक हम ने उपभोक्ता की माँग का एवं उत्पादक की आपूर्ति का अध्ययन कर लिया है. आपूर्ति अध्ययन में हम ने उत्पादन के साधनों की कीमत को पूर्व निर्धारित माना है. अगले अध्याय में हम उत्पादन के साधनों की कीमत निर्धारण का अध्ययन करेंगे.

प्रश्न:

1. अल्पाधिकारी बाज़ार में कुल उत्पादकों की संख्या कम होना ज़रूरी है अथवा चंद उत्पादकों का कुल उत्पादन के बड़े हिस्से पर कब्ज़ा होना ज़रूरी है?
2. अगर आप को अल्पाधिकारी बाज़ार के उत्पादक का एक व्यवहार सम्बन्धी गुण को चिह्नित करना हो, तो वह क्या होगा?
3. कुर्नो एवं बरट्रैंड मॉडल की मान्यताओं में अंतर एवं दोनों के संतुलन बिंदु की व्याख्या करें. इन मॉडलों से कौन से महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकलते हैं?
4. एकाधिकारी एवं अल्पाधिकारी उत्पादक संघ की समानताओं एवं विभिन्नताओं को रेखांकित करें.
5. क्या मिली-भगत का अल्पाधिकारी बाज़ार उपभोक्ताओं के हित में होता है? तर्क पूर्ण व्याख्या करें.
6. मिली-भगत के अल्पाधिकारी बाज़ार में उत्पादकों द्वारा एक दूसरे को धोखा देने के कारणों की व्याख्या करें.
7. स्वीजी के मॉडल में उत्पादक के माँग-वक्र में तीखा मोड़ क्यों होता है एवं कहाँ पर होता है? इस के प्रभाव की भी व्याख्या करें.
8. कीमत निर्धारण में नेतृत्वकारी भूमिका प्रभावी रूप से निभाने के लिए आवश्यक तत्त्वों की व्याख्या करें.
9. अल्पाधिकारी बाज़ार के व्यवहार सम्बन्धी मुख्य बिन्दुओं की व्याख्या करें.

अध्याय - 13

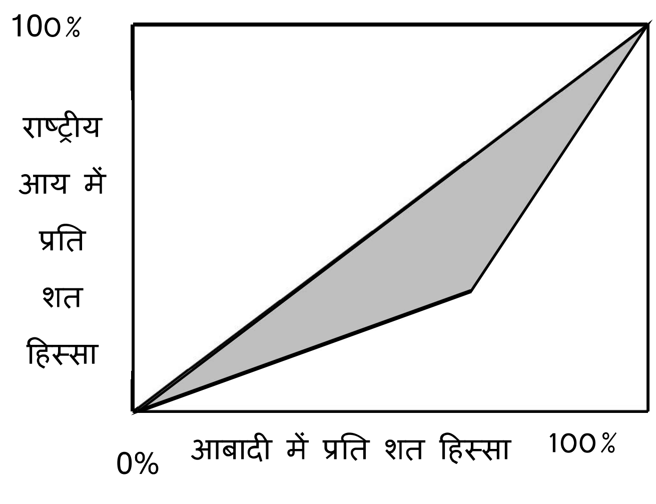
उत्पादन के साधनों की कीमत का निर्धारण

इस अध्याय में हम उत्पादन के साधनों की कीमत निर्धारण प्रक्रिया का अध्ययन करेंगे. **यह विषय दो कारणों से महत्त्वपूर्ण है.** पहला कारण तो यह है कि उपभोग की वस्तुओं की लागत का अध्ययन करते हुए हम ने यह माना था कि संसाधनों की कीमत स्थिर रहती हैं. इस लिए उपभोग की वस्तुओं की कीमत एवं लागत का अध्ययन तभी पूरा होगा जब संसाधनों की कीमत निर्धारण का अध्ययन होगा. एक अन्य कारण से भी संसाधनों की कीमत निर्धारण का अध्ययन करना महत्त्वपूर्ण है. किसी वस्तु का उत्पादन कई संसाधनों के प्रयोग से होता है. इस लिए यह सवाल भी महत्त्वपूर्ण है कि विभिन्न संसाधनों के बीच उत्पादन का वितरण कैसे हो. उदाहरण के तौर पर कृषि में भूमि, मशीन एवं मानव श्रम तीनों का प्रयोग होता है. कृषि उत्पाद का वितरण इन तीनों संसाधनों बल्कि इन तीनों संसाधनों के मालिकों के बीच कैसे हो, यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है. संसाधनों की कीमत एवं उन के उपयोग की मात्रा से संसाधनों के मालिकों को मिलने वाले उत्पाद के हिस्से का निर्धारण होता है. इस लिए जो हम इस अध्याय में पढ़ने जा रहे हैं, उसे दो नामों से जाना जाता है. इसे वितरण का सिद्धांत (theory of distribution) भी कहा जाता है एवं संसाधनों की कीमत निर्धारण (factor pricing) का सिद्धांत भी कहा जाता है.

उत्पाद के वितरण का अध्ययन महत्त्वपूर्ण विषय है. इसे कई दृष्टिकोण से देखा जा सकता है. एक नजरिया कुल आय अथवा उत्पादन का मुख्य संसाधनों अर्थात भूमि, श्रम, पूँजी के बीच वितरण का हो सकता है. इस दृष्टिकोण से वितरण को देखने को संसाधन-वर्गों के बीच वितरण का अध्ययन (study of functional distribution) कहते हैं. दूसरा नजरिया सब से अमीरों, सब से गरीबों इत्यादि के हिस्से का अध्ययन हो सकता है; जैसे सब से अमीर 1% को राष्ट्रीय आय का कितना हिस्सा मिलता है और सब से ग़रीब 20% को कितना. ऐसे अध्ययन को विभिन्न आय वर्गों में वितरण (size distribution) का अध्ययन कहते हैं. परन्तु इस अध्याय में हम अधिकतर समय अपना ध्यान संसाधनों की कीमत निर्धारण पर रखेंगे. स्पष्ट रूप से संसाधनों की कीमत का निर्धारण एवं वितरण परस्पर जुड़े हुए हैं. संसाधनों की कीमत एवं उत्पादन में उन के उपयोग की मात्रा से उत्पाद के वितरण में इन संसाधनों का हिस्सा तय हो जाता है.

हालाँकि राष्ट्रीय आय का विभिन्न आय वर्गों में वितरण का अध्ययन इस अध्याय की विषय-वस्तु नहीं है परन्तु इस की थोड़ी चर्चा करना उपयुक्त होगा. यह चर्चा इस लिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इस से सम्बन्धित कुछ शब्द आर्थिक ख़बरों में आम तौर पर प्रयोग किए जाते हैं. इस लिए इस शब्दावली से परिचित होना उपयोगी होगा. हम तीन शब्दों को परिभाषित करेंगे- लोरेन्ज़ वक्र (Lorenze curve), गिनी गुणांक (Gini coefficient) एवं दशमांश अनुपात (decile ratio).

चित्र 61 - लोरेन्ज़ वक्र एवं गिनी गुणांक (Gini Coefficient)



लोरेन्ज़ वक्र (Lorenze curve): इस वक्र में क्ष अक्ष पर प्रतिशत में आबादी को संचित (cumulative) रूप में अंकित किया जाता है, यानी निम्न 1%, निम्न 2%, निम्न 5% इत्यादि एवं य अक्ष पर राष्ट्रीय आय अथवा किसी अन्य चर का इसी प्रकार प्रतिशत हिस्सा अंकित किया जाता है. चित्र 61 में लोरेन्ज़ वक्र दर्शाया गया है. यह कम आय से बढ़ते क्रम में आय के वितरण को दिखाता है. उदाहरण के तौर पर यह दिखाता है कि सब से कम आय वाली 1%,10% इत्यादि आबादी को कुल आय का कितना हिस्सा मिलता है. अर्थव्यवस्था में कैसा भी वितरण हो, समान हो अथवा असमान, शून्य प्रतिशत आबादी को आय का शून्य % मिलेगा और 100% आबादी को आय का 100% ही मिलेगी. परन्तु इन दोनों छोरों के बीच अर्थव्यवस्था में वितरण

अलग-अलग रूप ले सकता है. अगर किसी समाज में सब को एक समान आय मिलती है अथवा वितरण पूरी तरह समान है तो नीचे से 1% आबादी के हिस्से में आय का 1% आएगा, नीचे से 5% आबादी के हिस्से में आय का 5% हिस्सा आएगा इत्यादि. इस स्थिति में अर्थव्यवस्था में आय का वितरण आयत के दोनों कोनों को मिलाने वाली सीधी रेखा पर ही स्थित होगा. जैसे-जैसे समाज में वितरण की असमानता बढ़ती जाएगी, लोरेन्ज़ वक्र इस सीधी रेखा से दूर होता जाएगा. असमानता की चरम सीमा पर अगर सारी आय एक व्यक्ति को मिले, तो लोरेन्ज़ वक्र का स्वरूप कैसा होगा? अंतिम क्षण तक यह क्ष अक्ष पर रहेगा (आय में 0% हिस्सा) एवं अंतिम छोर पर पहुँच कर 100% पर पहुँच जाएगा. लोरेन्ज़ वक्र और सीधी रेखा के बीच का क्षेत्रफल जितना ज़्यादा होगा, वितरण उतना ही असमान होगा. लोरेन्ज़ वक्र के आधार पर ही असमानता को नापने के लिए गिनी गुणांक का प्रयोग किया जाता है. **गिनी गुणांक का सूत्र है: लोरेन्ज़ वक्र एवं सीधी रेखा के बीच का क्षेत्रफल भाग में पूरे त्रिकोण का क्षेत्रफल.** यानी कि पूर्ण तौर पर समान वितरण में गिन्नी गुणांक शून्य होगा और अगर सारी आय ही एक व्यक्ति को मिलती है तो इस का मान होगा एक. **अंत: गिनी गुणांक का मान शून्य एवं एक के बीच ही होगा. यह इकाई रहित अंक है. इस लिए इस के आधार विभिन्न समय एवं देशकाल की परिस्थितियों में असमानता की परस्पर तुलना की जा सकती है.** लोरेन्ज़ वक्र एवं गिन्नी गुणांक का प्रयोग केवल आय के वितरण में असमानता के लिए नहीं अपितु किसी भी सामग्री/चर के वितरण में असमानता के अध्ययन के लिए प्रयोग किया जा सकता है.

लोरेन्ज़ वक्र एवं गिन्नी गुणांक की गणना के लिए वितरण की पूरी जानकारी आवश्यक है. अगर यह न हो एवं थोड़ी जानकारी के आधार पर असमानता की गणना करनी हो अथवा हम सब से ग़रीब एवं सब से अमीर की तुलना करना चाहें तो दशमांश अनुपात का प्रयोग किया जाता है. दशमांश अनुपात की गणना हेतु अधिकतम आय वाली 10% आबादी को मिलने वाले कुल आय के प्रतिशत को न्यूनतम आय वाली 10% आबादी को मिलने वाले कुल आय के प्रतिशत से भाग दिया जाता है. यह दर्शाता है कि न्यूनतम आय वाले की तुलना में अधिकतम आय वाली आबादी की आय कितने गुना है. (10% की बजाय कई लोग 20% इत्यादि का प्रयोग भी करते हैं.) **जितना दशमांश अनुपात ज़्यादा, उतनी वितरण में असमानता अधिक.**

इस विषयांतर के बाद, अब हम इस अध्याय की मुख्य विषय-वस्तु पर आते हैं. आधुनिक अर्थशास्त्र में उत्पादन के साधनों की कीमत निर्धारण की प्रक्रिया कुछ मामलों में अन्य उत्पादों के कीमत निर्धारण सी ही है – यह उन की माँग एवं आपूर्ति पर निर्भर करती है. परन्तु इस में कुछ बुनियादी फर्क भी हैं. उपभोग की वस्तु उपभोक्ता ख़रीदता है. इस के विपरीत उत्पादन के साधनों को उत्पादक ख़रीदता है. उत्पादक के व्यवहार के अध्ययन में हम यह मान कर चले हैं कि उत्पादक का उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना होता है. इस लिए उत्पादक उत्पादन के साधनों को भी इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए ख़रीदता है. इस के विपरीत उपभोक्ता अपनी संतुष्टि को अधिकतम करना चाहता है एवं इस उद्देश्य को ध्यान में रख कर उपभोग की वस्तुओं को ख़रीदता है. जब दोनों तरह की माँग के उद्देश्य ही भिन्न हैं, तो संभावना यह है कि दोनों तरह की माँग के व्यवहार में अन्य अंतर भी हो सकते हैं. इसी तरह उत्पादन के साधनों के आपूर्ति पक्ष में भी महत्त्वपूर्ण अंतर हैं. उपभोग के साधनों की आपूर्ति लाभ अधिकतम करने की प्रक्रिया का परिणाम होती है जब कि श्रम की आपूर्ति कुल संतुष्टि को अधिकतम करने की प्रक्रिया का परिणाम होती है.

इन **बुनियादी फर्क को ध्यान में रखते हुए, हम उत्पादन के साधनों की कीमत निर्धारण प्रक्रिया का अध्ययन मूलतः उसी तरह करेंगे जैसे हम ने उपभोग की वस्तुओं की कीमत निर्धारण प्रक्रिया का अध्ययन किया है.** पहले हम उत्पादन के साधनों की एक उत्पादक की माँग का अध्ययन करेंगे. फिर उस के आधार पर कुल बाज़ार माँग का अध्ययन करेंगे. उस के पश्चात संसाधनों की आपूर्ति का अध्ययन करेंगे. क्योंकि विभिन्न तरह के बाज़ार में आपूर्ति फलन अलग-अलग प्रकार के हो सकते हैं, इस लिए हम उपभोग के उत्पादों की तरह संसाधनों के आपूर्ति (एवं माँग) वक्र का अध्ययन भी हम अलग-अलग बाज़ारों के लिए करेंगे. **आधुनिक अर्थशास्त्र उत्पादन के सब संसाधनों- श्रम, भूमि एवं पूँजी को एक जैसा मान कर ही इन की कीमत का निर्धारण करता है. इस लिए हम आम तौर पर श्रम का ही उदाहरण लेंगे. पूँजी एवं भूमि जैसे उत्पादन के साधनों की कीमत निर्धारण से सम्बन्धी कुछ विशिष्ट मुद्दों की चर्चा हम बाद में करेंगे.**

आगे बढ़ने से पहले शब्दावली सम्बन्धी एक स्पष्टीकरण आवश्यक है. भूमि को ख़रीदा भी जा सकता है और कुछ समय के लिए किराये पर भी लिया जा सकता है परन्तु श्रम शक्ति को ख़रीदने का अर्थ है उस को कुछ समय के लिए किराये पर लेना. दास प्रथा ख़त्म

होने के बाद इंसान को नहीं ख़रीदा जा सकता. केवल उस की शारीरिक एवं बौद्धिक क्षमता को कुछ समय के लिए प्रयोग हेतु किराये पर लिया जा सकता है. इस लिए **जब हम उत्पादन के साधनों की माँग एवं आपूर्ति का ज़िक्र करेंगे तो इस का अर्थ होगा उन को एक निश्चित समयावधि के लिए उन की सेवाओं को किराये पर लेने से ही होगा न कि ख़रीदने से**.

एक उत्पादक द्वारा उत्पादन के साधनों की माँग: फ़िलहाल हम यह मान कर चलते हैं कि केवल एक संसाधन परिवर्तनशील है. एक से अधिक परिवर्तनशील संसाधनों की माँग का अध्ययन हम बाद में करेंगे. उत्पादक एकमात्र परिवर्तनशील संसाधन, उदाहरण के तौर पर श्रम, की कितनी माँग करेगा एवं श्रम की माँग का श्रम की कीमत के साथ कैसा सम्बन्ध होगा? क्या हम कह सकते हैं कि माँग के नियम से स्पष्ट है कि उत्पादन के साधनों की माँग कीमत घटने के साथ बढ़ेगी? नहीं, यह कहना ठीक नहीं होगा. माँग का नियम केवल उपभोग की वस्तुओं पर लागू होता है. याद करें कि माँग के नियम का अध्ययन करते हुए हमने उपभोक्ता के लक्ष्य की चर्चा की थी. हम ने माना था कि उपभोक्ता का उद्देश्य संतुष्टि को अधिकतम करना होता है. इस के विपरीत उत्पादक का उद्देश्य श्रम के उपयोग से लाभ कमाना है. उद्देश्य भिन्न होने के कारण हम माँग का नियम श्रम की माँग पर लागू नहीं कर सकते. श्रम की माँग का हमें स्वतंत्र अध्ययन करना होगा.

उत्पादक का लाभ फलन निम्न होता है : लाभ =राजस्व - लागत. स्पष्ट रूप से श्रम के प्रयोग से उत्पादक की लागत एवं उस का राजस्व दोनों प्रभावित होते हैं. श्रम की माँग पर चर्चा करने से पहले हमें विचार करना होगा कि श्रम की कीमत एक उत्पादक के लिए स्थिर होगी अथवा परिवर्तनशील? यह निर्भर करेगा कि श्रम बाज़ार कैसा है. अगर यह पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार सरीखा है, तो एक उत्पादक की माँग, श्रम बाज़ार की कुल माँग का बहुत छोटा हिस्सा होगी एवं इस से श्रम का बाज़ार भाव प्रभावित नहीं होगा. इस के विपरीत अगर श्रम बाज़ार में उत्पादक एकमात्र ग्राहक है, तो श्रम का भाव उत्पादक की माँग से प्रभावित होगा. इसी तरह से श्रम के उत्पादन से मिलने वाला औसत राजस्व भी उत्पाद-बाज़ार की प्रकृति पर निर्भर करेगा. अगर उत्पाद-बाज़ार पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार है, तो उत्पादक को मिलने वाला औसत राजस्व स्थिर रहेगा क्योंकि हम देख चुके हैं कि एक उत्पादक के उत्पादन से पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार के उत्पाद के बाज़ार भाव पर कोई असर नहीं पड़ता. परन्तु अगर उत्पाद-बाज़ार एकाधिकारी बाज़ार है तो उत्पादक को मिलने वाला औसत राजस्व परिवर्तनशील होगा.

इस का अर्थ हुआ कि **उत्पादक का लाभ, लागत एवं श्रम की माँग दो बाज़ारों की प्रकृति पर निर्भर करती है**. 'उत्पाद-बाज़ार' एवं उत्पादन के साधनों का बाज़ार (जिसे हम संक्षिप्त में 'साधन अथवा संसाधन बाज़ार' कहेंगे), दोनों की प्रकृति इन चरों को प्रभावित करती है. अब तक हम एक ही किस्म के बाज़ार की चर्चा करते रहे हैं- उत्पाद-बाज़ार की. अब हम दो तरह के बाज़ार की चर्चा करेंगे. **इस लिए अब हमें हर समय स्पष्ट करना चाहिए कि हम 'उत्पाद' बाज़ार का ज़िक्र कर रहे हैं या 'संसाधन' बाज़ार का.**

पहले हम दोनों बाज़ारों यानी उत्पाद-बाज़ार एवं संसाधन बाज़ार को पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार मान कर श्रम की माँग का अध्ययन करेंगे. इस के बाद अन्य किस्म के बाज़ारों के सन्दर्भ में श्रम की कीमत के निर्धारण का अध्ययन करेंगे.

वापिस उत्पादक के लाभ फलन को देखें: लाभ = कुल राजस्व-कुल लागत. आपूर्ति के अध्ययन में भी लाभ फलन का यही स्वरूप था जिस के आधार पर उत्पादक को निर्णय लेना था. परन्तु वहाँ उसे उत्पादन स्तर तय करना था और यहाँ पर श्रम की माँग तय करनी है. ये दोनों प्रश्न परस्पर जुड़े हुए हैं. उत्पादन का स्तर तय होने पर एकमात्र परिवर्तनशील संसाधन की माँग भी परोक्ष रूप से तय हो जाती है. इसी तरह **एकमात्र परिवर्तनशील संसाधन की माँग तय होने पर उत्पादन की मात्रा तय हो जाती है.** इस लिए संसाधनों की माँग को वस्तुओं की माँग से उत्पन्न माँग (*derived demand*) भी कहते हैं. परन्तु यहाँ हम श्रम की माँग का अध्ययन कर रहे हैं इस लिए **अब हमारे लिए निर्धारक चर (*choice variable*) श्रम रहेगा न कि उत्पादन**.

फलन के इष्टतम स्तर की गणना के नियम से हम जानते हैं कि **लाभ अधिकतम वहाँ होंगे जहाँ श्रम के अतिरिक्त उपयोग से मिलने वाला सीमान्त राजस्व एवं श्रम पर होने वाला सीमान्त ख़र्च एक समान होंगे**. यह याद रखना चाहिए कि यह इष्टतम स्तर को ज्ञात करने की पहली शर्त है. इष्टतम स्तर प्राप्त करने के लिए दो अन्य शर्त भी पूरी होनी चाहिए. परन्तु फ़िलहाल हम पहली शर्त पर ही ध्यान देंगे एवं **यह मान कर चलेंगे कि अन्य दो शर्तें भी पूरी होती हैं.** श्रम के अतिरिक्त उपयोग से मिलने वाले सीमान्त राजस्व को हम सीमान्त राजस्व उत्पाद (*marginal revenue product- MRP)* कहते हैं. **सीमान्त राजस्व एवं सीमान्त राजस्व उत्पाद (*MR* एवं *MRP)* के अंतर को ठीक से समझना आवश्यक है.** दोनों में अंतर यह है कि सीमान्त राजस्व एवं सीमान्त राजस्व उत्पाद में निर्धारक चर अलग-

अलग हैं. सीमान्त राजस्व इंगित करता है उत्पादन वृद्धि के प्रभाव स्वरूप कुल राजस्व में होने वाले परिवर्तन की दर को. इस के विपरीत सीमान्त राजस्व उत्पाद इंगित करता है श्रम के प्रयोग में वृद्धि से राजस्व में होने वाले परिवर्तन की दर को. संसाधन की सीमान्त लागत को आम तौर पर हम सीमान्त ख़र्च (*marginal expenditure - ME)* कहते हैं.

किसी भी फलन के इष्टतम स्तर की पहली शर्त के आधार पर हम कह सकते हैं कि एक उत्पादक के लाभ उस अवस्था में अधिकतम होंगे जब इतने श्रम का प्रयोग हो कि सीमान्त राजस्व उत्पाद सीमान्त ख़र्च के बराबर हो यानी $MRP_L= ME_L$. यह तो सामान्य नियम हो गया.[58] परन्तु **इन दोनों की गणना प्रभावित होगी उत्पाद-बाज़ार एवं संसाधन बाज़ार की प्रकृति से.**

फ़िलहाल हम यह मान कर चल रहे हैं कि दोनों बाज़ार यानी उत्पाद-बाज़ार एवं संसाधन बाज़ार पूर्ण प्रतियोगी हैं. इस परिस्थिति में MRP_L एवं ME_L का स्वरूप क्या होगा? परिभाषा से स्पष्ट है कि MRP_L यानी श्रम का सीमान्त राजस्व उत्पाद, श्रम के सीमान्त उत्पाद से मिलने वाले राजस्व के बराबर होगा. क्योंकि पूर्ण प्रतियोगी उत्पाद-बाज़ार में बाज़ार भाव पर कितनी भी मात्रा बेची जा सकती है, इस लिए श्रम का सीमान्त राजस्व उत्पाद कीमत (*P)* गुणा में श्रम का सीमान्त भौतिक उत्पाद (MPP_L-*marginal physical product of labour)* के समान होगा.

यहाँ MPP_L से अभिप्राय श्रम के सीमान्त उत्पादन अथवा MP_L से ही है. MPP_L का भी वही अर्थ है जो MP_L का है. केवल समरूपता के लिए एक *P* यानी *physical* (भौतिक) जोड़ दिया है. ऐसा करने से श्रम के सीमान्त राजस्व उत्पाद यानी MRP_L एवं श्रम के सीमान्त भौतिक उत्पाद यानी MPP_L में एकरूपता आ जाती है.

स्पष्ट रूप से *P* गुणा MPP_L को सीमान्त भौतिक उत्पाद का मूल्य (*value of marginal product of labour-* VMP_L*)* भी कहा जा सकता है. इस लिए पूर्ण प्रतियोगी उत्पाद-बाज़ार में $MRP_L= VMP_L$ के बराबर ही होगा. **ध्यान रहे यह समीकरण उसी अवस्था में लागू होता है जब उत्पाद का सीमान्त राजस्व उत्पाद की कीमत के बराबर हो, अन्यथा नहीं.** यानी ऐसा केवल पूर्ण प्रतियोगी उत्पाद-बाज़ार में ही होगा.

पूर्ण प्रतियोगी संसाधन बाज़ार में श्रम पर सीमान्त ख़र्च यानी ME_L कितना होगा? क्योंकि पूर्ण प्रतियोगी संसाधन बाज़ार में उत्पादक कितना भी श्रम बाज़ार भाव पर ख़रीद सकता है, तो ज़ाहिर तौर पर ME_L, यानी श्रम पर सीमान्त ख़र्च, श्रम के बाज़ार भाव के बराबर ही होगा. श्रम के बाज़ार भाव को हम आम तौर पर *w* यानी *wage rate* (दिहाड़ी अथवा वेतन-दर) से इंगित करते हैं. अंत: पूर्ण प्रतियोगी श्रम बाज़ार में $ME_L=w$ होगा.

इस चर्चा से स्पष्ट है कि अगर उत्पाद-बाज़ार एवं संसाधन बाज़ार दोनों पूर्ण प्रतियोगी हैं, तो इष्टतम चयन की प्रथम शर्त, $MRP_L= ME_L$, निम्न रूप लगी: $P*MPP_L = VMP_L = ME_L = w$. इस के आधार पर हम कह सकते हैं कि दोनों बाज़ार पूर्ण प्रतियोगी होने पर श्रम बाज़ार में संतुलन पर निम्न शर्त पूरी होनी चाहिए:

$$VMP_L = w \quad \text{..........} \quad (31)$$

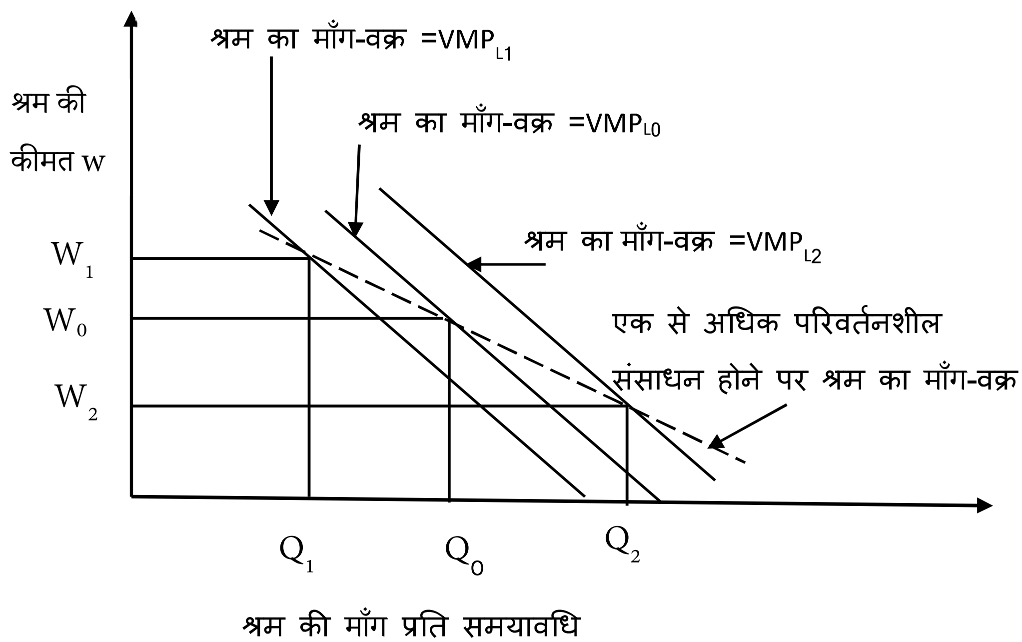
समीकरण 31 के अनुसार श्रम की इष्टतम माँग का स्तर वह होगा जहाँ श्रम के सीमान्त उत्पाद का मूल्य यानी VMP_L वेतन-दर यानी *w* के समान हो. अब प्रश्न यह उठता है कि वेतन-दर यानी *w* बढ़ने पर श्रम की माँग बढ़ेगी या घटेगी? स्वाभाविक रूप से यह श्रम के सीमान्त भौतिक उत्पाद के मूल्य वक्र अथवा VMP_L की ढलान पर निर्भर होगा. अगर इस की ढलान घनात्मक होगी तो माँग बढ़ेगी और अगर ढलान ऋणात्मक होगी तो माँग घटेगी. VMP_L की ढलान कैसी होगी?

---

[58] गणित के प्रयोग से हम यह साबित कर सकते हैं कि वह बिंदु जहाँ $MRP_L= ME_L$ होगा वहां पर $MR=MC$ भी होगा. यानी जहाँ पर श्रम का सीमान्त राजस्व उत्पाद श्रम के सीमान्त ख़र्च के बराबर होता है, वहीं पर उत्पाद का सीमान्त राजस्व एवं उत्पाद की सीमान्त लागत भी एक समान होती हैं. $MRP_L= ME_L$ का अर्थ है कि $\frac{\partial TR}{\partial L} = \frac{\partial TC}{\partial L}$ जिस को हम निम्न रूप में भी लिख सकते हैं: $\frac{\partial TR}{\partial Q}\frac{\partial Q}{\partial L} = \frac{\partial TC}{\partial Q}\frac{\partial Q}{\partial L}$ यानी कि $\frac{\partial TR}{\partial Q} = \frac{\partial TC}{\partial Q}$ अर्थात $MR= MC$.

उत्पादन फलन का अध्ययन करते हुए हम देख चुके हैं कि अल्प काल में सभी परिवर्तनशील संसाधनों की सीमान्त उत्पादकता अंततः घटती जाती है. (इस नियम का नाम याद है?) हम यह भी जानते हैं कि पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में उत्पादन फलन के दूसरे हिस्से में उत्पादन होता है यानी उस हिस्से में उत्पादन होता है, जहाँ औसत उत्पादन घट रहा हो परन्तु सीमान्त उत्पादन ऋणात्मक न हो. इस का अर्थ हुआ कि पूर्ण प्रतियोगी उत्पाद-बाज़ार में उत्पादन, उत्पादन फलन के उस हिस्से में होता है जहाँ पर सीमान्त भौतिक उत्पादन घट रहा होता है. इस लिए VMP_L भी घटता है. अंत: VMP_L की ढलान ऋणात्मक होगी. VMP_L की ढलान ऋणात्मक होने के कारण समीकरण 31 से स्पष्ट है कि वेतन-दर बढ़ने पर श्रम की माँग कम हो जाएगी एवं वेतन-दर घटने पर श्रम की माँग बढ़ जाएगी. इस लिए अल्पकाल में दोनों बाज़ार पूर्ण प्रतियोगी होने पर, एवं एक ही परिवर्तनशील संसाधन होने पर, VMP_L वक्र ही श्रम का माँग-वक्र होता है.

चित्र 62- पूर्ण प्रतियोगी संसाधन बाज़ार में पूर्ण प्रतियोगी उत्पाद बाज़ार के उत्पादक की श्रम का मांग वक्र



चित्र 62 में श्रम का माँग-वक्र VMP_{L0} दर्शाया गया है. (फ़िलहाल के लिए अन्य वक्रों को अनदेखा कर दें. शीघ्र हम इन पर चर्चा करेंगे.) इस लिए हम कह सकते हैं कि श्रम की माँग मात्रा एवं दिहाड़ी अथवा श्रम की कीमत का परस्पर विपरीत सम्बन्ध है. 'माँग में बढ़ोतरी' एवं 'माँग मात्र में बढ़ोतरी'- इस शब्दावली के अंतर को ध्यान में रखते हुए हम कह सकते हैं कि अन्य बातें समान रहने पर, अगर श्रम की कीमत बढ़ती है, तो श्रम की माँग मात्रा घटती है और श्रम की कीमत घटने पर श्रम की माँग मात्रा बढ़ती है. ध्यान रहे कि यद्यपि **यह सम्बन्ध माँग के नियम सरीखा ही है परन्तु यह माँग के नियम पर आधारित न हो कर श्रम की अंततः घटती सीमान्त उत्पादकता पर आधारित है.**

श्रम की माँग को प्रभावित करने वाले चर: इस चर्चा के आधार पर हम कह सकते हैं कि श्रम की माँग निम्न चरों पर निर्भर करेगी: दिहाड़ी/वेतन-दर, उत्पादक का उद्देश्य, उत्पादन फलन (क्योंकि उत्पादन फलन से सीमान्त भौतिक उत्पादन तय होता है), उत्पाद के दाम (क्योंकि इस से राजस्व एवं सीमान्त राजस्व उत्पाद प्रभावित होता है), उत्पाद-बाज़ार एवं संसाधन बाज़ार की प्रकृति. इन सब चरों का प्रयोग हम अब तक की चर्चा में कर चुके हैं. अगर स्पष्ट न हो तो पिछले कुछ पृष्ठों को दोहरा लें.

एक चर और है जो श्रम की माँग को प्रभावित करता है. अब तक हम यह मान कर चले हैं कि केवल एक ही परिवर्तनशील संसाधन है. परन्तु अगर परिवर्तनशील संसाधन एक से अधिक हैं, तो निश्चित तौर पर अन्य संसाधनों के दाम भी श्रम की माँग को प्रभावित करेंगे. अगर कम्बाइन सस्ती हो जाती है अथवा डीज़ल के दाम घट जाते हैं, तो निश्चित तौर पर श्रम की माँग भी प्रभावित होगी. कम्बाइन के दाम घटने से, उस का प्रयोग बढ़ जाएगा जिस से श्रम की उत्पादकता एवं इस लिए माँग भी प्रभावित होगी. ख़ैर, इस विषय पर अधिक चर्चा हम थोड़ी देर में करेंगे. फ़िलहाल के लिए इतना समझ लिया जाए कि उत्पादन के किसी संसाधन की माँग अन्य उत्पादन के साधनों की कीमत से भी प्रभावित होती है. माँग के सिद्धांत के अनुरूप श्रम की कीमत को छोड़ कर श्रम की माँग के अन्य निर्धारक तत्त्वों को श्रम

की माँग को खिसकाने वाले/ स्थानांतरित करने वाले चर कहते हैं. इन के बदलने से श्रम का माँग-वक्र स्थानांतरित हो जाता है. इसे श्रम की माँग का घटना/बढ़ना कहते हैं और कीमत में परिवर्तन होने के कारण श्रम की माँग में होने वाले परिवर्तन को माँग की मात्रा का घटना/बढ़ना कहते हैं. अगर तकनीकी परिवर्तन के कारण अथवा अन्य कारणों से श्रम की उत्पादकता बढ़ जाती है तो श्रम का माँग-वक्र दाईं ओर स्थानांतरित हो जाएगा यानी श्रम की माँग बढ़ जाएगी. इसी तरह अगर उत्पाद की कीमत किसी कारण से घट जाती है, तो श्रम का माँग-वक्र बाईं ओर स्थानांतरित हो जाएगा यानी श्रम की माँग घट जाएगी.

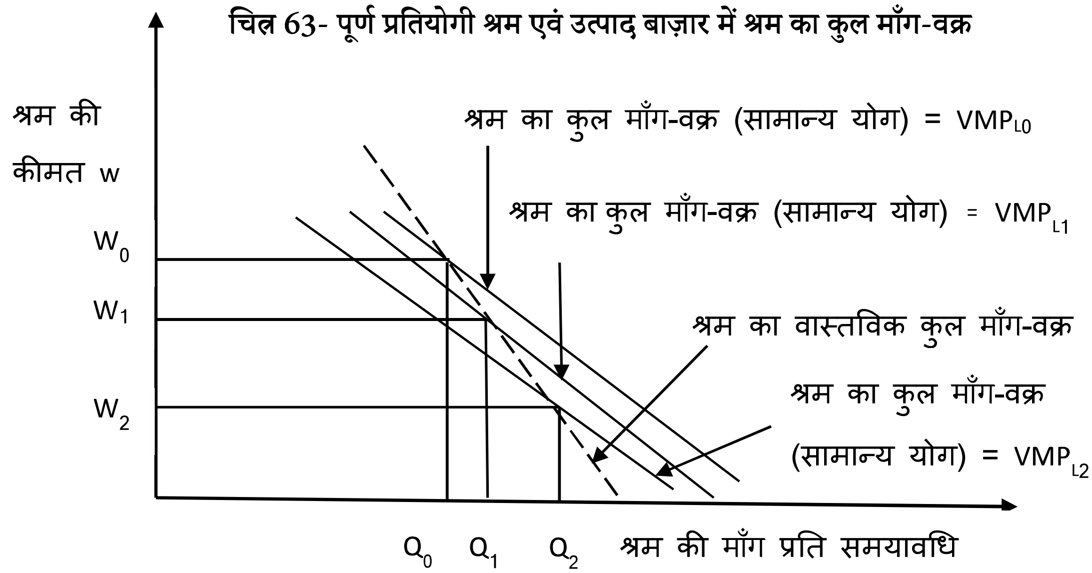
एक से अधिक परिवर्तनशील संसाधन होने पर श्रम की माँग: अगर परिवर्तनशील संसाधन एक से अधिक हों, और श्रम का भाव घट जाए तो एक उत्पादक के श्रम के माँग-वक्र पर क्या असर होगा? क्या तब भी श्रम का सीमान्त भौतिक उत्पाद का मूल्य वक्र, VMP_L, ही श्रम का माँग-वक्र बना रहेगा? निश्चित तौर पर अगर श्रम के दाम घट जाते हैं तो श्रम का उपयोग बढ़ जाएगा. अगर श्रम का उपयोग बढ़ता है तो श्रम के पूरक संसाधनों की सीमान्त उत्पादकता दाईं ओर खिसक जाएगी, जिस के चलते श्रम के पूरक संसाधनों का उपयोग बढ़ जाएगा (अगर श्रमिकों की संख्या बढ़ती है तो अतिरिक्त औजारों की उपयोगिता यानी सीमान्त उत्पादकता बढ़ जाएगी). श्रम के पूरक संसाधनों यानी सहयोगी संसाधनों का प्रयोग बढ़ने का परिणाम यह होगा कि श्रम का सीमान्त भौतिक उत्पाद का मूल्य वक्र, VMP_L, भी दाईं ओर खिसक जाएगा.

इस के विपरीत श्रम सस्ता होने एवं उस का उपयोग बढ़ने पर, श्रम के स्थानापन्न संसाधनों का उपयोग घट जाएगा (उदाहरण के लिए, श्रम की कीमत कम होने से कम्बाइन का प्रयोग घट जाएगा). श्रम के स्थानापन्न संसाधनों के उपयोग घटने के परिणाम स्वरूप श्रम की सीमान्त उत्पादकता बढ़ जाएगी एवं VMP_L, दाईं ओर खिसक जाएगा. **इस प्रकार हम पाते हैं कि श्रम का दाम घटने पर श्रम के पूरक संसाधनों का प्रयोग बढ़ जाता है एवं स्थानापन्न संसाधनों का प्रयोग घट जाता है. इन दोनों तरह के परिवर्तन का प्रभाव यह होता है कि श्रम के सीमान्त उत्पाद का मूल्य यानी का VMP_L दाईं ओर खिसक जाएगा.** इस का अर्थ हुआ कि श्रम का भाव घटने पर एवं कई परिवर्तनशील संसाधन होने पर, श्रम की माँग उस स्थिति की तुलना में ज़्यादा बढ़ेगी, जब VMP_L स्थिर रहता है. दूसरे शब्दों में, एक से अधिक परिवर्तनशील संसाधन होने पर श्रम की माँग की कीमत की लोच उस स्थिति की तुलना में अधिक होती है, जब श्रम ही एकमात्र परिवर्तनशील संसाधन हो. अंत: एक से अधिक परिवर्तनशील संसाधन होने पर, एक उत्पादक के लिए श्रम का माँग-वक्र स्थिर VMP_L से निर्धारित न हो कर, लगातार खिसकते हुए VMP_L वक्रों के समूह से निर्धारित होता है. चित्र 62 में श्रम की भिन्न कीमतों पर श्रम के सीमान्त उत्पाद के मूल्य वक्रों को दिखाया गया है. इन पर आधारित माँग वक्र को बिंदीदार रेखा से दिखाया गया है. एक से अधिक परिवर्तनशील संसाधन होने पर श्रम के माँग-वक्र की लोच प्रभावित होती है परन्तु इस की ढलान ऋणात्मक ही रहती है.

श्रम की कुल माँग: क्या उत्पादकों के श्रम के माँग-वक्र को जोड़ कर, हम श्रम की कुल माँग ज्ञात कर सकते हैं? उपभोग की वस्तुओं की कुल माँग तो ऐसे ही ज्ञात की जाती है परन्तु उत्पादन के साधनों की कुल माँग ठीक ऐसे ज्ञात नहीं की जा सकती. जब हम एक उत्पादक की श्रम की माँग का अध्ययन कर रहे थे, तो हमने यह माना था कि अगर उत्पादक श्रम की कीमत कम होने पर श्रम की माँग की मात्रा बढ़ा लेता है, तो भी उत्पाद-बाज़ार पूर्ण प्रतियोगी होने के कारण उत्पाद की कीमत एवं VMP_L वक्र में कोई बदलाव नहीं होगा. क्या हम पूरे उद्योग के बारे में भी ऐसा कह सकते हैं कि श्रम के दाम घटने पर भी, उत्पाद की कीमत में कोई बदलाव नहीं होगा? इस प्रश्न पर ज़रा विचार करें. श्रम के दाम घटने पर एक उत्पादक अधिक श्रम का उपयोग करने लग जाएगा यानी उस का उत्पादन बढ़ जाएगा. सभी उत्पादक ऐसा करेंगे यानी उत्पाद-बाज़ार में कुल आपूर्ति बढ़ जाएगी. जब उत्पाद-बाज़ार में कुल आपूर्ति बढ़ जाएगी, तो निश्चित तौर पर उत्पाद का बाज़ार भाव घट जाएगा क्योंकि अधिक मात्रा तो कम दाम पर ही बिक सकती है. जब उत्पाद का बाज़ार भाव कम हो जाएगा तो स्पष्ट रूप से हर उत्पादक के श्रम के सीमान्त उत्पाद का मूल्य वक्र यानी VMP_L वक्र बाईं ओर खिसक जाएगा. श्रम के दाम बढ़ने पर ठीक इस के विपरीत स्थिति होगी. स्पष्टता के लिए इस बात को दोहरा लें. अगर श्रम के दाम घटते हैं, तो श्रम की माँग बढ़ेगी जिस के चलते उत्पादन बढ़ेगा. जब कुल उत्पादन बढ़ेगा तो उत्पाद के दाम घट जाएँगे. उत्पाद के दाम घटने का परिणाम यह होगा कि VMP_L नीचे की ओर खिसक जाएगा. इस का प्रभाव यह होगा कि श्रम के दाम घटने पर श्रम की कुल माँग बढ़ेगी परन्तु उतनी नहीं जितनी उत्पाद के दाम स्थिर रहने पर बढ़ती. इस लिए हम कह सकते हैं कि श्रम की कुल माँग की लोच, उत्पाद के दाम घटने के कारण कुछ कम हो जाएगी.

विचार करने पर आप पायेंगे कि इस का विपरीत होने पर यानी श्रम के दाम बढ़ने पर उत्पाद के दाम बढ़ जाएँगे और VMP_L ऊपर की ओर खिसक जाएगा. इस लिए श्रम की कीमत बढ़ने पर श्रम की कुल माँग घटेगी परन्तु कुछ कम घटेगी. इस का अर्थ है कि श्रम की कुल माँग की कीमत लोच इस स्थिति में भी कम ही होगी. अंत: श्रम की कीमत में बदलाव होने पर, उद्योग की माँग उत्पादकों के श्रम के माँग-वक्र का सामान्य योग न हो कर उस से कम लचीला होगा. चित्र 63 में प्रारंभिक वेतन-दर W_0 पर सभी उत्पादकों के श्रम के माँग-वक्र के सामान्य योग (अगर उत्पाद की कीमत न बदले उस स्थिति में कुल माँग को) को VMP_{L0} से दर्शाया गया है. परन्तु वास्तव में श्रम की कीमत कम होने पर उत्पादन बढ़ने से उत्पाद के दाम भी कम हो जाते हैं. VMP_{L1} एवं VMP_{L2} क्रमशः घटते वेतन-दर W_1 एवं W_2 वेतन-दर पर श्रम की कुल माँग के सामान्य योग को दर्शाते हैं. इन खिसकते VMP_L के आधार पर कुल माँग-वक्र बिंदीदार रेखा से दिखाया गया है. हम देख सकते हैं कि वेतन-दर W_0 से घट कर W_1 होने पर श्रम की कुल माँग बढ़ तो रही है अपितु उतनी नहीं बढ़ रही जितनी उत्पाद का मूल्य स्थिर रहने पर बढ़ती.

चित्र 63- पूर्ण प्रतियोगी श्रम एवं उत्पाद बाज़ार में श्रम का कुल माँग-वक्र



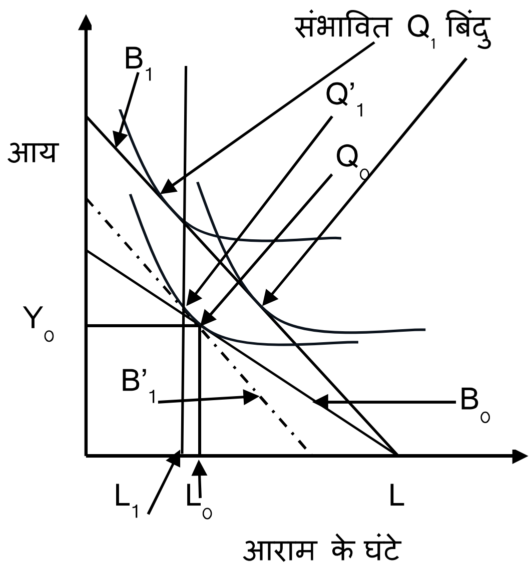
श्रम की आपूर्ति: यहाँ यह दोहराना आवश्यक है कि श्रम का मतलब केवल शारीरिक श्रम न हो कर हर तरह का मानवीय कार्य है. बोलचाल की भाषा में हम मजदूर, कर्मचारी, अधिकारी इत्यादि को अलग-अलग मानते हैं परन्तु अर्थशास्त्र में ये सब श्रम में शामिल हैं. श्रम में बौद्धिक एवं मानसिक श्रम भी शामिल है. इस लिए हस्पतालों में डाक्टरों की आपूर्ति, फिल्मों एवं नाटकों में लेखकों की आपूर्ति भी श्रम की आपूर्ति के तहत ही आयेगी. श्रम की आपूर्ति कई कारकों पर निर्भर करेगी. निश्चित तौर पर श्रम की आपूर्ति जनसँख्या पर निर्भर करेगी. श्रम की आपूर्ति इस पर भी निर्भर करेगी कि किस समाज में जनसंख्या का कितना प्रतिशत हिस्सा श्रम की आपूर्ति हेतु उपलब्ध है जिसे श्रमबल सहभागिता दर (*labour force participation rate)* कहते हैं. श्रमबल सहभागिता दर विभिन्न कारकों पर निर्भर करता है. अगर बच्चे और युवा शिक्षा ग्रहण करने के बाद ही काम करने लगते हैं, तो उस समाज में श्रमबल सहभागिता दर उस समाज से कम होगी, जहाँ अधिकांश बच्चे छोटी उम्र में काम करने लग जाते हैं. महिलाओं की श्रम बाज़ार में भागेदारी अनेक सामाजिक-सांस्कृतिक कारणों से प्रभावित होती है. विभिन्न समाजों में उत्पादक कार्य से (सेवा) निवृति की उम्र अलग-अलग हो सकती है. श्रमबल सहभागिता दर इन सब कारकों पर निर्भर करती है. परन्तु ये सामाजिक-सांस्कृतिक कारक लम्बे समय तक स्थिर रहते हैं. इस लिए हम श्रमबल सहभागिता दर को स्थिर मान कर चल सकते हैं. इस लिए अगर पूरी अर्थव्यवस्था के स्तर पर देखें तो काफ़ी हद तक यह माना जा सकता है कि श्रम की आपूर्ति स्थिर रहेगी.

परन्तु विशेष प्रकार के श्रम की आपूर्ति में थोड़े समय में ही काफी बदलाव हो सकता है. हम देखते हैं कि कभी बी.एड कालेजों में दाखिले की होड़ लगी होती है तो कभी इंजीनियरिंग कालेजों में; यद्यपि आज मुख्य तौर पर कम्पूयटर अथवा आईटी विशेषज्ञों की माँग है परन्तु कभी मैकेनिकल (यांत्रिकी) विशेषज्ञों की ऐसी ही माँग होती थी. अंत: विशेष प्रकार के श्रम की आपूर्ति को स्थिर नहीं मान सकते.

श्रम की प्रकृति भी श्रम की आपूर्ति पर प्रभाव डालती है. ऐसा मानव श्रम जिस में लम्बा प्रशिक्षण चाहिए होता है, उस में श्रम की आपूर्ति अपेक्षाकृत कम होगी बन्सिबत ऐसे काम के लिए जिस में विशेष प्रशिक्षण एवं शिक्षण की आवश्यकता नहीं होती. वातानुकूलित दफ़्तर में काम को ज़्यादा पसंद किया जाएगा बजाय धूल-मिट्टी भरे खुले वातावरण में काम करने के. स्पष्ट तौर पर किसी अर्थव्यवस्था में श्रम की आपूर्ति वहाँ की जनसंख्या के शिक्षण-प्रशिक्षण के स्तर, जनसंख्या के भौगोलिक वितरण एवं आयु वर्ग वितरण पर भी निर्भर करेगी. ऐसे कई तत्त्व हम चिह्नित कर सकते हैं जो श्रम की आपूर्ति को प्रभावित करते हैं. निश्चित तौर पर एक महत्त्वपूर्ण कारक वेतन-दर भी होगा. जितनी ज़्यादा वेतन-दर, उतनी अधिक किसी भी तरह के श्रम की आपूर्ति होगी.[59] परन्तु किसी भी उद्योग में श्रम की आपूर्ति को प्रभावित करने वाला एक मात्र कारक वेतन-दर नहीं होती. किसी भी काम से जुड़े ग़ैर-वित्तीय पक्ष, जैसे सामाजिक सम्मान, भी श्रम की आपूर्ति को प्रभावित करते हैं. परन्तु ये ग़ैर-वित्तीय तत्त्व भी आम तौर पर स्थिर रहते हैं. इस लिए वेतन-दर को श्रम की आपूर्ति का अत्यंत महत्त्वपूर्ण निर्धारक माना जाता है. ज़्यादा वेतन-दर पर श्रम की ज़्यादा आपूर्ति होगी. इस लिए श्रम के आपूर्ति-वक्र की ढलान धनात्मक होती है. श्रम की आपूर्ति को प्रभावित करने वाले अन्य चरों में बदलाव के चलते श्रम का आपूर्ति-वक्र बाएँ -दाएँ खिसकता है.

[हालाँकि आम तौर पर श्रम के व्यक्तिगत एवं बाज़ार आपूर्ति-वक्र की ढलान धनात्मक होती है परन्तु हमेशा, एवं विशेष तौर पर हर व्यक्ति के आपूर्ति-वक्र का ऐसा होना आवश्यक नहीं है. कुछ परिस्थितियों में वेतन-दर बढ़ने पर व्यक्तिगत, एवं कहीं-कहीं श्रम की कुल, आपूर्ति घट भी सकती है. इसे हम उदासीनता-वक्र की सहायता से समझ सकते हैं. एक उपभोक्ता के पास दो विकल्प होते हैं - वह काम करे अथवा आराम करे. वह अधिक काम कर के, श्रम की आपूर्ति बढ़ा कर, अधिक आय अर्जित कर के अधिक वस्तुओं का उपभोग कर सकती है अथवा काम के घंटे कम करके आराम का उपभोग (*consume leisure*) बढ़ा सकती है. दोनों वस्तु – अधिक आराम और अधिक उपभोग - सामान्य वस्तु हैं. अंत: दोनों की ज़्यादा मात्रा को प्राथमिकता दी जाएगी.

चित्र 64- काम और आराम के बीच चयन



चित्र 64 में ऐसे एक उपभोक्ता का उदासीनता मानचित्र दिखाया गया है. क्ष अक्ष पर आराम के घंटे (leisure) को नापा गया है और य अक्ष पर आय को नापा गया है. बजट-रेखा कैसी होगी? बजट-रेखा उपभोक्ता को उपलब्ध विकल्पों को दर्शाती है. मान लें कि उपभोक्ता के पास L घंटे उपलब्ध हैं जो वह या तो आराम करने में अथवा काम करने में ख़र्च कर सकता है. यह 24 घंटे भी हो सकते हैं अथवा उस से कम भी क्योंकि कुछ घंटे तो नींद इत्यादि अनिवार्य कार्य में ही उपयोग हो सकते हैं. बजट-रेखा वेतन-दर पर निर्भर करेगी. अगर व्यक्ति सारा समय आराम करता है तो उस की आय शून्य होगी और वह क्ष अक्ष पर होगा. इस के विपरीत अगर उस के आराम के घंटे शून्य हैं तो उस की आय अधिकतम होगी और वह य अक्ष पर होगा. वेतन-दर बढ़ने पर इस बजट-रेखा कि ढलान बढ़ जाएगी और उपभोक्ता कि अधिकतम आय भी बढ़ जाएगी; वेतन-दर कम होने पर ठीक इस का विपरीत होगा. ठीक उदासीनता-वक्र समीक्षा की तर्ज़ पर उपभोक्ता सब से ऊँचे उदासीनता-वक्र पर पहुँचना चाहेगा. मान लीजिये प्रारम्भिक बजट-रेखा B_0 है एवं वर्तमान संतुलन Q_0 बिंदु पर है. जहाँ उपभोक्ता L_0 घंटे आराम करता है एवं $L - L_0$ घंटे काम कर के यानी श्रम की इतनी आपूर्ति कर के, Y_0 आय अर्जित करता है. अगर

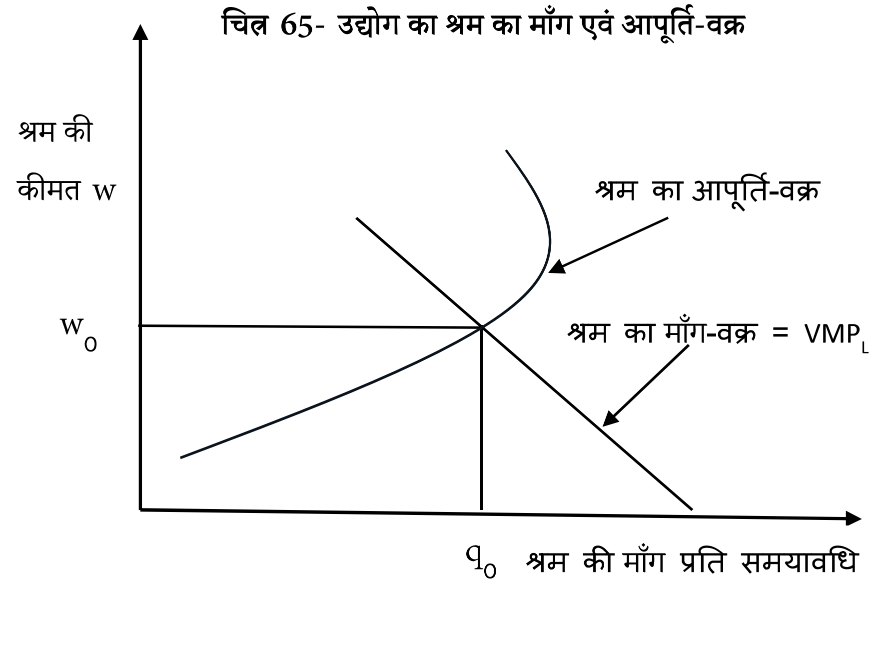
[59] कई बार कोई काम न होना, खाली होना, भले ही काम करने की कोई आर्थिक आवश्यकता न हो, भी बड़ी समस्या हो जाता है. आम तौर पर लम्बे समय तक कोई भी व्यक्ति ख़ाली रहना पसंद नहीं करता. कोई काम होना, व्यस्त बने रहना ही अपने आप में महत्त्वपूर्ण हो जाता है भले ही उस से मिलने वाला आर्थिक लाभ नगण्य हो. परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्र इसे अपवाद मान कर इस मान्यता पर चलता है कि श्रम करना एक बोझिल काम है. इस लिए अधिक काम के लिए अधिक वेतन देना आवश्यक होता है.

वेतन-दर बढ़ जाती है तो उपभोक्ता की श्रम की आपूर्ति पर क्या असर होगा? सब से पहले देखें कि बजट-रेखा पर क्या प्रभाव पड़ेगा. वेतन-दर बढ़ने पर बजट-रेखा क्ष अक्ष पर तो L बिंदु पर ही रहेगी क्योंकि काम एवं आराम के बीच वितरण के लिए उपलब्ध घंटे तो नहीं बदलेंगे, वे तो उतने ही रहेंगे. परन्तु अब सारा समय काम करने से अधिकतम आय बढ़ जाएगी. यानी बजट रखे ऊपर की ओर घूम जाएगी. नई बजट-रेखा B_1 है.

क्योंकि बजट-रेखा ऊपर की ओर मुड़ गई है, तो नया संतुलन बिंदु ऊँचे उदासीनता-वक्र पर होगा; उच्च उदासीनता-वक्र अर्थात अधिक संतुष्टि का स्तर. अब अगर हम केवल प्रतिस्थापन प्रभाव देखना चाहते हैं तो हमें नई बजट-रेखा के समानांतर ऐसी बजट-रेखा खींचनी होगी जो वास्तविक आय को स्थिर रखे. हम पढ़ चुके हैं कि ऐसी क्षतिपूर्ति दो तरीकों से हो सकती है- हिक्स के तरीके से एवं स्लटस्की के तरीके से. इस चित्र में हम ने हिक्स का तरीका अपनाते हुए क्षतिपूर्ति इस प्रकार की है कि नए वेतन-दर पर बजट-रेखा पुराने उदासीनता-वक्र को छुए. ऐसी बजट-रेखा B'_1 है जो बिंदीदार रेखा से दर्शाई गई है. क्योंकि वेतन-दर बढ़ गया है, इस लिए नई बजट-रेखा B'_1 की ढलान पुरानी बजट-रेखा B_0 से अधिक होगी एवं इस लिए वह उदासीनता-वक्र को पहले बिंदु के बाएँ ओर, Q'_1 पर छुएगी यानी वेतन-दर बढ़ने एवं वास्तविक आय स्थिर रहने पर, आराम के घंटे कम हो कर L_1 हो जाएँगे और काम के घंटे बढ़ जाएँगे.

अब अगर हम बढ़ी हुई आय का प्रभाव देखना चाहते हैं, तो हमें बजट-रेखा B_1पर ध्यान देना होगा. B'_1से B_1पर जाने में वेतन-दर में कोई बदलाव नहीं होता, इस लिए बजट-रेखा की ढलान तो वही रहती है परन्तु कुल आय का स्तर का बढ़ गया है. क्योंकि उपभोक्ता के लिए अधिक आय और अधिक आराम दोनों 'पसंद' की वस्तु हैं, इस लिए आय बढ़ने पर दोनों की खपत बढ़ेगी. यानी आराम के घंटे भी बढ़ेंगे एवं आय भी बढ़ेगी. प्रतिस्थापन प्रभाव ने आराम के घंटों को घटाया है लेकिन आय प्रभाव आराम के घंटों को बढ़ाएगा. इन दो विपरीत प्रभावों का शुद्ध असर अनिश्चित है एवं यह दोनों तरह का हो सकता है. Q_1 बिंदु Q_0 बिंदु के बाईं अथवा दाईं ओर कहीं पर भी हो सकता है. अगर प्रतिस्थापन प्रभाव भारी होगा तो वेतन-दर बढ़ने पर श्रम की आपूर्ति बढ़ जाएगी और Q_1 बिंदु Q_0 बिंदु के बाईं ओर होगा. इस के विपरीत अगर आय प्रभाव अधिक होगा, तो वेतन-दर बढ़ने पर श्रम की आपूर्ति कम हो जाएगी एवं Q_1 बिंदु Q_0 बिंदु के दाईं ओर होगा. आम तौर पर तो प्रतिस्थापन प्रभाव भारी पड़ता है और वेतन-दर बढ़ने पर श्रम की आपूर्ति बढ़ जाती है. इस लिए श्रम के आपूर्ति-वक्र की ढलान धनात्मक होती है. परन्तु आय के उच्च स्तर पर आय प्रभाव भारी पड़ सकता है और वेतन-दर बढ़ने पर श्रम की आपूर्ति कम हो सकती है. ऐसी स्थिति में श्रम का आपूर्ति-वक्र बाईं ओर मुड़ सकता है एवं इस की ढलान ऋणात्मक हो जाएगी. किसी के व्यक्तिगत श्रम आपूर्ति-वक्र के साथ ऐसा होने की सम्भावना ऊँची हो सकती है परन्तु बाज़ार आपूर्ति-वक्र के ऐसा होने की संभावना कम होती है. इस लिए आम तौर पर हम कुल/बाज़ार आपूर्ति-वक्र को धनात्मक ढलान के साथ ही दर्शाएंगे.]

चित्र 65- उद्योग का श्रम का माँग एवं आपूर्ति-वक्र



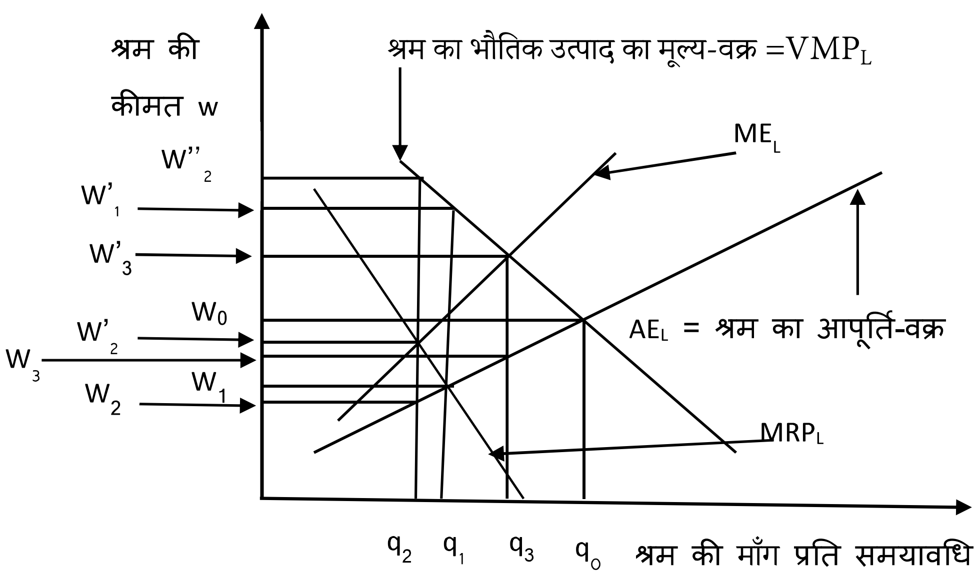
संक्षेप में, जहाँ पूरी अर्थव्यवस्था के लिए किसी संसाधन की आपूर्ति स्थिर हो सकती है, वहीं एक उद्योग के लिए संसाधन के आपूर्ति-वक्र की ढलान धनात्मक होती है एवं पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में एक उत्पादक के लिए संसाधन का आपूर्ति-वक्र शून्य ढलान एवं अनंत लोच वाला होगा. **इस लिए आपूर्ति की चर्चा करते हुए हमें यह स्पष्ट करना चाहिए कि हम किस के दृष्टिकोण से आपूर्ति को देख रहे हैं**- पूरी अर्थव्यवस्था, विशेष उद्योग अथवा एक उत्पादक के नज़रिये से. लिए.

आम तौर पर हमारी रुचि विशेष उद्योग के लिए संसाधनों के आपूर्ति-वक्र में ही होती है. चित्र 65 में एक उद्योग के लिए श्रम का माँग एवं आपूर्ति-वक्र दिखाया गया है.

श्रम का माँग-वक्र एवं आपूर्ति-वक्र जहाँ परस्पर एक दूसरे को काटते हैं, वहाँ पर श्रम बाज़ार संतुलन में होगा. चित्र 65 के अनुसार इस स्थिति में वेतन-दर w_0 होगी एवं श्रम की मात्रा q_0 होगी. चित्र से स्पष्ट है कि दोनों बाज़ार पूर्ण प्रतियोगी होने पर संतुलन की स्थिति में श्रमिकों की वेतन-दर श्रम के भौतिक उत्पाद के मूल्य के बराबर होती है. यानी जितना श्रम का उत्पादन में सीमान्त योगदान होता है, उसे वेतन के रूप में उतना ही भुगतान होता है.

एकाधिकारी उत्पाद-बाज़ार एवं पूर्ण प्रतियोगी श्रम बाज़ार : अब हम अन्य तरह के बाज़ारों में श्रम की माँग एवं आपूर्ति का अध्ययन करेंगे. सब से पहले हम एकाधिकारी उत्पाद-बाज़ार परन्तु पूर्ण प्रतियोगी श्रम बाज़ार को लेते हैं. **प्रश्न उठ सकता है कि एकाधिकारी उत्पाद-बाज़ार परन्तु पूर्ण प्रतियोगी श्रम बाज़ार कैसे संभव है?** पूर्ण प्रतियोगी श्रम बाज़ार का अर्थ है कि श्रम के अनेक ख़रीददार हैं. अगर श्रम बाज़ार में कई क्रेता हैं तो उत्पाद-बाज़ार में एकाधिकार कैसे हो सकता है? ऐसा उस परिस्थिति में संभव होता है जब अपने-अपने उत्पाद के एकाधिकारी एक जैसे श्रम का उपयोग करते हैं. उदाहरण के लिए, सभी उत्पादकों को हिसाब-किताब रखने के लिए लेखाकार की आवश्यकता होती है. इस परिस्थिति में लेखाकारों के बाज़ार में तो उत्पादक पूर्ण प्रतियोगी स्थिति में होंगे जबकि अपने-अपने उत्पाद-बाज़ार में वे एकाधिकारी हो सकते हैं.

चित्र 66- भिन्न बाज़ारों में श्रम की माँग एवं आपूर्ति



इस स्थिति में श्रम के आपूर्ति-वक्र में तो कोई बदलाव नहीं होगा परन्तु श्रम के माँग-वक्र में बदलाव होगा. श्रम उत्पाद-बाज़ार कैसा भी हो, किसी भी उत्पादक के लिए अधिकतम लाभ का सूत्र तो वही रहता है- श्रम इतना ही उपयोग होना चाहिए कि श्रम का सीमान्त राजस्व श्रम की सीमान्त लागत के समान हो. उत्पाद-बाज़ार की प्रकृति के अनुसार श्रम के सीमान्त राजस्व का स्वरूप बदलता रहता है. पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में अधिक उत्पाद-बाज़ार भाव पर बेचा जा सकता है परन्तु एकाधिकारी उत्पाद-बाज़ार में अधिक उत्पाद बेचने के लिए कीमत घटानी पड़ेगी. कीमत कम करने का प्रभाव यह होगा कि श्रम का सीमान्त राजस्व श्रम के सीमान्त भौतिक उत्पाद के मूल्य से कम होगा क्योंकि न केवल उत्पादन की अतिरिक्त इकाइयाँ बल्कि सभी इकाइयाँ कम दाम पर बेची जाएँगी (कीमत विभेद की स्थिति में अपवाद स्वरूप ऐसा नहीं होगा). इस का प्रभाव यह होगा कि VMP_L एवं MRP_L एक समान नहीं रहेंगे. इस स्थिति में श्रम का माँग-वक्र VMP_L वक्र न होकर उस से नीचे स्थित MRP_L के समान होगा. चित्र 66 के अनुसार इस स्थिति में वेतन-दर w_1 होगी एवं श्रम की मात्रा q_1 होगी जो पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार की वेतन-दर एवं माँग, दोनों से कम हैं (w_0 एवं q_0; इस चित्र के अन्य वक्रों एवं बिन्दुओं का परिचय आगे दिया जाएगा. फ़िलहाल के लिए VMP_L, MRP_L एवं श्रम का आपूर्ति-वक्र, इन तीन पर ध्यान दें). श्रम उपयोग की q_1 मात्रा पर श्रम के सीमान्त भौतिक उत्पाद का मूल्य w'_1 है जबकि श्रमिक को किया जाने वाला भुगतान इस से कम है. यानी कि उत्पाद-बाज़ार एकाधिकारी होने पर, श्रमिकों की वेतन-दर उत्पादन में उन

के सीमान्त उत्पादन के मूल्य से कम होती है. जोन रोबिंसन (Joan Robinson) नामक प्रसिद्ध (महिला) अर्थशास्त्री ने इस अंतर को श्रमिकों का एकाधिकारी शोषण (Monopolistic exploitation) कहा है. परन्तु इसे एकाधिकारी शोषण कहना उपयुक्त नहीं है क्योंकि सीमान्त राजस्व उत्पाद एवं सीमान्त उत्पाद के मूल्य में जो अंतर है, यह एकाधिकारी को प्राप्त नहीं होता. इस अंतर के मूल में उत्पाद के माँग-वक्र का ऋणात्मक ढलान है जिस के लिए एकाधिकारी उत्पादक ज़िम्मेदार नहीं है.

ऊपर हम ने पाया है कि उत्पादन बाज़ार में एकाधिकार होने से श्रम का उपयोग कम हो जाता है. इस से स्पष्ट है कि किसी भी अर्थव्यवस्था में श्रम की माँग एवं इस से जुडी बेरोजगारी की समस्या का कारण केवल अधिक जनसँख्या न हो कर बाज़ार की प्रकृति भी हो सकती है.

श्रम बाज़ार में एकाधिकारी क्रेता: अगर श्रम बाज़ार में विक्रेता तो अनेक हों परन्तु श्रम का क्रेता एक हो, तो क्या होगा? **एकाधिकारी क्रेता होने की स्थिति को क्रेता एकाधिकार (monopsony) कहते हैं.** क्योंकि इस स्थिति में श्रम के विक्रेताओं की स्थिति में कोई बदलाव नहीं हुआ है, इस लिए इस स्थिति में श्रम की आपूर्ति में कोई बदलाव नहीं होगा. श्रम के क्रेताओं की संख्या में बदलाव होने से श्रम की माँग प्रभावित होगी. इस का अध्ययन करने के लिए हमें एकाधिकारी क्रेता के लिए श्रम की सीमान्त लागत के बारे में सोचना होगा. पूर्ण प्रतियोगी श्रम बाज़ार में श्रम का बाज़ार भाव ही श्रम की सीमान्त लागत होती है क्योंकि हर क्रेता बाज़ार भाव पर जितना चाहे श्रम ख़रीद सकता है. परन्तु अगर एक ही क्रेता है, तो यह स्थिति नहीं रहेगी. अब श्रम का आपूर्ति-वक्र क्रेता की औसत श्रम लागत इंगित करेगा. क्योंकि श्रम के आपूर्ति-वक्र की ढलान धनात्मक है, इस लिए श्रम की औसत लागत भी बढ़ती जाएगी. इस का स्पष्ट अर्थ हुआ कि क्रेता के लिए श्रम की सीमान्त लागत अथवा श्रम पर सीमान्त ख़र्च, ME_L, भी बढ़ती जाएगा एवं औसत लागत-वक्र से ऊँचा होगा.[60]

श्रम बाज़ार का एकाधिकारी क्रेता, उत्पाद-बाज़ार में एकाधिकारी भी हो सकता है एवं उसे उत्पाद-बाज़ार में पूर्ण प्रतियोगिता का सामना भी करना पड़ सकता है. **श्रम बाज़ार का एकाधिकारी क्रेता, उत्पाद-बाज़ार में एकाधिकारी हो, यह तो स्वाभाविक प्रतीत होता है परन्तु वह पूर्ण प्रतियोगी कैसे हो सकता है?** श्रम के एकाधिकारी क्रेता को उत्पाद-बाज़ार में उस स्थिति में पूर्ण प्रतियोगिता का सामना करना पड़ सकता है जब एक उत्पाद एक से अधिक तकनीक से पैदा किया जा सकता है. उदाहरण के तौर पर बिजली उद्योग. बिजली कोयले से भी बन सकती है, सौर ऊर्जा से भी एवं परमाणु ऊर्जा से भी. यह संभव है कि परमाणु ऊर्जा उत्पादक परमाणु वैज्ञानिकों के बाज़ार में एकाधिकारी क्रेता हो परन्तु बिजली उद्योग में उसे पूर्ण प्रतियोगिता का सामना करना पड़े. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में भी यह स्थिति बन सकती है. घरेलू बाज़ार में एकाधिकारी उत्पादक होने के चलते श्रम का एकल क्रेता हो परन्तु अंतर्राष्ट्रीय उत्पाद बाज़ार में उसे पूर्ण प्रतियोगिता का सामना करना पड़े. हम इन दोनों परिस्थितियों का एक-एक कर के अध्ययन करेंगे.

पहले हम मान लेते हैं कि श्रम बाज़ार का एकाधिकारी क्रेता, उत्पाद-बाज़ार में भी एकाधिकारी विक्रेता है. श्रम क्रेता श्रम की सीमान्त लागत की तुलना श्रम के सीमान्त राजस्व उत्पाद से करेगा. चित्र 66 के अनुसार उत्पाद-बाज़ार एकाधिकारी होने कि स्थिति में श्रम की माँग मात्र q_2 रह जाएगी क्योंकि श्रम का इस से अधिक उपयोग होने पर श्रम की सीमान्त लागत, श्रम के सीमान्त राजस्व से अधिक हो जाएगी. इस स्थिति में श्रम का बाज़ार भाव क्या होगा? श्रम का बाज़ार भाव श्रम के आपूर्ति-वक्र से ज्ञात होगा जो चित्र 66 के अनुसार W_2 है. चित्र से स्पष्ट है कि श्रम बाज़ार में एकाधिकारी क्रेता और उत्पाद बाज़ार में एकाधिकारी उत्पादक होने पर श्रम का उपयोग एवं श्रम की भुगतान-दर घट जाती है. इस स्थिति में श्रम का बाज़ार भाव, श्रम के सीमान्त राजस्व जो W'_2 है एवं श्रम के सीमान्त भौतिक उत्पाद मूल्य, जो W''_2 है, दोनों से कम है. W'_2 एवं W_2 के अंतर हो क्रेता एकाधिकारी शोषण (Monopsonistic exploitation) कहा जाता है क्योंकि इस का आधार श्रम बाज़ार में क्रेता की एकाधिकारी शक्ति है. W''_2 एवं W'_2 के बीच के अंतर को पहले की तरह एकाधिकारी शोषण कहा जाता है.

अगर श्रम का एकाधिकारी क्रेता, उत्पाद-बाज़ार में पूर्ण प्रतियोगिता का सामना करता है, तब स्थिति क्या होगी? ऐसी स्थिति में श्रम के एकाधिकारी क्रेता का माँग वक्र VMP_L के समान ही होगा. इस लिए इस स्थिति में श्रम का उपयोग q_3 होगा क्योंकि इस स्तर पर

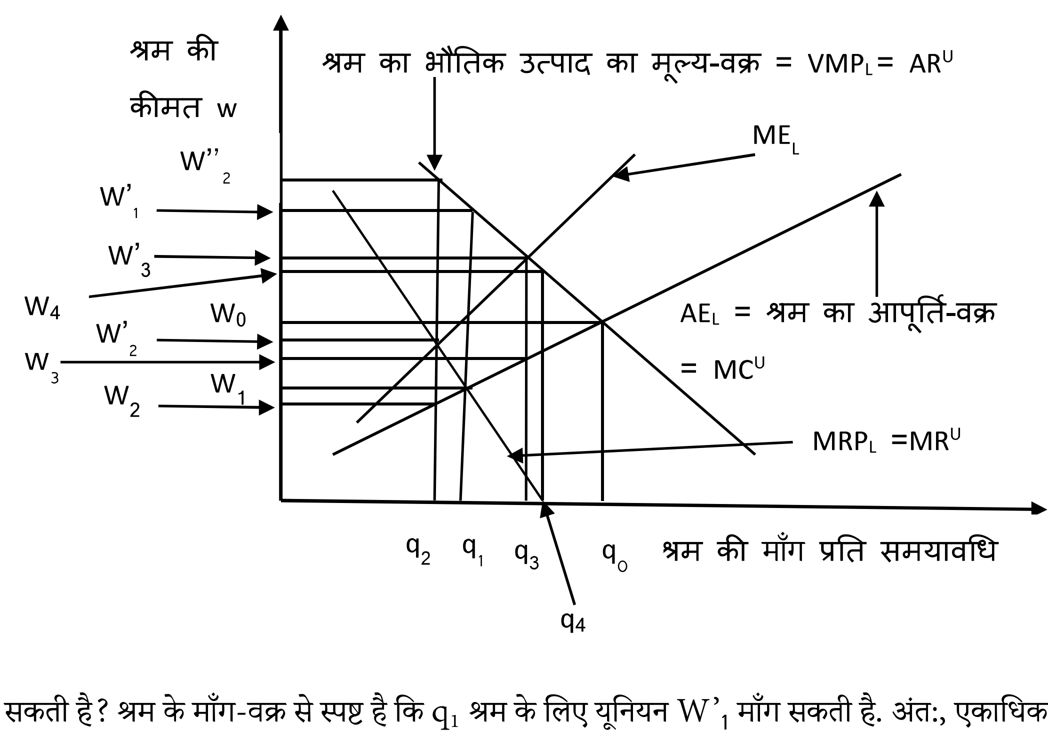
[60] क्रेता एकाधिकारी बुनियादी तौर पर ऐसे ही निर्णय लेता है फिर चाहे श्रम ख़रीदना हो या कोई उत्पाद.

VMP_L, यानी श्रम के सीमान्त भौतिक उत्पाद का मूल्य श्रम पर सीमान्त ख़र्च अर्थात ME_L के समान है. इस स्तर पर श्रम के आपूर्ति-वक्र से हमें पता चलता है कि वेतन-दर W_3 होगी. वेतन-दर यानी W_3 एवं श्रम के सीमान्त भौतिक उत्पाद मूल्य यानी W'_3 के अंतर को क्रेता एकाधिकारी शोषण कहा जाता है. इस स्थिति में एकाधिकारी शोषण कितना होगा? क्योंकि वर्तमान स्थिति में उत्पाद-बाज़ार पूर्ण प्रतियोगी है, इस लिए इस स्थिति में एकाधिकारी शोषण नहीं है.

श्रम का एकाधिकारी विक्रेता एवं अनेक क्रेता: अगर श्रमिक यूनियन बना लें, तो प्रभावी रूप से वे भी श्रम के एकाधिकारी विक्रेता हो जाएँगे. अगर श्रमिक यूनियन का सामना पूर्ण प्रतियोगी उत्पादकों से हो तो क्या होगा? इस स्थिति में यूनियन की दृष्टि से श्रम का माँग-वक्र 'यूनियन का औसत राजस्व-वक्र' हो जाएगा जिसे चित्र 67 (यह चित्र, कुछ बदलाव के साथ, चित्र 66 जैसा ही है) में AR^U से दर्शाया गया है (U यूनियन इंगित करता है). क्योंकि इस की ढलान ऋणात्मक है तो यूनियन का सीमान्त राजस्व-वक्र इस के नीचे होगा. श्रम क्रेता का सीमान्त राजस्व उत्पाद वक्र ही यूनियन का सीमान्त राजस्व-वक्र हो जाएगा (क्योंकि सीमान्त एवं औसत फलन का परस्पर सम्बन्ध एक जैसा ही होता है भले ही फलन का नाम कुछ भी हो). इस लिए हम MRP_L को MR^U भी कह सकते हैं.

अगर यूनियन का उद्देश्य भी 'यूनियन' के लाभ को अधिकतम करना मान जाए, तो यह कितना श्रम उपलब्ध कराना चाहेगी? अधिकतम लाभ के लिए सीमान्त राजस्व की तुलना सीमान्त लागत से की जाती है. यूनियन के लिए श्रम को उपलब्ध कराने की सीमान्त लागत क्या है? हम जानते हैं कि पूर्ण प्रतियोगी उत्पादक के लिए (औसत लागत वक्र से ऊपर का) का सीमान्त लागत वक्र ही उस का आपूर्ति-वक्र होता है, यानी आपूर्ति-वक्र ही सीमान्त लागत-वक्र होता है. इस लिए श्रम का आपूर्ति-वक्र ही श्रमिक यूनियन का सीमान्त लागत वक्र होगा.

चित्र 67- श्रमिक यूनियन एवं अनेक क्रेता की स्थिति में श्रम की माँग एवं आपूर्ति



इस परिस्थिति में श्रमिक यूनियन कितना श्रम उपलब्ध कराना चाहेगी और कितना वेतन माँग सकती है? अधिकतम लाभ के लिए यूनियन उतना श्रम उपलब्ध कराना चाहेगी जहाँ उस का सीमान्त राजस्व उस की सीमान्त लागत के समान हो एवं उस के बाद सीमान्त लागत से कम हो? चित्र 67 में यह मात्रा है q_1. इतने श्रम के लिए श्रमिक यूनियन कितना वेतन माँग सकती है? श्रम के माँग-वक्र से स्पष्ट है कि q_1 श्रम के लिए यूनियन W'_1 माँग सकती है. अंत:, एकाधिकारी श्रम विक्रेता यूनियन, अगर अपना लाभ अधिकतम करना चाहती है, तो वह श्रम की q_1 मात्रा की आपूर्ति W'_1 कीमत पर करेगी. यह बिंदु पूर्ण प्रतियोगी श्रम क्रेता के माँग वक्र के अनुरूप है. इस लिए संतुलन यहीं पर होगा.

क्या यूनियन बनने से श्रमिकों को लाभ होगा? अब तक की चर्चा में हम ने यह माना है कि श्रमिक यूनियन भी लाभ अधिकतम करने वाले उत्पादक की तरह काम करती है यानी श्रम की बिक्री से प्राप्त होने वाले राजस्व एवं श्रम उपलब्ध कराने के लिए आवश्यक लागत के अंतर को अधिकतम करने के उद्देश्य से काम करती है. परन्तु क्या ऐसी यूनियन श्रमिकों के लिए भी लाभकारी होती है? यूनियन

बनने पर वेतन-दर बढ़ने की संभावना तो है और अगर उत्पादकों में पूर्ण प्रतियोगिता है, तो वेतन-दर निश्चित तौर पर बढ़ेगी, परन्तु वेतन-दर बढ़ने से श्रम की माँग तो घट ही जाती है. चित्र 67 के अनुसार श्रम बाज़ार एवं उत्पाद-बाज़ार पूर्ण प्रतियोगी होने पर श्रम की माँग q_0 होती, जो यूनियन बनने पर घट कर q_1 रह जाती है. अब दो परिस्थितियाँ बन सकती हैं. एक उपाय तो यह हो सकता है कि श्रम की माँग घटने पर कार्यरत श्रमिकों की संख्या घट जाए. निश्चित तौर पर जिन को नौकरी से हाथ धोना पड़ेगा, वे यूनियन का विरोध करेंगे. दूसरा उपाय यह हो सकता है कि श्रमिकों की संख्या में कटौती न कर के, प्रति श्रमिक काम के घंटे कम कर दिए जाएँ. इस स्थिति में छटनी किसी की नहीं होगी, वेतन-दर बढ़ जाएगी और काम के घंटे कम हो जाएँगे. अगर श्रमिक वर्ग को मिलने वाला कुल वेतन बढ़ जाता है, तो सभी श्रमिकों का वेतन बढ़ जाएगा और काम के घंटे कम हो जाएँगे. यानी यूनियन का बनना श्रमिकों के लिए लाभकारी होगा. परन्तु क्या हम कह सकते हैं कि श्रमिक वर्ग को मिलने वाला कुल वेतन अवश्य बढ़ जाएगा?

वेतन की दर बढ़ने पर श्रम की माँग घटेगी परन्तु श्रमिक वर्ग (हम एक श्रमिक को मिलने वाले कुल वेतन की बात नहीं कर रहे) को मिलने वाले कुल वेतन पर क्या प्रभाव पड़ेगा? यह निर्भर करेगा श्रम की माँग की लोच पर. हम देख चुके हैं कि दाम बढ़ने पर राजस्व तभी बढ़ता है जब माँग की लोच 1 से कम हो. **इस लिए वेतन-दर बढ़ने और श्रम की माँग होने पर, श्रमिक वर्ग का कुल वेतन तभी बढ़ेगा, अगर श्रम की माँग लोच 1 से कम हो. अन्यथा यूनियन बनने से वेतन-दर बढ़ने पर भी श्रमिक वर्ग एवं श्रमिक दोनों का कुल वेतन घट जाएगा.** क्या माँग की लोच 1 से कम होने पर भी यूनियन श्रमिक वर्ग को कुल वेतन का भुगतान बढ़ाने में सफ़ल हो सकती है? इस की पड़ताल हम एक विषयांतर के बाद करेंगे.

द्विपक्षीय/दो-तरफा एकाधिकार (bilateral monopoly): ऐसे बाज़ार को, जहाँ क्रेता एवं विक्रेता दोनों एकाधिकारी हों यानी क्रेता भी एक हो और विक्रेता भी एक हो, द्विपक्षीय/दो-तरफा एकाधिकार (bilateral monopoly) कहते हैं. अगर श्रम बाज़ार में द्विपक्षीय एकाधिकार हो जाए, तो क्या होगा? यानी, अगर श्रमिक यूनियन का सामना फैक्टरी संचालकों की यूनियन से हो, तो क्या होगा? हम देख चुके हैं कि एकाधिकारी श्रम क्रेता यानी फैक्टरी संचालकों की यूनियन के लिए उपयुक्त स्तर है (q_2, w_2). इस की तुलना अगर हम श्रमिक यूनियन के इष्टतम स्तर (q_1, W'_1) से करते हैं, तो पाते हैं **दोनों एकाधिकारियों के इष्टतम स्तर में अंतर है.** क्रेता कम श्रम कम दाम पर ख़रीदना चाहते हैं. यूनियन उस से अधिक श्रम उपलब्ध कराना चाहती है एवं दाम भी अधिक चाहती है. बाज़ार संतुलन कहाँ पर होगा? हालाँकि दोनों के इष्टतम स्तर में अंतर है परन्तु **दोनों को एक दूसरे की बात मानने में कोई नुकसान भी नहीं है.** अगर बाज़ार भाव क्रेता एकाधिकारी के इष्टतम स्तर अनुसार, यानी वेतन-दर w_2 एवं श्रम की माँग q_2) होता है, तो भी श्रमिकों को हानि नहीं हो रही क्योंकि यह श्रमिकों के आपूर्ति-वक्र के अनुरूप है. इस के विपरीत अगर श्रमिक यूनियन अपनी बात मनवाने में सफ़ल होती है, तो भी यह उत्पादकों के लिए हानि का सौदा नहीं होगा क्योंकि तब भी वेतन एवं श्रम की आपूर्ति उत्पादकों के माँग-वक्र के अनुरूप होगी.

इस स्थिति में होगा क्या? दोनों एकाधिकारी आपस में मोल-भाव करेंगे, सौदेबाजी करेंगे, अपनी बात मनवाने के लिए एक दूसरे को धमकी देंगे परन्तु बीच के किसी दाम पर समझौता करने के लिए तैयार रहेंगे. इस लिए यदि श्रम बाज़ार में क्रेता और विक्रेता दोनों एकाधिकारी हैं, तो बाज़ार भाव की गणना अनिश्चित है एवं यह दोनों के बीच की सौदेबाजी पर निर्भर करेगा.[61]

श्रमिक यूनियन का उद्देश्य क्या हो? क्या यूनियन के 'लाभ' अधिकतम करना ही श्रमिक यूनियन का एकमात्र उद्देश्य हो सकता है या श्रमिक यूनियन का कोई अन्य वैकल्पिक उद्देश्य भी हो सकता है? उदाहरण के लिए अगर श्रमिक यूनियन श्रम की माँग को अधिकतम करना चाहे यानी यह चाहे कि ज़्यादा से ज़्यादा लोगों को काम मिले, तो क्या होगा? उस स्थिति में वेतन दर w_0 और श्रम की मांग q_0 होगी जो बिना यूनियन की स्थिति के समान ही है. इस से बेहतर स्थिति, चाहे उच्चतर वेतन-दर के रूप में अथवा श्रम की उच्चतर माँग के रूप में, तभी हो सकती है जब श्रमिक यूनियन श्रम क्रेता को अपने माँग-वक्र से ऊपर उठने को विवश कर दे. ऐसा किन परिस्थितियों में हो सकता है, इस की चर्चा हम कुछ समय बाद करेंगे. अगर ऐसा संभव न हो, यानी श्रम केता को उस के अपने माँग वक्र से ऊपर उठने को विवश

[61] दोतरफा एकाधिकार की स्थिति में बुनियादी तौर पर बाज़ार ऐसे ही काम करता है फिर चाहे वह श्रम बाज़ार हो अथवा उत्पाद बाज़ार.

करना संभव न हो, तो श्रम की अधिकतम माँग वही होगी और उसी वेतन-दर पर होगी जो पूर्ण प्रतियोगी श्रम बाज़ार में होती यानी बिना यूनियन के होती.

यूनियन का एक अन्य वैकल्पिक उद्देश्य यह हो सकता है कि वह श्रमिक वर्ग के कुल वेतन को अधिकतम करना चाहे. यह कहाँ पर होगा? श्रमिक वर्ग को मिलने वाला कुल वेतन अथवा यूनियन का कुल राजस्व वहाँ अधिकतम होगा जहां यूनियन का सीमान्त राजस्व, MR^U (अथवा MRP_L) शून्य हो जाए. इस स्थिति में श्रम की माँग q_4 होगी (जो कि पूर्ण प्रतियोगी स्तर से कम है) और वेतन-दर w_4 होगी, जो बिना यूनियन की स्थिति से ज़्यादा है. श्रमिक वर्ग को कुल भुगतान भी बिना यूनियन की स्थिति से बेहतर होगा. इस परिस्थिति में यूनियन श्रमिकों के हित में हो सकती है बशर्ते की प्रति-व्यक्ति काम के घंटे घट जाएँ परन्तु किसी को नौकरी से न हटाना पड़े. परन्तु सातों दिन एवं 24 घंटे चलने वाली उत्पादन प्रक्रिया में आम तौर पर ऐसा भी नहीं होता.

क्या कोई ऐसी परिस्थिति भी हो सकती है जिस में यूनियन वेतन-दर बढ़वा ले परन्तु श्रम की माँग में कमी न आने दे? दो परिस्थितियों में ऐसा हो सकता है. अगर यूनियन अधिक वेतन-दर की माँग के साथ श्रमिकों की उत्पादकता को बढ़ाने का आश्वासन दे, तो ऐसा हो सकता है कि वेतन-दर भी बढ़ जाए और श्रम की माँग भी कम न हो. अगर श्रमिकों की उत्पादकता बढ़ती है तो MRP_L ऊपर खिसक जाएगा जिस का प्रभाव यह होगा कि श्रम की माँग ऊपर की ओर खिसक जाएगी. अगर पर्याप्त मात्रा में श्रम की उत्पादकता बढ़ती है, तो उच्च वेतन-दर उत्पादक के लिए भी 'लाभकारी' हो सकता है. परन्तु श्रमिकों की उत्पादकता कैसे बढ़ सकती है? अगर श्रमिकों की संतुष्टि का स्तर सुधरता है, तो कुछ हद तक श्रमिकों की उत्पादकता बढ़ सकती है. इस लिए कई बार वेतन-दर वृद्धि के समझौतों के साथ उत्पादकता बढ़ाने की शर्त जुड़ी होती है.

परन्तु क्या श्रमिकों की उत्पादकता बढ़ाए बिना एवं श्रम के उपयोग को घटाए बिना भी वेतन-दर बढ़ाया जा सकता है? ऐसा तभी हो सकता है, जब उत्पादकों को उन के श्रम के माँग-वक्र से ऊपर उठने को विवश किया जा सके. चित्र 67 से यह स्पष्ट है कि अगर उत्पादकों को अपने श्रम के माँग-वक्र से ऊपर उठना पड़ता है, तो निश्चित तौर पर उन के लाभ कम हो जाएँगे. अगर q_0 श्रमिकों को w_0 से अधिक की दर से भुगतान करना पड़ता है तो निश्चित तौर पर उत्पादक के लाभ घट जाएँगे क्योंकि उत्पादक के अधिकतम लाभ तो तभी होंगे जब q_0 का उपयोग w_0 के दाम पर हो. परन्तु अगर उत्पादक अतिरिक्त लाभ कमा रहा है, जिस की संभावना ग़ैर-पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में काफी होती है, तो वह w_0 से अधिक दाम भी दे सकता है. ऐसा करने पर उस के लाभ कम ज़रूर हो जाएँगे परन्तु क्योंकि वह अतिरिक्त लाभ कमा रहा है, इस लिए फिर भी उस के लाभ बने रह सकते हैं. इस लिए अगर श्रम का क्रेता उत्पाद-बाज़ार में एकाधिकार रखता है अथवा कुछ हद तक रखता है एवं **अतिरिक्त लाभ कमा रहा है, तो श्रमिक यूनियन उस को बिना श्रम के प्रयोग में कमी के वेतन-दर बढ़ाने के लिए विवश कर सकती है. परन्तु अगर उत्पादक अतिरिक्त लाभ नहीं कमा रहा, जैसा कि पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में होता है, तब उत्पादक को लम्बे समय तक उस के श्रम के माँग-वक्र से ऊपर उठने को विवश नहीं किया जा सकता.** [62]

पिछले कुछ पृष्ठों में हम ने भिन्न-भिन्न बाज़ारों के सन्दर्भ में श्रम की माँग एवं आपूर्ति की चर्चा की है. इस अध्याय के शुरू में हमने यह स्पष्ट किया था कि आज के प्रचलित अर्थशास्त्र में श्रम, भूमि एवं पूँजी को एक जैसा माना जाता है. इस लिए श्रम के सन्दर्भ में उपरोक्त चर्चा अन्य उत्पादन के साधनों की माँग एवं आपूर्ति पर भी लागू होती है. परन्तु भूमि एवं पूंजी की कुछ विशिष्टता भी है जिस के चलते प्रचलित अर्थशास्त्र में भी लगान (rent), ब्याज एवं लाभ जैसे भिन्न-भिन्न शब्द प्रयोग किए जाते हैं. अब हम इन की चर्चा करेंगे.

ब्याज (interest)[63]: प्रचलित भाषा में ब्याज शब्द का प्रयोग पूँजी अथवा पैसे के प्रयोग के लिए किए गए भुगतान के लिए किया जाता है. आधुनिक अर्थशास्त्र के अनुसार पूँजी एवं श्रम दोनों उत्पादन के संसाधन हैं एवं दोनों की कीमत का निर्धारण एक ही तरीके

---

[62] आम तौर पर यूनियन के दबाव में वेतन बढ़ाने के बाद उत्पादक तुरंत श्रम की माँग में कटौती न कर के भविष्य में भर्ती कम करते हैं, सेवानिवृति से ख़ाली हुए पदों को भरने में कटौती करते हैं अथवा तकनीकी परिवर्तन कर के श्रम की माँग कम करते हैं.

[63] यहाँ पर हम केवल इकाई आधारित अर्थशास्त्र के नज़रिये से ब्याज का अध्ययन करेंगे. समग्र अर्थशास्त्र के नज़रिये से ब्याज की व्याख्या में कई अन्य तत्व भी शामिल होते हैं.

से होता है- उन की सीमान्त उत्पादकता के आधार पर; सीमान्त राजस्व उत्पाद एवं सीमान्त ख़र्च की तुलना पर. इस लिए पूँजी को किए जाने वाले भुगतान का निर्धारण भी श्रम के भुगतान सरीखा ही होगा. काफ़ी हद तक ऐसा ही होता है. परन्तु **पूँजी एवं श्रम में महत्त्वपूर्ण अंतर भी है.** श्रम शक्ति की सेवाएँ एक समय अवधि के लिए ली जाती हैं, श्रमिक को नहीं ख़रीदा जाता. इस लिए श्रम के लिए किए गए भुगतान से एक समय में ही उत्पादन में वृद्धि होती है. आज रखे श्रमिक से आज के उत्पादन में ही वृद्धि होगी, कल नहीं. इस के विपरीत मशीन किराए पर भी ली जा सकती है और ख़रीदी भी जा सकती है. अगर मशीन उत्पादन अवधि के लिए किराए पर ली जाए, तो उस की माँग एवं उस को किए जाने वाले भुगतान का निर्धारण ठीक वैसे ही होगा जैसे श्रम का. परन्तु अगर मशीन ख़रीदी जाती है, तो पूँजी निवेश लम्बे समय तक उत्पादन में वृद्धि करता है.

प्रश्न उठता है कि ख़रीदी गई मशीन के लिए किए गए पूँजी निवेश की सीमान्त उत्पादकता अथवा पूँजी के सीमान्त राजस्व उत्पाद की गणना कैसे की जाए? क्या हम मशीन के जीवन काल में उस के प्रयोग से विभिन्न समय पर अर्जित किए गए सीमान्त राजस्व उत्पाद को जोड़ कर, इस की गणना कर सकते हैं? इस प्रश्न का जवाब ढूँढने में एक उदाहरण सहायक होगा. अगर हमारे सामने दो विकल्प हों, अभी 100 रुपये ले लें अथवा 1 साल बाद 100 रुपये ले लें, तो आम तौर पर हम आज ही लेना पसंद करेंगे.[64] हाँ, अगर भविष्य में 100 रुपये की बजाय 125 रुपये मिलने का विकल्प हो तो स्थिति बदल सकती है. इस लिए हम यह मान कर चलते हैं कि **मनुष्य वर्तमान भुगतान को भविष्य के भुगतान के मुकाबले प्राथमिकता देता है.** इसी बात को दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि **हम भविष्य के भुगतान को कम कर के आंकते हैं एवं भविष्य में मिलने वाली राशि का मूल्य घटा (discount) दिया जाता है. इस लिए अलग-अलग समय पर मिले सीमान्त उत्पाद राजस्व को जोड़ कर किसी मशीन से मिलने वाले सीमान्त राजस्व उत्पाद की गणना नहीं की जा सकती.**

तो फिर लम्बे समय तक काम आने वाले किसी संसाधन की सीमान्त उत्पादकता की गणना कैसे की जाए?[65] इस प्रश्न पर विचार करने से पहले यह समझ लें कि ऐसा नहीं है कि केवल सीमान्त राजस्व उत्पाद भिन्न-भिन्न समय काल में प्राप्त होता है, लागत भी भिन्न-भिन्न समय काल में देनी पड़ सकती हैं. 'किश्तों में ख़रीद' का प्रचलन इस का एक उदाहरण है. पूरा दाम दे कर मशीन ख़रीदने के बाद भी, उस पर सालाना कुछ ख़र्च करना पड़ सकता है. परन्तु गणना की सुविधा के लिए हम यह मान लेते हैं कि लागत एक मुश्त देनी पड़ती है और राजस्व भिन्न-भिन्न समय काल में अर्जित होता है. लागत ख़र्च भी अलग-अलग समय पर होने पर वही विधि अपनाई जा सकती है जो राजस्व के सन्दर्भ में अपनाई जाती है, जिस का अध्ययन हम नीचे करेंगे. दूसरा तरीका यह हो सकता है कि मशीन ख़रीदी के बाद होने वाले सालाना ख़र्च को उस वर्ष मिलने वाले सीमान्त राजस्व उत्पाद से घटाया जा सकता है. ये दोनों तरीके समतुल्य हैं.

---

[64] आम तौर पर ऐसा होता है परन्तु हमेशा ऐसा हो यह अनिवार्य नहीं है. मान लें कि मेरे घर में तोरी की बेल लगी हुई है एवं उस से हर हफ्ते पर्याप्त मात्रा में तोरी उतर रही हैं. पास में कोई बाज़ार भी नहीं हैं जहाँ तोरी बेची जा सकती हो. अब अगर मेरे सामने दो विश्वसनीय विकल्प हों कि या तो एक किलो तोरी अभी ले लो अथवा एक किलो तोरी कुछ समय बाद में ले लेना. इस स्थिति में मेरा चुनाव कुछ समय बाद में लेने का हो सकता है क्योंकि फ़िलहाल तो मेरे पास ही पर्याप्त मात्रा में तोरी उतर रही हैं. बल्कि यह भी हो सकता है कि अब की तुलना में कुछ समय बाद में एक किलो के मुकाबले कम तोरी लेने को भी तैयार हो सकता हूँ. यह स्थिति केवल तोरी में नहीं अपितु किसी भी ख़राब हो जाने वाली वस्तु के साथ हो सकती है. परन्तु इन परिस्थितियों को अपवाद मान कर प्रचलित अर्थशास्त्र नज़रअंदाज़ कर देता है एवं यह मानता है कि इन्सान भविष्य के मुकाबले वर्तमान भुगतान को प्राथमिकता देता है.

[65] यह समस्या उत्पादन के साधनों के साथ ही नहीं उत्पन्न होती. उपभोग में भी हो सकती है. समोसे और जूतों की तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है. समोसे को ख़रीदा, खाया और ख़त्म. जब कि जूता लम्बे समय तक अतिरिक्त उपयोगिता/संतुष्टि देता है. ध्यान दें कि उपभोग की वस्तुओं की माँग का अध्ययन करते हुए हम ने इस समस्या को यह मान कर अनदेखा कर दिया था की वस्तुएँ केवल एक समय काल में संतुष्टि देती हैं. परन्तु जिन उपभोग की वस्तुओं पर यह मान्यता लागू नहीं होती, उन पर भी उत्पादन के संसाधनों के सन्दर्भ में की जा रही वर्तमान चर्चा लागू होती है.

भविष्य की आय का वर्तमान मान (Present value): मान लें कि एक उत्पादक के सामने दो विकल्प हैं. एक विकल्प है आज 100 रुपये का सीमान्त राजस्व उत्पाद प्राप्त करना और दूसरा विकल्प है एक साल बाद 100 रुपये का सीमान्त राजस्व उत्पाद प्राप्त करना. स्पष्ट है कि आम तौर पर उत्पादक 100 रुपये का आज सीमान्त राजस्व उत्पाद प्राप्त करना पसंद करेगा. अगर दूसरे विकल्प में एक साल बाद 101 रुपये मिलें तो क्या होगा? 102 रुपये मिलें तो क्या होगा? अलग-अलग लोगों के लिए यह राशि अलग होगी, परन्तु दूसरे साल मिलने वाली आय का कोई स्तर ऐसा होगा जिस में कि उत्पादक दोनों विकल्पों के बीच उदासीन होगा एवं दूसरे साल उस से भी अधिक राशि मिलने पर वह दूसरे विकल्प को चुन लेगा. मान लें कि दूसरे साल मिलने वाली वह राशि क है जिस के बीच एवं वर्तमान के 100 रुपये के बीच उत्पादक उदासीन है, दोनों को वह एक समान मानता है, तो हम कहते हैं कि एक साल बाद मिलने वाली क राशि का वर्तमान मान 100 रुपये है. यानी **भविष्य में मिलने वाली किसी राशि का 'वर्तमान मान' वह राशि है जिसे वर्तमान में प्राप्त करने एवं भविष्य में मिलने वाली आय के बीच चुनाव करने में उत्पादक उदासीन है.** उदाहरण के लिए, अगर एक साल बाद मिलने वाले 110 रुपये एवं वर्तमान के 100 रुपये के बीच उत्पादक उदासीन है, तो हम कहेंगे कि एक साल बाद के 110 रुपये का वर्तमान मान 100 रुपये है. मूलधन, ब्याज और कुल राशि की गणना के सामान्य गणित के प्रयोग से हम जानते हैं कि अगर ब्याज दर 10% प्रतिवर्ष हो तो आज के 100 रुपये के मूलधन की एक साल बाद कुल राशि 110 रुपये होगी (कुल राशि = मूलधन x (1+ब्याज दर प्रति समय काल /100)^ समय काल की संख्या;[66] जो वर्तमान सन्दर्भ में 100x (1+10/100)^1 है). इस का अर्थ है कि **अगर उत्पादक आज के 100 रुपये और एक साल बाद के 110 रुपये के बीच उदासीन है यानी अगर110 रुपए का वर्तमान मान 100 रुपए है, तो हम कह सकते हैं कि यह उत्पादक भविष्य की आय को 10% प्रति वर्ष की दर से कम कर के आंक रहा है यानी भविष्य की आय की कटौती की दर (rate of discount) 10% प्रति वर्ष है.**

तालिका 7
सभी आँकड़े रुपयों में

मशीन क्रमांक	सीमान्त राजस्व वर्ष 1	सीमान्त राजस्व वर्ष 2	सीमान्त राजस्व वर्ष 3	जीवन काल की समाप्ति पर बाज़ार भाव	जीवन काल का कुल सीमान्त राजस्व	जीवन काल का कुल सीमान्त राजस्व का वर्तमान मान 10% प्रतिवर्ष की कटौती के साथ
मशीन 1	500	400	300	200	1400	1160.78
मशीन 2	1000	200	100	100	1400	1224.64

हालाँकि अभी हम ने इस विषय की चर्चा नहीं की है कि कटौती की दर कैसे तय होती है (यह चर्चा हम बाद में करेंगे). फ़िलहाल यह समझ लिया जाए कि भविष्य की आय के वर्तमान मान की गणना उधार दी गई राशि के एवज में प्राप्त होने वाली कुल राशि का गणना का उलटा होती है. यह ठीक वैसे होता है जैसे ब्याज दर, कुल राशि और समय अवधि ज्ञात होने पर मूलधन की गणना की जाती है. उदाहरण के लिए, 5 वर्ष बाद मिलने वाले सीमान्त राजस्व का वर्तमान मान= (5 वर्ष बाद मिलने वाले सीमान्त राजस्व)/(1+कटौती की दर प्रति वर्ष/100)^5 होगा. अगर किसी मशीन में निवेश से कई वर्षों तक सीमान्त राजस्व उत्पाद मिलता रहेगा तो हर वर्ष के सीमान्त राजस्व उत्पाद के वर्तमान मान का योग मशीन से मिलने वाले सीमान्त राजस्व उत्पाद का वर्तमान मान होगा.

वर्तमान मान की गणना एवं इस के उपयोग का एक उदाहरण लेते हैं. मान लें कि एक उत्पादक के सामने दो तरह की मशीन ख़रीदने के विकल्प हैं और दोनों की लागत भी समान है. परन्तु दोनों मशीनों से प्राप्त होने वाले सीमान्त राजस्व उत्पाद के प्रवाह में भिन्नता है जिसे तालिका 7 में दिखाया गया है. अगर दोनों मशीनों द्वारा अपने जीवन काल में अर्जित किए गए सीमान्त राजस्व उत्पाद को सीधे-सीधे जोड़ लें तो कुल सीमान्त राजस्व उत्पाद का योग एक समान है. क्या इस आधार पर हम कह सकते हैं कि दोनों मशीनों के सीमान्त राजस्व उत्पाद का वर्तमान मान एक समान है? नहीं; क्योंकि हम वर्तमान आय को भविष्य की आय की तुलना में प्राथमिकता देते हैं. मान

---

[66] ^ घात अथवा शक्ति इंगित करता है.

लें कि भविष्य की आय की कटौती की दर 10% है. तालिका का अंतिम स्तम्भ 10% प्रतिवर्ष की कटौती के साथ आय के दोनों प्रवाहों का वर्तमान मान दर्शाता है. **स्वयं गणना कर के इस कि पुष्टि कर लें.** ध्यान रहे कि पहले साल के राजस्व में भी कटौती होगी क्योंकि निवेश साल के प्रारंभ में होगा और राजस्व साल के आखिर में मिलेगा. अगर दोनों मशीनों की कीमत समान है तो उत्पादक मशीन 2 को चुनेगा.

अब अगर हमें भविष्य की आय के वर्तमान मान की गणना का तरीका एवं इस का प्रयोग स्पष्ट हो गया हो तो आगे बढ़ते हैं. **दो प्रश्न उठते हैं.** तालिका 7 के आधार पर यह तो कहा जा सकता है कि उत्पादक दोनों मशीनों में से मशीन 2 को पसंद करेगा. परन्तु **क्या उसे इन में से किसी भी मशीन में निवेश करना चाहिए या नहीं? दूसरा प्रश्न यह है कि उपरोक्त तालिका में हम ने कटौती की दर 10% प्रतिवर्ष मानी है, परन्तु यह कटौती दर कैसे तय होती है?**

एक स्तर पर पहले प्रश्न का उत्तर आसान है. हम मशीन की सीमान्त लागत की तुलना मशीन से अर्जित होने वाले सीमान्त राजस्व उत्पाद के वर्तमान मान से कर के, यह निर्णय ले सकते हैं कि मशीन में निवेश करना चाहिए अथवा नहीं. अगर मशीन के सीमान्त राजस्व उत्पाद का वर्तमान मान मशीन की वर्तमान सीमान्त लागत से अधिक है, तो हमें मशीन में निवेश करना चाहिए वरना नहीं. बल्कि **जब तक मशीन के सीमान्त राजस्व का वर्तमान मान, मशीन की वर्तमान सीमान्त लागत से अधिक है, तब तक हमें मशीन की अतिरिक्त इकाई पर निवेश करते रहना चाहिए**.

मशीन के सीमान्त राजस्व उत्पाद का वर्तमान मान निवेश के साथ बढ़ेगा अथवा घटेगा? जिन कारणों से श्रम के प्रयोग के साथ श्रम का सीमान्त राजस्व उत्पाद घटता जाता है एवं जिस के चलते श्रम के माँग-वक्र की ढलान ऋणात्मक होती है, उन्हीं कारणों से मशीन में पूँजी निवेश से मिलने वाले सीमान्त राजस्व का वर्तमान मान भी घटता जाएगा एवं पूँजी के माँग-वक्र की ढलान भी ऋणात्मक होगी. मशीनों में बढ़ते निवेश के साथ, हर समयावधि में प्राप्त होने वाले सीमान्त राजस्व उत्पाद की मात्रा अंततः घटने लग जाएगी. अगर हर समयावधि में सीमान्त राजस्व उत्पाद घटने लग जाएगा, तो स्पष्ट रूप में मशीन से प्राप्त होने वाले सीमान्त राजस्व उत्पाद का कुल वर्तमान मान भी घटने लग जाएगा. **वास्तव में अर्थशास्त्र के अनुसार श्रम एवं पूँजी में एक ही अंतर है. श्रम का सारा सीमान्त राजस्व उत्पाद वर्तमान समय में प्राप्त होता है जबकि पूँजी से सीमान्त राजस्व उत्पाद भिन्न-भिन्न समय पर प्राप्त होता है, जिस के चलते हम पूँजी के सीमान्त राजस्व उत्पाद के वर्तमान मान की गणना करते हैं.** अन्यथा अर्थशास्त्र में श्रम के मूल्य निर्धारण एवं पूँजी के मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया में कोई अंतर नहीं है.

'लाभ की आन्तरिक दर' (internal rate of return - IRR): पूँजी के सीमान्त राजस्व के वर्तमान मान की गणना के लिए भविष्य की आय की कटौती की दर ज्ञात होनी चाहिए. भविष्य की आय की कटौती दर बाज़ार की ब्याज दर पर निर्भर करती है. दोनों का सम्बन्ध देखने के लिए एक उदाहरण लेते हैं. मान लें कि 100 रुपए की एक मशीन में निवेश एवं ब्याज़ पर पैसे देना पूरी तरह सुरक्षित हैं, दोनों में कोई जोखिम नहीं है (अथवा दोनों में समान जोखिम है). उधार देने पर 10% प्रतिवर्ष की दर से ब्याज मिलता है. इस स्थिति में अगर उत्पादक 100 रुपए ब्याज़ पर देता है, तो एक वर्ष बाद उसे 110 रुपए मिलेंगे. इस लिए वह एक साल बाद मिलने वाले 110 रुपयों और वर्तमान में मिलने वाले 100 रुपये, दोनों विकल्पों के बीच उदासीन होगा क्योंकि दोनों परिस्थितियों में एक साल बाद उस के पास 110 रुपये होंगे. दूसरे तरीके से दखें तो आज वह 10% ब्याज दर पर 100 रुपये उधार ले कर मशीन में निवेश कर सकता है और एक साल बाद मिलने वाली आय से क़र्ज़ उतार सकता है. परन्तु अगर पूरी तरह से सुरक्षित निवेश जिस में शून्य जोखिम हो पर 5% प्रतिवर्ष की दर से ब्याज मिलता है, तो उत्पादक एक साल बाद की 110 रुपये की आय का वर्तमान 100 रूपए से अधिक होगा. 20% ब्याज दर होने पर स्थिति उलटी हो जाएगी. इस उदाहरण से स्पष्ट है कि भविष्य की आय की कटौती की दर एवं इस लिए भविष्य की आय का वर्तमान मान, बाज़ार की ब्याज़ दर से प्रभावित होती है. इस लिए हर बार, समान जोखिम की उधार के ब्याज की दर बदलने पर पूँजी के सीमान्त राजस्व उत्पाद के वर्तमान मान की गणना फिर से करनी पड़ती है.

इस समस्या से बचने के लिए हम 'लाभ की आन्तरिक दर' का सहारा लेते हैं. **'लाभ की आन्तरिक दर', IRR, भविष्य की आय की वह कटौती दर है, जो भविष्य की आय के वर्तमान मान को निवेश की वर्तमान लागत के समान बना देती है**. लाभ की आन्तरिक दर को पूँजी की सीमान्त दक्षता (Marginal efficiency of capital - MEC) भी कहते हैं.

भविष्य की आय का वर्तमान मान ज्ञात करने के लिए हम एक निश्चित दर से कटौती करते हैं. इस के विपरीत लाभ की आन्तरिक दर ज्ञात करने के लिए अंदाज़े से अलग-अलग दर पर कटौती कर के देखते हैं. जब तक भविष्य की आय का वर्तमान मान निवेश राशि के बराबर नहीं हो जाता, तब तक अलग-अलग कटौती दर से गणना करते रहते हैं. अगर किसी निवेश की आन्तरिक लाभ की दर 5% है तो इस का अर्थ है कि इस मशीन पर निवेश करने से 5% की दर से ब्याज मिलेगा.[67] अब अगर बाज़ार में ब्याज दर 5% से कम है, जैसे 4% है तो इस मशीन में निवेश करना उचित होगा. अगर पूँजी को मशीन पर ख़र्च न कर के उधार दे दिया जाए, तो 4% की दर से ब्याज प्राप्त होगा जबकि उस पूँजी से मशीन ख़रीदने पर 5% की आय प्राप्त होगी. यहाँ तक कि बाज़ार से 4% की ब्याज दर से पूँजी उधार ले कर निवेश करना भी फ़ायदे का सौदा होगा क्योंकि यह 5% की दर से आय देगा. इस के विपरीत अगर बाज़ार में ब्याज की दर 5% से अधिक है, उदाहरण के तौर पर 6% है, तो पूँजी को इस मशीन पर ख़र्च करने की बजाय ब्याज पर देना उचित होगा. 6% ब्याज दर पर उधार ले कर 5% की आय प्राप्त करना, तो निश्चित तौर पर घाटे का सौदा है. (ध्यान रहे हम जोखिम को शून्य मान कर चल रहे हैं.) इस लिए निवेश का निर्णय लेने के लिए उत्पादक IRR की तुलना बाज़ार के ब्याज भाव से करेगा. अगर अन्य बातें समान रहने पर, उदाहरण के तौर पर जोखिम समान रहने पर, बाज़ार में ब्याज भाव IRR से कम होगा, तो निवेश करना लाभ दायक होगा. अगर बाज़ार ब्याज दर IRR से अधिक है, तो निवेश नहीं करना चाहिए.

पूँजी निवेश बढ़ने पर लाभ की आन्तरिक दर बढ़ेगी अथवा घटेगी? बिलकुल जिन कारणों से श्रम का सीमान्त उत्पाद एवं सीमान्त राजस्व उत्पाद घटता जाता है, उन्हीं कारणों से लाभ की आन्तरिक दर भी घटती जाएगी. अंत: निवेश बढ़ने के कारण लाभ की आन्तरिक दर यानी पूँजी की सीमान्त दक्षता भी घटती जाती है. अंत: पूँजी की सीमान्त दक्षता वक्र की ढलान ऋणात्मक होगी. इसी प्रकार जिन कारणों से श्रम के आपूर्ति-वक्र की ढलान धनात्मक होती है, उन्हीं कारणों से पूँजी के आपूर्ति-वक्र की ढलान भी धनात्मक होगी.

जहाँ पर लाभ की आन्तरिक दर का वक्र अथवा पूँजी की सीमान्त दक्षता का वक्र और पूँजी का आपूर्ति-वक्र एक दूसरे को काटेंगे, वहाँ पूँजी की माँग एवं आपूर्ति समान होंगे और वही बाज़ार की ब्याज दर होगी. **जिन असामान्य परिस्थितियों की हम ने परिकल्पना की है- कोई निवेश जोखिम नहीं, केवल उन्हीं असामान्य परिस्थितियों में बाज़ार में एक ही ब्याज दर होगी.** अगर निवेश पूरी तरह सुरक्षित नहीं है, उस में कोई जोखिम है, उदाहरण के तौर पर कीमतें स्थिर रहने की संभावना नहीं है, [68] तो भविष्य की आय का वर्तमान मान ज्ञात करने के लिए कटौती की दर में इन चरों की भरपाई भी करनी होगी. इस लिए **वास्तविक बाज़ार में एक ब्याज दर न हो कर अलग-अलग समय अवधि के लिए एवं अलग-अलग जोखिम की संभावना के लिए कटौती एवं ब्याज की दर अलग होती है.**

दोबारा दोहरा दें कि ब्याज के सन्दर्भ में की गई यह चर्चा उन सब मामलों में भी लागू होती है जब लागत अथवा राजस्व एक समय काल में न हो कर अलग-अलग समय काल में होते हैं अथवा कई समय काल में बिखरे होते हैं. यह सब संसाधनों पर लागू होता है चाहे श्रम हो (पढ़ाई/प्रशिक्षण का ख़र्च अलग समय काल में होता है एवं उस से मिलने वाला सीमान्त राजस्व लम्बे समय काल में प्राप्त होता रहता है) अथवा भूमि. परन्तु भूमि की अपनी भी एक विशिष्टता है. अब हम इस का अध्ययन करेंगे.

लगान (Rent): लगान शब्द का प्रयोग कई भिन्न अर्थों में किया जाता है. परम्परागत अर्थ में तो लगान भूमि के उपयोग की एवज में किया गया भुगतान है. इस से अधिक व्यापक अर्थ में लगान, विशेष तौर पर इस के अंग्रेजी नाम rent का प्रयोग किसी भी संसाधन के निश्चित अवधि के प्रयोग के एवज में किए गए भुगतान अथवा किराये के लिए भी किया जाता है. परन्तु अर्थशास्त्र में लगान का अर्थ बिल्कुल भिन्न है. **अर्थशास्त्र में लगान का अर्थ है 'अवसर लागत' से अधिक भुगतान**. हम जानते हैं कि अवसर लागत किसी

---

[67] इसलिए IRR अथवा लाभ की आन्तरिक दर नामकरण किया गया क्योंकि यह मशीन में पूंजी निवेश से मिलने वाले आय/ब्याज दर को इंगित करती है.

[68] इस लिए ब्याज की कुल दर (gross rate) अथवा शुद्ध या निवल दर (net rate) में अंतर किया जाता है. मान लें ब्याज दर 8% है एवं जोखिम तो शून्य है परन्तु महंगाई की दर 5% है, तो ब्याज की प्रभावी दर तो 3% ही हुई. बिना जोखिम की अवस्था में ब्याज दर में से महंगाई की दर घटाने पर हमें शुद्ध ब्याज की दर प्राप्त होती है.

संसाधन को भुगतान की वह मात्रा है जिस के न मिलने पर वह संसाधन- चाहे श्रम हो अथवा पूँजी- वर्तमान उपयोग को छोड़ कर अन्यत्र चला जाएगा या अन्यत्र इस संसाधन का बेहतर उपयोग हो सकता है. इस लिए इसे **हस्तांतरण मूल्य (transfer price)** भी कहते हैं यानी यह वह भुगतान है जो संसाधन को वर्तमान प्रयोग में बनाए रखने के लिए आवश्यक है. इस न्यूनतम आवश्यक भुगतान से अतिरिक्त भुगतान को लगान कहते हैं.

आधुनिक अर्थ-शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार न केवल भूमि को अपितु श्रम को भी लगान प्राप्त हो सकता है. चित्र 67 के अनुसार अगर एकाधिकारी श्रमिक यूनियन और पूर्ण प्रतियोगी श्रम क्रेता आमने सामने हों तो संतुलन बिंदु $W'_{1,}$ q_1 बिंदु पर होगा. परन्तु अगर श्रम बाज़ार पूरी तरह से पूर्ण प्रतियोगी हो तो q_1 श्रम उपलब्ध कराने के लिए W_1 वेतन-दर ही पर्याप्त है. इस का अर्थ है W'_1 एवं W_1 का अंतर लगान है जो श्रमिकों को प्राप्त हो रहा है.

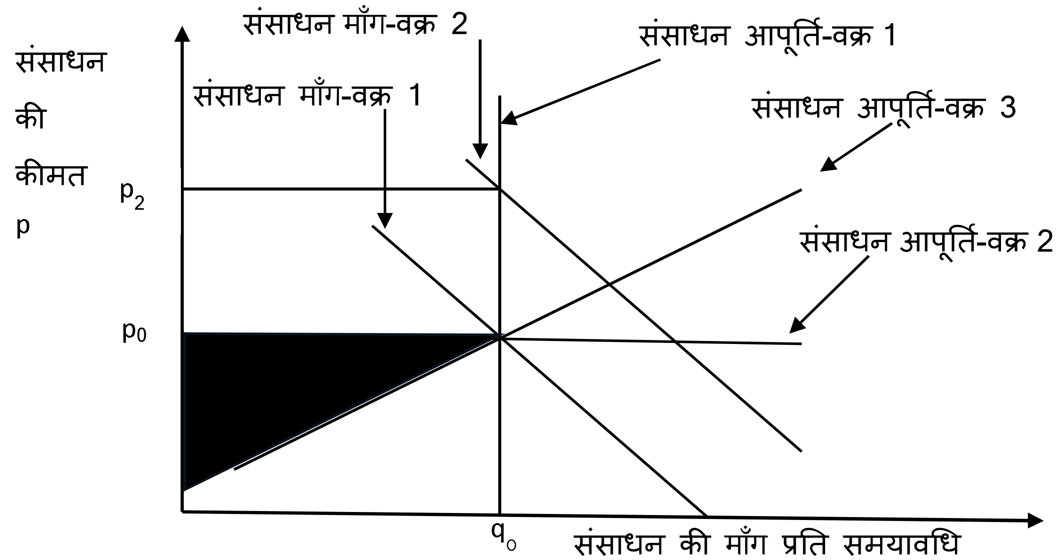
किसी संसाधन को किया जाने वाला भुगतान 'आर्थिक' लगान है या नहीं अथवा कितना हिस्सा लगान है एवं कितना हिस्सा 'अवसर लागत' यह कैसे तय हो? पूरी अर्थव्यवस्था के नज़रिए से जो लगान हो, वह उत्पादक विशेष के लिए हस्तांतरण मूल्य अथवा अवसर लागत हो सकती है. उदाहरण के लिए, भूमि की कुल मात्रा निश्चित है. इस लिए अगर पूरी अर्थव्यवस्था के दृष्टिकोण से देखें तो भूमि का हस्तांतरण मूल्य शून्य है और इस लिए इस के प्रयोग की एवज में किया गया सारा भुगतान लगान होगा. परन्तु एक उत्पादक के दृष्टिकोण से तो भूमि के प्रयोग की एवज में किया गया सारा भुगतान ही हस्तांतरण मूल्य है; अगर आप नहीं दोगे को वह भूमि किसी अन्य व्यक्ति को किराए पर मिल जाएगी.

यह तथ्य भूमि तक सीमित नहीं है. अगर किसी भी संसाधन की आपूर्ति निश्चित है, अपरिवर्तनीय है, (दूसरे शब्दों में कहें तो अगर संसाधन की आपूर्ति लोच शून्य हो) तो उस को किया जाने वाले सम्पूर्ण भुगतान आर्थिक लगान ही कहलायेगा. परन्तु एक उत्पादक के लिए यह पूरा भुगतान ही हस्तांतरण मूल्य है क्योंकि अगर वह यह भुगतान करने को तैयार नहीं है, तो उसे यह संसाधन उपयोग के लिए मिलेगा ही नहीं. इस के विपरीत अगर किसी संसाधन की आपूर्ति पूर्णतः लोचदार है, तो उस संसाधन को किया गया सारा भुगतान ही स्थानान्तरण भुगतान होगा और उस का कोई भी अंश लगान नहीं होगा. इन दोनों विपरीत धुर्वीय परिस्थितियों के बीच के आपूर्ति-वक्र में कुछ हिस्सा स्थानान्तरण भुगतान होगा और कुछ हिस्सा आर्थिक लगान होगा. निम्न चित्र 68 इन परिस्थितियों को दर्शाता है.

अगर संसाधन का माँग-वक्र 1 हो और संसाधन का आपूर्ति-वक्र 1 हो तो, संतुलन की स्थिति में बाज़ार भाव p_0 होगा. अब अगर माँग बढ़ कर माँग-वक्र 2 बन जाती है तो संतुलन की स्थिति में बाज़ार भाव p_2 हो जाएगा. बाज़ार भाव में बढ़ोतरी के बावजूद संसाधन की आपूर्ति में कोई बदलाव नहीं हुआ है. स्थिर आपूर्ति के चलते बाज़ार भाव शून्य होने पर भी आपूर्ति में कोई बदलाव नहीं होगा. इस लिए इस स्थिति में इस संसाधन को किया गया सारा भुगतान आर्थिक लगान कहलायेगा. परन्तु किसी एक उत्पादक के नज़रिए से देखें तो सारे का सारा भुगतान ही हस्तांतरण मूल्य है क्योंकि बाज़ार भाव से कम दाम देने पर उसे यह संसाधन उपलब्ध ही नहीं होगा.
अगर संसाधन का माँग-वक्र 1 हो और संसाधन का आपूर्ति-वक्र 2 हो तो क्या होगा? अब भी संतुलन की स्थिति में बाज़ार भाव p_0 ही होगा और संसाधन को किया सारा भुगतान स्थानान्तरण भुगतान कहलायेगा. इस में लगान का हिस्सा शून्य होगा क्योंकि इस से कम दाम पर श्रम उपलब्ध ही नहीं होगा.

अगर संसाधन का माँग-वक्र 1 हो और संसाधन आपूर्ति-वक्र 3 प्रभावी आपूर्ति-वक्र हो तो क्या होगा? अब भी संतुलन की स्थिति में बाज़ार भाव p_0 ही होगा. संसाधन की q_0 मात्रा तक की हर इकाई को p_0 का भुगतान होगा परन्तु इस से पहले की इकाइयाँ तो इस से कम दाम पर उपलब्ध हो सकती हैं. इन इकाइयों को मिलने वाला अतिरिक्त भुगतान आर्थिक लगान है. p_0 से नीचे और आपूर्ति-वक्र के ऊपर का तिकोना हिस्सा लगान है. याद करें वस्तुओं की आपूर्ति का अध्ययन करते हुए हम ने इसे ही उत्पादक आधिक्य कहा था. इस का अर्थ हुआ कि 'उत्पादक आधिक्य' आर्थिक लगान ही है. उपरोक्त चित्र में आपूर्ति-वक्र से नीचे एवं क्ष अक्ष के ऊपर का तिकोना हिस्सा स्थानान्तरण भुगतान है.

चित्र 68- स्थानान्तरण कीमत एवं लगान



इस तरह चित्र 68 से स्पष्ट है कि न केवल भूमि अपितु सभी संसाधन 'आर्थिक लगान' प्राप्त कर सकते हैं. किसी संसाधन को किए गए भुगतान में कितना हिस्सा लगान का है और कितना हिस्सा हस्तांतरण मूल्य का है, यह आपूर्ति-वक्र की लोच/ढलान पर निर्भर करता है एवं इस पर निर्भर करता है कि हम पूरी अर्थव्यवस्था के दृष्टिकोण से देख रहे हैं या किसी एक उत्पादक ने दृष्टिकोण से.

उपरोक्त चर्चा से स्पष्ट है कि अल्प काल में कुल राजस्व में से कुल परिवर्तनशील लागत को घटाने पर जो बचता है वह लगान ही है क्योंकि अल्प काल में कुल परिवर्तनशील लागत मिलने पर भी उत्पादन जारी रहेगा. परन्तु दीर्घकाल में तो अल्प काल में जो संसाधन स्थिर थे, उन को भी भुगतान करना आवश्यक होता है. इस लिए **अल्पकालीन लगान के उस हिस्से को जिसे दीर्घकाल में लागत माना जाता है, आभासी लगान (quasi rent) कहते हैं.** अंत: आभासी लगान अथवा 'लगान सरीखा' (quasi rent) वह भुगतान है जो अल्पकाल में तो आवश्यक नहीं है, एवं इस लिए लगान है परन्तु दीर्घकाल में जिस का भुगतान न होने पर उस संसाधन को वर्तमान प्रयोग में बनाए रखना संभव नहीं होता. इस लिए दीर्घकाल में वह लगान नहीं होता.

लगान की इस परिभाषा के अनुसार जिसे अब तक हम लाभ अथवा असामान्य लाभ कहते रहे हैं उसे आर्थिक लगान भी कहा जा सकता है. इस विषय पर हम तब फ़िर चर्चा करेंगे जब हम लाभ पर चर्चा करेंगे.

रिकार्डो के अनुसार लगान: 'आर्थिक' लगान की यह आधुनिक परिभाषा ऐतिहासिक तौर पर इंग्लैंड के अर्थशास्त्री रिकार्डो (Ricardo) द्वारा किए गए लगान के प्रारंभिक प्रयोग से थोड़ी से भिन्न है. मानव इतिहास में एक समय ऐसा था कि काफ़ी ज़मीन ख़ाली पड़ी थी अथवा उस पर जंगल था, जिसे कोई भी काट कर वहाँ खेती कर सकता था. दूसरी ओर पहले से खेती के लिए तैयार ज़मीन निजी सम्पत्ति थी. अब अगर ख़ाली पड़ी ज़मीन पर एक व्यक्ति खेती कर के एक वर्ष में 10 क्विंटल अनाज उगा सकता है और दूसरी ओर पहले से तैयार उपजाऊ ज़मीन पर एक व्यक्ति एक वर्ष में 15 क्विंटल अनाज उगा सकता है. इस स्थिति में एक भूमिहीन किसान के सामने दो विकल्प हैं. एक तो यह कि वह ख़ाली पड़ी कम उपजाऊ ज़मीन पर खेती करे और साल भर में 10 क्विंटल अनाज पैदा कर ले अथवा किसी ज़मीदार से ज़मीन ले कर उस पर खेती कर के साल भर में 15 क्विंटल अनाज पैदा कर ले. अगर इस के लिए उसे ज़मींदार को 1-2 क्विंटल का लगान भी देना पड़े, तो भी उस को ऐसा करने में फ़ायदा है. परन्तु अगर ज़मींदार 5 क्विंटल से भी अधिक लगान मांगेगा तो कोई भी भूमि हीन व्यक्ति इतना लगान न दे कर ख़ाली पड़ी कम उपजाऊ ज़मीन पर खेती करना बेहतर समझेगा. इस लिए बाज़ार संतुलन की स्थिति में उपजाऊ ज़मीन को अधिकतम मात्र 5 क्विंटल लगान मिल सकता है; इस से अधिक नहीं.

अब अगर जनसंख्या बढ़ जाती है या किसी और कारण से अनाज की माँग बढ़ जाती है, और स्थिति यह हो जाती है कि केवल 10 क्विंटल अथवा इस से अधिक पैदावार वाली ज़मीन से काम नहीं चलता. इस के चलते 8 क्विंटल की पैदावार देने वाली ज़मीन पर भी

खेती करने की ज़रूरत पड़ जाती है, तब क्या होगा? अब 15 क्विंटल पैदावार वाली ज़मीन का लगान कितना होगा? जाहिर है अब एक भूमि हीन किसान के पास दो विकल्प हैं- या तो वह 8 क्विंटल पैदावार देने वाली बिना लगान की ज़मीन पर खेती कर ले अथवा 15 क्विंटल या 10 क्विंटल पैदावार देने वाली ज़मीन लगान पर ले कर उस पर खेती कर ले. स्पष्ट है कि अब एक भूमि हीन किसान 10 क्विंटल पैदावार वाली ज़मीन के लिए अधिकतम 2 क्विंटल और 15 क्विंटल पैदावार वाली ज़मीन के लिए अधिकतम 7 क्विंटल लगान दे सकता है. हम पाते हैं कि **यद्यपि ज़मीन की उत्पादकता में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है फिर भी लगान बढ़ गया है.** माँग बढ़ने से पहले जिस ज़मीन का लगान 5 क्विंटल था वह अब 7 क्विंटल अनाज हो गया है एवं जिस पर कोई लगान नहीं था उस का लगान 2 क्विंटल अनाज हो गया है.[69]

उपरोक्त उदाहरण में लगान की बढ़ोतरी में ज़मीन मालिकों की कोई भूमिका नहीं है. अतिरिक्त लगान इन्हें बिना किसी मेहनत के मिल गया है. **'बिना मेहनत की कमाई' लगान (rent) का एक अन्य अर्थ है.** नई सड़क निकलने से सड़क के साथ लगती भूमि की कीमत में बढ़ोतरी हो जाती है. क्योंकि इस अतिरिक्त कमाई के लिए ज़मीन मालिक ने कुछ नहीं किया, इस लिए इस अतिरिक्त कमाई को भी लगान (rental earning) कहते हैं.

अर्थशास्त्र की एक उक्ति के अनुसार सरकार के लिए आय का सब से उपयुक्त माध्यम है लगान को कर के रूप में कब्जाना. ऐसा क्यों कहते हैं? आम तौर पर किसी वस्तु के भाव बढ़ने पर वस्तु की उपलब्धता बढ़ जाती है और उस के भाव घटने पर वस्तु की आपूर्ति घट जाती है, परन्तु लगान के बढ़ने घटने के साथ ऐसा नहीं होता. लगान के होने या न होने से संसाधनों की उपलब्धता प्रभावित नहीं होती. रिकार्डो की लगान की चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है. उपरोक्त चित्र 68 में आपूर्ति-वक्र 1 के सन्दर्भ में भी यह स्पष्ट है. इस लिए आपूर्ति के उत्प्रेरक के रूप में लगान की कोई भूमिका नहीं है (rent serves no incentive function). इस लिए अगर लगान को सरकारें कर के रूप में कब्ज़ा लें तो ऐसा करने से अर्थव्यवस्था में संसाधनों की उपलब्धता पर कोई असर नहीं होगा. ध्यान देने के बात यह है कि आम तौर पर अगर सरकार कर लगाती है तो संसाधनों की कीमतें प्रभावित होती हैं जिस से आम तौर पर संसाधनों की उपलब्धता प्रभावित होती है, जिसे अर्थव्यवस्था में 'दखलअंदाजी' कहा जा सकता है. परन्तु अगर संसाधनों की उपलब्धता स्थिर है, तो उस संसाधन से प्राप्त आय पर कर लगाने से अर्थव्यवस्था पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा. इस लिए ऐसा कर अर्थव्यवस्था में दखलअंदाजी नहीं कहा जा सकता है.[70]

---

[69] रिकार्डो ने लगान की यह व्याख्या उस समय इंगलैंड में जारी एक विवाद के सन्दर्भ में दी थी. विवाद यह था कि उच्च लगान के कारण गेहूं के भाव अधिक हैं या गेहूं के भाव अधिक होने के कारण लगान अधिक है. उपरोक्त तर्क के आधार पर रिकार्डो ने यह दावा किया था कि उच्च माँग/भाव के कारण भूमि का लगान अधिक था न कि उच्च लगान अनाज के उच्च दाम का कारण था.

[70] यहाँ कर व्यवस्था की अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभाव पर थोड़ी चर्चा करनी उपयुक्त होगी. इस विषय पर विस्तृत चर्चा हम आगे करेंगे. किसी भी कर से वस्तु की कीमत प्रभावित होती है. कीमत बढ़ने का एक प्रभाव तो वह होता है जिस का ज़िक्र हम ने ऊपर किया है- वस्तु की उपलब्धता प्रभावित होती है. उदाहरण के तौर पर ज़्यादा वेतन होने पर ज़्यादा श्रम उपलब्ध होता है. परन्तु कीमत का एक और प्रभाव भी होता है. मान लें कि किसी संसाधन की आपूर्ति अपरिवर्तनीय है एवं इस लिए उत्प्रेरक के रूप में कीमत की कोई भूमिका नहीं है यानी उच्च कीमत रखने से भी इस संसाधन की आपूर्ति बढ़ेगी नहीं. अगर ऐसे संसाधन को मुफ्त में उपलब्ध करा दिया जाए और इस संसाधन की माँग आपूर्ति से कहीं अधिक हो, तो क्या होगा? इस स्थिति में इस संसाधन का वितरण कैसे हो? किसी विशिष्ट प्रयोग में इस संसाधन का सीमान्त राजस्व उत्पाद कम होगा तो किसी अन्य प्रयोग में अधिक होगा. मुफ़्त वितरण में यह संभव है कि इस का प्रयोग ऐसी जगह हो जहाँ इस का सीमान्त राजस्व उत्पाद कम हो. ऐसा होना, अर्थव्यवस्था के हित में नहीं होगा. इस लिए अगर इस संसाधन को मुफ्त उपलब्ध कराने के स्थान पर इस की बोली लगा दी जाए तो इस संसाधन का उपयोग वहीं होगा जहाँ इस का सीमान्त राजस्व उत्पाद सब से अधिक होगा. माँग आपूर्ति से अधिक होने पर कि इस की कीमत बढ़ती जायेगी और जैसे कीमत बढ़ती जायेगी, इस संसाधन के ऐसे प्रयोग जिन में इस संसाधन का सीमान्त राजस्व उत्पाद कम है, वहां इन का प्रयोग होना बंद हो जाएगा. तब तक इस संसाधन की कीमत बढ़ती जायेगी, जब तक इस की माँग एवं आपूर्ति समान नहीं हो जाती. इस स्थिति में संसाधन का प्रयोग अधिकतम सीमान्त राजस्व उत्पाद वाले

अब अगर लगान शब्द का प्रयोग किराए के रूप में किया जा रहा है, तो निश्चित तौर पर उपरोक्त उक्ति - सरकार के लिए आय का सब से उपयुक्त माध्यम है लगान को कर के रूप में कब्जाना - सही नहीं है. क्योंकि अगर सब तरह के किराए को सरकार कर के रूप में कब्ज़ा लेगी तो निश्चित तौर पर किराए पर वस्तुओं की उपलब्धता प्रभावित होगी. परन्तु अगर लगान से अभिप्राय अवसर लागत से अधिक भुगतान अथवा 'बिना मेहनत की कमाई' से है, तो निश्चित तौर पर यह कर योग्य संसाधन है. इस लिए लगान शब्द के प्रयोग में हमें सावधानी बरतनी चाहिए. बेहतर हो अगर 'आर्थिक' लगान एवं भूमि लगान दो शब्दों का प्रयोग किया जाए परन्तु अधिकांश तौर पर यह अपेक्षा की जाती है कि सन्दर्भ से स्पष्ट हो जाएगा कि लगान शब्द को किस अर्थ में प्रयोग किया जा रहा है.

लाभ: वेतन, ब्याज, लगान के अलावा लाभ भी वितरण की एक श्रेणी है. ऐतिहासिक तौर पर मार्शल जैसे अर्थशास्त्रियों ने लाभ को उद्यमिता (entrepreneurship) के लिए भुगतान के रूप में देखा है. उद्यमी उसे कहा है जो उत्पादन के तीनों संसाधनों को एकत्रित कर के उत्पादन करता है. अन्य संसाधनों को भुगतान करने के बाद जो बचता है, वह उद्यमी का हिस्सा माना जाता है एवं इसे लाभ कहा जाता है. अन्य अर्थशास्त्रियों ने लाभ को उद्यमी द्वारा नवाचार (innovation) अथवा बीमा विहीन जोखिम उठाने की एवज़ में भुगतान माना है. परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्र न तो उद्यमिता को स्वतंत्र संसाधन मानता है और न ही सीमान्त राजस्व उत्पाद के सिद्धांत पर इस के भुगतान का निर्धारण किया जा सकता. आधुनिक अर्थशास्त्र के वितरण के सिद्धांत के अनुसार जैसे श्रम को भुगतान का सम्बन्ध उस के सीमान्त राजस्व उत्पाद से है, उसी प्रकार उद्यमिता को भुगतान के लिए उस के सीमान्त राजस्व उत्पाद की गणना करनी होगी. परन्तु उद्यमिता के सीमान्त प्रभाव का पता तभी चल पायेगा जब उस की मात्रा में बदलाव होगा. परन्तु उद्यमिता को अविभाज्य माना जाता है. इस लिए उस के सीमान्त प्रभाव की गणना संभव नहीं है.

इस लिए अर्थशास्त्र लाभ को 'लगान' सरीखा मानता है. अर्थशास्त्र में लाभ न तो पूँजी को मिलने वाला प्रतिदान है और न ही स्वयं की पूँजी की एवज़ में किया गया भुगतान है (क्योंकि पूँजी अथवा स्वयं की पूँजी की एवज़ में किया गया भुगतान लागत में शामिल है). आधुनिक अर्थशास्त्र के अनुसार लाभ या तो थोड़े समय के लिए हो सकते हैं जो बाज़ार असंतुलन की स्थिति में प्राप्त हो सकते हैं एवं बाज़ार संतुलन स्थापित होने पर ख़त्म हो जाते हैं, अथवा बाज़ार में एकाधिकार के चलते मिल सकते हैं. दीर्घकाल में लाभ शून्य होने पर भी उत्पादन पर कोई असर नहीं पड़ता. इस लिए लाभ आर्थिक लगान ही है. जैसा कि हम पहले पढ़ चुके हैं लगान केवल भूमि को ही नहीं मिल सकता अपितु श्रम को भी मिल सकता है. इस लिए लाभ रूपी लगान में श्रमिक भी बोनस के रूप में लाभ का एक अंश पा सकते हैं.

वितरण के आधुनिक अर्थशास्त्र की समीक्षा: संक्षेप में, वितरण के आधुनिक अर्थशास्त्र के अनुसार उत्पादन के हर संसाधन को उस के सीमान्त योगदान के अनुरूप भुगतान मिलता है. वितरण का यह सिद्धांत तभी लागू हो सकता जब इस वितरण सिद्धांत के अनुसार देय सभी संसाधनों के भुगतान का योग कुल उत्पादन के मूल्य के बराबर हो, न उस से कम न उस से ज़्यादा. अगर संसाधनों को कुल देय भुगतान उत्पादन से अधिक हो जाता है, तो भुगतान संभव ही नहीं है; अतिरिक्त भुगतान कहाँ से आयेगा? इसी प्रकार अगर सभी संसाधनों को भुगतान के बाद भी कुछ उत्पाद बच जाता है, तो यह किस को मिले? इस का वितरण कैसे हो? इस लिए वितरण का कोई भी सिद्धांत तभी स्वीकार्य हो सकता है जब इस के अनुसार वितरण उत्पादन का पूरा निपटारा अथवा निष्पादन कर दे (product exhaustion).

[गणित के एक प्रमेय/सिद्धांत (theorem), यूलर प्रमेय (Euler's theorem) के प्रयोग से यह दर्शाया गया कि वितरण के आधुनिक सिद्धांत के अनुसार उत्पादन का पूरा निपटारा बहुत सीमित परिस्थितियों में ही हो सकता है. गणित के यूलर प्रमेय के अनुसार निम्न समीकरण लागू होता है.

$$\frac{\partial q}{\partial l}l + \frac{\partial q}{\partial k}k = t.q \qquad (32)$$

उत्पादन में ही होगा. कीमत के इस प्रभाव को कीमत की आवंटन में भूमिका (allocative function of price) कहते हैं. इस लिए भले ही आर्थिक लगान की उत्प्रेरक के रूप में कोई भूमिका न हो परन्तु संसाधनों के आवंटन में यह महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है.

उपरोक्त समीकरण को साधारण शब्दों में कहें तो श्रम की सीमान्त उत्पादकता गुणा में श्रम की मात्रा जमा पूँजी की सीमान्त उत्पादकता गुणा में पूँजी की मात्रा का योग उत्पादन गुणा t यानी समरूपता की घात, के समान होना चाहिए. फ़िलहाल के लिए समरूपता की घात की परिभाषा में न जा कर आगे बढ़ते हैं.

समीकरण 32 के दोनों पक्षों को सीमान्त राजस्व यानी MR से गुणा करने पर हमें निम्न समीकरण प्राप्त होगा:

$$MR\frac{\partial q}{\partial l}l + MR\frac{\partial q}{\partial k}k = MR.t.q$$

$$\Rightarrow MR.MPP_L.l + MR.MPP_K.k = MR.t.q \text{..} (33)$$

आधुनिक अर्थशास्त्र के अनुसार इस समीकरण की बाईं ओर का पहला पद इंगित करता है श्रम को कुल भुगतान – सीमान्त राजस्व गुणा में सीमान्त भौतिक उत्पाद गुणा में श्रम की कुल मात्रा. इसी तर्ज़ पर उपरोक्त समीकरण के बाईं ओर का दूसरा पद पूँजी को कुल भुगतान इंगित करता है. इस प्रकार समीकरण 33 की बाईं ओर का योग इंगित करता है उत्पादन के साधनों को कुल भुगतान. परन्तु अगर MR गुणा में t कीमत के समान हो, तभी उत्पादन के साधनों को किया गया कुल भुगतान उत्पादन के बाज़ार भाव के बराबर होगा.

अब प्रश्न यह उठता है कि MR गुणा में t किन परिस्थितियों में बाज़ार भाव के समान होगा? अगर उत्पाद-बाज़ार एवं संसाधन बाज़ार दोनों में पूर्ण प्रतियोगिता है, तो MR यानी सीमान्त राजस्व बाज़ार भाव के बराबर होगा. इस से स्पष्ट है कि अगर उत्पाद-बाज़ार एवं संसाधन बाज़ार दोनों में पूर्ण प्रतियोगिता हो और t का मान 1 हो तभी संसाधनों को कुल भुगतान कुल उत्पाद मूल्य के बराबर होगा. गणितीय दृष्टि से t का मान 1 होने का अर्थ है उत्पादन फलन में समानुपातिक बदलाव लागू होना.]

उपरोक्त/एक गणितीय गणना के आधार पर संसाधनों के मूल्य निर्धारण की आधुनिक सिद्धांत की आलोचना यह कह कर की गई कि यह व्यवस्था तभी प्रभावी हो सकती है, जब न केवल उत्पाद एवं संसाधन बाज़ार पूर्ण प्रतियोगी हों अपितु उत्पादन फलन भी विशिष्ट प्रकार का यानी समानुपातिक बदलाव वाला हो, जिस पर पैमाने का समानुपातिक बदलाव लागू हो. अगर उत्पादन फलन में पैमाने का घटता/ह्रासमान बदलाव अथवा वृद्धिमान बदलाव का नियम लागू होता है तो संसाधनों के मूल्य निर्धारण के आधुनिक सिद्धांत के अनुसार पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार होने पर भी कुल उत्पादन का पूरा निष्पादन नहीं हो सकता. उक्त समीकरण से यह भी स्पष्ट होता है कि भले ही उत्पादन फलन समानुपातिक बदलाव वाला हो, परन्तु अगर बाज़ार पूर्ण प्रतियोगी नहीं हैं, तो भी संसाधनों को कुल भुगतान कुल उत्पादन मूल्य के समान नहीं होगा; अगर उत्पाद-बाज़ार पूर्ण प्रतियोगी नहीं है, तो सीमान्त राजस्व उत्पाद कीमत से कम होगा जिस का प्रभाव यह होगा कि संसाधनों को कुल भुगतान उत्पादन मूल्य से कम होगा. **संक्षेप में, आलोचना यह है कि केवल कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में ही सीमान्त उत्पादकता पर आधारित वितरण व्यवस्था उत्पादन का पूर्ण निपटारा कर सकती है.**

इस आलोचना का एक प्रत्युत्तर क्लार्क-विक्सटीड-वालरस (*Clark-Wicksteed-Walras*) द्वारा दिया गया. संक्षेप में उन का यह कहना था कि अगर उत्पादन एवं संसाधन बाज़ार दोनों पूर्ण प्रतियोगी हैं तो ऐसी स्थिति में भले ही उत्पादन फलन समानुपातिक बदलाव न इंगित करता है, तब भी संसाधनों को भुगतान का मूल्य एवं उत्पादन मूल्य के समान न होने कि स्थिति थोड़े समय के लिए ही रह सकती है. प्रतियोगी बाज़ार में संसाधनों के कुल भुगतान एवं उत्पादन मूल्य की असमानता, प्रतियोगिता के चलते कुछ समय में ख़त्म हो जाएगी. अगर संसाधनों को भुगतान की मात्रा उत्पादन मूल्य से कम है, तो उत्पादक को असामान्य लाभ होंगे जो पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में लम्बे समय तक नहीं रह सकते. अन्य उत्पादकों का प्रवेश होगा, जिस के चलते भाव गिर जाएँगे एवं उत्पाद का मूल्य संसाधनों के भुगतान के बराबर हो जाएगा. अगर संसाधनों को भुगतान की मात्रा उत्पादन मूल्य से अधिक है तो उत्पादक को हानि होगी एवं विपरीत प्रक्रिया शुरू हो जाएगी. इस तरह से, क्लार्क-विक्सटीड-वालरस के अनुसार केवल असंतुलन की स्थिति में ही संसाधनों को भुगतान का मूल्य उत्पाद मूल्य से विचलित हो सकता है. संतुलन की स्थिति में बाज़ार पूर्ण प्रतियोगी होने पर सीमान्त उत्पादकता पर आधारित वितरण व्यवस्था में उत्पादन का पूर्ण निष्पादन हो जाएगा.

संसाधनों के मूल्य निर्धारण की इस आलोचना एवं इस के प्रत्युत्तर से स्पष्ट हो गया है कि **संसाधनों को कुल भुगतान दोनों बाज़ार पूर्ण प्रतियोगी होने पर ही उत्पादन के मूल्य के समान हो सकता है अन्यथा यह आम तौर पर इस से कम होगा;** अन्य सभी परिस्थितियों

में सीमान्त राजस्व उत्पाद (MRP) यानी संसाधनों को भुगतान सीमान्त उत्पाद मूल्य (VMP) से कम होता है. हम देख चुके हैं कि श्रम क्रेता के संसाधन बाज़ार में एकाधिकारी क्रेता होने पर तो श्रम का बाज़ार भाव यानी वेतन की दर सीमान्त राजस्व उत्पाद से भी कम होती है. इस के विपरीत अगर श्रमिक यूनियन/संगठन श्रम के क्रेता को श्रम के सीमान्त उत्पाद मूल्य (VMP) से भी अधिक भुगतान करने पर विवश कर दें, तो कुल भुगतान कुल उत्पादन मूल्य से अधिक भी हो सकता है. स्पष्ट रूप से ऐसी स्थिति लम्बे समय तक नहीं चल सकती. इस लिए कि सीमान्त उत्पादकता पर आधारित वितरण प्रणाली उत्पाद निष्पादन के लिए अधिकांश परिस्थितियों में पर्याप्त नहीं है.

आधुनिक वितरण सिद्धांत की आलोचना के कुछ अन्य बिंदु: आधुनिक वितरण सिद्धांत सीमान्त उत्पादकता के आधार पर वितरण को न्याय संगत बताता है. इस निष्कर्ष का मूल आधार यह है कि इस वितरण प्रणाली के तहत श्रम को भुगतान उस के सीमान्त उत्पाद के मूल्य के बराबर होता है यानी जिस संसाधन ने जितना उत्पादन में योगदान दिया, उत्पादन का उतना हिस्सा उसे मिल जाता है. इस लिए इस वितरण प्रणाली को न्याय संगत कहा जाता है. परन्तु ध्यान देने वाली बात यह है कि वेतन की दर उत्पादन के मूल्य के समान ($w = VMP_L$) उसी परिस्थिति में होती है, जब उत्पाद एवं संसाधन बाज़ार दोनों पूर्ण प्रतियोगी हों, अन्यथा नहीं. दूसरी बात यह है कि सीमान्त उत्पादकता के आधार पर वितरण का अर्थ औसत उत्पादकता के अनुसार भुगतान नहीं है. इस लिए सीमान्त उत्पादकता के आधार पर वितरण में भी, श्रम को उस के द्वारा किए गए सारे उत्पादन का भुगतान नहीं होता. अंत: वितरण यह सिद्धांत न्यायसंगत नहीं है.

एक अन्य महत्त्वपूर्ण बिंदु यह है कि अगर संसाधनों में स्थानापन्नता शून्य हो यानी संसाधनों का प्रयोग निश्चित अनुपात में ही संभव हो, तो किसी संसाधन की सीमान्त उत्पादकता ज्ञात करना ही संभव नहीं है. मोटर साइकिल पर घर-घर खाद्य सामग्री पहुंचाने वाले वितरक की उत्पादकता में मोटर साइकिल का योगदान कितना है और पहुंचाने वाले वितरक का कितना, यह ज्ञात करना संभव ही नहीं. सीमान्त उत्पादकता ज्ञात करने के लिए एक साधन की मात्रा स्थिर रख कर, दूसरे संसाधन की मात्रा में बदलाव करना होता है परन्तु वितरक और मोटर साइकिल के बीच के अनुपात में बदलाव संभव ही नहीं. इस आलोचना के जवाब में एक उपाय सुझाया गया था. वह उपाय निम्न स्वरूप का था: वितरक और मोटर साइकिल की सीमान्त उत्पादकता से मोटर साइकिल का बाज़ार भाव से किराया निकाल दें, जो शेष बचे वह वितरक की उत्पादकता. परन्तु मोटर साइकिल का बाज़ार भाव से किराया कैसे ज्ञात हो? वितरण सिद्धांत का उद्देश्य बाज़ार भाव का निर्धारण करना ही है. इस लिए हम किसी भी संसाधन के बाज़ार भाव को पूर्व निर्धारित नहीं मान सकते हैं. संयुक्त रूप में प्रयोग किए जाने वाले संसाधनों में से, एक के बाज़ार भाव को पूर्व निर्धारित मान कर ही, दूसरे संसाधन का भाव निर्धारित करना संभव होना ही, इस प्रणाली की अपर्याप्तता को स्वयंसिद्ध करता है. निश्चित तौर पर **एक सुनिश्चित अनुपात में प्रयोग किए जाने वाले संसाधनों की अलग-अलग सीमान्त उत्पादकता की गणना संभव ही नहीं है.**

इस से भी बढ़ कर, अगर संसाधनों का प्रयोग निश्चित अनुपात में प्रयोग अनिवार्य न भी हो एवं संसाधन स्थानापन्न हों, तो किसी संसाधन की सीमान्त उत्पादकता की गणना तो की जा सकती है परन्तु उसे न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता. उदाहरण के लिए, **एक श्रमिक उच्च कार्य क्षमता की मशीन के साथ काम करता है, तो उस की सीमान्त उत्पादकता उस श्रमिक से अधिक होगी, जो निम्न गुणवत्ता की मशीन के साथ उत्पादन करता है. भले ही दोनों श्रमिक एक से मेहनती, एक जैसे कार्यकुशल हों परन्तु क्योंकि जिन औजारों के साथ वे उत्पादन कर रहे हैं, उन की कार्यकुशलता अलग है, इस लिए इन श्रमिकों की उत्पादकता भी अलग होगी. इस अंतर के लिए श्रमिक नहीं अपितु उद्यमी ज़िम्मेदार है.** इसी प्रकार एक-जैसे कार्यकुशल श्रमिकों की वेतन-दर में अंतर का दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि दोनों श्रमिकों द्वारा उत्पादित वस्तु के बाज़ार की संरचना भिन्न है- एक का उत्पादन एकाधिकारी बाज़ार में बिकता है और दूसरे का पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में. उन को मिलने वाले वेतन में अंतर का कारण उन की कार्यकुशलता में अंतर न हो कर बाज़ार की संरचना है.

इस लिए अगर अमरीकी श्रमिक की वेतन-दर भारतीय श्रमिक से 20 गुणा है तो हम यह नहीं कह सकते कि भारतीय श्रमिक की कार्यकुशलता, मेहनत, समर्पण इत्यादि अमरीकी श्रमिक का 20वां हिस्सा है एवं इस लिए भारतीय श्रमिक की कम वेतन-दर के लिए वह स्वयं ज़िम्मेदार है. पहली बात तो यह है कि वितरण सिद्धांत में ही यह निहित है कि भारतीय और अमरीकी श्रमिक के वेतन-दर में अंतर के लिए दोनों जगह के बाज़ार की संरचना भी ज़िम्मेदार हो सकती है. अगर अमरीकी बाज़ार में श्रमिक एकाधिकारी हैं अथवा उन्हें राज्य की ओर से कुछ संरक्षण प्राप्त है और जो भारतीय श्रमिक को उपलब्ध नहीं है, तो वह भी वेतन-दर की विसंगति का कारण हो सकता है.

इस से भी आगे बढ़ कर अगर हम मान लें कि अमरीकी और भारतीय बाज़ार की संरचना एक सी है एवं दोनों जगह पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार है, तो भी क्या भारतीय श्रमिक के निम्न स्तरीय वेतन के लिए भारतीय श्रमिक को ज़िम्मेदार ठहराया जा सकता है? क्या यह संभव नहीं कि भारतीय अधिक नहीं तो अमरीकी श्रमिक सरीखा ही मेहनती, ईमानदार एवं सक्षम है परन्तु वह जिस तकनीक के साथ, जितनी पूँजी के साथ उत्पादन करता है ,वह निम्न स्तरीय है एवं इस लिए उस की उत्पादकता कम है? स्पष्ट तौर पर उत्पादन प्रक्रिया में किस तकनीक का प्रयोग होता है, कितनी पूँजी का प्रयोग होता है, यह श्रमिक के नियंत्रण से बाहर है. इस लिए यह कहना न्यायोचित नहीं है कि भारतीय श्रमिक अपने निम्न स्तरीय वेतन-दर के लिए स्वयं जिम्मेवार है; वह उत्पादकता बढ़ा ले तो उस का वेतन-दर बढ़ जाएगा.

इस सिद्धांत में श्रमिक की उत्पादकता को उस के वेतन से असम्बद्ध माना गया है. प्रभावी रूप से उत्पादकता स्वतंत्र रूप से निर्धारित मानी गई है जिस का श्रमिक को दिये जाने वाले वेतन से कोई सम्बन्ध नहीं है. स्पष्ट तौर पर हमेशा ऐसा नहीं होता. कई परिस्थितियों में वेतन का उत्पादकता पर सीधा प्रभाव पड़ता है. उदाहरण स्वरूप ग़रीब देशों में कम वेतन के चलते श्रमिकों का स्वास्थ्य कमज़ोर रहता है एवं शिक्षा-प्रशिक्षण का अभाव रहता है. अगर श्रमिकों का वेतन बढ़ा दिया जाए तो उन का स्वास्थ्य सुधर सकता है जिस का उत्पादकता पर सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा. श्रमिकों के वेतन-दर में सुधार से उन के बच्चों को बेहतर शिक्षा-प्रशिक्षण मिल सकता है जिस का भी उत्पादकता पर सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा. अर्थशास्त्र का वितरण सिद्धांत वेतन के उत्पादकता पर पड़ने वाले प्रभाव की अनदेखी करता है.

आधुनिक अर्थशास्त्र का वितरण सिद्धांत बुनियादी तौर पर संसाधनों के भाव निर्धारण का सिद्धांत है. यह एक बाज़ार विशेष में संसाधन की कीमत कैसे तय होती है, एवं बाज़ार का स्वरूप बदलने पर संसाधन की कीमत में होने वाले बदलाव की व्याख्या कर सकता है. इसे इतने तक ही सीमित रखना चाहिए. **इसे पूरी अर्थव्यवस्था पर लागू करने से निकलने वाले निष्कर्ष अनुपयुक्त हो सकते हैं**. उदाहरण के लिए, इस सिद्धांत के अनुसार अगर किसी श्रम बाज़ार में वेतन कम हो जाता है, तो श्रम की माँग बढ़ जाएगी जिस से उस तरह के श्रम की बेरोजगारी कम हो जाएगी. अगर इस निष्कर्ष को पूरी अर्थव्यवस्था पर लागू किया जाए, तो परिणाम उलटा हो सकता है. पूरी अर्थव्यवस्था में वेतन कम होने से तात्कालिक तौर पर तो श्रम की माँग बढ़ सकती है परन्तु थोड़े समय में ही इस के विपरीत परिणाम आने शुरू हो जाएँगे. श्रमिक का वेतन जहाँ उत्पादन की लागत है, वहीं यह श्रमिक की आय के रूप में उत्पाद की माँग का आधार भी है. पूरी अर्थव्यवस्था में वेतन-दर कम होने पर श्रमिक वर्ग की आय कम हो जाएगी जिस से उपभोग की वस्तुओं की माँग कम हो जाएगी. उत्पादों की माँग कम होने पर निश्चित तौर पर श्रम की माँग भी कम हो जाएगी.[71] अर्थव्यवस्था के स्तर पर वेतन-दर कम करने से बेरोजगारी कम होने की बजाय बढ़ सकती है.

उपरोक्त उदाहरण आधुनिक इकाई आधारित अर्थशास्त्र की एक अन्य सीमा की ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित करता है. आधुनिक इकाई आधारित अर्थशास्त्र आम तौर पर आंशिक संतुलन का अध्ययन करता है. श्रम बाज़ार का अध्ययन करते हुए हम उत्पाद की कीमत को स्थिर मान कर चलते हैं और उत्पाद माँग का अध्ययन करते हुए हम श्रम के दाम को स्थिर मान कर चलते हैं. परन्तु पिछले पैरा में दिए उदाहरण से ऐसे अध्ययन की अपर्याप्तता स्पष्ट है.

आधुनिक वितरण सिद्धांत श्रम, पूँजी एवं भूमि को एक सरीखा मानता है. उदाहरण के लिए, आधुनिक वितरण सिद्धांत श्रम बाज़ार में एकाधिकारी क्रेता एवं एकाधिकारी विक्रेता को सम धरातल पर खड़ा मान कर चलता है. परन्तु वास्तविकता यह है कि पूँजी और श्रम सम धरातल पर नहीं खड़े है. श्रमिक अगर हड़ताल पर जाते हैं, तो थोड़े ही दिनों में उन के घरों में खाने के लाले पड़ सकते हैं जबकि पूँजीपति लम्बे समय तक हड़ताल झेल सकता है. उसे नुकसान होगा, परन्तु उस के घर में खाने के लाले पड़ने की संभावना नहीं है.

असल में, न केवल वितरण प्रणाली में अपितु अपने बुनियादी स्वरूप में भी, आधुनिक अर्थशास्त्र पूँजी, श्रम इत्यादि को केवल उत्पादन के संसाधन मात्र मानता है. वास्तविकता यह है कि उत्पादन की प्रक्रिया में अमूर्त संसाधन नहीं बल्कि जीवित इंसान शामिल होते हैं. वेतन-दर का घटना बढ़ना केवल अमूर्त संसाधनों की कीमत में बदलाव नहीं होता अपितु समाज के बड़े हिस्से के लिए यह जीवन

---

[71] दूसरे विश्व युद्ध से पहले जब मंदी और बेरोजगारी का दौर था, तब प्रसिद्ध अर्थशास्त्री पीगू (Pigou) ने मंदी दूर करने के लिए वेतन कम करने का उपाय सुझाया था. ऐसा करने पर मंदी/बेरोजगारी कम होने के बजाय बढ़ गई थी.

मरण का प्रश्न होता है. आधुनिक अर्थशास्त्र सामाजिक ढाँचे अथवा संरचना की अनदेखी करता है. इस लिए यह कई सामयिक समस्याओं की तर्कपूर्ण व्याख्या नहीं कर पाता. उदाहरण के लिए, आधुनिक अर्थशास्त्र का वितरण सिद्धांत नस्ल, रंग अथवा लिंग के आधार पर वेतन-दर में व्याप्त ग़ैर-बराबरी की तर्क पूर्ण व्याख्या करने में विफल है. स्त्री-पुरुष की वेतन-दर में अंतर के उदाहरण दुनिया भर में मिल जाते हैं (हालाँकि सब जगह अंतर एक समान नहीं है). स्त्री-पुरुष के वेतन का अंतर दो स्वरूप लेता है. समान काम के लिए कम वेतन एवं उच्च वेतन वाले कार्यों में महिलाओं की कम भागेदारी. उदाहरण के लिए, भवन निर्माण के काम में आम तौर पर महिलाएं मज़दूर के तौर पर दिखती हैं मिस्त्री के तौर पर नहीं. **सिवाय सामाजिक भेदभाव अथवा प्रथा के, इस ग़ैर-बराबरी की कोई तर्कपूर्ण व्याख्या नहीं की जा सकती कि महिला आम तौर पर मज़दूर होती है मिस्त्री नहीं.** वितरण प्रणाली का आधुनिक सिद्धांत इस तथ्य की कोई व्याख्या नहीं कर पाता एवं इस को नज़रअंदाज़ कर देता है.

वास्तव में आधुनिक वितरण सिद्धांत, मूल्य निर्धारण की व्याख्या का ही एक विशिष्ट रूप है. वितरण की यह व्याख्या 'अधिकतम लाभ' के सिद्धांत पर आधारित है एवं 'अधिकतम लाभ' के सिद्धांत पर आधारित व्याख्या के गुण-दोष, वितरण की व्याख्या पर भी लागू होते हैं. अगले अध्यायों में हम इकाई आधारित अर्थशास्त्र के गुण-दोष की विवेचना करेंगे.

संक्षेप में, इस अध्याय में हम ने संसाधनों की मूल्य निर्धारण प्रक्रिया का अध्ययन किया है. संसाधनों का मूल्य निर्धारण उन के उपयोग की मात्रा के साथ मिल कर उत्पादन के वितरण का आधार भी बनता है. इस लिए इस अध्याय की सामग्री को 'संसाधनों के मूल्य निर्धारण का सिद्धांत' एवं 'वितरण सिद्धांत' दोनों नामों से जाना जाता है. वितरण की समस्या को समग्र अर्थशास्त्र एवं इकाई आधारित अर्थशास्त्र दोनों दृष्टिकोण से देखा गया है. हालाँकि इस अध्याय में हम ने वितरण का अध्ययन मूलतः इकाई आधारित अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से किया है परन्तु समग्र अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से वितरण के अध्ययन में प्रयोग की जानी वाली कुछ अवधारणाओं जैसे लोरेन्ज़ वक्र (Lorenze curve), गिनी गणक (Gini coefficient) एवं दशमांश अनुपात (decile ratio) इत्यादि की भी चर्चा की है.

इकाई आधारित अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से वितरण का आधार 'संसाधनों के मूल्य निर्धारण का सिद्धांत' मूलतः उत्पाद की कीमत निर्धारण सिद्धांत सरीखा ही है. परन्तु इस की अपनी विशिष्टता भी है. उत्पादन के साधनों की माँग का आधार 'अधिकतम लाभ की अवधारणा है' जबकि उत्पादों की माँग का आधार 'अधिकतम संतुष्टि' है.

इस अध्याय से पहले हमारे विमर्श के केंद्र में केवल एक बाज़ार था, उत्पाद-बाज़ार, परन्तु इस अध्याय में हम ने दो बाज़ारों की चर्चा की है - उत्पाद-बाज़ार एवं संसाधन बाज़ार. हम ने विभिन्न किस्म के उत्पाद-बाज़ार एवं संसाधन बाज़ारों के सन्दर्भ में संसाधनों के मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया को समझा. इस प्रक्रिया में कई नई अवधारणाओं का प्रयोग हुआ है- सीमान्त राजस्व उत्पाद (MRP), सीमान्त उत्पाद का मूल्य (VMP), सीमान्त भौतिक उत्पाद (MPP). इन अवधारणाओं को समझना विशेष तौर पर सीमान्त राजस्व एवं सीमान्त राजस्व उत्पाद के सम्बन्ध एवं अंतर समझना आवश्यक है. किसी उत्पाद के लिए व्यक्ति के माँग-वक्र से उस उत्पाद की कुल माँग ज्ञात करने की प्रक्रिया का हम पहले अध्ययन कर चुके हैं. परन्तु किसी एक उत्पादक की किसी संसाधन की माँग के आधार पर उस संसाधन की कुल माँग ज्ञात करने की प्रक्रिया थोड़ी भिन्न है. इस को ठीक से समझना आवश्यक है.

इस अध्याय में श्रम के आपूर्ति-वक्र के अध्ययन में हम ने पुन: उदासीनता-वक्र का उपयोग किया एवं यह देखा कि किन्हीं परिस्थितियों में श्रम के आपूर्ति-वक्र की ढलान ऋणात्मक भी हो सकती है.

हम ने यह भी देखा कि एक ही बुनियादी सिद्धांत- श्रम की माँग वहीं तक होगी जहाँ पर श्रम का सीमान्त राजस्व उत्पाद श्रम पर सीमान्त ख़र्च के समान होता है एवं उस से अधिक होने पर सीमान्त राजस्व उत्पाद सीमान्त लागत से कम हो जाता है - को बाज़ार की अलग-अलग संरचनाओं में लागू करने पर गणना में कैसे बदलाव करने पड़ते हैं एवं इस से कैसे श्रम की कीमत एवं उपयोग मात्रा में बदलाव आ जाता है. हम ने यह भी देखा कि एक ही वक्र विक्रेता एवं क्रेता के दृष्टिकोण से अलग-अलग अवधारणा को दर्शा सकता है.

भूमि, श्रम एवं पूँजी तीनों के मूल्य निर्धारण का बुनियादी सिद्धांत एक ही है अपितु हर एक की अपनी विशिष्टता भी है. अब तक हम एक समय-काल का अध्ययन कर रहे थे परन्तु मशीन सरीखे संसाधन लम्बे समय तक उपयोग में आते हैं. इस लिए इस अध्याय में हम

ने विभिन्न समय-काल में हुए उत्पादन इत्यादि की गणना करने के लिए वर्तमान मान (present value) एवं आन्तरिक लाभ दर (internal rate of return) ज्ञात करना सीखा है.

इस अध्याय में लगान (rent) शब्द के भिन्न प्रयोगों का भी हम ने अध्ययन किया. रिकार्डो की भूमि के लगान की अवधारणा का भी अध्ययन किया गया और देखा कि कैसे रिकार्डो ने यह साबित किया कि अनाज के उच्च दाम का कारण अधिक लगान न हो कर, अधिक लगान अनाज के उच्च दामों के कारण था. अर्थशास्त्र में लगान को एक विशिष्ट अर्थ दिया गया है जो सामान्य बोलचाल से भिन्न है. इस लिए लगान शब्द का प्रयोग करते हुए हम सतर्क रहना चाहिए. इस सन्दर्भ में 'लाभ' की लगान के रूप में नई परिभाषा रोचक है.

अंत में, हम ने वितरण के आधुनिक सिद्धांत की कुछ आलोचनाओं का भी अध्ययन किया. इस में सीमान्त उत्पादकता की गणना पर भी प्रश्न उठे एवं यह भी रेखांकित हुआ कि संसाधनों को किया जाने वाला कुल भुगतान किन परिस्थितियों में ठीक कुल उत्पादन के मूल्य के बराबर होता है. मूलतः वितरण का आधुनिक सिद्धांत उद्योग विशेष में प्रयोग होने वाले संसाधनों की कीमत निर्धारण का सिद्धांत है. कुछ सीमाओं के बावजूद इस सन्दर्भ में यह उपयोगी है परन्तु इस को पूरी अर्थव्यवस्था पर लागू करना उचित नहीं है.

प्रश्न:

1. निम्न में अंतर स्पष्ट करें: (क) सीमान्त राजस्व उत्पाद एवं सीमान्त राजस्व, (ख) सीमान्त उत्पाद एवं सीमान्त भौतिक उत्पाद (ग) सीमान्त राजस्व उत्पाद एवं सीमान्त उत्पाद का मूल्य (घ) सीमान्त लागत एवं सीमान्त ख़र्च (ङ) लगान एवं स्थानान्तरण मूल्य.
2. निम्न को परिभाषित करें: (क) वर्तमान मान (ख) आन्तरिक लाभ दर (ग) आभासी लगान (घ) दो तरफ़ा एकाधिकार (ङ) क्रेता एकाधिकारी (च) पूँजी की सीमान्त दक्षता (Marginal efficiency of capital -MEC) (छ) लोरेन्ज़ वक्र (Lorenze curve) (ज) गिनी गुणांक (Gini coefficient) (झ) दशमांश अनुपात (decile ratio).
3. संसाधनों की मूल्य निर्धारण प्रक्रिया एवं उत्पादों की कीमत निर्धारण प्रक्रिया की समानताओं एवं अंतर को स्पष्ट करें.
4. संसाधनों की माँग को प्रभावित करने वाले चरों की व्याख्या करें.
5. अगर श्रम का केवल एक ही क्रेता है, तो वेतन-दर निर्धारण की सचित्र व्याख्या करें.
6. उत्पादन के पूर्ण निपटारे/निष्पादन (Product exhaustion) की समस्या की समीक्षा करें.
7. संसाधनों की कीमत निर्धारण प्रक्रिया क्यों महत्त्वपूर्ण है?
8. उत्पाद एवं संसाधन बाज़ार दोनों के पूर्ण प्रतियोगी होने पर एवं एक से अधिक परिवर्तनशील संसाधन होने पर, क्या उत्पादक के लिए किसी संसाधन का माँग-वक्र उस संसाधन का सीमान्त उत्पाद मूल्य वक्र ही होगा? तर्कपूर्ण व्याख्या करें.
9. उच्च भूमि लगान के कारण अनाज के दाम ज़्यादा होते हैं. क्या आप इस निष्कर्ष से सहमत हैं? तर्क पूर्ण व्याख्या करें.
10. क्या एक ही संसाधन की आपूर्ति स्थिर, धनात्मक ढलान वाली और शून्य ढलान वाली हो सकती है?
11. एक मशीन की लागत एक लाख रुपया है. इस का जीवन काल मात्र 5 वर्ष है. अगर इस को चलाने पर प्रतिवर्ष 10 हजार रुपये ख़र्च होते हैं, तो इस की कुल लागत कितनी होगी.
12. एक अधिकारी का वेतन कर्मचारी से 6 गुणा ज़्यादा है. इस का अर्थ है कि अधिकारी की उत्पादकता कर्मचारी से 6 गुणा ज़्यादा है. क्या आप इस निष्कर्ष से सहमत हैं? तर्क पूर्ण व्याख्या करें.
13. बेरोजगारी की समस्या का अचूक इलाज है वेतन में कटौती. क्या आप इस निष्कर्ष से सहमत हैं? तर्क पूर्ण व्याख्या करें.
14. श्रमिक संगठन के सामने चुनौतियां पर अपने विचार व्यक्त करें.
15. संसाधन बाज़ार में दो-तरफ़ा एकाधिकारी बाज़ार (bilateral monopoly) में कीमत निर्धारण की प्रक्रिया समझाएं.
16. आधुनिक वितरण सिद्धांत की समीक्षा करें**.**

अध्याय – 14

सामाजिक कल्याण के दृष्टिकोण से आर्थिक परिस्थितियों के मूल्यांकन का अर्थशास्त्र (Welfare Economics)

अर्थव्यवस्था के सभी महत्त्वपूर्ण पक्षों –उपभोग, उत्पादन एवं वितरण- का बुनियादी अध्ययन हम ने कर लिया है. हमारे द्वारा अब तक जिन सिद्धांतों/व्याख्याओं का अध्ययन किया गया है, इन के अलावा अन्य सिद्धांत भी प्रतिपादित किए गए हैं. इन विषयों पर नवीन शोध भी जारी है. परन्तु अब तक के हमारे अध्ययन ने ऐसा आधार तैयार कर दिया है कि हम इन सिद्धांतों के आधार पर कार्यरत अर्थव्यवस्था का सामाजिक कल्याण के दृष्टिकोण से प्रारंभिक मूल्यांकन कर सकें. अर्थशास्त्र में ऐसे मूल्यांकन का भी एक विधान है जिसे सामाजिक कल्याण का अर्थशास्त्र (Welfare Economics) कहा जाता है. इस अध्याय में हम मूलतः इसी का अध्ययन करेंगे.

सामाजिक कल्याण के कई आयाम हैं. आर्थिक एवं ग़ैर-आर्थिक - दोनों तरह के कारक हमारे कल्याण को प्रभावित करते हैं. समान आय परन्तु भरोसे लायक मित्र-विहीन व्यक्ति, आम तौर पर उस व्यक्ति से कम सुख-शांति महसूस करता है, जिस के पास उतनी ही आय के साथ-साथ विश्वसनीय मित्र एवं सम्बन्धी भी हों. पारिवारिक सम्बन्ध, मित्रता इत्यादि का महत्त्व इस तथ्य से भी रेखांकित होता है कि एकाकीपन की समस्या से निपटने के लिए इंग्लैंड में एक स्वतंत्र मंत्रालय बनाया गया है. दुर्भाग्य से अर्थशास्त्र **कल्याण के इस व्यापक स्वरूप की अनदेखी करता है. अर्थशास्त्र में सामाजिक कल्याण का अभिप्राय कल्याण की व्यापक अवधारणा न हो कर व्यक्ति के स्थान पर समाज के आर्थिक कल्याण मात्र से है. मुख्य धारा के अर्थशास्त्र में सामाजिक कल्याण का अभिप्राय व्यक्तिगत के स्थान पर सामाजिक *आर्थिक* कल्याण से है.** यहाँ तक कि आर्थिक कारकों के ग़ैर-आर्थिक प्रभावों को भी अनदेखा कर दिया जाता है. निश्चित तौर पर कल्याण के कुछ व्यापक संकेतक ज़रूर विकसित हुए हैं, जिन का ज़िक्र हम आगे चल कर करेंगे, जो कल्याण को आर्थिक मसलों तक सीमित नहीं करते, परन्तु ऐसे प्रयास अपवाद ही हैं.

सामाजिक कल्याण के संकेतक/मापक: सर्वप्रथम राष्ट्रीय आय को सामाजिक कल्याण का मापक माना गया. आधुनिक अर्थशास्त्र की शुरुआत इंग्लैंड के अर्थशास्त्री एडम स्मिथ से मानी जाती है. इन की प्रसिद्ध पुस्तक का नाम ही है 'राष्ट्रों की संपत्ति की प्रकृति और कारणों का अध्ययन'(An Inquiry into the Nature and Causes of the Wealth of Nations). आज भी राष्ट्रीय आय में वृद्धि की दर को अर्थव्यवस्था के स्वास्थ्य का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण पैमाना माना जाता है. परन्तु राष्ट्रीय आय को कल्याण के संकेतक के रूप में प्रयोग करने की आलोचना भी की गई है. सब से पहली त्रुटि तो यह है कि एक बड़े राष्ट्र की आय एक छोटे देश की राष्ट्रीय आय से अधिक हो सकती है परन्तु बड़ी आबादी में वितरण के चलते अधिक राष्ट्रीय आय वाले देश के नागरिक तुलनात्मक रूप से ग़रीब हो सकते हैं. इस समस्या का इलाज तो आसान है; राष्ट्रीय आय के बजाय प्रति-व्यक्ति राष्ट्रीय आय को हम कल्याण के संकेतक के रूप में लें. परन्तु प्रति-व्यक्ति आय के साथ भी दो समस्या हैं.

उच्च औसत आय के साथ वितरण की घोर असमानता भी हो सकती है. मान लें कि दो देशों में 5-5 लोग ही रहते हैं. एक देश, क में सभी 5 लोगों की आय 100 रुपये के आस-पास है और औसत आय प्रति-व्यक्ति 100 रुपया है. दूसरे देश, ख की अर्थव्यवस्था ऐसी है कि 4 लोगों की आय 5-10 रुपये के आस-पास है परन्तु एक व्यक्ति अत्यंत अमीर है. इस लिए उस देश की औसत प्रति-व्यक्ति आय 150 रुपये है. अगर प्रति-व्यक्ति औसत राष्ट्रीय आय सामाजिक कल्याण का संकेतक हो, तो निश्चित तौर पर ख देश बेहतर माना जाएगा. परन्तु अगर हम से पूछा जाए कि आप किस देश को बेहतर मानते हैं, किस देश में रहना पसंद करेंगे, तो संभवतः अधिकाँश लोग क देश में रहना पसंद करेंगे.

प्रति-व्यक्ति आय को आर्थिक कल्याण का संकेतक मानने में एक और दिक्कत भी है. हम ने उपभोग का अध्ययन करते हुए यह रेखांकित किया था कि प्रचलित अर्थशास्त्र की परिभाषा में उपभोग का वास्तव में व्यक्ति के लिए कल्याणकारी होना आवश्यक नहीं है.

नशीले पदार्थों का सेवन, भले ही व्यक्ति के स्वास्थ्य, पारिवारिक जीवन इत्यादि के लिए हानिकारक है, अगर किसी उपभोक्ता को संतुष्टि देता है, तो यह मान्य उपभोग है, उतना ही महत्त्वपूर्ण जितना कि पौष्टिक भोजन. इस लिए राष्ट्रीय आय की गणना में हर उस वस्तु का उत्पादन शामिल है जिस की माँग है, भले ही उस वस्तु का उत्पादन व्यक्ति एवं समाज दोनों के लिए कल्याणकारी न हो. उदाहरण के लिए, राष्ट्र ख ऐसी वस्तुओं का उत्पादन बड़े पैमाने पर करता है जो पर्यावरण को नुकसान पहुंचाती हैं. इस के विपरीत राष्ट्र क पर्यावरण को बचाने के उपाय करता है एवं इस लिए उस की प्रति-व्यक्ति आय ख देश से कम है. क्या ख राष्ट्र को अधिक कल्याणकारी मानना उचित होगा? शायद नहीं. यह भी हो सकता है कि भविष्य में ख राष्ट्र की आय क राष्ट्र की तुलना में और तेज़ी से बढ़े - बढ़ते प्रदूषण के चलते लोग अधिक बीमार पड़ेंगे जिस के चलते वहाँ हस्पतालों समेत अन्य स्वास्थ्य सुविधाओं का उत्पादन बढ़ेगा. प्रदूषण बढ़ने के कारण प्रदूषण-नियंत्रण के उपायों पर ख़र्च बढ़ेगा, जिस के चलते औसत राष्ट्रीय आय और बढ़ेगी. इस के विपरीत यह संभव है कि क देश में प्रदूषण-नियंत्रण के चलते लोगों का स्वास्थ्य अच्छा हो. इस लिए वहाँ स्वास्थ्य सेवाओं के उत्पादन में सीमित वृद्धि ही हो. अंत: प्रति-व्यक्ति आय के मामले में यह राष्ट्र ख से पिछड़ता ही चला जाए. परन्तु शायद ही हम में से कोई ऐसे देश की बजाय, जहाँ लोगों का स्वास्थ्य इतना अच्छा हो कि वहाँ स्वास्थ्य सेवाओं की बहुत कम ज़रूरत पड़ती हो, उस देश में रहना पसंद करे जहाँ ख़राब स्वास्थ्य के चलते व्यक्ति को स्वास्थ्य सेवाओं की बहुत ज़्यादा ज़रूरत पड़ती हो.

आय को कल्याण का उचित संकेतक न मानने का एक और बुनियादी कारण भी है. आय कल्याण का माध्यम है, साधन है, साध्य नहीं. इस लिए बेन्थम (Bentham) ने सुझाया था कि हमारा उद्देश्य होना चाहिए 'अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम कल्याण' (greatest good of the greatest number). पिगू(Pigou) जैसे अर्थशास्त्रियों ने इस अवधारणा का प्रयोग किया. इस अवधारणा को क्रियान्वयन हेतु निम्न सूत्र में पिरोया गया: समाज की संतुष्टि= व्यक्ति क की संतुष्टि+ व्यक्ति ख की संतुष्टि +व्यक्ति ग की संतुष्टि. बेन्थम के सुझाए संकेतक के इस व्यावहारिक रूप को गणन-संख्यावादी मापदंड (cardinalist criterion) नाम दिया गया क्योंकि ये उपयोगिता को गणन (cardinal) संख्याओं में नापते हैं.

इस सूत्र के साथ भी कई समस्या हैं. सर्वप्रथम, तो सामाजिक कल्याण का यह संकेतक भी वितरण की असमानता को अनदेखा करता है. इस सूत्र में सामाजिक कल्याण के इस नज़रिए से, किसी व्यक्ति की भी संतुष्टि में, एक इकाई की बढ़ोतरी का एक सा महत्त्व है फिर चाहे वह सब से संतुष्ट व्यक्ति की संतुष्टि में हो चाहे सब से वंचित की. इस संकेतक का निहितार्थ यह भी है कि सभी सदस्यों की संतुष्टि परस्पर स्वतंत्र है एवं एक दूसरे की संतुष्टि से प्रभावित नहीं होती. इस मान्यता की आलोचना हम पहले कर चुके हैं. कई मामलों में इंसान की संतुष्टि स्वतन्त्र न हो कर परस्पर निर्भर होती है. परन्तु सब से बड़ी दिक्कत यह है कि अलग-अलग व्यक्तियों की संतुष्टि का योग करने के लिए यह आवश्यक है कि सब की संतुष्टि को नापने का एक ही पैमाना हो. माँग का अध्ययन करते हुए हम जान चुके हैं कि आय को छोड़ कर संतुष्टि को नापने का अन्य कोई ऐसा पैमाना नहीं है. इस लिए गणन-संख्यावादी मापदंड में यह माना जाता है कि सभी व्यक्तियों की आय एवं संतुष्टि में एक सा सम्बन्ध है यानी आय के किसी भी स्तर से सभी व्यक्तियों को एक जैसी संतुष्टि मिलती है. इस के साथ अगर घटती सीमान्त संतुष्टि के नियम को जोड़ दिया जाए, तो अधिकतम सामाजिक कल्याण के लिए यह स्पष्ट तौर आवश्यक हो जाता है कि आय का वितरण एक समान हो. गणन-संख्यावादी दृष्टिकोण ने व्यक्तियों की संतुष्टि की परस्पर तुलना की समस्या को ही रास्ते से हटा दिया क्योंकि इस दृष्टिकोण का स्पष्ट निष्कर्ष यह है कि आय के समान वितरण को प्राथमिकता दी जाए. अगर आय का वितरण असमान है तो अधिक आय वाले व्यक्ति से लेकर कम आय, परन्तु आय की अधिक सीमान्त संतुष्टि वाले व्यक्ति, को देने से सामाजिक कल्याण में वृद्धि होगी.

परन्तु कल्याण का गणन-संख्यावादी दृष्टिकोण न केवल प्रकट रूप में अवास्तविक है अपितु यह इस अवधारणा पर भी निर्भर है कि वितरण एवं उत्पादन में परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं है. वास्तव में **उत्पादन एवं वितरण परस्पर स्वतंत्र कारक नहीं है; उत्पादन एवं वितरण एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं.** उदाहरण के लिए, वितरण को बदलने के लिए लगाया गया आय-कर श्रम की उपलब्धता को प्रभावित करता है जो कुल उत्पादन को प्रभावित करेगा. इस के अलावा भी यह संकेतक कई स्थितियों में सामाजिक कल्याण की गणना करने में असमर्थ है. उदाहरण के लिए, हमें दो अवस्थाओं में से एक का सामाजिक कल्याण के दृष्टिकोण से चुनाव करना हो - एक जिस में

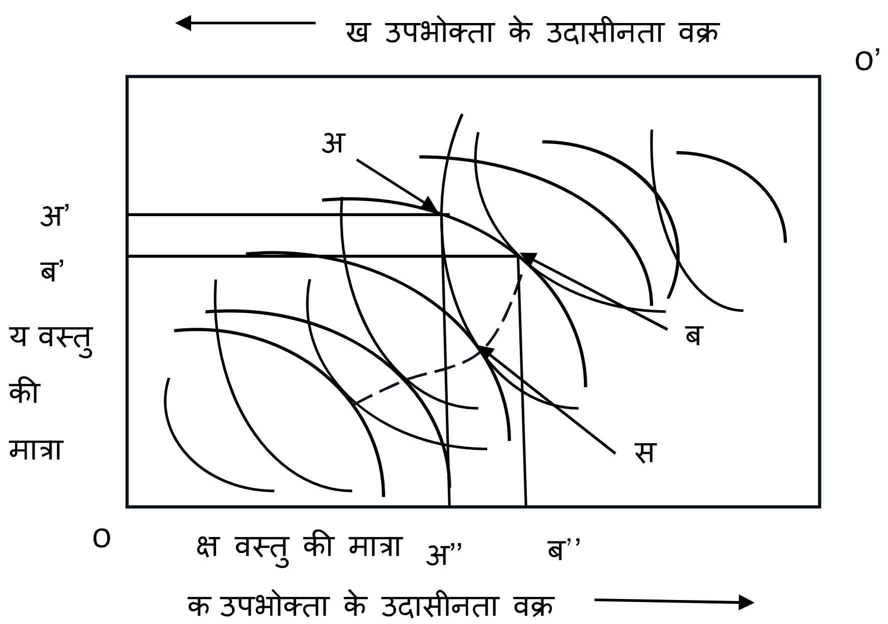
सब की आय का योग कम हो परन्तु सब की आय समान हो एवं दूसरी स्थिति जब सब की आय का योग पहले की तुलना में ज़्यादा हो परन्तु वितरण असमान हो - तो यह संकेतक हमारा मार्गदर्शन करने में असमर्थ है.

इन कारणों के चलते – यानी असमानता को अनदेखा करने के कारण एवं व्यक्ति के कल्याण के साथ बढ़ती आय के सीमित सम्बन्ध के चलते – समय-समय पर कई अन्य तरह के कल्याण के सूचकांक प्रस्तावित किए गए - प्रति-व्यक्ति स्टील/ऊर्जा की खपत, प्रति-व्यक्ति पुस्तकों/समाचारपत्रों के प्रकाशन की मात्रा इत्यादि. पिछली सदी के आखिरी वर्षों में मानव विकास सूचकांक (Human Development Index) को काफ़ी प्रसिद्धि मिली. इस संकेतक में आय के साथ-साथ स्वास्थ्य और शिक्षा को भी मानव विकास का आकलन करने में शामिल किया गया. समय के साथ इस में भी कुछ कमियाँ पाई गई. उदाहरण के लिए, अधिक व्यापक होने के बावजूद यह भी औसत को महत्त्व देता है और असमानता की अनदेखी करता है, विशेष तौर पर महिला-पुरुष के बीच की असमानता को. इस लिए कई नए संकेतक प्रयोग किए जा रहे हैं. परन्तु हम यहाँ इन पर विस्तार से चर्चा नहीं करेंगे. इस विषय पर विस्तृत चर्चा 'विकास का अर्थशास्त्र' (Development Economics) विषय की पुस्तकों में मिलेगी.

इष्टतम का परेटो मापदंड (Pareto Optimality Criterion): अर्थशास्त्र में कल्याण के अध्ययन में जिस मापदंड का बड़े पैमाने पर प्रयोग किया गया है, उसे इष्टतम का परेटो मापदंड कहते हैं. इस का नामकरण इस को सुझाने वाले अर्थशास्त्री के नाम पर किया गया है. परेटो ने सुझाया था कि अगर बिना किसी को नुकसान पहुंचाये, किसी अन्य को लाभ पहुँचना संभव न हो, तो ऐसी स्थिति को इष्टतम माना जा सकता है. दूसरे शब्दों में, अगर बिना किसी को नुकसान पहुंचाए, किसी अन्य को लाभ पहुंचाना संभव हो, तो वर्तमान स्थिति को इष्टतम नहीं कहा जा सकता है. इस मूल सिद्धांत के आधार पर तीन नियम विकसित किए गए हैं. अब हम उन का अध्ययन करेंगे. यहाँ से आगे की चर्चा में अब तक की पढ़ी सारी सामग्री का बार-बार प्रयोग होगा. इस लिए अगर पिछले अध्यायों में कुछ स्पष्ट नहीं है, तो पहले उसे समझ लें.

चित्रांकन की सुविधा के लिए हम यह मान कर चलेंगे कि अर्थव्यवस्था में केवल दो उपभोक्ता, केवल दो उत्पाद एवं केवल दो उत्पादन के साधन हैं. उत्पादक कितने भी हो सकते हैं. इस लिए इसे 2 गुणा 2 गुणा 2 मॉडल कहते हैं. यह मान्यता केवल चित्रांकन की सुविधा के लिए है. यह मान्यता न लागू हो (यानी उत्पाद, उपभोक्ता एवं संसाधनों की संख्या दो से अधिक हो) तो भी इस मान्यता के आधार पर निकले निष्कर्ष लागू होंगे.

चित्र 69- वितरण का एज्वर्थ करार-वक्र



सब से पहले हम वितरण में इष्टतम का अध्ययन करेंगे. इस के लिए हम एज्वर्थ (Edgeworth) द्वारा सुझाए गए पेटी-नुमा चित्र (box diagram) का प्रयोग करेंगे (चित्र 69). ऐसे चित्र का आगे भी प्रयोग होगा. इस लिए इस चित्र की संरचना को ठीक से समझे लें. चित्र 69 में दो उपभोक्ता, क एवं ख के बीच दो वस्तुओं क्ष एवं य के वितरण को दिखाया गया है. क्ष अक्ष की कुल लम्बाई क्ष वस्तु की कुल मात्रा दर्शाती है एवं य अक्ष की लम्बाई य वस्तु की कुल मात्रा दर्शाती है. मूल बिंदु O को शून्य मान

कर क उपभोक्ता के उदासीनता-वक्र दिखाए गए हैं. ख उपभोक्ता के उदासीनता-वक्र आयत के विपरीत बिंदु O' को शून्य बिंदु मान कर दिखाए गए हैं.

इस आयत का हर बिंदु इन दोनों उपभोक्ताओं के बीच दोनों वस्तुओं का वितरण इंगित करता है. इस के साथ-साथ हर बिंदु दोनों उपभोक्ताओं के विशिष्ट उदासीनता-वक्र पर भी होगा. उदाहरण के तौर पर बिंदु अ, इंगित करता है कि य वस्तु की O अ' मात्रा उपभोक्ता क को मिल रही है और शेष मात्रा उपभोक्ता ख को मिल रही है, तथा वस्तु क्ष की O अ'' मात्रा क उपभोक्ता को मिल रही है एवं शेष मात्र ख उपभोक्ता को मिल रही है. इस चित्र का हर बिंदु दोनों उपभोक्ताओं का निश्चित संतुष्टि का स्तर भी इंगित करता है क्योंकि हर बिंदु दोनों उपभोक्ताओं के उदासीनता वक्र पर स्थित है. इसी प्रकार ब बिंदु दोनों उपभोक्ताओं के बीच वस्तुओं का वितरण एवं संतुष्टि का स्तर इंगित करता है. अगर आप को ये निष्कर्ष समझ नहीं आए तो दोबारा रेखांकित कर दें कि इस आयत में क उपभोक्ता के उदासीनता-वक्र O को मूल/शून्य बिंदु मान कर खींचे गए हैं एवं उपभोक्ता ख के उदासीनता-वक्र O' को मूल/शून्य बिंदु मान कर खींचे गए हैं.

बिंदु अ एवं बिंदु ब में से कौन सा बेहतर है? ध्यान से देखने पर आप पायेंगे कि अ और ब दोनों बिन्दुओं पर हालाँकि वस्तुओं का वितरण बदल गया है परन्तु ख उपभोक्ता दोनों बिन्दुओं पर एक ही उदासीनता-वक्र पर है (नोट करें कि ख उपभोक्ता द्वारा किस वस्तु का उपभोग बढ़ा है और किस वस्तु का उपभोग घटा है). अंत: ख उपभोक्ता की दृष्टि से देखें तो चाहे अर्थव्यवस्था बिंदु अ पर हो चाहे बिंदु ब पर, ख उपभोक्ता की संतुष्टि का स्तर एक ही रहता है. परन्तु क्या क उपभोक्ता भी बिंदु अ एवं बिंदु ब के बीच उदासीन होगा? नहीं - क्योंकि क उपभोक्ता के दृष्टिकोण से देखें तो बिंदु ब उच्चतर उदासीनता-वक्र पर है. इस लिए क उपभोक्ता अ बिंदु की तुलना में ब बिंदु को पसंद करेगा.

उपरोक्त चर्चा के बाद, आप बिंदु अ के बारे में क्या कहेंगे? क्या यह इष्टतम के परेटो मापदंड पर खरा उतरता है? नहीं. क्यों? क्योंकि इस बिंदु की तुलना में अन्य बिंदु उपलब्ध हैं जहाँ बिना ख उपभोक्ता की संतुष्टि के स्तर को कम किए, उपभोक्ता क के संतुष्टि के स्तर को बढ़ाना संभव है. इस लिए बिंदु अ इष्टतम के परेटो मापदंड पर खरा नहीं उतरता.

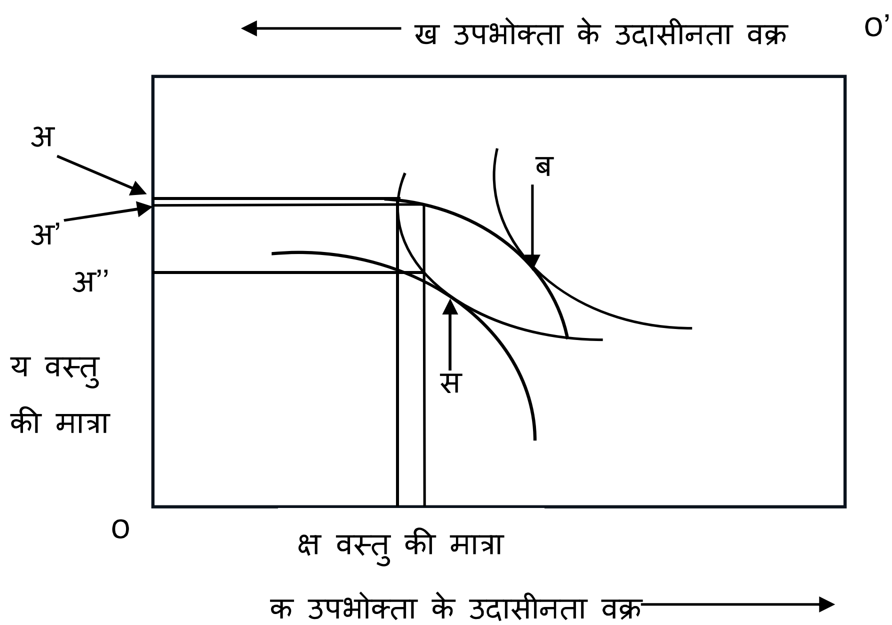
परन्तु ब बिंदु के बारे में क्या कह सकते हैं? क्या ब बिंदु इष्टतम के परेटो मापदंड पर खरा उतरता है? अ से ब बिंदु पर पहुँचने की प्रक्रिया में क्या हुआ है? क उपभोक्ता की य वस्तु की खपत कम हो गई है और क्ष वस्तु की खपत बढ़ गई है. ख उपभोक्ता के साथ विपरीत हुआ है. उस की य वस्तु की खपत बढ़ गई है और क्ष वस्तु की खपत घट गई है. यानी क उपभोक्ता ने ख को य वस्तु दे कर क्ष वस्तु की अधिक मात्रा प्राप्त कर ली एवं ऊँचे उदासीनता-वक्र पर पहुँच गया. इस प्रक्रिया में ख उपभोक्ता का संतुष्टि का स्तर बना रहा है. क्या यह प्रक्रिया आगे भी बढ़ सकती है? क्या ब बिंदु से क उपभोक्ता य वस्तु ख उपभोक्ता को दे कर क्ष वस्तु प्राप्त कर के इस से भी ऊँचे उदासीनता-वक्र पर पहुँच सकता है? चित्र से स्पष्ट है कि ऐसा करना संभव नहीं है; बिंदु ब की तुलना में ऐसा कोई अन्य बिंदु नहीं है जो बिना ख उपभोक्ता की संतुष्टि को घटाए क उपभोक्ता की संतुष्टि को बढ़ा दे या इस के विपरीत कर दे. इस लिए ब बिंदु इष्टतम के परेटो मापदंड पर खरा उतरता है.

क्या ब बिंदु एक मात्र ऐसा बिंदु है जो इष्टतम के परेटो मापदंड पर खरा उतरता है? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए अ बिंदु की तुलना स बिंदु से करें. आप पायेंगे कि अ बिंदु से स बिंदु तक पहुँचने पर उपभोक्ता क तो उसी उदासीनता-वक्र पर रहता है परन्तु उपभोक्ता ख उच्च उदासीनता-वक्र पर पहुँच सकता है, यानी उस की संतुष्टि का स्तर सुधर सकता है. क्या स बिंदु इष्टतम के परेटो मापदंड पर खरा उतरता है? हम पाते हैं कि बिना क उपभोक्ता को नीचे के उदासीनता-वक्र पर धकेले, ख उपभोक्ता की संतुष्टि का स्तर नहीं बढ़ सकता. इस लिए स बिंदु भी इष्टतम के परेटो मापदंड पर खरा उतरता है.

क्या आप ने ऐसा कोई गुण देखा जो ब एवं स बिंदुओं में है परन्तु अ बिंदु में नहीं है? नहीं देखा तो फिर से अ, ब एवं स बिंदु को ध्यान से देखें. आप पायेंगे कि ब एवं स बिंदु पर **दोनों उपभोक्ताओं के उदासीनता-वक्र एक दूसरे को मात्र स्पर्श करते** (tangent) हैं जबकि अ बिंदु पर दोनों उपभोक्ताओं के उदासीनता-वक्र एक दूसरे को काटते हैं. जब दो उदासीनता-वक्र एक दूसरे को मात्र स्पर्श करते (tangent) हैं तो इस का अर्थ है दोनों की ढलान अथवा प्रतिस्थापन की सीमान्त दर एक-समान है. इस का अर्थ है कि जिस दर पर दोनों

उपभोक्ता एक वस्तु का उपभोग बढ़ाने पर दूसरी वस्तु छोड़ने को तैयार हैं, वह दोनों उपभोक्ताओं के लिए समान है. इस लिए उन दोनों के बीच व्यापार संभव नहीं है क्योंकि इस दर पर व्यापार करने से उन की संतुष्टि नहीं बढ़ेगी. इस के विपरीत अ बिंदु पर दोनों उदासीनता वक्रों की ढलान एक समान नहीं है यानी जिस दर पर दोनों उपभोक्ता एक वस्तु का उपभोग बढ़ने पर दूसरी वस्तु छोड़ने को तैयार हैं, वह दोनों उपभोक्ताओं के लिए समान नहीं है. इस लिए दोनों के बीच व्यापार संभव है.

चित्र 70- चित्र 69 का संक्षिप्त रूप



इस को हम चित्र 70 की सहायता से अधिक स्पष्टता से देख सकते हैं. यह चित्र पिछले चित्र की प्रतिलिपि है; अंतर इतना है कि स्पष्टता के लिए अ, ब एवं स बिंदु और इन से सम्बन्धित उदासीनता-वक्र को छोड़ कर शेष उदासीनता-वक्र हटा दिए हैं. क्ष अक्ष पर खींची गई दोनों लम्बवत रेखाओं में क्ष वस्तु की मात्रा में एक इकाई का अंतर है. इस से स्पष्ट है कि अगर क उपभोक्ता को क्ष वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई मिल जाए, तो वह य वस्तु की अ और अ'' के बीच की मात्रा छोड़ सकता है. जबकि ख उपभोक्ता को क्ष वस्तु की एक इकाई छोड़ने के लिए मात्र अ और अ' के बीच की य वस्तु की मात्रा की ही आवश्यकता है. यानी क उपभोक्ता क्ष वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई के लिए य वस्तु की जितनी मात्रा छोड़ने को तैयार है, ख उपभोक्ता को क्ष वस्तु की एक इकाई छोड़ने के लिए य वस्तु की उस से कहीं कम मात्रा चाहिए. इस लिए दोनों के बीच व्यापार हो सकता है. यह व्यापार किस दर पर होगा, यह नहीं कहा जा सकता परन्तु इतना स्पष्ट है कि दोनों के बीच ऐसा व्यापार संभव है जो दोनों के लिए लाभकारी हो सकता है.

यह प्रक्रिया – क उपभोक्ता का क्ष वस्तु की एवज़ में य वस्तु का त्याग और ख उपभोक्ता के लिए ठीक इस का विपरीत करना - कब तक चल सकती है? स्पष्ट रूप से जब तक उपभोक्ताओं के बीच वस्तुओं की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर एक समान नहीं हो जाती, यह आदान-प्रदान या व्यापार चल सकता है.

इस **आदान-प्रदान से उपभोक्ताओं के बीच वस्तुओं की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर पर क्या असर होगा?** जैसे-जैसे क उपभोक्ता द्वारा क्ष वस्तु का उपभोग बढ़ता जाएगा, यानी वह अपने उदासीनता वक्र पर दाईं ओर चलेगा, क उपभोक्ता के लिए क्ष वस्तु के लिए प्रतिस्थापन की सीमान्त दर कम होती चली जाएगी यानी क्ष वस्तु की अतिरिक्त इकाई के लिए वह य वस्तु की कमतर मात्रा छोड़ने को तैयार होगा (आशा है आप को इस का कारण समझ आ गया होगा; अगर नहीं आया तो उदासीनता-वक्र वाला अध्याय दोबारा पढ़ लें). जैसे-जैसे क्ष वस्तु की खपत कम होती चली जाएगी और य वस्तु की खपत बढ़ती जाएगी, वैसे-वैसे ख उपभोक्ता के लिए प्रतिस्थापन की सीमान्त दर बढ़ती चली जाएगी, यानी क्ष वस्तु की अतिरिक्त इकाई के लिए उसे य वस्तु की अधिक मात्रा की आवश्यकता होगी. अंत: जैसे-जैसे दोनों उपभोक्ताओं के बीच व्यापार होगा, दोनों की क्ष वस्तु की य वस्तु से प्रतिस्थापन की दर में विपरीत दिशा में परिवर्तन होगा, एक की घटेगी और दूसरे की बढ़ेगी. इस तरह से, **दोनों उपभोक्ताओं के बीच इन दोनों वस्तुओं का व्यापार तब तक चलता रहेगा, जब तक दोनों उपभोक्ताओं के लिए इन दोनों वस्तुओं के बीच की MRS एक समान नहीं हो जाती**. मान लो कि दोनों उपभोक्ताओं के बीच लेन-देन करते-करते ब अथवा स बिंदु पर पहुँच जाते हैं, अब क्या होगा? इन दोनों बिन्दुओं पर दोनों उपभोक्ताओं के उदासीनता-वक्र

की ढलान एक सी है. इस लिए अब व्यापार करने पर दोनों अपने वर्तमान उदासीनता-वक्र पर ही रहेंगे. इस लिए इस स्थिति में दोनों के लिए लेन देन करने में कोई लाभ नहीं है.

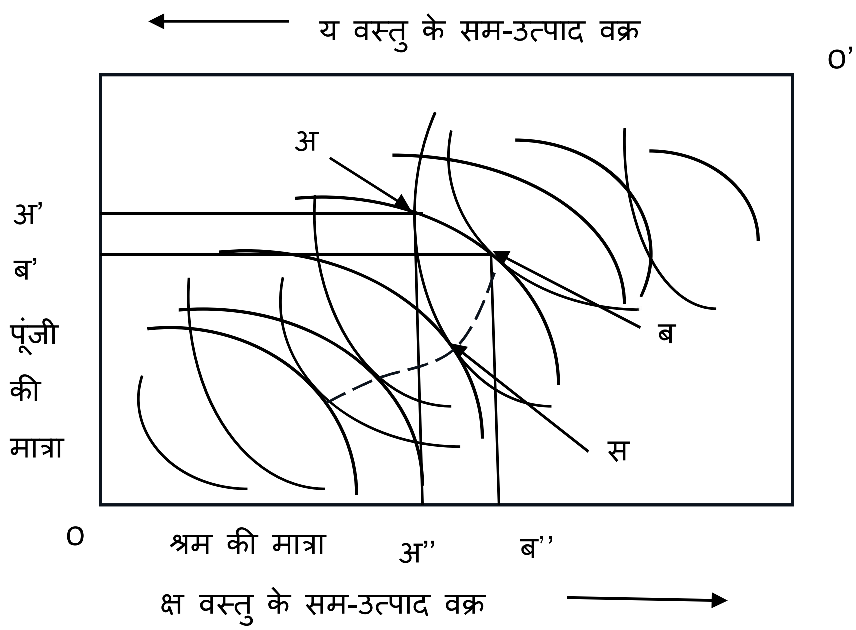
अब वापिस पुराने चित्र 69 पर चले जाते हैं. अगर अ बिंदु की तुलना ब एवं स बिंदु के बीच दोनों उपभोक्ताओं के उदासीनता-वक्र के किसी स्पर्श-बिंदु से करें तो क्या पाते हैं? ये सब बिंदु अ बिंदु की तुलना में दोनों उपभोक्ताओं के उच्चतर उदासीनता-वक्र पर हैं. यानी अ बिंदु की तुलना में ब एवं स बिंदु के बीच स्थित, दोनों उपभोक्ताओं के उदासीनता-वक्र के हर स्पर्श-बिंदु पर, दोनों उपभोक्ताओं की स्थिति में सुधार हो सकता है. परन्तु अगर हम ब एवं स अथवा इन दोनों के बीच स्थित दोनों उपभोक्ताओं के उदासीनता-वक्र के किन्हीं भी स्पर्श बिन्दुओं की तुलना करें तो पाते हैं कि एक बिंदु से दूसरे बिंदु पर जाने पर एक उपभोक्ता की संतुष्टि बढ़ती है तो दूसरे की घटती है. ऐसा संभव नहीं है कि दोनों की संतुष्टि बढ़ सके. इस लिए ब एवं स एवं इन के बीच के **ऐसे सब बिंदु जहाँ दोनों उपभोक्ताओं के उदासीनता-वक्र एक दूसरे को स्पर्श मात्र करते हैं, इष्टतम के परेटो मापदंड के अनुकूल हैं.** न केवल ब एवं स बल्कि इस चित्र का हर ऐसा बिंदु जिस में दोनों उपभोक्ताओं के उदासीनता-वक्र एक दूसरे को स्पर्श करते हैं, वे सब बिंदु इष्टतम के परेटो मापदंड के अनुकूल हैं. **इन सब बिन्दुओं को जोड़ने वाली रेखा को वितरण का एज्वर्थ करार-वक्र (Edgeworth Contract Curve for exchange/distribution) कहते हैं.** दूसरे शब्दों में, **वितरण अथवा उपभोग व्यवस्था द्वारा इष्टतम के परेटो मापदंड पर खरा उतरने के लिए यह आवश्यक है कि दोनों उपभोक्ताओं की दोनों वस्तुओं के बीच की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर एक समान हो एवं दोनों उपभोक्ताओं के उदासीनता वक्र एक दूसरे को स्पर्श करते हों**.[72]

उपरोक्त से स्पष्ट है कि अगर अर्थव्यवस्था को इष्टतम के परेटो मापदंड के अनुकूल होना है, तो उपभोक्ताओं को वितरण के एज्वर्थ करार-वक्र पर होना चाहिए. परन्तु इष्टतम का परेटो मापदंड इस चयन में हमारी कोई सहायता नहीं कर सकता कि इन सभी बिन्दुओं में से कौन सा बिंदु सब से अधिक कल्याणकारी होगा. लेकिन इष्टतम के परेटो मापदंड ने अधिकतम कल्याण के लिए उपयुक्त बिन्दुओं के समूह को काफ़ी हद तक सीमित कर दिया है. वितरण के एज्वर्थ करार-वक्र पर स्थित बिन्दुओं को छोड़ कर अन्य बिंदु अधिकतम कल्याण के दावेदार नहीं हो सकते. परन्तु अभी भी **अधिकतम कल्याण का बिंदु तय करने में काफ़ी अनिश्चितता बची हुई है क्योंकि वितरण के एज्वर्थ करार-वक्र का हर बिंदु इष्टतम के परेटो मापदंड को पूरा करता है.** हम इष्टतम के परेटो मापदंड की इस सीमा पर फिर लौटेंगे परन्तु फ़िलहाल आगे बढ़ते हैं.

अर्थव्यवस्था के कल्याणकारी होने के लिए केवल यह आवश्यक नहीं है कि वितरण इष्टतम के परेटो मापदंड के अनुकूल हो. यह भी आवश्यक है कि उत्पादन प्रक्रिया अथवा उपलब्ध संसाधनों का उत्पादों के बीच वितरण भी इष्टतम के परेटो मापदंड के अनुकूल हो. चित्र 71 में दो उत्पादों के बीच 'संसाधनों के वितरण का एज्वर्थ चित्र' बनाया गया है. यह चित्र उपभोग के एज्वर्थ चित्र सरीखा ही है. उदासीनता-वक्र का स्थान सम-उत्पाद वक्र ने ले लिया है. याद रहे कि अर्थव्यवस्था में दो ही वस्तुओं का उत्पादन हो रहा है और उत्पादन के दो ही संसाधन हैं. क्ष अक्ष पर श्रम को दर्शाया गया है और य अक्ष पर पूँजी को. क्ष वस्तु के सम-उत्पाद वक्र O को मूल अथवा शून्य बिंदु मान कर दर्शाए गए हैं एवं य वस्तु के सम-उत्पाद वक्र O' को मूल बिंदु मान कर दर्शाए गए हैं. शेष संरचना उपभोग के एज्वर्थ चित्र जैसी ही है. यानी आयत की लम्बाई और चौड़ाई दोनों संसाधनों की क्रमशः अधिकतम मात्रा इंगित करती हैं. इस आयत का हर बिंदु कुल संसाधनों का दोनों वस्तुओं के उत्पादन में वितरण को इंगित करता है. इस के साथ ही इस आयत का हर बिंदु दोनों वस्तुओं के उत्पादन के विशिष्ट सम-उत्पाद वक्र पर स्थित है एवं इस लिए यह दोनों वस्तुओं के उत्पादन की विशिष्ट मात्रा को इंगित करता है.

[72] इस चर्चा से स्पष्ट है कि अगर हम दो उपभोक्ता और दो वस्तुओं की अवास्तविक मान्यता को छोड़ दें, तो वितरण के इष्टतम के परेटो मापदंड के लिए यह आवश्यक है कि सभी उपभोक्ताओं की किन्हीं दो वस्तुओं के बीच की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर एक समान हो.परन्तु ध्यान रहे, इस का अर्थ यह कदापि नहीं है कि एक उपभोक्ता के क्ष एवं य वस्तु के बीच की तथा य एवं ग वस्तु के बीच की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर एक समान होगी.

चित्र 71- संसाधनों के वितरण का एज्वर्थ करार-वक्र



अ बिंदु की ब बिंदु से तुलना करने पर हम पाते हैं कि य वस्तु का उत्पादन दोनों स्थान पर एक समान है क्योंकि दोनों बिंदु य वस्तु के एक ही सम-उत्पाद वक्र पर स्थिर हैं परन्तु क्ष वस्तु का उत्पादन ब बिंदु पर अधिक है क्योंकि यह क्ष वस्तु के उच्चतर सम-उत्पाद वक्र पर स्थित है. इस से स्पष्ट है कि अ बिंदु इष्टतम के परेटो मापदंड को संतुष्ट नहीं करता; क्योंकि अगर बिना किसी वस्तु का उत्पादन घटाए किसी वस्तु का उत्पादन बढ़ाना संभव है, तो यह अतिरिक्त उत्पाद बिना किसी की संतुष्टि को घटाए, किसी उपभोक्ता की संतुष्टि को बढ़ा सकता है. इसी प्रकार अ एवं स बिंदु की तुलना की जा सकती हैं. उपभोग के एज्वर्थ चित्र की तरह पूरी प्रक्रिया को दोहराने पर हम पाते हैं कि **इस आयत के वे सब बिंदु जहाँ पर दोनों वस्तुओं के सम-उत्पाद वक्र एक दूसरे को स्पर्श करते हैं, यानी जहाँ दोनों वस्तुओं के उत्पादन में संसाधनों की तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRTS) एक समान हैं, उत्पादन के इष्टतम के परेटो मापदंड के अनुकूल हैं. इन बिन्दुओं को छूने वाली रेखा को संसाधनों के वितरण का एज्वर्थ करार-वक्र कहते हैं.** इस रेखा पर स्थित बिन्दुओं के अलावा अन्य सब बिंदु, यानी उत्पादन के साधनों का दो उत्पादों के बीच अन्य सब तरह का वितरण, इष्टतम के परेटो मापदंड के अनुकूल नहीं हैं.

उत्पादन के साधनों के वितरण के इष्टतम के परेटो मापदंड का तार्किक कारण क्या है? इस पर आप स्वयं विचार करें. संकेत स्वरूप इतना कहना पर्याप्त होगा कि इस का कारण भी वितरण के इष्टतम के परेटो मापदंड की पूर्ति के तार्किक कारण सरीखा ही है एवं इस का सूत्र MRTS की परिभाषा में ही छुपा है.

संसाधनों के वितरण के इष्टतम के परेटो मापदंड की पूर्ति क्यों आवश्यक है? क्या वितरण के इष्टतम के परेटो मापदंड की पूर्ति पर्याप्त नहीं है? इन दोनों मापदंडों की पूर्ति आवश्यक है. वितरण के इष्टतम के परेटो मापदंड की पूर्ति यह सुनिश्चित करती है कि उपलब्ध उत्पादों का उपभोक्ताओं के बीच वितरण ऐसा है कि बिना किसी उपभोक्ता की संतुष्टि घटाए किसी भी उपभोक्ता की संतुष्टि बढ़ाना संभव नहीं है. स्पष्ट रूप से इस मापदंड की आपूर्ति तो सामाजिक कल्याण के इष्टतम स्तर के लिए आवश्यक है - अगर किसी व्यक्ति की संतुष्टि में कटौती किए बिना किसी की संतुष्टि बढ़ाना संभव है तो यह किया जाना चाहिए. ऐसा करना समाज की कुल संतुष्टि बढ़ा देगा.

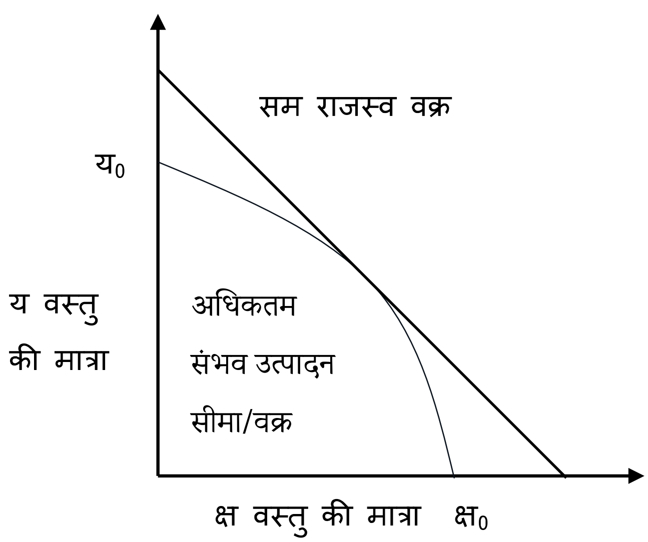
दूसरी ओर उत्पादन के साधनों के वितरण का इष्टतम का परेटो मापदंड यह सुनिश्चित करता है कि उत्पादन में बिना एक वस्तु की आपूर्ति घटाए, किसी भी वस्तु का उत्पादन बढ़ाना संभव नहीं है. इस मापदंड की पूर्ति भी आवश्यक है. बिना किसी वस्तु का उत्पादन घटाए, अगर किसी अन्य वस्तु का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है तो ऐसा किया जाना चाहिए क्योंकि यह अतिरिक्त उत्पादन, बिना किसी की संतुष्टि को घटाए, किसी उपभोक्ता की संतुष्टि बढ़ा सकता है,.

इस लिए इन दोनों मापदंडों की पूर्ति आवश्यक है. परन्तु क्या समाज के कल्याण को अधिकतम करने के लिए इन दोनों मापदंडों की पूर्ति पर्याप्त है? नहीं, इन दोनों मापदंडों की पूर्ति आवश्यक तो है परन्तु अधिकतम सामाजिक कल्याण के लिए पर्याप्त नहीं है. इस

निष्कर्ष की पुष्टि के लिए हम अधिकतम संभव उत्पादन सीमा/वक्र (Production Possibility Frontier (PPF) or Product Transformation Curve (PTC)) का प्रयोग करेंगे.

चित्र 72 में अधिकतम संभव उत्पादन-वक्र दिखाया गया है. यह चित्र संसाधनों के वितरण के एज्वर्थ करार-वक्र के आधार पर बनाया गया है. संसाधनों के वितरण का एज्वर्थ करार-वक्र दिखाता है कि एक वस्तु के किसी भी उत्पादन स्तर पर, दूसरी वस्तु का अधिकतम उत्पादन स्तर क्या हो सकता है. उसी जानकारी के आधार पर यह अधिकतम संभव उत्पादन-वक्र बनाया गया है जो दिखाता है कि उपलब्ध श्रम एवं पूँजी के उपयोग से अधिकतम कितना उत्पादन संभव है. चित्र 72 दर्शाता है कि अगर उत्पादन के सारे उपलब्ध साधन य वस्तु के उत्पादन पर लगाए जाएँ, तो य वस्तु का अधिकतम $य_0$ उत्पादन संभव है. इसी प्रकार क्ष वस्तु का अधिकतम संभव उत्पादन $क्ष_0$ है. इन दोनों बिन्दुओं के बीच का प्रत्येक बिंदु, किसी भी एक वस्तु के उत्पादन के निश्चित स्तर पर, दूसरी वस्तु का अधिकतम संभव उत्पादन दर्शाता है. $य_0$ एवं $क्ष_0$ के बीच इस वक्र का स्वरूप कैसा होगा? निश्चित तौर पर इस की ढलान ऋणात्मक होगी क्योंकि एक वस्तु का उत्पादन बढ़ाने पर दूसरी वस्तु का अधिकतम उत्पादन तो कम होगा. परन्तु इसका आकार कैसा होगा? उत्तल, धनुषाकारी या सीधी रेखा ? हालाँकि अगर उत्पादन के किसी स्तर पर पैमाने का वृधिमान प्रतिफल लागू होता है, तो उस स्थिति में यह उत्तल भी हो सकता है. किन्हीं परिस्थितियों में यह सीधी रेखा भी हो सकता है. परन्तु अर्थशास्त्र में इन परिस्थितियों को अपवाद मान कर अधिकतम संभव उत्पादन-वक्र को पूरी तरह धनुषाकारी मानते हैं. इस वक्र की ढलान को उत्पाद-रूपांतरण की सीमान्त दर (Marginal Rate of Product Transformation - MRPT) कहा जाता है. यह इंगित करता है कि मौजूदा संसाधनों एवं तकनीक के साथ क्ष वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई के लिए य वस्तु की कितनी मात्रा का त्याग करना पड़ता है. अधिकतम संभव उत्पादन वक्र के धनुषाकारी स्वरूप का अर्थ है कि उत्पाद-रूपांतरण की सीमान्त दर का निरपेक्ष मान दाईं ओर जाने पर बढ़ता जाता है. ध्यान दें कि अब तक आए वक्र जैसे उदासीनता-वक्र, सम-उत्पाद वक्र उत्तल स्वरूप के थे परन्तु अधिकतम संभव उत्पादन वक्र का स्वरूप इन से भिन्न है, धनुषाकारी है.

चित्र 72- अधिकतम संभव उत्पादन सीमा/वक्र



चित्र 72 में दिखाए गए सम-राजस्व-वक्र की चर्चा हम आगे चल कर करेंगे. फ़िलहाल उत्पाद-रूपांतरण की सीमान्त दर का सीमान्त लागत (MC) के साथ सम्बन्ध का अध्ययन करते हैं. अधिकतम संभव उत्पादन-वक्र के हर बिंदु पर कुल लागत स्थिर है क्योंकि संसाधनों की कुल मात्रा स्थिर है. इस लिए गणित के सूत्र रूप में हम कह सकते हैं कि

$$MC_{क्ष} * \Delta क्ष + MC_{य} * \Delta य = 0$$

$$-\frac{\Delta य}{\Delta क्ष} = \frac{MC_{क्ष}}{MC_{य}} \text{..............................(34)}$$

उपरोक्त सूत्र की बाईं ओर का पद उत्पाद-रूपांतरण की सीमान्त दर इंगित करता है. इस लिए हम कह सकते हैं कि MRPT=$\frac{MC_{क्ष}}{MC_{य}}$.

अधिकतम संभव उत्पादन-वक्र (PTC) से नीचे के किसी भी बिंदु की तुलना में अधिकतम संभव उत्पादन-वक्र पर ऐसे अन्य बिंदु हैं, जहाँ पर बिना एक वस्तु का उत्पादन घटाए, दूसरी वस्तु का उत्पादन बढ़ाना संभव है. यह अतिरिक्त उत्पाद किसी भी उपभोक्ता को दिया जा सकता है. ऐसा करने पर किसी की भी संतुष्टि को कम किए बिना, किसी उपभोक्ता की संतुष्टि बढ़ सकती है. इस लिए अधिकतम संभव उत्पादन सीमा से नीचे का कोई भी उत्पादन स्तर इष्टतम के परेटो मापदंड के अनुकूल नहीं है. इस लिए सामाजिक कल्याण के इष्टतम के लिए यह भी आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था अधिकतम संभव उत्पादन-वक्र पर हो. उत्पादन के संसाधनों के वितरण का इष्टतम का परेटो मापदंड यह सुनिश्चित करता है कि ऐसा हो.

एक अन्य सम्बन्ध भी महत्त्वपूर्ण है. उत्पाद-रूपांतरण की सीमान्त दर यह इंगित करती है कि क्ष वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई के लिए य वस्तु की मात्रा में कितनी कटौती होगी. यह दर वस्तुओं के बीच प्रतिस्थापन की वस्तुनिष्ट दर है क्योंकि यह उत्पादन फलन पर निर्भर करती है. इस की तुलना हम उपभोग में प्रतिस्थापन की सीमान्त दर से करें. उपभोग में प्रतिस्थापन की सीमान्त दर इंगित करती है कि उपभोक्ता के लिए क्ष वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई के लिए य वस्तु की मात्रा में कितनी कटौती स्वीकार्य है. यह दर वस्तुओं के बीच प्रतिस्थापन की व्यक्तिपरक दर है क्योंकि यह उपभोक्ताओं की उपयोगिता फलन पर निर्भर करती है.

सामाजिक कल्याण के इष्टतम स्तर के लिए यह आवश्यक है कि प्रतिस्थापन की ये दोनों दरें एक समान हों. मान लें कि ऐसा नहीं है. उपभोग में प्रतिस्थापन की सीमान्त दर 3 है और उत्पाद-रूपांतरण की सीमान्त दर 5 है. इसका अर्थ है कि क्ष वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन के लिए हमें य वस्तु की 5 इकाइयों का त्याग करना होगा एवं उपभोग में क्ष वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई के लिए उपभोक्ता मात्र 3 इकाइयों का त्याग करने को तैयार हैं. अगर इस स्थिति में क्ष वस्तु का उत्पादन 1 इकाई घटाया जाता है, तो य वस्तु के उत्पादन में 5 इकाइयों की बढ़ोतरी हो जाएगी. उपभोग में क्ष वस्तु की एक इकाई की क्षतिपूर्ति के लिए य वस्तु की मात्र 3 अधिक इकाइयों की आवश्यकता है. इस लिए य वस्तु के अतिरिक्त उत्पादन से शेष बची दो इकाइयों से बिना किसी उपभोक्ता की संतुष्टि का स्तर घटाए, किसी उपभोक्ता की संतुष्टि का स्तर बढ़ाना संभव होगा.

उपरोक्त परिवर्तन - क्ष के उत्पादन में कटौती एवं य वस्तु के उत्पादन में बढ़ोतरी- को अगर हम अधिकतम संभव उत्पादन-वक्र पर चिह्नित करेंगे तो पायेंगे कि ऐसा करने पर उत्पाद-रूपांतरण की सीमान्त दर घट जाएगी. दूसरी ओर उपरोक्त परिवर्तन को उदासीनता-वक्र पर चिह्नित करेंगे तो पायेंगे कि उपभोग में प्रतिस्थापन की सीमान्त दर बढ़ जाएगी. इस प्रकार क्ष वस्तु का उत्पादन घटाने और य वस्तु का उत्पादन बढ़ाने से सामाजिक कल्याण में वृद्धि तब तक संभव होगी, जब तक ये दोनों दर एक समान नहीं हो जातीं. इस से साबित होता है कि सामाजिक कल्याण के इष्टतम के परेटो मापदंड की पूर्ति के लिए उत्पाद-रूपांतरण की सीमान्त दर एवं उपभोग में प्रतिस्थापन की सीमान्त दर भी एक समान होनी चाहिए. यह परेटो के इष्टतम के मापदंड की तीसरी शर्त है. इस शर्त को उत्पाद समूह के इष्टतम स्तर के चयन का परेटो मापदंड (Pareto optimality criterion for product mix) कहते हैं.

अगर अब हम दो उपभोक्ता, दो संसाधन एवं दो उत्पाद की अवास्तविक मान्यता को छोड़ दें तो हम कह सकते हैं कि **इष्टतम के परेटो मापदंड की पूर्ति के लिए तीन शर्तों का पूरा होना आवश्यक है: सभी उपभोक्ताओं के बीच किन्हीं भी दो वस्तुओं के बीच उपभोग में प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRS) एक समान हो, सभी वस्तुओं के बीच उत्पादन के किन्हीं दो संसाधनों की तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRTS) एक समान हो एवं किन्हीं दो वस्तुओं के बीच उपभोग में प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRS) एवं इन्हीं दो वस्तुओं के बीच उत्पाद-रूपांतरण की सीमान्त दर (MRPT) एक समान हो.** अगर A, B,....N उपभोक्ताओं को इंगित करें, x, y, z इत्यादि उत्पादों को इंगित करें एवं k, l इत्यादि संसाधनों को इंगित करें और गणित के सूत्र का प्रयोग करें तो इन शर्तों को निम्न रूप में लिख सकते हैं.

1. $MRS^{A}{}_{xy} = MRS^{B}{}_{xy} = \cdots =$
   $MRS^{N}{}_{xy}$ (x एवं y के सभी मूल्यों के लिए, यानी सभी वस्तुओं के जोड़े के लिए)
2. $MRTS^{x}{}_{kl} = MRTS^{y}{}_{kl} = \cdots =$
   $MRTS^{z}{}_{kl}$ (k एवं l के सभी मूल्यों के लिए, यानी सभी संसाधनों के जोड़े के लिए)
3. $MRPT_{xy} = MRS^{A}{}_{xy} = \cdots =$
   $MRS^{N}{}_{xy}$ (x एवं y के सभी मूल्यों के लिए, यानी सभी वस्तुओं के जोड़े के लिए)

अधिकतम संभव उत्पादन-वक्र (PTC) के सभी बिन्दुओं पर ये तीनों शर्त पूरी हो सकती हैं. अधिकतम संभव उत्पादन-वक्र उत्पादन के संसाधनों के एज्वर्थ करार-वक्र पर ही आधारित है. इस लिए इस वक्र का हर बिंदु एक शर्त तो पूरी करता ही है. अब अगर इस बिंदु द्वारा इंगित वस्तुओं का वितरण इस प्रकार किया जाए कि यह वितरण के एज्वर्थ करार-वक्र पर हो एवं किन्हीं दो वस्तुओं के बीच

उपभोग में प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRS) एवं इन्हीं दो वस्तुओं के बीच उत्पाद-रूपांतरण की सीमान्त दर (MRPT) एक समान हो, तो इष्टतम के परेटो मापदंड की तीनों शर्तों की पूर्ति संभव है.

बाज़ार व्यवस्था का इष्टतम के परेटो मापदंड के आधार पर मूल्यांकन: अगर कोई अर्थव्यवस्था उपरोक्त तीनों शर्तों को पूरा करती है तो हम कह सकते हैं कि वह सामाजिक कल्याण के इष्टतम स्तर के परेटो मापदंड के अनुकूल होगी. अब सवाल उठता है कि क्या बाज़ार आधारित अर्थव्यवस्था इन शर्तों को पूरा करती है?

सब से पहले इस दृष्टि से पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार का मूल्यांकन करेंगे. माँग का अध्ययन करते हुए हम ने देखा था कि उपभोक्ता की अधिकतम संतुष्टि के लिए किन्हीं दो वस्तुओं के बीच सीमान्त प्रतिस्थापन दर उन वस्तुओं के बाज़ार भाव के अनुपात के समान होनी चाहिए(यानी $MRS = P_x/P_y$). अब क्योंकि पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में हर उपभोक्ता का सामना एक ही बाज़ार भाव से हो रहा है, इस लिए स्पष्ट रूप से सभी उपभोक्ताओं की किन्हीं दो वस्तुओं के बीच की MRS भी एक समान ही होगी. इस लिए हम कह सकते हैं कि पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में उपभोक्ता उपभोग के एज्वर्थ करार-वक्र पर होंगे.

इसी प्रकार, पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में न केवल हर उत्पादक एक जैसे संसाधन मूल्यों का सामना करता है अपितु लागत न्यूनतम करने की प्रक्रिया में संसाधनों का प्रयोग वह इस प्रकार करता है कि विभिन्न संसाधनों के बीच संसाधनों की तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRTS) उन संसाधनों की कीमतों के अनुपात के समान ही हो ($MRTS = P_K/P_L$). इस लिए पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में सभी उत्पादकों के बीच सभी संसाधनों की तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRTS) भी एक समान होगी. इस लिए हम कह सकते हैं कि पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में उत्पादन, उत्पादन के एज्वर्थ करार-वक्र पर ही होगा.

इस प्रकार हम पाते हैं कि परेटो इष्टतम के मापदंड की पूर्ति की तीन शर्तों में से दो शर्तें तो पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में पूरी हो जाती हैं. तीसरी शर्त का क्या? इस प्रश्न का उत्तर ढूँढने के लिए हम यह मान लेते हैं कि चित्र 72 में दिखाया गया अधिकतम संभव उत्पादन-वक्र पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार के एक ही उत्पादक का है. इस स्थिति में अपने लाभ अधिकतम करने वाला उत्पादक इस वक्र पर कहाँ पर उत्पादन करेगा? हम यह मान कर चल रहे हैं कि संसाधनों की कुल मात्रा निश्चित है, इस का अर्थ है कि उत्पादक की कुल लागत स्थिर है. लागत स्थिर होने पर अधिकतम लाभ के लिए उत्पादक को अपना राजस्व अधिकतम करना होगा. अधिकतम राजस्व का बिंदु ज्ञात करने के लिए हमें सम-राजस्व रेखा - यानी ऐसी रेखा जिस पर स्थित हर वस्तु समूह के उत्पादन से उत्पादक को एक जैसा राजस्व मिलता हो - खींचनी होगी. ऐसे सम-राजस्व-वक्र का सूत्र बजट-रेखा सरीखा ही होगा. सम-राजस्व-वक्र का सूत्र निम्न स्वरूप का होगा: $P_{क्ष} * Q_{क्ष} + P_{य} * Q_{य} = TR = \bar{k}$.

इस सूत्र के आधार पर $Q_{य} = TR/ P_{य} - (P_{क्ष}/ P_{य}) * Q_{क्ष}$. इस से स्पष्ट है कि सम-राजस्व-वक्र की ढलान $– P_{क्ष}/ P_{य}$ के समान है. इस लिए जब तक कीमतों में परिवर्तन नहीं होता, तब तक सम-राजस्व-वक्र एक दूसरे के समानांतर होंगे. चित्र 72 से स्पष्ट है कि राजस्व अधिकतम तब होगा जब सम-राजस्व रेखा अधिकतम संभव उत्पादन-वक्र को स्पर्श मात्र करेगी. [73] इस लिए पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में अधिकतम लाभ के उद्देश्य की पूर्ति के लिए उत्पादक न केवल अधिकतम संभव उत्पादन-वक्र पर उत्पादन करेगा बल्कि पूर्ण प्रतियोगी

[73] अगर अधिकतम संभव उत्पादन-वक्र धनुषाकारी न हो कर उत्तल हो, तो अधिकतम राजस्व बिंदु हमेशा कोने का बिंदु होगा यानी कि या तो क्ष वस्तु का उत्पादन होगा या य वस्तु का. क्योंकि आम तौर पर ऐसा नहीं होता, इस लिए इस मान्यता को बल मिलता है कि अधिकतम संभव उत्पादन-वक्र धनुषाकारी होगा न कि उत्तल.

बाज़ार में उत्पादन अधिकतम संभव उत्पादन-वक्र के उस बिंदु पर होगा, जहाँ वस्तुओं के बीच की सीमान्त रूपांतरण की दर (MRPT) $P_{\text{क्ष}}/ P_{\text{य}}$ के समान होगी.[74]

क्योंकि पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में उपभोक्ताओं की दो वस्तुओं के बीच की सीमान्त प्रतिस्थापन दर (MRS) भी $P_{\text{क्ष}}/ P_{\text{य}}$ के समान होती है, इस लिए पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में वस्तुओं की सीमान्त रूपांतरण की दर (MRPT) एवं उपभोक्ताओं की सीमान्त प्रतिस्थापन दर (MRS) भी समान होगी. अंत: पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में इष्टतम के परेटो मापदंड की तीसरी शर्त भी पूरी हो जाती है.

इस निष्कर्ष को कि 'पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में इष्टतम के परेटो मापदंड पूरे हो जाते हैं', कल्याणकारी अर्थशास्त्र का पहला प्रमेय (first theorem of welfare economics) कहा जाता है.[75]

क्या अन्य तरह के बाज़ार में भी सामाजिक कल्याण के इष्टतम स्तर के परेटो मापदंड पूरे हो पाते हैं? निश्चित तौर पर उत्पाद-बाज़ार में तीसरी श्रेणी के कीमत-विभेद होने की स्थिति में वितरण में इष्टतम के परेटो मापदंड पूरे नहीं हो पायेंगे. क्योंकि कीमत-विभेद की स्थिति में अलग-अलग उपभोक्ताओं का सामना अलग-अलग कीमत से होता है एवं हर उपभोक्ता अपनी अधिकतम संतुष्टि के लिए उस के सामने पेश कीमतों को ध्यान में रख कर निर्णय लेता है, इस लिए सब उपभोक्ताओं की सीमान्त प्रतिस्थापन दर एक समान नहीं होगी. अगर संसाधन बाज़ार में भी ऐसे ही कीमत-विभेद हो तो इन्हीं कारणों से संसाधन वितरण के इष्टतम के परेटो मापदंड भी पूरे नहीं हो पायेंगे.

अगर ऐसा कीमत-विभेद न भी हो परन्तु बाज़ार एकाधिकारी हो, तो भी उत्पादन सम्बन्धी निर्णय लेने के लिए उत्पादक वस्तुओं की कीमत को ध्यान में न रख कर उत्पादों के सीमान्त राजस्व को ध्यान में रखेगा. इस लिए उत्पाद-रूपांतरण की सीमान्त दर $P_{\text{क्ष}}/ P_{\text{य}}$ के समान न हो कर $MR_{\text{क्ष}}/ MR_{\text{य}}$ के समान होगी. इस लिए उत्पाद-रूपांतरण की सीमान्त दर उपभोग में प्रतिस्थापन की सीमान्त दर के समान नहीं होगी. ऐसी स्थिति में बाज़ार संचालित अर्थ व्यवस्था में इष्टतम के परेटो मापदंडों की आपूर्ति नहीं होगी. इस लिए निश्चित तौर पर मात्र इतना कहा जा सकता है कि पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में इष्टतम के परेटो मापदंडों की आपूर्ति होती है.

इष्टतम के परेटो मापदंड की समीक्षा: परेटो मापदंड निश्चित तौर पर कुछ परिस्थितियों में निर्णय प्रक्रिया में सहायक हो सकता है परन्तु यह एक सर्वश्रेष्ट बिंदु के चयन में सहायक नहीं हैं. उदाहरण के लिए, परेटो मापदंड के अनुसार अर्थव्यवस्था का एज्वर्थ करार-वक्र पर होना आवश्यक है परन्तु इस वक्र पर कौन सा बिंदु सब से अधिक कल्याणकारी होगा, इस के चयन में परेटो मापदंड सहायक नहीं है. अधिकतम संभव उत्पादन-वक्र के सभी बिन्दुओं पर इन तीनों शर्तों के पूरा होने की संभावना है परन्तु इन में से कौन सा बिंदु सामाजिक कल्याण के लिए इष्टतम होगा, यह चुनाव परेटो मापदंड के आधार पर करना संभव नहीं है.

वास्तव में, परेटो मापदंड की परिभाषा ही इस की सीमा है. अगर हमें दो ऐसी स्थितियों के बीच चयन करना हो, जिन में कुछ व्यक्तियों के कल्याण में वृद्धि होती है एवं कुछ व्यक्तियों के कल्याण में कटौती होती है, तो परेटो मापदंड इस चयन में कोई सहायता नहीं

---

[74] यह चर्चा एक ऐसे उत्पादक की निर्णय प्रक्रिया समझने में भी सहायक है जो दो या अधिक वस्तुओं का उत्पादन करता है. हम पहले देख चुके हैं कि $MRPT=\frac{MC_{\text{क्ष}}}{MC_{\text{य}}}$ एवं अब हम ने पाया है कि अधिकतम लाभ के लिए $MRPT=\frac{P_{\text{क्ष}}}{P_{\text{य}}}$ होना चाहिए. अंत: अधिकतम लाभ के लिए वस्तुओं का उत्पादन ऐसे करना चाहिए कि $\frac{MC_{\text{क्ष}}}{MC_{\text{य}}} = \frac{P_{\text{क्ष}}}{P_{\text{य}}}$ अथवा $\frac{P_{\text{क्ष}}}{MC_{\text{क्ष}}} = \frac{P_{\text{य}}}{MC_{\text{य}}}$ यानी हर वस्तु पर व्यय किया गया एक रुपया समान राजस्व दे.

[75] यह भी साबित किया गया है, हालाँकि हम यहाँ पर यह साबित नहीं करेंगे, कि अधिकतम संभव उत्पादन-वक्र का हर बिंदु व्यक्तियों के बीच संसाधनों के प्रारंभिक वितरण से जुड़ा है. इस निष्कर्ष को कल्याणकारी अर्थशास्त्र का दूसरा प्रमेय (second theorem of welfare economics) भी कहा जाता है.

कर सकता. वास्तविक जीवन में हमें आम तौर पर ऐसी ही स्थितियों का सामना करना पड़ता है मान लें कि अर्थव्यवस्था में निम्न दो वैकल्पिक स्थितियां संभव हैं.

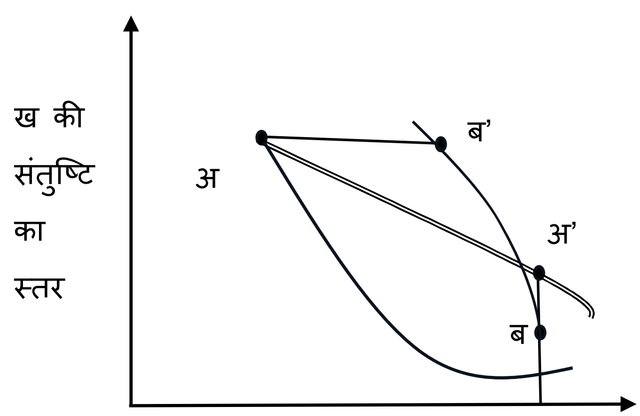
I: $U_{अ} = 10, U_{ब} = 20$

II: $U_{अ} = 15, U_{ब} = 15$

उपरोक्त में $U_{अ}$ उपभोक्ता अ के संतुष्टि के स्तर को इंगित करता है. अगर अर्थव्यवस्था स्थिति I में है तो यह इष्टतम के परेटो मापदंड को पूरा करती है क्योंकि बिना किसी के संतुष्टि के स्तर को कम किए किसी की संतुष्टि को बढ़ाना संभव नहीं है. इस लिए परिवर्तन नहीं होना चाहिए. इस के विपरीत अगर अर्थव्यवस्था स्थिति II में है, तो यह भी इष्टतम के परेटो मापदंड को पूरा करती है क्योंकि इस स्थिति में भी बिना किसी के संतुष्टि के स्तर को कम किए किसी की संतुष्टि को बढ़ाना संभव नहीं है. इस लिए इस स्थिति से भी परिवर्तन नहीं होना चाहिए. यानी जैसा है, वैसा ही बना रहे. इस लिए परेटो मापदंड को यथास्थितिवादी (status quoist) कहा जाता है.[76]

क्षतिपूर्ति नियम: ऐसी स्थिति, जब किसी निर्णय से कुछ को लाभ हो एवं कुछ को हानि हो, एवं जब परेटो मापदंड निर्णय में सहायक न हो, के लिए क्षतिपूर्ति नियम सुझाए गए हैं. कैल्डोर (Kaldor) द्वारा सुझाए नियम के अनुसार अगर किसी निर्णय से लाभ पाने वाले हानि उठाने वाले की क्षतिपूर्ति कर सकें, एवं फिर भी यह निर्णय उन के लिए कल्याणकारी हो, तो यह निर्णय समाज के लिए भी कल्याणकारी होगा, समाज के कल्याण में बढ़ोतरी करेगा. चित्र 73 में इस स्थिति को दर्शाया गया है.

चित्र 73- क्षतिपूर्ति गणना



मान लें कि अर्थव्यवस्था में क एवं ख दो ही उपभोक्ता हैं. वर्तमान में अर्थव्यवस्था बिंदु अ पर है. दूसरा विकल्प बिंदु ब है. क्या ब स्थिति पर पहुँचना सामाजिक कल्याण के दृष्टिकोण से उचित होगा? चित्र से स्पष्ट है कि परेटो मापदंड इस निर्णय प्रक्रिया में सहायक नहीं हो सकता क्योंकि ब बिंदु पर ख उपभोक्ता की संतुष्टि घट रही है एवं क उपभोक्ता की संतुष्टि बढ़ रही है. अब मान लें कि ब बिंदु से क उपभोक्ता द्वारा स्वैच्छिक पुनर्वितरण द्वारा ब’ बिंदु पर पहुँचना संभव है. ब’ बिंदु की तुलना अ से करने पर हम पाते हैं कि ख का संतुष्टि का स्तर स्थिर रहता है परन्तु क का संतुष्टि का स्तर बिंदु अ की तुलना में बेहतर है. इस लिए कैल्डोर के क्षतिपूर्व नियम के अनुसार स्थिति अ की तुलना में स्थिति ब सामाजिक कल्याण की दृष्टि से बेहतर होगी क्योंकि इस स्थिति में क उपभोक्ता ख उपभोक्ता की क्षतिपूर्ति करने के बावजूद अ बिंदु की तुलना में बेहतर स्थिति में हो सकता है. इस अवस्था में क उपभोक्ता ख उपभोक्ता की क्षतिपूर्ति कर के उसे परिवर्तन के लिए तैयार कर सकता है.

हिक्स (Hicks) ने कैल्डोर के विपरीत नियम सुझाया. हिक्स के अनुसार परिवर्तन तभी होना चाहिए, जब निर्णय से हानि उठाने वाला निर्णय से लाभ पाने वाले की क्षतिपूर्ति न कर सके, अन्यथा नहीं. उदाहरण के लिए, यदि चित्र 73 में अ बिंदु से पुनर्वितरण द्वारा (जिसे दोहरी रेखा से दर्शाया गया है) अ’ बिंदु पर आना संभव हो, तब क्या हो? अब अगर अ, अ’ एवं ब बिंदुओं की तुलना करें तो पाते हैं कि क उपभोक्ता अ’ एवं ब के बीच उदासीन होगा क्योंकि दोनों स्थितियों में उस की संतुष्टि का स्तर एक समान है परन्तु अ’ एवं ब की तुलना में ख उपभोक्ता अ’ को प्राथमिकता देगा. इस स्थिति में ख उपभोक्ता लाभार्थी की क्षतिपूर्ति करने के बावजूद अपनी हानि कम कर पाता है. इस लिए हिक्स के क्षतिपूर्ति नियम के अनुसार अ से ब बिंदु की ओर परिवर्तन नहीं होना चाहिए.

---

[76] आगे चल कर हम देखेंगे कि इष्टतम के परेटो मापदंडों की आपूर्ति करने वाले बिंदु से भी अधिक कल्याणकारी ऐसा बिंदु हो सकता है जहाँ इष्टतम के परेटो मापदंडों की आपूर्ति न होती.

अब इस द्वंद्व की स्थिति में क्या किया जाए? वर्तमान उदाहरण में कैल्डोर के क्षतिपूर्ति के नियम के अनुसार परिवर्तन होना चाहिए परन्तु हिक्स के क्षतिपूर्ति के नियम के अनुसार परिवर्तन नहीं होना चाहिए. ऐसी स्थिति में स्कीटोव्सकी (Scitovisky) ने सुझाया कि ये **दोनों क्षतिपूर्ति नियम लागू हों तभी परिवर्तन होना चाहिए. यानी परिवर्तन तभी होना चाहिए जब परिवर्तन से लाभार्थी क्षतिपूर्ति करने में सक्षम हों और जिन का नुकसान हो रहा हो, उनके लिए लाभार्थी की क्षतिपूर्ति करना संभव न हो.** यानी अ बिंदु से ब बिंदु पर परिवर्तन तभी होना चाहिए जब दोनों स्थितियों से पुनर्वितरण वैसा हो जैसा पतली एवं मोटी रेखा द्वारा दिखाया गया हो (यानी दोहरी रेखा को निरस्त मान लें). चित्र 73 से स्पष्ट है कि मोटी रेखा द्वारा अ बिंदु से दर्शाया गए पुनर्वितरण की संभावना में कोई भी बिंदु ऐसा नहीं है जो परिवर्तन न होने की स्थिति में क उपभोक्ता को होने वाले नुकसान की क्षतिपूर्ति कर पाए और ख उपभोक्ता भी परिवर्तन होने की स्थिति से बेहतर अवस्था में हो. यानी बदलाव के लिए हिक्स की शर्त पूरी होती है. इस के साथ ही पतली रेखा द्वारा इंगित पुनर्वितरण दिखाता है कि बदलाव से ख उपभोक्ता को होने वाले नुकसान की भरपाई के बावजूद क उपभोक्ता बेहतर स्थिति में होगा. इस लिए कैल्डोर के नियम के अनुसार परिवर्तन होना चाहिए. क्योंकि कैल्डोर एवं हिक्स दोनों के क्षतिपूर्ति नियम के अनुसार परिवर्तन होना चाहिए, इस लिए स्कीटोव्सकी नियम के अनुसार परिवर्तन होना चाहिए.

स्कीटोव्सकी द्वारा सुझाए गए दोहरे क्षतिपूर्ति के विकल्प के साथ भी दो समस्या हैं. एक तो इन दोनों नियमों की पूर्ति करने वाली परिस्थितियाँ बहुत सीमित होंगी. अधिकांश मामलों में ऐसा हो सकता है कि एक क्षतिपूर्ति नियम के अनुसार परिवर्तन होना चाहिए एवं दूसरे के अनुसार नहीं होना चाहिए. इस लिए अधिकांश मामलों में स्कीटोव्सकी द्वारा सुझाया, मापदंड निर्णय लेने में सहायक नहीं होगा.

ख़ैर, जब दोनों क्षतिपूर्ति नियमों के हिसाब से परिवर्तन के सम्बन्ध में एक ही निर्णय हो, तब भी यह निर्णय कल्याणकारी तभी माना जा सकता है जब वास्तव में क्षतिपूर्ति की जाए. अगर वास्तव में क्षतिपूर्ति की जाती है तब स्थिति इष्टतम के परेटो मापदंडों के अनुकूल हो जाती है- क्योंकि क्षतिपूर्ति हो जाती है एवं फिर भी किसी की संतुष्टि में बढ़ोतरी हो जाती है, तो निश्चित तौर पर निर्णय कल्याणकारी होगा. इस लिए इस स्थिति में तो परेटो मापदंड ही पर्याप्त हैं एवं हमें किसी अन्य मापदंड की आवश्यकता ही नहीं है. परन्तु वास्तविकता यह है कि अधिकांश तौर पर यह क्षतिपूर्ति काल्पनिक होती है, वास्तव में क्षतिपूर्ति होती ही नहीं.

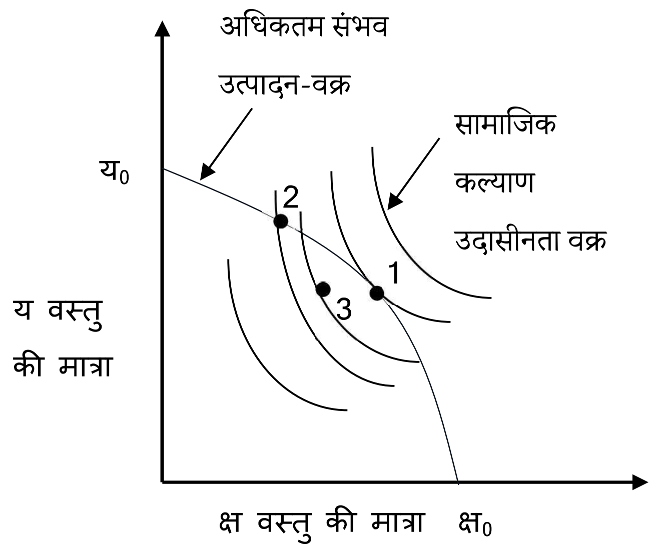
उदाहरण के लिए, मान लो एक महंगे आवासीय इलाके के पास झुग्गी-बस्ती है. महंगे आवासीय इलाके के लोगों को अपने मकानों के पास यह झुग्गी-बस्ती अच्छी नहीं लगती. परन्तु झुग्गी निवासियों के लिए पास में काम मिलने के कारण वहाँ से दूर चले जाना घाटे का सौदा है. क्योंकि झुग्गी हटाने से कुछ लोगों का नुकसान होगा और कुछ लोगों को फ़ायदा, इस लिए परेटो मापदंड यहाँ निर्णय करने में सहायक नहीं हो सकते. इस लिए क्षतिपूर्ति नियम का प्रयोग करना होगा. मान लें कि झुग्गी वहाँ से हटाने पर झुग्गीवासियों को एक हज़ार रुपए का नुकसान होगा और झुग्गी हटाने पर महँगी रिहायशी इलाके के लोगों को 5 हज़ार का लाभ होगा. इस लिए कैल्डोर के क्षतिपूर्ति मापदंड के अनुसार परिवर्तन होना चाहिए क्योंकि महंगे रिहायशी इलाके के लोग झुग्गीवासियों के नुकसान की पूर्ति कर के भी फ़ायदे में रहेंगे (1000 रुपए दे कर 5000 का लाभ यानी शुद्ध 4000 का लाभ प्राप्त कर सकेंगे). हिक्स के क्षतिपूर्ति मापदंड के अनुसार भी परिवर्तन होना चाहिए क्योंकि झुग्गीवासी महंगे रिहायशी इलाके को लोगों की क्षतिपूर्ति नहीं कर सकते (वे तो अधिक से अधिक 1000 रुपये दे सकते हैं जबकि महंगे रिहायशी इलाके को लोगों को क्षतिपूर्ति हेतु 5000 चाहिए). इस लिए स्कीटोव्सकी द्वारा सुझाए गए दोहरे क्षतिपूर्ति के मापदंड अनुसार झुग्गियां वहाँ से हटाये जाने से सामाजिक कल्याण में वृद्धि होगी. अब अगर झुग्गी वहाँ से हटाई जाती हैं और वास्तव में झुग्गीवासियों की क्षतिपूर्ति हो जाती है, तो निश्चित तौर पर सामाजिक कल्याण में वृद्धि होगी. झुग्गीवासियों की क्षतिपूर्ति हो गई, इस लिए झुग्गी हटने से उन की संतुष्टि के स्तर में कोई कटौती नहीं हुई और महंगे रिहायशी इलाके के रहवासियों को मात्र एक हज़ार रुपए ख़र्च करने पर 5 हज़ार का फ़ायदा हो गया. असल में क्षतिपूर्ति होने पर तो यह स्थिति परेटो मापदंड के अनुकूल ही बन गई.

परन्तु **अगर वास्तव में क्षतिपूर्ति नहीं होती, तब भी क्या हम कह सकते हैं कि झुग्गियां वहाँ से हटनी चाहिएँ क्योंकि नुकसान एक हज़ार का है और लाभ 5 हज़ार का?** नहीं; ऐसा तभी कहा जा सकता जब दोनों श्रेणी के व्यक्तियों के लिए मुद्रा के लिए सीमान्त उपयोगिता एक समान हो. परन्तु ग़रीब एवं अमीर व्यक्तियों के लिए मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता एक समान नहीं होती. ग़रीब आदमी के लिए एक हज़ार रुपया बहुत बड़ी बात है और अमीर के लिए 5 हज़ार भी कुछ नहीं. इस लिए क्षतिपूर्ति के स्कीटोव्सकी नियम तभी उपयोगी

हो सकते हैं, जब वास्तव में क्षतिपूर्ति हो. परन्तु अधिकांश तौर पर क्षतिपूर्ति होती ही नहीं. उदाहरण के लिए, सिगरेट पीने पर रोक लगाने पर पीने वाले के लिए कोई क्षतिपूर्ति नहीं होती. इस लिए स्कीटोव्सकी का क्षतिपूर्ति मापदंड भी अत्यंत सीमित परिस्थितियों में ही उपयोगी हो सकता है.

ऐसी स्थिति में, जब कुछ लोगों को लाभ हो एवं कुछ को नुकसान हो, निर्णय लेने के लिए एक नया उपाय यह सुझाया गया. जैसे एक व्यक्ति का संतुष्टि फलन होता है, जिस को ध्यान में रख कर वह अपने उपभोग का निर्णय लेता है, उसी प्रकार से समाज का भी अपना एक सामाजिक कल्याण फलन (Social Welfare Function) हो सकता है. सामाजिक कल्याण फलन पर आधारित सामाजिक उदासीनता-वक्र की सहायता से समाज निर्णय ले सकता है. यानी, जो चयन परेटो मापदंड की सहायता से नहीं किया जा सकता, उसे सामाजिक कल्याण फलन की सहायता से किया जा सकता है. इस पुस्तक में हम सामाजिक कल्याण फलन की विस्तृत चर्चा न कर के संक्षेप में कुछ बिंदु चिह्नित करेंगे. चित्र 74 में सामाजिक कल्याण फलन पर आधारित सामाजिक कल्याण उदासीनता-वक्र के उपयोग से अधिकतम संभव उत्पादन-वक्र पर स्थित सभी बिन्दुओं से अधिकतम सामाजिक कल्याण बिंदु का चयन दर्शाया गया है. स्पष्ट रूप से अधिकतम सामाजिक कल्याण बिंदु 1 पर होगा.

चित्र 74- सामाजिक कल्याण फलन के प्रयोग से चयन



बिंदु 2 एवं 3, बिंदु 1 की तुलना में निम्न स्तरीय सामाजिक उदासीनता-वक्र पर हैं, इस लिए इन का चयन नहीं होगा. परन्तु अगर चयन बिंदु 2 एवं बिंदु 3 में करना हो, तो स्पष्ट तौर पर बिंदु 3 का चयन होगा. लेकिन बिंदु 3 अधिकतम संभव उत्पादन-वक्र पर नहीं है जबकि बिंदु 2 है. इस का अर्थ है कि बिंदु 2 इष्टतम के परेटो मापदंड के अनुरूप है, परन्तु बिंदु 3 नहीं है. इस के बावजूद बिंदु 3 बिंदु 2 की तुलना में उच्चतर सामाजिक कल्याण इंगित करता है. इस तथ्य से एक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्राप्त होता है: कि **यह संभव है कि इष्टतम के परेटो मापदंड की पूर्ति करने वाला बिंदु सामाजिक कल्याण की दृष्टि से किसी ऐसे बिंदु से बदतर हो जो इष्टतम के परेटो मापदंड की पूर्ति नहीं करता है. अंत: बिना सामाजिक कल्याण के इष्टतम के परेटो मापदंड की पूर्ति के भी, उच्चतर सामाजिक कल्याण संभव है. इस से यह साबित होता है कि परेटो मापदंड की पूर्ति उच्चतर सामाजिक कल्याण की अनिवार्य शर्त नहीं है.**

ऐसा ही निष्कर्ष एक अन्य महत्त्वपूर्ण प्रमेय से भी प्राप्त होता है. इसे 'दोयम श्रेष्ठ' प्रमेय (theory of second best) कहते हैं. 'दोयम श्रेष्ठ' से अभिप्राय है सर्वोत्तम के बाद का विकल्प, दूसरा स्थान; जैसे किसी दौड़ में दूसरे स्थान पर आने वाला व्यक्ति. यह प्रमेय इस प्रश्न पर विचार करती है कि अगर सर्वश्रेष्ठ व्यवस्था, उदाहरण के लिए, सभी बाज़ारों में पूर्ण प्रतियोगी व्यवस्था, संभव न हो, तो क्या दोयम श्रेष्ठ के लिए जितनी जगह ऐसा हो सकता है, उतनी जगह ऐसा करना उपयुक्त होगा? इस प्रमेय का निष्कर्ष यह था कि नहीं ऐसा करना आवश्यक नहीं है. दूसरे शब्दों में **अगर परेटो इष्टतम की सभी शर्तों को पूरा करना संभव नहीं है, तो हम यह नहीं कह सकते कि जितनी शर्तें पूरी हो जाएँ, उतना अच्छा.**

सामाजिक कल्याण फलन की अवधारणा ने यह आशा जगाई थी कि इस की सहायता से कल्याणकारी अर्थशास्त्र सभी स्थितियों का मूल्यांकन कर पायेगा. परन्तु ऐरो (Arrow) ने 'असम्भवता प्रमेय' (Arrow's Impossibility Theorem) के माध्यम से यह साबित किया कि सामाजिक कल्याण फलन का वस्तुनिष्ट निर्धारण असंभव है. ऐरो ने साबित किया कि सामाजिक कल्याण के बारे में व्यक्तियों की राय के आधार पर किसी वस्तुनिष्ट तरीके से सामाजिक कल्याण फलन का निर्धारण संभव ही नहीं है. दूसरे शब्दों में इस का

अर्थ यह है कि **सामाजिक कल्याण फलन का निर्धारण समाज के <u>सचेत</u> चयन से ही संभव है न कि किसी वस्तुनिष्ट सूत्र (formulae) के प्रयोग से.** उदाहरण के लिए, किसी गाँव के विकास के बारे में 5 वैकल्पिक योजनाएँ हैं. ध्यान रहे, विकल्प गाँव के विकास के बारे में हैं न कि व्यक्तिगत विकल्प. निश्चित तौर पर लोकतान्त्रिक तरीके से इन में से एक का चयन हो सकता है. ऐरो ने तो यह साबित किया कि यह एक सचेत चयन ही हो सकता है क्योंकि कोई ऐसा वस्तुनिष्ट सूत्र नहीं है जिस के आधार पर सब की प्राथमिकताओं को ध्यान में रख कर निर्णय लिया जा सके. फ़िलहाल हम इस प्रमेय पर और अधिक चर्चा नहीं करेंगे. इतना भर समझना पर्याप्त है कि ऐरो के अनुसार सामाजिक कल्याण के इष्टतम स्तर को प्राप्त करने के लिए समाज को सचेत निर्णय लेना पड़ेगा. यह भी स्पष्ट है कि समाज कैसा निर्णय लेगा, वह सामाजिक ढाँचे इत्यादि पर निर्भर करेगा. सब की सहभागिता से निर्णय लेने वाले समाज के निर्णय अलग होंगे एवं जहाँ समाज के कई हिस्से (लिंग, उम्र, जाति, धर्म, रंग, नस्ल इत्यादि के आधार पर) निर्णय-प्रक्रिया से बाहर होंगे, वहाँ अलग तरह के निर्णय लिए जाएँगे.

बाज़ार आधारित अर्थव्यवस्था के सभी महत्त्वपूर्ण पक्षों के बुनियादी अध्ययन के बाद इस अध्याय में हम ने यह अध्ययन किया है कि आर्थिक विकल्पों का सामाजिक कल्याण के दृष्टिकोण से अर्थशास्त्र में मूल्यांकन का क्या विधान विकसित हुआ है. हम ने सामाजिक कल्याण के विभिन्न संकेतकों की संक्षिप्त समीक्षा की परन्तु हमारा अधिक समय परेटो द्वारा सुझाए गए इष्टतम के मापदंड को समझने एवं इस के मूल्यांकन में लगा है. हम ने पाया कि परेटो द्वारा सुझाए गए इष्टतम के मापदंड कई परिस्थितियों में चुनाव में सहायक हैं परन्तु बहुत सी परिस्थितियों में यह हमारा मार्गदर्शन करने में सक्षम नहीं हैं. इस सन्दर्भ में हम ने पाया कि क्षतिपूर्ति नियम भी अत्यंत सीमित परिस्थितियों में निर्णय में सहायक साबित हो सकते हैं.

हम ने देखा कि पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार परेटो मापदंड की तीनों शर्तों की पूर्ति कर सकता है परन्तु अन्य तरह के बाज़ार परेटो मापदंडों की पूर्ति सुनिश्चित नहीं करते. यह भी आवश्यक नहीं है कि हर परेटो बिंदु, हर परेटो से इतर बिंदु से सामाजिक कल्याण की दृष्टि से बेहतर ही हो. अंत: यह आवश्यक नहीं है कि परेटो के अनुसार कार्यकुशलता में हर सुधार, अर्थव्यवस्था को अनिवार्य रूप से उच्चतर सामाजिक कल्याण पर पहुंचाए.

कुछ अन्य परिस्थितियों में भी बाज़ार व्यवस्था सामाजिक कल्याण के अनुरूप निर्णय लेने में असमर्थ साबित हुई है. अगले अध्याय में हम इन में से कुछ परिस्थितियों का अध्ययन करेंगे.

प्रश्न:

1. अर्थशास्त्र में सामाजिक कल्याण का अर्थ है व्यक्ति का चौतरफ़ा विकास. इस निष्कर्ष पर विस्तृत टिप्पणी करें.
2. राष्ट्रीय आय क्यों सामाजिक कल्याण के संकेतक के रूप में अपर्याप्त है?
3. इष्टतम के परेटो मापदंड को परिभाषित करें एवं इस के लिए आवश्यक शर्तों को प्राप्त (derive) करें.
4. वस्तुओं का व्यापार तभी संभव है जब व्यक्तियों के बीच उन की सीमान्त प्रतिस्थापन दर में अंतर हो. क्या ऐसा कहना सही है? तार्किक व्याख्या करें.
5. अगर दो उत्पादों के बीच संसाधनों के तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर एक समान नहीं है, तो क्या उत्पादन बढ़ाना संभव होगा?
6. अधिकतम संभव उत्पादन-वक्र (PTC) को परिभाषित करें. इस की ढलान क्या इंगित करती है? इस का स्वरूप धनुषाकारी होता है - यह एक मान्यता है अथवा अनिवार्यता?
7. कल्याणकारी अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से परेटो मापदंड की पर्याप्तता का मूल्यांकन करें.
8. एज्वर्थ पेटी-वक्र (Edgeworth box diagram) का ढांचा समझाएं.
9. कैल्डोर एवं हिक्स के क्षतिपूर्ति नियम की व्याख्या एवं मूल्यांकन करें.
10. परेटो के मापदंड की पूर्ति सामाजिक कल्याण के लिए अनिवार्य और पर्याप्त है. तर्कपूर्ण व्याख्या करें.

अध्याय – 15

सामाजिक कल्याण के दृष्टिकोण से बाज़ार का मूल्यांकन: कुछ बिंदु

पिछले अध्याय में, हम ने, आर्थिक परिस्थितियों का सामाजिक कल्याण के दृष्टिकोण से मूल्यांकन हेतु, अर्थशास्त्र के कुछ बिन्दुओं का अध्ययन किया था. इस में हम ने पाया कि परेटो के मापदंड कुछ परिस्थितियों में मार्गदर्शन कर सकते हैं परन्तु इन की अपनी सीमायें भी हैं. हम ने देखा कि केवल पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में ही परेटो के मापदंड पूरे होते हैं; अन्य तरह की बाज़ार संरचना में इन का पूरा होना भी अनिवार्य नहीं है. हम ने यह भी पाया कि परेटो के मापदंड की पूर्ति सामाजिक कल्याण के लिए न अनिवार्य है और न पर्याप्त.

इस अध्याय में हम कुछ उन परिस्थितियों का अध्ययन करेंगे जहाँ बाज़ार, यहाँ तक की पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार भी, संसाधनों का इष्टतम प्रयोग सुनिश्चित नहीं करता.

बाह्यता (Externality): अब तक हम ने देखा है कि संसाधनों के इष्टतम उपयोग की बुनियादी शर्त यह है कि सीमान्त लागत, सीमान्त राजस्व के बराबर हो (MC = MR). प्राथमिक दृष्टि से यह उपयुक्त भी लगता है कि संसाधनों का प्रयोग उस बिंदु तक ही होना चाहिए जहाँ उस की सीमान्त लागत एवं सीमान्त लाभ/राजस्व समान हों. अगर सीमान्त लागत सीमान्त राजस्व से अधिक है तो संसाधन का प्रयोग नहीं होना चाहिए. इसी सिद्धांत को सामाजिक दृष्टिकोण से देखें तो हम कह सकते हैं कि संसाधनों के इष्टतम उपयोग की बुनियादी शर्त यह है कि सीमान्त सामाजिक लागत सीमान्त सामाजिक लाभ/राजस्व के बराबर हो (SMC = SMR). अब अगर सीमान्त सामाजिक लागत (व्यक्तिगत) सीमान्त लागत एवं सीमान्त सामाजिक राजस्व (व्यक्तिगत) सीमान्त राजस्व के बराबर हो (SMC=MC एवं SMR=SR) तब तो बाज़ार के निर्णय यानी उत्पादकों/उपभोक्ताओं के निर्णय सामाजिक कल्याण के अनुकूल होंगे, अन्यथा नहीं; क्योंकि बाज़ार व्यक्तिगत सीमान्त लागत एवं राजस्व को ध्यान में रख कर निर्णय लेता है न कि सामाजिक लागत एवं राजस्व.

क्या यह अनिवार्य है कि हमेशा सामाजिक एवं व्यक्तिगत लागत/ राजस्व समान हों? अगर किसी वस्तु के लाभ, नुकसान अथवा लागत केवल निर्णय लेने वाले पर पड़ते हैं, दूसरों पर नहीं, तब तो यह शर्त पूरी होगी कि SMC=MC एवं SMR=SR. परन्तु अगर ऐसा न हो तो क्या होगा? अभी तक अप्रत्यक्ष रूप से हम यह मान कर चलते रहें हैं कि किसी वस्तु के बाज़ार भाव में उस की पूरी लागत शामिल है परन्तु बहुत बार ऐसा नहीं होता. उदाहरण के लिए, प्लास्टिक की थैली/पन्नी हमें तो मुफ़्त में मिल जाती है. दुकानदार के लिए भी इस की लागत मात्र इतनी है जितने में उसे बाज़ार में मिली. बाज़ार भाव भी इस पर निर्भर करेगा कि प्लास्टिक की थैली बनाने में कितनी लागत आई. परन्तु क्या प्लास्टिक की थैली की मात्र इतनी ही लागत है जितनी उस को बनाने की लागत है? प्लास्टिक की थैली के निस्तारण की कोई लागत हम नहीं गिनते, इसे नि:शुल्क समझते हैं. व्यक्तिगत तौर पर शायद हमारे लिए इस की कोई तात्कालिक लागत है भी नहीं. इसे यूंहीं फेंका जा सकता है, फेंका जाता है. परन्तु जब वही थैली शहर के सीवर जाम कर देती है, तो क्या इस की कोई लागत हमें नहीं चुकानी पड़ती? निश्चित तौर पर प्लास्टिक की पन्नी का निस्तारण नि:शुल्क नहीं किया जा सकता. देश दुनिया भर में बिखरे प्लास्टिक को इकठ्ठा कर के उस का सुरक्षित निस्तारण करना महँगा काम है एवं सामान्य तौर पर बाज़ार इस काम को नहीं करता. ग़रीब तबका प्लास्टिक को जला कर सर्दियों में ताप लेता है. इसे देख कर कोई कह सकता है कि प्लास्टिक की पन्नी का निस्तारण तो न केवल नि:शुल्क है अपितु सर्दी भगाने के काम आ सकता है. हमें महसूस नहीं होता परन्तु वैज्ञानिक अध्ययन बताते हैं कि प्लास्टिक को यूं जला देना स्वास्थ्य एवं पर्यावरण दोनों के लिए हानिकारक है.

पर्यावरण का ज़िक्र आया तो हम पेट्रोल/डीज़ल का उदाहरण भी ले सकते हैं. हमारे लिए पेट्रोल की लागत कितनी है? मात्र उतनी ही जितना पेट्रोल का वर्तमान बाज़ार भाव है. परन्तु इस से उत्पन्न होने वाले प्रदूषण और उस प्रदूषण से होने वाली स्वास्थ्य समस्याओं, जलवायु परिवर्तन का क्या? पेट्रोल से होने वाला प्रदूषण के प्रभाव को निरस्त करने का ख़र्च क्या पेट्रोल की लागत में शामिल नहीं होना चाहिए?

ऐसे कितने ही उदाहरण हैं जो दिखाते हैं कि किसी वस्तु की वास्तविक सामाजिक लागत उस से कहीं अधिक है जितना पैसा हम उस वस्तु को ख़रीदने में ख़र्च करते हैं. मात्र एक और उदाहरण दे कर हम आगे बढ़ेंगे. पड़ोसी ने अपने बच्चे को नया और महँगा खिलौना

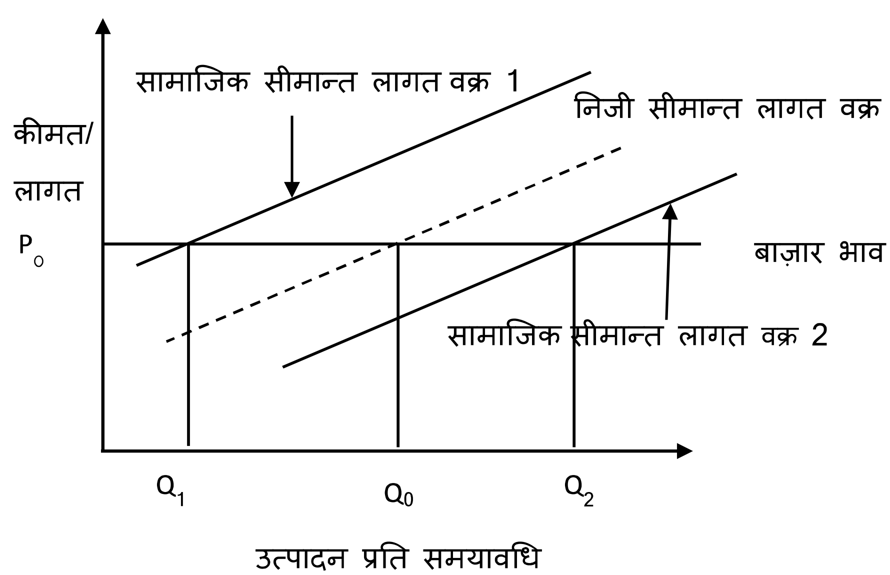
ला कर दिया. उस बच्चे के पास नया महँगा खिलौना देख कर पड़ोस और रिश्तेदारी में सब घरों में जो घमासान हुआ, 'हमें भी वैसा ही खिलौना चाहिए', क्या वह इस खिलौने की लागत में शामिल नहीं होना चाहिए? बात केवल बच्चों की नहीं है. पड़ोस/रिश्तेदारी में हुई धूमधाम से महँगी शादी भी इसी श्रेणी में आती है.

बाह्यता केवल नकारात्मक नहीं होती: आप ने अपनी छूत की बीमारी का इलाज कराया, कोरोना होने पर नियम कायदे से रहे, तो बीमारी फैलने पर कुछ हद तक रोक लगी. आप ने अपने स्वास्थ्य की देखभाल अच्छी तरह से की, इस से छूत की बीमारी के फ़ैलाव पर रोक लगी. आप के द्वारा किये गए उपाय का फ़ायदा दूसरों को भी मिला, जिन्होंने इस के लिए कुछ ख़र्च नहीं किया. भले ही आज शिक्षा मात्र व्यक्तिगत विकास की वस्तु प्रतीत होती है जो व्यक्ति को उच्च वेतन की नौकरी दिला सकती है ,परन्तु इस के फ़ायदे कहीं अधिक व्यापक हैं. भले ही आज पुरानी स्थिति न रह गई हो, जहाँ गाँव के पढ़े लिखे सब गाँव वाले की चिट्ठी-पत्री लिखने-पढ़ने में सहायक होते थे, फिर भी पढ़ाई/ज्ञान व्यक्तिगत लाभ तक सीमित न रह कर, व्यापक समाज के न सही, आप के दूर तक के रिश्तेदारों/मित्रों के काम आता है. शिक्षा पर किया गया आप का ख़र्च/मेहनत का लाभ न केवल आप को मिलता है बल्कि अन्य व्यक्ति भी लाभान्वित होते हैं. ये भी बाह्यता के उदाहरण हैं, अपितु सकारात्मक बाह्यता के.

संक्षेप में, बहुत सी परिस्थितियों में उपभोग/उत्पादन के लाभ अथवा लागत व्यक्तिगत स्तर तक सीमित न रह कर बाह्य व्यक्तियों पर भी प्रभाव डालते हैं. **जब भी किसी आर्थिक निर्णय का अच्छा अथवा बुरा प्रभाव निर्णय लेने वाले से भिन्न व्यक्ति पर भी पड़ता है, ऐसे प्रभाव को बाह्यता कहते हैं**. बाह्यता सकारात्मक अथवा नकारात्मक दोनों तरह की हो सकती है. जहाँ सकारात्मक बाह्यता के चलते सामाजिक लाभ निजी लाभ से अधिक हो जाते हैं वहीं सामाजिक लागत निजी लागत से कम हो जाती है. नकारात्मक बाह्यता के प्रभाव विपरीत होते हैं.

ऐसे बाह्य प्रभाव की परिस्थितियों में, केवल व्यक्तिगत लाभ/लागत को ध्यान में रख कर लिए गए निर्णयों का, सामाजिक कल्याण पर क्या प्रभाव पड़ता है? चित्र 75 में एक पूर्ण प्रतियोगी उत्पादक के सीमान्त लागत-वक्र को दर्शाया गया है. इस चित्र में बीच का बिंदीदार रेखा द्वारा दिखाया गया सीमान्त लागत-वक्र निजी सीमान्त लागत-वक्र है. सामाजिक लागत-वक्र पूरी रेखा से दिखाए गए हैं.

चित्र 75- निजी एवं सामाजिक लागत में अंतर का प्रभाव

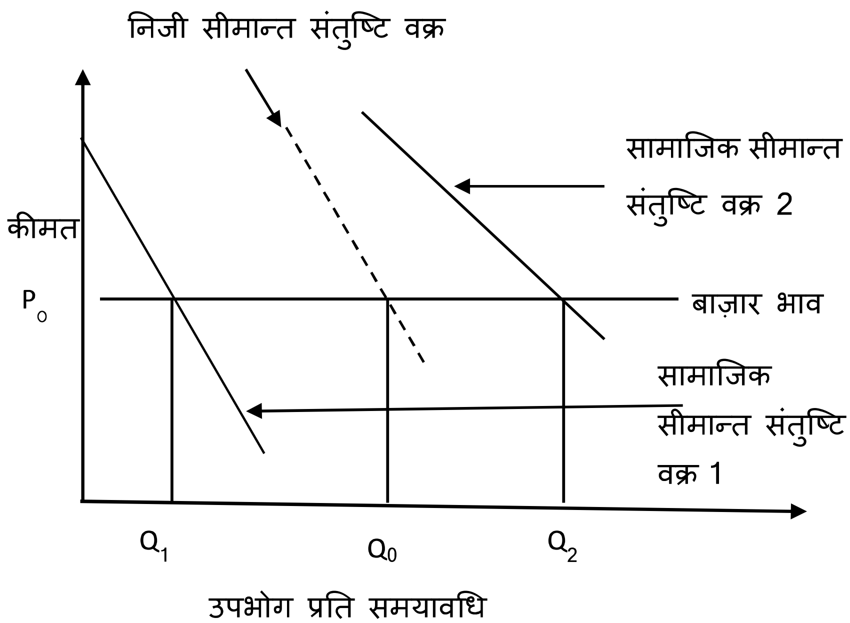


बाज़ार भाव P_0 होने पर, इस स्थिति में निजी लाभ और लागत को ध्यान में रख कर ,यह उत्पादक Q_0 मात्रा का उत्पादन करेगा. इस से अधिक उत्पादन करने पर उस की लागत राजस्व से अधिक होगी, इस लिए ऐसा करना उस के लिए घाटे का सौदा होगा. अगर यह वस्तु प्लास्टिक की पन्नी जैसी है जिस कि वास्तविक लागत बाज़ार भाव से अधिक है एवं सामाजिक सीमान्त लागत-वक्र 1 के अनुरूप है, तो सामाजिक कल्याण के दृष्टिकोण से देखें तो इस वस्तु का मात्र Q_1 मात्रा में उत्पादन होना चाहिए, इस से अधिक नहीं. इस के विपरीत अगर सामाजिक सीमान्त लागत-वक्र 1 न हो कर सामाजिक सीमान्त लागत-वक्र 2 सरीखा हो यानी सामाजिक लागत निजी लागत से कम हो तो क्या होगा (उदाहरण के लिए, कर लगने के कारण निजी लागत ज़्यादा हो सकती है और सामाजिक लागत कम)? इस स्थिति में सामाजिक कल्याण की दृष्टि से उत्पादन Q_2 होना चाहिए परन्तु व्यक्तिगत लाभ-लागत के आधार पर निर्णय

लेने पर उत्पादन मात्र Q_0 होगा. इस प्रकार हम पाते हैं कि अगर किसी वस्तु के उत्पादन में बाह्यता है, तो निजी दृष्टि से लिए गए निर्णय सामाजिक कल्याण के अनुकूल नहीं होंगे.

उपरोक्त उदाहरण व्यक्तिगत लागत एवं सामाजिक लागत में अंतर का है. ऐसा ही अंतर निजी लाभ के आधार पर लिए गए निर्णयों और सामाजिक कल्याण में होगा अगर किसी वस्तु के व्यक्तिगत लाभ एवं सामाजिक लाभ में अंतर हो. इसे चित्र 76 द्वारा दर्शाया गया है. बीच की बिंदीदार रेखा निजी लाभ/संतुष्टि/राजस्व इंगित करती है एवं पूरी रेखा से दिखाए गए अन्य दो वक्र सामाजिक लाभ/संतुष्टि/राजस्व को.

चित्र 76- निजी एवं सामाजिक संतुष्टि में अंतर का प्रभाव



इस स्थिति में, अगर निजी लाभ के दृष्टिकोण से निर्णय लिया जाए तो उपभोग मात्रा Q_0 होगी. परन्तु अगर यह वस्तु शिक्षा सरीखी है तो उपभोग मात्रा Q_2 होनी चाहिए एवं अगर यह वस्तु सिगरेट/शराब जैसी है तो इस का उपभोग Q_1 तक ही सीमित होना चाहिए.

उपरोक्त चर्चा से स्पष्ट है कि व्यक्तिगत एवं सामाजिक लाभ अथवा लागत में अंतर होने पर निजी दृष्टि से किए गए निर्णय सामाजिक कल्याण की दृष्टि से उपयुक्त नहीं होंगे. बह्यता की स्थितियाँ यदा कदा पाए जाने वाले अपवाद नहीं हैं. देश के कई इलाकों में लगातार घटता जलस्तर (और दूसरी जगह पर लगातार ऊपर आता जल स्तर), महानगरों में सांस लेने के लिए स्वच्छ हवा का दुर्लभ होना, जलवायु परिवर्तन बह्यता के ही ऐसे उदाहरण हैं जो मानव जीवन को ही खतरे में डाल सकते हैं. एक किसान के लिए नलकूप से पानी निकालने की लागत मात्र उतनी ही है जितना पैसा उस की जेब से जाता है परन्तु एक किसान का बड़ा नलकूप पड़ोसी की ज़मीन के नीची का पानी भी खींच कर उस के नलकूप को निरस्त कर, उसे भी नया नलकूप लगाने को विवश कर सकता है. किसी के वाहनों अथवा फैक्टरी का धुंआ शेष लोगों के लिए सांस लेना दूभर कर देता है. बाह्य उत्पादन का स्तर बढ़ने के कारण होने वाली लागत में कमी एवं बढ़ोतरी का अध्ययन तो हम पिछले अध्यायों में कर ही चुके हैं. इस लिए बह्यता को कभी-कभार पाए जाने वाले अपवाद के रूप में देखना भूल होगी.

बह्यता से निपटने के उपाय: इस स्थिति में क्या किया जा सकता है? प्रसिद्ध अर्थशास्त्री पीगू (Piogu) ने एक उपाय सुझाया था, जो आज भी कुछ हद तक कारगर है. अगर सामाजिक लागत निजी लागत से अधिक है (अथवा सामाजिक उपयोग निजी संतुष्टि से कम है), तो इन दोनों के बीच के अंतर के बराबर कर लगाने से निजी लागत (एवं लाभ) सामाजिक लागत (लाभ) के अनुरूप हो जाएँगे एवं निजी दृष्टि से लिए निर्णय भी सामाजिक कल्याण के अनुरूप हो जाएँगे. इस के विपरीत स्थिति होने पर, उदाहरण के लिए, अगर सामाजिक लाभ निजी लाभ से अधिक हैं, तो अंतर के अनुरूप आर्थिक सहायता अथवा अनुदान (subsidy) देने से भी निजी निर्णय प्रक्रिया को सामाजिक कल्याण के अनुरूप लाया जा सकता है.

सिगरेट-शराब पर लगाये गए उच्च कर का एक कारण इन की निजी लागत को सामाजिक लागत के बराबर कर के खपत को हतोत्साहित करना ही है (हालाँकि आज कल कई बार सरकारें इन करों को मुख्य तौर पर राजस्व एकत्र करने के साधन के रूप में देखती हैं, न कि इन की खपत को हतोत्साहित करने के दृष्टिकोण से). शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं पर दिए जाने वाला अनुदान इसी समझ के कारण दुनिया भर में दिया जाता है. अमरीका जैसे देश में जहाँ अन्यथा बाज़ारवाद का बोलबाला है, स्कूली शिक्षा समान, सार्वभौमिक एवं

नि:शुल्क है. अधिकांश बच्चे सरकारी स्कूलों में पढ़ते हैं एवं उन के रिहायशी इलाके के लिए चिह्नित स्कूल में ही पढ़ते हैं. ऐसा नहीं है कि शहर के एक कोने में रहने वाला बच्चा शहर के दूसरे कोने में स्थित स्कूल में पढ़े. उसे अपने इलाके के लिए चिह्नित स्कूल में ही पढ़ना होगा. अमरीका में न केवल स्कूली शिक्षा नि:शुल्क है अपितु स्कूल में दोपहर का पूरा भोजन भी सब को मिलता है. यूरोप के कई देशों में तो न केवल स्कूली शिक्षा अपितु सारी शिक्षा, उच्चतम स्तर तक की शिक्षा ही नि:शुल्क है.[77]

परन्तु कर अथवा अनुदान के माध्यम से, निजी एवं सामाजिक लागत के अंतर को पाटने में और बाज़ार के निर्णय को सामाजिक कल्याण के अनुरूप करने में एक दिक्कत है. बहुत बार हमें यह तो पता होता है कि किसी ख़ास उपयोग में बह्यता है परन्तु उस की मात्रा का सटीक अनुमान नहीं होता. उदाहरण के तौर पर हम यह तो जानते हैं कि छूत की बीमारी का इलाज कराने से सामाजिक लाभ निजी लाभ से अधिक हैं, परन्तु कितने अधिक हैं, इस का ठीक-ठीक अनुमान कई बार नहीं होता. जब निजी एवं सामाजिक लाभ/लागत में अंतर की गणना ही नहीं होगी, तो कर अथवा अनुदान के माध्यम से इसे कैसे पाटा जा सकता है? दूसरी दिक्कत यह है कि सामाजिक तौर पर हानिकारक वस्तु पर कर लगाने से उस व्यक्ति की क्षतिपूर्ति तो नहीं होती जिस को उसका नुकसान उठाना पड़ा. उदाहरण के लिए, सिगरेट/शराब पर कर लगाने से निजी लागत एवं सामाजिक लागत के अंतर को पाटा जा सकता है. परन्तु ऐसा करने से भी उस व्यक्ति की क्षतिपूर्ति तो नहीं हुई, जिस को पड़ोसी के शराबी होने से परेशानी होती है. इस के अलावा जब हम किसी वस्तु, जिस के सामाजिक लाभ निजी लाभ से अधिक होते हैं, की खपत को बढ़ावा देने के लिए अनुदान देते हैं, उदाहरण के तौर पर जैसे फ़िलहाल बिजली से चलने वाले वाहनों को दिया जा रहा है, तो उस अनुदान को जुटाने के लिए हमें कहीं और कर लगाना पड़ेगा. ऐसा करने पर जहाँ कर लगेगा उस वस्तु कि निजी एवं सामाजिक लागत में अंतर आ जाएगा. यानी, एक जगह की बह्यता को दूर करने के लिए उठाये गए कदम, किसी अन्य जगह पर बह्यता पैदा कर देंगे.

इन कमियों के चलते, बाह्यता से निपटने के लिए उपरोक्त, यानी क्षतिपूर्ति, के अलावा अन्य उपाय भी सुझाए गए हैं. बह्यता की समस्या इस लिए पैदा होती है क्योंकि किसी आर्थिक निर्णय के प्रभाव दो भिन्न-भिन्न इकाइयों पर पड़ते हैं. अगर इन दोनों आर्थिक इकाइयों को एक कर दिया जाए तो बह्यता स्वतः ख़त्म हो जाएगी. उदाहरण के लिए, एक फैक्टरी उस नदी/जल स्रोत में गन्दा पानी डाल देती है जिस से पूरे जिले को पेय जल की आपूर्ति होती है. नदी में गन्दा पानी डालने का खामियाजा, पेय जल की आपूर्ति करने वाली कम्पनी को भुगतना पड़ता है लेकिन पहली कम्पनी को इस की परवाह नहीं है. अब अगर गन्दा पानी पैदा करने वाली कम्पनी एवं शहर में पेय जल आपूर्ति करने वाली कम्पनी, दोनों के मालिक एक हो जाएँ, तो ज़ाहिर है गन्दा पानी पैदा करने वाली कम्पनी प्रदूषण-नियंत्रण के उपाय करेगी ताकि पूरी नदी के पानी को साफ़ करने की नौबत न आए. इसे उत्पादन/उपभोग की इकाइयों का एकीकरण (unitisation) का कहा जाता है.

यह भी कहा गया है कि बह्यता का एक बड़ा कारण यह है कि कई संसाधनों पर किसी का निजी मालिकाना हक़ नहीं है. इस लिए उस संसाधन पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव की किसी को चिंता ही नहीं है. उदाहरण के लिए, सार्वजनिक चरागाह. किसी भी चरागाह के बने रहने के लिए यह आवश्यक है कि उस पर सीमित संख्या में ही पशु चरें एवं ऐसे समय पशु न चरें जब घास/पेड़ छोटे हों. ऐसी ही स्थिति सामूहिक जल स्रोत से मछली पालन पर भी लागू होती है. मछली इतनी ही पकड़ी जानी चाहिये कि शेष बची मछलियों के प्रजनन से मछलियों की संख्या लगातार बनी रहे. इस के लिए मछलियों के प्रजनन काल में मछली का शिकार नहीं होना चाहिये. ऐसे ही कई अन्य उपाय अपनाने भी जरूरी हैं. परन्तु होता क्या है? सार्वजनिक चरागाह अथवा मछली स्रोत को लम्बी अवधि में होने वाला नुकसान किसी को अपना निजी नुकसान प्रतीत नहीं होता जबकि तात्कालिक निजी लाभ स्पष्ट है. इस लिए सुझाया गया है कि ऐसे सार्वजनिक संसाधनों का निजीकरण (privatising the commons) कर दिया जाए ताकि बह्यता का आधार ही ख़त्म हो जाए. जब जल स्रोत निजी सम्पत्ति हो जाएँगे, तो कम्पनी के निज हित में होगा कि इतनी मात्रा में ही मछलियाँ पकड़ी जाएँ कि मछलियाँ लगातार बनी रहे और उस का धंधा चलता

[77] हालाँकि हाल के दशकों में यूरोप के कई देशों में स्थिति बदली है, परन्तु पिछली सदी के अंतिम दशक तक लगभग पूरे यूरोप एवं अमीर देशों में निशुल्क सार्वजनिक शिक्षा ही महत्त्वपूर्ण थी.

रहे. परन्तु इस का प्रभाव तो स्पष्ट तौर पर यह होगा कि सार्वजनिक संसाधन किसी की निजी सम्पत्ति हो जाएँगे एवं जंगल या समुन्द्र जैसे विशाल संसाधन को तो कोई विशालकाय कम्पनी ही ख़रीद पायेगी. ऐसा होने पर प्राकृतिक संसाधनों पर एकाधिकार हो जाएगा, जिस से आम जनता को लाभ होने की बजाय नुकसान हो सकता है.

एक अन्य उपाय यह है कि बह्यता की स्थिति में समाज/सरकार सीधे-सीधे ऐसे उपभोग अथवा उत्पादन का नियंत्रण करे. नियंत्रण का अर्थ निजीकरण अथवा मनाही नहीं है. इस का अर्थ है कि नियम बना कर इन संसाधनों के प्रयोग को सीमित अथवा नियंत्रित करना है. हाल फ़िलहाल वाहनों के प्रदूषण को नियंत्रित करने के उपाय इसी श्रेणी में आते हैं. यह भी रेखांकित करना आवश्यक है कि सामाजिक नियंत्रण का अर्थ केवल राज्य अथवा केन्द्रीय सरकार द्वारा नियंत्रण अथवा नियमन नहीं है. कई परिस्थितियों में स्थानीय समुदाय ही सर्वश्रेष्ठ नियामक हो सकता है. परम्परागत रूप से सार्वजनिक चरागाहों का प्रबंधन स्थानीय समाज स्वयं करता था एवं इस के प्रयोग के नियम बनाता था. आज भी कई जगह (उदाहरण के लिए, महाराष्ट्र एवं राजस्थान के कई इलाकों की पानी पंचायत द्वारा) जल उपयोग का सामाजिक नियंत्रण किया जाता है. कम पानी वाले इलाकों में ईंख जैसी अधिक पानी वाली फसल की खेती पर रोक लगाई जाती है या इसे सीमित किया जाता है ताकि पानी का जल स्तर बना रहे एवं ऐसे परिवार जो गहरा नलकूप नहीं लगवा सकते, वे भी कम पानी वाली फसलें उगा सकें. इस के धुर दूसरे छोर पर वैश्विक स्तर पर जलवायु परिवर्तन को रोकने (बल्कि सीमित करने) के प्रयास आते हैं. बाज़ार का नियंत्रण/नियमन समाज स्थानीय से लेकर वैश्विक स्तर तक किसी भी स्तर पर हो सकता है. यह बाह्यता के प्रकार एवं प्रभाव पर निर्भर करेगा.

सराहनीय वस्तु (Merit goods): सामाजिक लाभ को निजी लाभ से अधिक होना इतना महत्त्वपूर्ण माना गया है कि अर्थशास्त्र की शब्दावली में इस के लिए एक विशेष शब्द है- सराहनीय वस्तु (merit goods). सराहनीय वस्तु ऐसी वस्तुओं को कहा जाता है जिन का सामाजिक लाभ निजी लाभ से अधिक होता है. इस लिए निजी निर्णय के आधार पर उन की खपत उस से कम होती है जितनी की होनी चाहिए. इस लिए ऐसी वस्तुओं की आपूर्ति को बाज़ार के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता. अंत: आम तौर पर सरकारें इन्हें नि:शुल्क अथवा काफ़ी कम दाम पर उपलब्ध कराती हैं. शिक्षा भी कभी ऐसी वस्तु मानी जाती थी, हालाँकि पिछले कुछ समय से इस दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ है.

सार्वजनिक उपभोग की वस्तु (Public goods): सराहनीय वस्तु (merit goods) के अलावा एक और तरह की वस्तु हैं जिन की आपूर्ति को निजी निर्णय पर छोड़ना सामाजिक कल्याण की दृष्टि से उचित नहीं है. ऐसी वस्तुओं/सेवाओं को सार्वजनिक उपभोग की वस्तु कहा जाता है. सार्वजनिक उपभोग की वस्तु का अर्थ सरकार द्वारा उपलब्ध कराई गई वस्तु नहीं है. अर्थशास्त्र में सार्वजनिक उपभोग की वस्तु का एक विशेष अर्थ है. सार्वजनिक उपभोग की वस्तु की परिभाषा को हम पुल के उदाहरण से समझ सकते हैं. पार्क के दो गुण महत्त्वपूर्ण हैं. एक सीमा तक, आप द्वारा पुल का प्रयोग मुझे उस के उपयोग से वंचित नहीं करता. यद्यपि बहुत अधिक भीड़ होने पर ऐसा हो सकता है. इस लिए हम ने कहा है कि 'एक सीमा तक' कई लोग एक ही पुल का उपयोग कर सकते हैं. ध्यान रहे समोसा खाने में ऐसा नहीं होता. समोसे को या तो आप खा सकते हैं या मैं; हम दोनों ही पूरे समोसे का आनंद नहीं उठा सकते. पुल/पार्क जैसी वस्तुओं के इस गुण को उपभोग में प्रतिद्वंद्विता का अभाव (non-rivalry in consumption) कहते हैं.

पुल का दूसरा गुण यह है कि आम तौर पर किसी को इस के उपभोग से वंचित करना मुश्किल होता है. हालाँकि आज कल सड़कों/पुल पर कर (Toll tax) लगने लग गया है परन्तु आप दूर दराज़ के, जंगल के किसी पुल को ध्यान में रखें. जहाँ कभी-कभार कुछ लोग ही पहुँचते हैं, वहाँ क्या इस पुल के प्रयोग से किसी को वंचित करना आर्थिक रूप से लाभदायक होगा? संभवतः शुल्क एकत्रित करने पर होने वाला ख़र्च एकत्रित शुल्क से ज़्यादा हो. टेलीविज़न का उदाहरण लें. कुछ समय पहले तक टेलीविज़न पर प्रसारित होने वाले किसी भी कार्यक्रम से किसी को वंचित करना संभव नहीं था. छत पर बाज़ार में मिलने वाला एक आम एंटीना लगा कर कोई भी दूरदर्शन को देख सकता है. शायद आज भी दूरदर्शन को ऐसे ही देखा जा सकता है परन्तु आम तौर पर अब टेलीविज़न के कार्यक्रम बिना फीस चुकाए देखना संभव नहीं है. इस गुण को प्रयोग से वंचित करना असंभव/मुश्किल (non-excludability) होना कहते हैं. इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि किसी को किसी वस्तु के उपभोग से वंचित करना दो बातों पर निर्भर करता है- तकनीक और आर्थिक लागत. कुछ मामलों

में तो कोई तकनीक ही उपलब्ध नहीं है जो किसी को उस वस्तु के उपयोग से वंचित कर सके; साफ़ हवा का आनंद लेने से किसी को रोकने की कोई तकनीक ही अभी तक उपलब्ध नहीं है. कुछ मामलों में तकनीक तो उपलब्ध है, परन्तु उस वस्तु के उपयोग से वंचित करने की लागत उसे आर्थिक रूप से व्यावहारिक नहीं बनाती.

केवल पुल एवं सड़क आदि ही सार्वजनिक उपभोग की वस्तुओं में शामिल नहीं हैं. ज्ञान एवं सूचना भी सार्वजनिक उपभोग की वस्तु हो सकती है. उदाहरण के लिए, मौसम की जानकारी. एक ही जानकारी का एक से अधिक लोग प्रयोग कर सकते हैं यानी इस के प्रयोग में प्रतिद्वंद्विता नहीं है एवं इस जानकारी के प्रयोग से किसी को वंचित करना भी मुश्किल है (वैसे आज कल निजी मौसम की जानकारी देने वाली संस्था भी हैं जो फीस ले कर सूचना उपलब्ध कराती हैं).[78]

सार्वजनिक उपभोग की वस्तुओं के ये दो अनिवार्य गुण हैं- उपभोग में प्रतिद्वंद्विता का अभाव एवं वंचित करना असंभव/मुश्किल होना. ऐसी सभी वस्तु जिन में ये दो गुण हों, सार्वजनिक उपभोग की वस्तु कहलाती हैं. शुद्ध सार्वजनिक उपभोग की वस्तु (pure public goods) वे वस्तु होती हैं जिनमें पूरी तरह से उपभोग में प्रतिद्वंद्विता का अभाव हो एवं जिन के उपभोग से किसी को वंचित करना असंभव हो. उदाहरण के लिए, साफ़ हवा और सड़कों पर सुरक्षा व्यवस्था. इस के विपरीत कुछ सार्वजनिक वस्तु ऐसी होती हैं जिन का उपभोग एक सीमा तक तो प्रतिद्वंद्विता नहीं होती परन्तु एक सीमा के बाद उन का उपभोग प्रतिद्वंद्वी हो जाता है. जैसे, भीड़ बढ़ने पर पार्क का आनंद सब लोग नहीं उठा सकते. आगे की चर्चा में हम शुद्ध सार्वजनिक उपभोग की वस्तुओं की ही चर्चा करेंगे. इस चर्चा से निकले निष्कर्ष काफ़ी हद तक उन सार्वजनिक उपभोग की वस्तुओं पर भी लागू होंगे, जो शुद्ध सार्वजनिक उपभोग की वस्तु नहीं हैं.

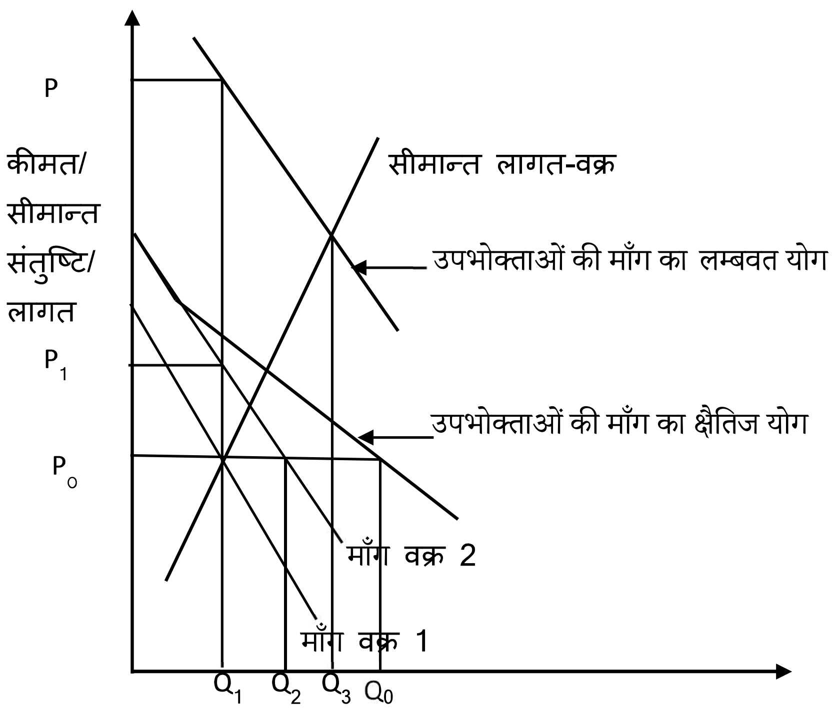
अगर सार्वजनिक उपभोग की वस्तुओं की आपूर्ति बाज़ार के भरोसे हो तो क्या होगा? चित्र 77 में एक सार्वजनिक उपभोग की वस्तु अ के दो उपभोक्ताओं के माँग-वक्र दिखाए गए हैं.

इस वस्तु का कुल माँग-वक्र क्या होगा? अगर वस्तु अ सामान्य वस्तु होती, तो किसी भी कीमत पर कुल माँग ज्ञात करने के लिए उस कीमत पर दोनों उपभोक्ताओं की माँग को क्षैतिज (आड़े) रूप (horizontal) में जोड़ कर कुल माँग ज्ञात कर लेते. उदाहरण के लिए, चित्र 77 के अनुसार P_0 कीमत पर कुल माँग Q_0 होती. परन्तु वस्तु अ सार्वजनिक उपभोग की वस्तु है यानी एक व्यक्ति द्वारा इस का उपभोग, दूसरे व्यक्ति को इस वस्तु के उपभोग से वंचित नहीं करता है. क्योंकि सार्वजनिक उपभोग की वस्तु के उपभोग में प्रतिद्वंद्विता नहीं होती, इस लिए एक ही इकाई के लिए कई लोगों से इस की कीमत वसूली जा सकती है. अंत: ऐसी वस्तु की कुल माँग जानने के लिए हमें यह देखना होगा कि वस्तु अ की किसी भी मात्रा में आपूर्ति, जैसे Q_1, के लिए समाज कुल कितनी कीमत देने को तैयार है. इस के लिए Q_1 उपभोग के हमें दोनों उपभोक्ताओं द्वारा देय राशि को लम्ब रूप में (vertically) जोड़ना होगा. चित्र 77 के अनुसार वस्तु अ की Q_1 मात्रा के लिए P कीमत वसूली जा सकती है. यह कीमत दोनों उपभोक्ताओं द्वारा दी जा सकने वाली कीमत, P_0 एवं P_1, के योग के बराबर होगी.

---

[78] तकनीकी ज्ञान में प्रगति को दो श्रेणियों में बाँटा गया है- सशरीरी (Embodied) एवं अशरीरी (disembodied). सशरीरी तकनीकी प्रगति उस को कहा जाता है जिस को किसी वस्तु अथवा मशीन के माध्यम से ही उपयोग में लाया जा सकता है. उदाहरण के लिए सौर ऊर्जा सम्बन्धी किसी नए पदार्थ का प्रयोग करने के लिए आप को नया सौर ऊर्जा संयंत्र लगाना पड़ेगा. इस के विपरीत अशरीरी तकनीकी प्रगति से लाभ उठाने के लिए किसी विशेष वस्तु अथवा मशीन की आवश्यकता नहीं है. उदाहरण के लिए, यह जानकारी कि सौर ऊर्जा संयंत्र की नियमित सफ़ाई से सौर ऊर्जा का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है, ऐसा ज्ञान है जिस के उपयोग के लिए किसी मशीन अथवा वस्तु को ख़रीदने की ज़रूरत नहीं है. नया बीज सशरीरी तकनीक का उदाहरण है, जब कि बीज बोने के समय में बदलाव अशरीरी तकनीक का उदाहरण है. स्पष्ट रूप से अशरीरी तकनीकी प्रगति सार्वजनिक उपभोग की वस्तु का उदाहरण है क्योंकि एक ही तकनीक का प्रयोग कई लोग कर सकते हैं एवं इस को प्रयोग करने से किसी को रोकना मुश्किल होता है.

चित्र 77
सार्वजनिक उपभोग की वस्तु की माँग एवं आपूर्ति



इस वस्तु का कितना उत्पादन होना चाहिए. चित्र से स्पष्ट है कि Q_3 मात्रा तक सीमान्त लागत सीमान्त सामाजिक संतुष्टि से कम है. इस लिए सामाजिक कल्याण के दृष्टिकोण से देखें तो हम पायेंगे कि वस्तु अ की आपूर्ति की मात्रा Q_3 होनी चाहिए जहां सीमान्त लागत एवं सामाजिक सीमान्त संतुष्टि के समान हैं. परन्तु इसे किस भाव पर बेचा जाए? आदर्श रूप में दोनों उपभोक्ताओं से उन की सीमान्त संतुष्टि के अनुरूप कीमत ली जानी चाहिए. परन्तु क्या ऐसा हो सकता है? जैसे ही किसी उपभोक्ता को पता चलेगा कि उसे अपनी सीमान्त संतुष्टि के आधार पर भुगतान करना पड़ेगा, तो उस के निज हित में यह होगा कि वह अपनी सीमान्त संतुष्टि को कम कर के बताए, लगभग शून्य बताए. ऐसा कर के भी वह इस वस्तु का प्रयोग कर सकता है क्योंकि किसी व्यक्ति को इस वस्त के उपभोग से वंचित करना संभव नहीं है. **इस को मुफ़्तख़ोरी (Free rider phenomenon) कहते हैं.** अब अगर सभी उपभोक्ता ही ऐसा करें, तो निश्चित तौर पर बताई गई जानकारी के आधार पर उद्घाटित सामाजिक सीमान्त संतुष्टि वक्र, वास्तविक सामाजिक सीमान्त संतुष्टि वक्र से कहीं नीचा होगा. ऐसी स्थिति में निजी उद्यम द्वारा इस वस्तु की आपूर्ति सामाजिक दृष्टिकोण के इष्टतम स्तर से कहीं कम होगी, बल्कि शून्य हो सकती है. इस लिए सार्वजनिक उपभोग की वस्तुओं की आपूर्ति को बाज़ार के भरोसे न छोड़ कर समाज को, सरकार को स्वयं इन वस्तुओं की आपूर्ति सुनिश्चित करनी होगी.

बाज़ार की विफलता (market failure): **जब मुक्त/अनियंत्रित बाज़ार, जहाँ उपभोक्ता एवं उत्पादक बिना किसी रोक-टोक के अपने हितों के आधार पर निर्णय लेने को स्वतंत्र हों, सामाजिक कल्याण के अनुरूप अर्थव्यवस्था का संचालन नहीं कर पाए, तो उसे बाज़ार की विफलता कहा जाता है.** हम बह्यता एवं सार्वजनिक उपभोग की वस्तुओं के सन्दर्भ में बाज़ार की विफलता देख चुके हैं. परन्तु बाज़ार की विफलता मात्र इन दो परिस्थितियों तक सीमित नहीं है. हम यह भी देख चुके हैं कि पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार भी केवल इष्टतम के परेटो मापदंड की पूर्ति सुनिश्चित कर पाता है; यह इष्टतम सामाजिक कल्याण सुनिश्चित नहीं कर पाता. बाज़ार के अन्य स्वरूप तो इष्टतम के परेटो मापदंड की पूर्ति भी सुनिश्चित कर पाते. एकाधिकारी बाज़ार व्यवस्था के चलते होने वाले डेड वेट लॉस (dead weight loss) यानी ऐसा घाटा है जिस की एवज़ में किसी को लाभ नहीं मिलता की चर्चा हम पिछले अध्यायों में कर चुके हैं. एकाधिकारी प्रतियोगिता के स्वरूप उत्पाद विभेदीकरण एवं विज्ञापन को मिलने वाले बढ़ावे एवं इस पर होने वाले ख़र्च का भी हम पहले ही ज़िक्र कर चुके हैं. कितने सारे प्रचार माध्यम केवल विज्ञापनों के सहारे संचालित हो रहे हैं, यही तथ्य विज्ञापन पर होने वाले ख़र्च के विशालकाय होने का आभास दिला सकता है.

उपरोक्त परिस्थितियों के अलावा भी कई बार माँग और आपूर्ति दोनों की उपलब्धता की संभावना होने के बावजूद बाज़ार विकसित नहीं होता अथवा बाज़ार उस स्तर तक विकसित नहीं होता जिस स्तर तक की माँग एवं आपूर्ति की संभावना हो सकती है. उदाहरण के लिए, जैविक उत्पाद - बिना रासायनिक उर्वरकों एवं बिना कीटनाशकों के प्रयोग के पैदा किए गए खाद्य उत्पाद- को लें. आज

बड़े पैमाने पर लोग जैविक उत्पाद खाना चाहते हैं. इस के लिए, कम से कम कुछ लोग, आवश्यक उच्चतर मूल्य भी चुकाने को तैयार हैं. किसान भी जैविक उत्पाद पैदा कर सकते हैं, परन्तु ऐसा बड़े पैमाने पर हो नहीं रहा. इस के कई कारण हो सकते हैं परन्तु एक स्वाभाविक कारण यह है कि यह जानने का कोई आसान एवं सहज तरीका उपलब्ध नहीं है कि यह उत्पाद वास्तव में जैविक है. जिस दाम पर जैविक उत्पाद उपलब्ध है, अथवा हो सकता है, वह दाम देने को हम-आप, कम से कम हम में से कुछ लोग, तैयार भी हैं, परन्तु हम वह उत्पाद ख़रीद नहीं रहे हैं क्योंकि हमें यह भरोसा नहीं है कि वह वास्तव में जैविक है. इस स्थिति में जैविक बाज़ार नहीं पनपेगा अथवा उस स्तर तक नहीं पनपेगा जिस स्तर तक माँग एवं उत्पादन संभव है. ऐसी स्थिति को बाज़ार की विफलता कहते हैं. ऐसी स्थिति में समाज/सरकार को दखल देना ही चाहिए. जैविक उत्पाद के संदर्भ में भरोसे लायक एवं कम लागत की प्रमाणीकरण व्यवस्था जैविक बाज़ार को विकसित करने में सहायक हो सकती है. जैविक उत्पाद मात्र एक उदाहरण है; अन्य कई ऐसी परिस्थितियां होती हैं जहाँ ज़रूरत एवं संभावना होने के बावजूद बाज़ार विकसित नहीं होता.

वैसे अभी भी जैविक की जांच के तरीके उपलब्ध हैं. प्रयोगशाला में जांच से यह पता चल सकता है कि कोई उत्पाद जैविक है या नहीं है (कम से कम उस में उपलब्ध पोषक तत्त्वों एवं रासायनिक अवशेष की जांच संभव है). परन्तु एक तो यह जांच महँगी है एवं दूसरा यह सहज उपलब्ध नहीं है – ऐसा नहीं है कि आप ने दुकान से समान उठाया और जांच कर ली और जैविक पाने पर ख़रीद ली. यह उदाहरण एक अन्य बड़ी समस्या का उदाहरण मात्र है. किसी वस्तु के ख़रीदार और विक्रेता के बीच जो सौदा होता है, तय भाव के अलावा उसे लागू करने का ख़र्च (Transaction cost) भी एक महत्त्वपूर्ण चर है. अगर सौदे को लागू करने का ख़र्च अधिक हो, तो भी भाव स्वीकार्य होने के बावजूद क्रय-विक्रय नहीं हो पाता. उदाहरण के लिए, हमारे-आप के बीच कोई भी समझौता होता है, एवं हम में से कोई उस पर खरा नहीं उतरता, अगर उस स्थिति में नुकसान की भरपाई का कोई सहज उपलब्ध रास्ता नहीं है, तो हम-आप वह समझौता करने से हिचकेंगे. इस लिए जहाँ अपराध ज़्यादा होते हैं, अदालती करवाई बहुत लम्बी खींचती हैं, वहाँ व्यापार एवं उद्योग पिछड़ जाता है.

बाज़ार आधारित अर्थव्यवस्था में एक और समस्या है. बहुत लोग आम तौर पर तात्कालिक लाभ को ध्यान में रख कर निर्णय लेते हैं. अगर दूरगामी सोच हो भी, तो भी आम तौर पर एक व्यक्ति की नज़र सीमित होगी. इस के विपरीत समाज को लम्बे समय के बारे में सोचना चाहिए एवं वह सोचता भी है. हालाँकि न व्यक्ति भविष्य को पूरी तरह अनदेखा कर सकता और न समाज तात्कालिक परिस्थितियों को, फिर भी यह कहा जा सकता है कि समाज की नज़र व्यक्ति के मुकाबले दूर तक जाती है. क्योंकि बाज़ार में व्यक्ति निर्णय लेता है, इस लिए बाज़ार दूरगामी प्रभावों को कम महत्त्व देता है.

मुक्त बाज़ार की अवधारणा के पीछे यह मान्यता निहित है कि व्यक्ति अपने लाभ-हानि का सब से अच्छा निर्धारक है. काफ़ी मामलों में यह सही भी है परन्तु सब मामलों में ऐसा नहीं माना जा सकता. जहाँ मुक्त बाज़ार को सब से अधिक समर्थन दिया जाता है, उदाहरण के लिए, तात्कालिक अमरीका, वहाँ भी स्कूली शिक्षा अनिवार्य है – इसे बच्चों या उन के माँ बाप के विवेक पर नहीं छोड़ा गया. वहाँ भी, दवाइयाँ इत्यादि बेचने से पहले सरकार से अनुमति लेनी पड़ती है; इन्हें दवाई बेचने वाले एवं खाने वाले के विवेक पर नहीं छोड़ दिया गया. इस का कारण यह है कि सब से बेहतर बाज़ार, पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार, में भी एक मान्यता निहित है जो कई बार वास्तविक जीवन में लागू नहीं होती. वह अवधारणा है कि 'सब को सब बातों' कि यानी सम्बन्धित सब बातों की जैसे भाव, गुणवत्ता, माँग, आपूर्ति इत्यादि की पूरी जानकारी सहज उपलब्ध एवं नि:शुल्क उपलब्ध है. टमाटर प्याज़ जैसी वस्तुओं पर तो काफ़ी हद तक यह मान्यता लागू होती है एवं इन वस्तुओं बाबत जानकारी ग़लत भी निकल आये – ख़रीदी गई सामग्री ख़राब निकल आये- तो कोई लम्बा चौड़ा नुकसान नहीं होता. परन्तु न केवल दवाई, अपितु कार, कम्पयूटर जैसी लम्बे समय तक काम आने वाली वस्तुओं एवं महँगी वस्तुओं पर यह लागू नहीं होता. **इस लिए समाज को, सरकार को दखल देना पड़ता है और दुनिया भर में सरकारें बाज़ार में दखल देती हैं, देती रही हैं. हाँ, यह अवश्य है कि इस दखल की व्यापकता एवं स्वरूप बदलता रहता है.**

समाज द्वारा बाज़ार में दखल भी कई रूप ले सकता है. एक चरम स्वरूप में उत्पादन के साधनों के निजी स्वामित्व का लगभग पूर्ण निषेध का हो सकता है.[79] दूसरा स्वरूप यह हो सकता है कि उत्पादन के साधनों के निजी स्वामित्व का पूर्ण निषेध न करते हुए सार्वजनिक सम्पत्ति के रूप में उद्योगों के संचालन को बढ़ावा देना. इस के साथ ही नियामक (regulatory) व्यवस्था के माध्यम से बाज़ार के संभावित दुष्प्रभावों को नियंत्रित करने के अथवा बाज़ार को बढ़ावा देने के प्रयास किए जा सकते हैं. जैसे भारत में कुछ वस्तुओं के लिए आई एस आई (ISI) अथवा एगमार्क (AGMARK) प्रमाणीकरण अनिवार्य है. भारतीय प्रतिस्पर्धा आयोग (Competition Commission of India) के माध्यम से बाज़ार को प्रतियोगी (मात्र प्रतियोगी न कि पूर्ण प्रतियोगी) बनाए रखने के प्रयास किए जाते हैं. कर एवं अनुदान का ज़िक्र हम पहले कर चुके हैं. ये सब उपाय संभव हैं एवं अपनाए भी जाते हैं. विवाद अथवा मतभेद, कहाँ कब कितना नियमन करना है, पर रहता है.

बाज़ार में सरकारी/सामाजिक दखल की भी अपनी चुनौतियां हैं. जैसे कई परिस्थितियों में बाज़ार विफल हो जाता है, वैसे ही कुछ परिस्थितियों में सरकार/सामाजिक दखल भी विफल हो सकता है. सब से बड़ी चुनौती तो नियमन में जड़ता की है. सामाजिक नियमन में बदलती परिस्थितियों के अनुरूप समय रहते बदलाव नहीं हो पाते. सामाजिक नियमन एक लम्बी प्रक्रिया से गुजरता है -विधानसभा, संसद में कानून बनते हैं, फिर नियम नियम बनते हैं. उस के बाद ही क्रियान्वयन हो पाता है. इस प्रक्रिया में समय लगता है और इस लिए यह संभावना रहती है कि समय रहते उचित बदलाव न हो सकें. दूसरा, समाज हित में नियमन भी किन्हीं लोगों के माध्यम से होता है. यह भी हो सकता है कि ये निर्णय लेने वाले व्यक्ति/निकाय भी समाज हित को अनदेखा कर के स्वहित पोषण में लग जाए. व्यक्तिगत भ्रष्टाचार से इतर भी, सरकारें, व्यापक समाज हित को न देख कर, अगले चुनाव में जीत को ज़्यादा को महत्त्व दें. आम तौर पर यह पाया जाता है कि सरकारी ख़र्च/नीतियों/अनुदान से लाभ उठाने वाला, तो समाज को कोई छोटा परन्तु संगठित हिस्सा होता है परन्तु उस का बोझ सब पर पड़ता है, हर व्यक्ति पर पड़ता है यद्यपि उस की मात्रा थोड़ी होती है. अंत: जिन को सरकारी अनुदान इत्यादि का लाभ मिलता है, वे थोड़े होते हैं, उन का संगठित होना (तुलनात्मक रूप से) आसान होता है. इस के विपरीत, जिन को अतिरिक्त कर के रूप में बोझ उठाना पड़ता है, उन पर व्यक्तिगत रूप से किसी निर्णय विशेष से एकाएक भारी बोझ नहीं पड़ता एवं इस लिए उनका इस के विरोध में संगठित होना मुश्किल होता है.[80]

यह समस्या भी एक बड़ी समस्या का एक उदाहरण मात्र है. वह समस्या है प्रतिनिधि एवं मालिक की विषमता, दोनों का अंतर (principal and agent). ऐसी स्थिति तब पैदा होती है, जब निर्णय लेने वाला व्यक्ति कोई और होता है एवं उस निर्णय का प्रभाव किसी अन्य पर पड़ता है. उदाहरण के लिए, सरकारी अधिकारी किसी उद्योग की कर माफी की माँग स्वीकार कर लेते हैं, तो इस का प्रभाव नागरिकों पर पड़ेगा परन्तु निर्णय तो किसी एक अधिकारी ने लिया. परन्तु प्रतिनिधि एवं मालिक का अंतर केवल सरकार के सन्दर्भ में नहीं है अपितु आधुनिक कम्पनियों में भी यही स्थिति है. किसी भी कम्पनी के मालिक उस के शेयर धारक होते हैं. हो सकता है आप के पास भी टाटा, रिल्यांस अथवा अडानी जैसी किसी बड़ी कम्पनी के शेयर हों परन्तु क्या वह कम्पनी आप की सलाह से चलती है. शेयर धारकों की

---

[79] लांगे एवं टेलर (Lange and Taylor) नमक प्रसिद्ध प्रमेय के माध्यम से यह साबित करने का प्रयास किया गया था कि उत्पादन के साधनों में निजी सम्पत्ति के निषेध होने पर भी, सरकारी सम्पत्ति के रूप में अर्थव्यवस्था का नियोजन इस प्रकार किया जा सकता है कि वह मुक्त बाज़ार व्यवस्था के अनुरूप ही उपभोक्ताओं की उम्मीदों पर खरा उतरे.

[80] आम तौर पर यह माना जाता है कि सरकारी ख़र्च का अधिकांश हिस्सा निम्न आय वर्ग को जाता है, जिस के आधार पर उन के वोट प्राप्त करने का प्रयास होता है. जहाँ तक नकद राहत की बात हो, हो सकता है कि यह सही हो कि बड़ा हिस्सा गरीब वर्ग को जाता है परन्तु जहाँ तक सरकार द्वारा निशुल्क अथवा सस्ती दर पर उपलब्ध सुविधाओं की बात है फिर चाहे वह शिक्षा की हो, स्वास्थ्य सुविधाओं की हो या चौड़ी सड़कों की हो या सीवर सेवाओं की हो, गरीब के स्थान पर मध्यम वर्ग को ही इन का ज़्यादा लाभ पहुंचता है. इसलिए ही शायद इन का तीखा विरोध कम देखने को मिलता है. विरोध होता भी है तो सरकार द्वारा स्वयं इन सेवाओं को उपलब्ध कराने का होता है न कि इस मद पर ख़र्च करने का. यानी अगर सेवाएं निजी संस्थान उपलब्ध कराएं और ख़र्च सरकार वहन करे, तो विरोध कम होता है.

वार्षिक बैठक होती है परन्तु अधिकांश के लिए तो उस बैठक में शामिल होने का ख़र्च उन की मालिकाना पूँजी से अधिक होता है. इस लिए आम शेयर धारक तो वार्षिक बैठक में भाग ही नहीं लेता. प्रतिनिधि एवं मालिक का अंतर केवल उन व्यवसायों में नहीं पाया जाता जिन में शेयर बाज़ार से पूँजी एकत्रित की जाती है अपितु किसी भी बड़े व्यवसाय में भी होता है. उदाहरण के लिए, अगर किसी पारिवारिक उद्योग की इकाइयाँ कई स्थानों पर हैं, तो वहाँ भी, जैसे कि सरकारी/सामाजिक संस्थान में होता है, निर्णय लेने वाला कोई होता है एवं उस का प्रभाव किसी अन्य पर पड़ता है. जाहिर है जितना बड़ा संस्थान, उतना ही यह अंतर अधिक होता है.[81]

ऊपर हम ने बाज़ार की विफलता की चर्चा की. वास्तव में हमें न केवल बाज़ार की विफलता एवं इस के गुणों, दोनों को ध्यान में रखना होगा अपितु वैकल्पिक व्यवस्था के गुणों-अवगुणों को भी ध्यान में रखना होगा. बाज़ार यह भी सुनिश्चित करता है कि माँग में बदलाव के साथ उत्पादन में भी बदलाव हो. बाज़ार यह सुनिश्चित कर सकता है कि जहाँ भी भीड़ हो, मेला हो, वहाँ चाय नाश्ते वाले पहुँच जाए. परन्तु यही मुक्त बाज़ार यह सुनिश्चित नहीं कर सकता कि ऐसी जगहों पर पीने के पानी एवं शौचालय इत्यादि की ऐसी पर्याप्त व्यवस्था हो जो सब को सुलभ हो. पीने के पानी की बोतल मिल जाएगी परन्तु कितने लोग ख़रीद कर पूरा दिन पानी पी सकते हैं? चाय-नाश्ते के बिना दिन काटना मुश्किल हो सकता है परन्तु संभव है, परन्तु बिना पानी के तो आदमी बीमार पड़ जाएगा.

बाज़ार की उपयोगिता एवं इस की सीमाएं न केवल अर्थशास्त्रियों के बीच अपितु समाज के बीच भी गहरे विवाद का विषय रही हैं. कई सदियों से बाज़ार विचारधाराओं के बीच मतभेद का एक बड़ा कारण रहा है. कभी बाज़ारवाद का पलड़ा भारी हो जाता है, तो कभी बाज़ार विरोध का. इस वैचारिक द्वंद्व के बावजूद **न तो कोई अर्थव्यवस्था पूरी तरह से बाज़ार पर निर्भर रही है और न कोई अर्थव्यवस्था इस का पूरी तरह निषेध कर पाई है.** हर वस्तु को बाज़ार के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता है और न छोड़ा है. उदाहरण के लिए, किसी भी राष्ट्र में अपने मतदान के अधिकार को बेचने की कानूनी अनुमति नहीं है. कहाँ कितना बाज़ार होगा, कहाँ समाज दखल देगा और कहाँ व्यक्ति को स्वतंत्र छोड़ा जाना है, यह समाज को ही तय करना होता है. [82] समाज ऐसा करता भी रहा है. स्पष्ट रूप से न व्यक्ति का और न समाज का, हर निर्णय सही होता है! परन्तु पारदर्शी एवं सार्वजनिक विमर्श, सामाजिक निर्णय को काफ़ी हद तक ग़लत होने से रोक सकता है.

आशा है इस पुस्तक की सामग्री आप को इस विवाद के सन्दर्भ में अपनी राय बनाने में कुछ हद तक सहायक होगी. अर्थशास्त्र की कई अन्य शाखाओं में इस विषय पर चर्चा होती है; समग्र अर्थशास्त्र एवं विकास के अर्थशास्त्र के साथ-साथ आर्थिक इतिहास इत्यादि में भी आप इस विवाद के बारे में पढ़ेंगे. उस सब के आधार पर आप बेहतर निर्णय लेने की स्थिति में होंगे.

एक अन्य बात का भी ध्यान रखना चाहिए. **एक उपभोक्ता अथवा उत्पादक के दृष्टिकोण से जो उपाय अच्छे हो सकते हैं, उन्हीं उपायों का पूरी अर्थव्यवस्था के स्तर पर प्रभाव भिन्न भी हो सकता है.** ठीक, इस का उलटा भी हो सकता है. यह बात सामन्य जीवन में भी लागू होती है और अर्थशास्त्र में भी. मान लें आप बैठ कर कोई कार्यक्रम देख रहे हैं परन्तु भीड़ के चलते अच्छे से देख नहीं पा रहे. आप खड़े हो जाएँगे तो संभावना है कि आप बेहतर देख पायेंगे. इस लिए खड़ा होना आप के लिए उपयोगी साबित हो सकता है. परन्तु अगर सब लोग अच्छी तरह देखने के लिए खड़े हो जाते हैं, तो बेहतर तो शायद किसी को नहीं दिखाई देगा अपितु खड़े होने की तकलीफ ज़रूर उठानी पड़ेगी. इसी तरह के एक उत्पादक या उद्योग के दृष्टिकोण से उठाये गए लाभदायक कदम, अगर पूरी अर्थव्यवस्था पर लागू हो जाते हैं तो

---

[81] सरकारी भ्रष्टाचार के बारे में खूब चर्चा होती है, परन्तु ऐसा नहीं है कि निजी क्षेत्र में आन्तरिक भ्रष्टाचार नहीं होता. वहां पर भी भ्रष्टाचार होता है यहाँ तक कि एक स्तर तक के भ्रष्टाचार को स्वीकार कर के लागत में शामिल कर लिया जाता है.

[82] समाज का अर्थ केवल केन्द्रीय अथवा राज्य सरकार ही नहीं होता. बाज़ार का विकल्प केवल सरकारी सम्पत्ति नहीं होती. स्थानीय समुदाय भी समाज का ही स्वरूप है. स्थानीय समुदाय की अथवा सहकारी सम्पत्ति भी बाज़ार एवं निजी सम्पत्ति का विकल्प हो सकती है. अमरीका जैसे बाज़ारवादी देश में भी स्थानीय इकाइयों को अपने कार्यक्षेत्र में निर्णय की स्वतंत्रता है एवं वहां कि केन्द्रीय सरकार भी उस में दखल नहीं दे सकती. इस के चलते वालमार्ट जैसी विशालकाय कम्पनी, जो दुनिया भर में व्यापार करती है, अमरीका के ही कई क्षेत्रों में अपनी दुकान/स्टोर नहीं खोल सकती!

उन के परिणाम विपरीत भी हो सकते हैं. उदाहरण के लिए, मंदी की स्थिति में एक उत्पादक/उद्योग श्रमिकों का वेतन घटा कर अपनी आर्थिक स्थिति को कुछ हद तक बेहतर बना सकता है. परन्तु अगर इस उपाय को पूरी अर्थव्यवस्था पर लागू कर दिया जाए तो मंदी पर लगाम लगने की बजाय मंदी तीव्र हो सकती है. क्यों? क्योंकि कर्मियों का वेतन कम होने से सभी वस्तुओं की माँग भी गिर जाएगी जो मंदी को विकत कर देगी. इसी तरह, **जो उपाय समग्र अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से उपयोगी हों, अगर वे एक उत्पादक अथवा उपभोक्ता के निजी हित में नहीं हैं, तो वे उपयुक्त अथवा प्रभावी नहीं भी हो सकते.** उदाहरण के लिए, पूरी अर्थव्यवस्था के दृष्टिकोण से देखें तो उपभोक्ता अपनी आय का जितना ज़्यादा हिस्सा उपभोग पर ख़र्च करेगा, अर्थव्यवस्था की वृद्धि के लिए उतना ही बेहतर होगा. परन्तु निश्चित तौर पर एक उपभोक्ता के लिए ज़्यादा से ज़्यादा ख़र्च करना और कम से कम बचत करना, उचित नहीं है. ऐसा करने पर वह आपात स्थिति से नहीं निपट पायेगा. इस लिए किसी नीति अथवा उपाय के मूल्यांकन के लिए इकाई आधारित एवं समग्र अर्थशास्त्र, तथा व्यक्तिगत एवं सामाजिक दोनों परिपेक्ष से उस की समीक्षा की जानी चाहिए. जो उपाय सभी दृष्टि से उपयोगी हों, उन के ही प्रभावी होने की अपेक्षा की जा सकती है.

आर्थिक प्रश्नों पर विचार करते हुए हमें यह भी ध्यान में रखना होगा कि इस पुस्तक में हम ने बुनियादी बातें ही पढ़ी हैं. न केवल अर्थशास्त्र बल्कि इकाई आधारित अर्थशास्त्र भी केवल इन सिद्धांतों तक सीमित नहीं है. कई अन्य सिद्धांत भी प्रतिपादित किए गए हैं परन्तु उन सब का अध्ययन एक ही पुस्तक में और वह भी प्रारंभिक पुस्तक में संभव नहीं है. लेकिन इस पुस्तक की विषयवस्तु आप को अन्य सिद्धांतों को समझने में न केवल सहायक होगी, परन्तु आम तौर पर उन को समझने के लिए अनिवार्य भी होगी.

अग्रिम अध्ययन हेतु कुछ विषय: अब हम इन में से कुछ विषयों को चिह्नित करेंगे ताकि आवश्यकता/रुचि होने पर आप उपयुक्त सामग्री को खोज कर उस का अध्ययन कर पायें. कुछ का अंदाज़ा तो आप को पिछले कुछ पृष्ठों में हो गया होगा जैसे प्रतिनिधि एवं मालिक विषमता. अन्य कुछ का ज़िक्र हम अब करेंगे. इस के साथ ही अब तक किए गए अध्ययन की कुछ सीमाओं की ओर भी आप का ध्यान आकर्षित करेंगे.

अभी तक हम यह मान कर चले हैं कि उपभोक्ता को उस के संतुष्टि वक्र का ज्ञान है एवं उत्पादक को भी अपने लागत-वक्र, राजस्व-वक्र, उत्पादन फलन, माँग-वक्र आदि का ज्ञान है. इस में एक अंतर्निहित मान्यता यह भी रही है कि अर्थव्यवस्था में कोई जोखिम एवं अनिश्चितता (risk and uncertainty) नहीं है. [83] वास्तविक जीवन में आम तौर पर जोखिम एवं अनिश्चितता होती है. जोखिम एवं अनिश्चितता की स्थिति में कैसे निर्णय लिए जाएँ एवं इन को कम करने के लिए क्या किया जा सकता है, यह भी अर्थशास्त्र के अध्ययन का विषय रहा है. बीमा उद्योग जोखिम कम करने का एक उपाय ही है.

अर्थशास्त्र की एक सामान्य मान्यता रही है, जो पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार के लिए तो अनिवार्य ही है, कि सम्पूर्ण जानकारी सहज एवं नि:शुल्क उपलब्ध है. एच ए साइमन (H A Simon) सीरेट एवं मार्च (Cyret and March) जैसे कई अर्थशास्त्रियों ने इस मान्यता को नकारा है एवं इस मान्यता पर सिद्धांत गढ़े हैं कि जानकारी एकत्रित करना एवं उस का उपयोग नि:शुल्क नहीं होता. उस की न केवल आर्थिक अपितु मानसिक लागत भी होती है. इस के आधार पर उन्होंने कहा कि उत्पादक/निर्णय लेने वाले इष्टतम (अधिकतम लाभ अथवा न्यूनतम हानि (optimization)) के बारे में विचार नहीं करते क्योंकि न तो उन के पास सारी जानकारी होती एवं न उन के पास इतनी फुर्सत होती. इस के विकल्प में उन्होंने संतोषजनक/पर्याप्तता (satisficing) का विचार प्रस्तुत किया. यानी उत्पादक, इष्टतम की तलाश न कर के, ऐसे उपाय ढूँढने का प्रयास करते हैं, जो संतोषजनक अथवा पर्याप्त हों, जिन से उन के न्यूनतम उद्देश्यों की पूर्ति हो सके.

जानकारी से सम्बन्धी एक और प्रश्न भी उठा है. उपलब्ध जानकारी में असमानता का. 'सम्पूर्ण जानकारी सहज एवं नि:शुल्क उपलब्ध है' की मान्यता में यह भी अंतर्निहित है कि क्रेता एवं विक्रेता दोनों के पास एक जैसी जानकारी है. अगर ऐसा न हो यानी जानकारी

---

[83] आम बोलचाल की भाषा में जोखिम एवं अनिश्चितता (risk and uncertainty) को एक ही अर्थ में प्रयोग किया जाता है परन्तु अर्थशास्त्र में इन दोनों में अंतर किया जाता है. परन्तु इस विषय पर हम यहाँ विस्तृत चर्चा नहीं करेंगे एवं इनका प्रयोग समानार्थी शब्द के रूप में प्रयोग करेंगे.

में असमानता (Information Asymmetry) हो तो क्या होगा? उदाहरण के लिए, पुरानी गाड़ी बेचने वाले को अपनी गाड़ी की कमियों की सब जानकारी होती है. ख़रीदार जांच पड़ताल से कुछ जानकारी जुटा सकता है, फिर भी वह यह विश्वास नहीं कर सकता कि उसे सब जानकारी मिल गई है. इस मामले में विक्रेता को क्रेता के मुकाबले ज़्यादा जानकारी है. बीमा उद्योग में ठीक इस का उलटा हो सकता है. जीवन/ स्वास्थ्य बीमा लेने वाले को, क्रेता को, अपने स्वास्थ्य के बारे में बीमा करने वाले विक्रेता से ज़्यादा जानकारी होती है. कई अर्थशास्त्रियों ने जानकारी की असमानता के प्रभावों एवं इस सन्दर्भ में उठाए जा सकने वाले उपायों पर शोध किया है.

इस पुस्तक में हम यह मान कर चले हैं कि उत्पादक का उद्देश्य लाभ अधिकतम करना है, परन्तु कई अर्थशास्त्रियों का मानना है कि ज़रूरी नहीं ऐसा हो. उत्पादक के लक्ष्य अधिकतम लाभ से भिन्न भी हो सकते हैं. अर्थशास्त्री बामल (Baumol) ने इस मान्यता के आधार पर उत्पादक के व्यवहार की व्याख्या की है कि प्रबंधकों का उद्देश्य लाभ अधिकतम न कर के बिक्री को, राजस्व को अधिकतम करना होता है. कई अन्य अर्थशास्त्रियों ने उत्पादक के व्यवहार का अध्ययन अन्य उद्देश्यों को ध्यान में रख कर किया है. उदाहरण के लिए, बेन ने 'प्रतियोगिता सीमित' करने को, यानी उद्योग में नए उत्पादकों के प्रवेश को रोकने को, उत्पादक का उद्देश्य मान कर कीमत निर्धारण का अपना सिद्धांत विकसित किया है (Bain's Limit Pricing Theory). कई अन्य अर्थशास्त्री भी हैं जिन्होंने उत्पादक के अन्य उद्देश्य मान कर उत्पादक के व्यवहार का अध्ययन किया है. इन में विल्यम्सन (Williamson), मेरिस (Marris) इत्यादि प्रमुख हैं.

इस पुस्तक में हम यह भी मान कर चले हैं कि औसत लागत-वक्र अंग्रेज़ी के यू (U) वर्ण के आकार के होते हैं. इस मान्यता में यह भी निहित है कि एक ही बिंदु, एक ही उत्पादन स्तर है जहाँ पर औसत उत्पादन लागत न्यूनतम होती है. इस स्तर से थोड़ा भी विचलन होने पर भी औसत लागत बढ़ने लग जाती है. कई अर्थशास्त्रियों ने इस मान्यता के स्थान पर औसत लागत-वक्र को अंग्रेज़ी के L आकार जैसा या तस्तरी नुमा (जिस में न्यूनतम स्तर एक बिंदु न हो कर काफी लम्बा क्षेत्र होता है) मान कर उत्पादक के व्यवहार का अध्ययन किया है. लागत-वक्र का आकार ऐसा मानने पर सीमान्त लागत के स्थान पर औसत लागत महत्त्वपूर्ण हो जाती है. इस के लिए कुछ अर्थशास्त्रियों ने औसत लागत पर लाभ जोड़ कर (Mark-up pricing) कीमत निर्धारण का सिद्धांत प्रस्तुत किया है.

इस पुस्तक में हम ने इष्टतम के लिए आवश्यक सभी शर्तों का ज़िक्र तो किया है परन्तु एक बार ज़िक्र करने के बाद हम ने आम तौर पर केवल पहली श्रेणी की शर्त (सीमान्त लागत = सीमान्त राजस्व) पर ही ध्यान दिया है एवं यह मान कर चले हैं कि अन्य शर्तें पूरी हो रही हैं. परन्तु अन्य शर्तें तभी पूरी होंगी जब उदासीनता-वक्र एवं सम-उत्पाद वक्र उत्तल (Convex) हों और अधिकतम संभव उत्पाद वक्र (PPC) धनुषाकारी (concave) हों. अगर किन्हीं परिस्थितियों में ऐसा नहीं होता, तो हम यह मान कर नहीं चल सकते कि इष्टतम की पहली शर्त पूरी होने पर अन्य शर्तें भी पूरी हो जाएँगी.

इस पुस्तक में हम ने तकनीकी परिवर्तन का आय के वितरण पर पड़ने वाले प्रभाव का भी अध्ययन नहीं किया है. कई अर्थशास्त्रियों ने तकनीकी परिवर्तन के वर्गीकरण एवं आय के वितरण पर उन के प्रभाव का अध्ययन किया है. इस पुस्तक में हम ने अध्ययन की आंशिक संतुलन पद्धति अपनाई है न कि व्यापक संतुलन की; एक बाज़ार के संतुलन, एक वस्तु की कीमत एवं एक संसाधन की कीमत का अध्ययन करते हुए, हम ने अन्य बाज़ारों को संतुलन में माना है. वास्तव में अर्थव्यवस्था ऐसे एक-एक कर के संतुलन में नहीं आती. कुछ अर्थशास्त्रियों ने समग्र अर्थव्यवस्था का इकट्ठे एक साथ संतुलन (general equilibrium) का अध्ययन भी किया है परन्तु इस पुस्तक में हम ने इस पर चर्चा नहीं की है. इस पुस्तक में हम ने न केवल आंशिक संतुलन का अध्ययन किया है अपितु मूलतः निश्चल संतुलन अध्ययन (static equilibrium) एवं तुलनात्मक निश्चल संतुलन (comparative static equilibrium analysis) का ही अध्ययन ही किया है. गतिमान संतुलन अध्ययन (Dynamic equilibrium) यानी एक संतुलन की स्थिति से विचलन होने पर पुन: संतुलन प्राप्त करने की समयावधि अथवा राह का भी अध्ययन नहीं किया गया.

इकाई आधारित अर्थशास्त्र के इन अग्रिम विषयों में से कई का अध्ययन करने के लिए उच्चतर स्तर के गणित की आवश्यकता पड़ती है अथवा यह सहायक हो सकता है. न केवल इकाई आधारित अर्थशास्त्र बल्कि अर्थशास्त्र के गहन अध्ययन एवं प्रयोग के लिए गणित काफ़ी सहायक हो सकता है. परन्तु इस पुस्तक में हम ने प्रयास किया है कि कम से कम गणित का प्रयोग किया जाए. अर्थशास्त्र की

प्रारंभिक पुस्तक के लिए ऐसा करना आवश्यक है परन्तु अर्थशास्त्र के अग्रिम अध्ययन के लिए आप को न केवल गणित अपितु अंग्रेज़ी के प्रयोग के लिए भी तैयार होना होगा. आशा है इस पुस्तक से आप को ऐसा करने के लिए पर्याप्त बुनियादी जानकारी मिल गई होगी.

निश्चित तौर पर इस पुस्तक की सामग्री का अर्थशास्त्री के रूप में तो उपयोग होगा. परन्तु अगर आप अर्थशास्त्र की पढ़ाई जारी नहीं रखते, तो भी जो कुछ पढ़ा है, क्या उस का जीवन में कुछ उपयोग हो सकता है? **इस पुस्तक में जो पढ़ा है, उस का, परीक्षा और नौकरी के लिए साक्षात्कार के अलावा भी, जीवन में क्या कोई उपयोग है?** अगर भविष्य में आप अर्थशास्त्र के अध्यापक अथवा शोधार्थी नहीं बनते, अर्थशास्त्री नहीं बनते, तो भी इस पुस्तक की सामग्री, एक नागरिक के रूप में, देश-समाज में चल रहे आर्थिक विमर्श को समझने में निश्चित तौर पर आप की सहायक होगी. एक जागरूक नागरिक के तौर पर हम सरकारी नीतियों अथवा उन की आलोचना का बेहतर तरीके से मूल्याँकन कर पाएंगे एवं अन्य नागरिकों का भी मार्गदर्शन कर पाएँगे. सैद्धांतिक रूप में, परीक्षा में भी वही कुछ पूछा जाना चाहिए जो जीवन के लिए उपयोगी हो. जो जीवन के लिए उपयोगी नहीं, उसे क्यों पढ़ना और पढ़ाना?

इस के अलावा, क्या नितांत निजी जीवन में भी इस पुस्तक की सामग्री का कुछ उपयोग हो सकता है? कीमत से जीवन में हर कदम पर हमारा वास्ता पड़ता है, पड़ेगा. कीमत के प्रति दो धुर विरोधी दृष्टिकोण पाए जाते हैं. एक दृष्टिकोण में कीमत ही सब कुछ है. अन्य बातें सामान रहने पर, सब से सस्ता ही, सब से अच्छा माना जाता है. अर्थशास्त्र भी यही कहता है. परन्तु इस निष्कर्ष के छोटे से वाक्यांश - अन्य बातें सामान रहने पर- को हम आम तौर पर नज़रअंदाज़ कर देते हैं. वस्तु की गुणवत्ता एवं कीमत को छोड़ कर हम और कुछ नहीं देखते. नहीं देखते कि कहीं सस्ते के पीछे पर्यावरण अथवा श्रम का शोषण तो नहीं है. अर्थशास्त्र हमें बताता है कि उपभोग एवं उत्पादन दोनों में बह्यता हो सकती है और जब बह्यता होती है, तो बाज़ार भाव वस्तु का सही मूल्यांकन नहीं करता. इस लिए सस्ता ख़रीदने से पहले यह भी देख लें कि कहीं जो जेब के लिए सस्ता है, वह आप के अपने जीवन एवं समाज के जीवन पर तो भारी नहीं पड़ रहा. बहुत बार हो सकता है कि हमें बह्यताओं की जानकारी ही न हो, फिर तो हम विवश होंगे परन्तु हमें इस दृष्टिकोण से देखने का प्रयास ज़रूर करना चाहिए. ढूँढने की कोशिश करनी चाहिए कि सस्ता क्यों मिल रहा है, जो हम उपभोग कर रहे हैं, उस का समाज पर, पर्यावरण पर, अन्य नागरिकों पर क्या प्रभाव पड़ रहा है.

अर्थशास्त्र हमें यह भी बताता है कि कुछ उत्पादक बाज़ार पर कब्ज़ा करने के लिए परभक्षी कीमत निर्धारण प्रक्रिया भी अपनाते हैं. बड़ी पूँजी वाली कम्पनियाँ बरसों तक घाटा सहन कर के भी सस्ता बेच सकती हैं, बेचती हैं ताकि बाज़ार से अन्य उत्पादकों को बाहर कर के, बाज़ार पर कब्ज़ा कर के मुनाफ़ा वसूली कर सकें. अगर हम केवल सस्ते के चक्कर में ख़रीदारी करते हैं, तो आज सस्ता ख़रीद कर, अनजाने में हम अपने आप को भविष्य में लुटवाने की तैयारी कर रहे हो सकते हैं; क्योंकि जब छोटे उत्पादक बाज़ार से बाहर हो जाएँगे और बाज़ार पर एकाधिकार (या अल्पाधिकार) हो जाएगा तो हम पढ़ चुके हैं कि उपभोक्ता आधिक्य कम हो जाता है.

कीमत के प्रति दूसरा धुर विरोधी रुख यह रहता है कि हम हर वस्तु मुफ़्त चाहते हैं, कम से कम हर सरकारी सेवा मुफ़्त अथवा कम से कम कीमत पर चाहते हैं. कोई सेवा अथवा उत्पाद मुफ़्त नहीं होता. उस की कीमत चुकानी ही पड़ती है - चाहे हम उपभोक्ता के रूप में भुगतान कर के चुकाएं चाहे नागरिक के रूप में कर दे कर या कोई अन्य यह कीमत चुकाये. इस का अर्थ यह नहीं है कि हर सरकारी सेवा की उपभोक्ता से कीमत वसूली जाए और कुछ भी मुफ़्त अथवा सस्ता नहीं होना चाहिए. परन्तु क्या उपभोक्ता के तौर पर मुफ़्त/सस्ता हो, और जिस का भुगतान नागरिक के रूप में हम करेंगे, यह सुविचारित एवं सचेत निर्णय होना चाहिए. आम तौर पर सरकार हमें 'पराई' लगती है न कि हमारी अपनी, इस लिए भी हम सरकार से लेने की ही अपेक्षा करते हैं, देने की नहीं परन्तु ऐसा न कर के बेहतर यह होगा कि हम ऐसी सरकार बनाने का प्रयास करें जो 'हमारी अपनी' हो न कि पराई.

एक प्रचलित कथन है कि 'ग्राहक भगवान् है', ग्राहक हमेशा सही होता है. अगर इस का भावार्थ मात्र इतना है कि ग्राहक से बहस करने से विक्रेता का कोई फ़ायदा नहीं होगा, तो यह एक हद तक ठीक भी है. परन्तु एकाधिकारी प्रतियोगिता एवं अल्पाधिकारी बाज़ार का अर्थशास्त्र हमें बताता है कि विज्ञापन पर किया गया भारी भरकम ख़र्च 'ग्राहक भगवान' को अपनी ओर खींचने का प्रयास ही है; कड़वे शब्दों में कहें तो बहुतायत में यह बरगलाने का प्रयास ही होता है. परन्तु इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि टिकाऊ व्यवसाय ग्राहक की वास्तविक ज़रूरत को पहचान कर उसे पूरा कर के ही किया जा सकता है.

हालाँकि सूक्ष्म अर्थशास्त्र के सिद्धांत इस मान्यता पर आधारित हैं कि सभी समय-काल स्वतंत्र हैं, यानी एक समय-काल के निर्णय दूसरे समय-काल के निर्णयों को प्रभावित नहीं करते, फिर भी हम ने देखा कि अल्प काल एवं दीर्घकाल के लिए अलग-अलग नीति/निर्णय उपयुक्त होते हैं. यही जीवन में भी होता है. जो अल्पकाल अथवा तात्कालिक रूप से उपयुक्त हो, ज़रूरी नहीं कि वह दीर्घकाल में भी उपयोगी हो. वास्तविक जीवन में कई बार, कई सन्दर्भों में समय-काल पूरी तरह स्वतंत्र नहीं होते. इस लिए निर्णय लेते हुए दीर्घकाल को भी ध्यान में रखना चाहिए.

सूक्ष्म अर्थशास्त्र की बुनियादी तकनीक, उपलब्ध विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ के चयन की है. काफी हद तक इस का निजी जीवन में भी प्रयोग किया जा सकता है. जब जीवन में अनिर्णय की स्थिति हो, समझ न आये कि क्या करें, क्या न करें, उपलब्ध विकल्पों को सूचीबद्ध करना सहायक हो सकता है, अधिक स्पष्टता दे सकता है. हालाँकि उपलब्ध विकल्पों को सूचीबद्ध करने मात्र से उन के मूल्यांकन की समस्या ख़त्म नहीं हो जाती परन्तु घोर संशय अथवा अनिर्णय की स्थिति में ऐसा करना अधिक स्पष्टता दे सकता है. अर्थशास्त्र में विकल्पों के चयन से होने वाले फायदे एवं लागत की तुलना निर्णय प्रक्रिया का बुनियादी कदम है. जीवन में भी हमें इसे लागू करना चाहिए- विकल्प के फायदे एवं इस की लागत की तुलना अवश्य करनी चाहिए.

श्रम मूल्य निर्धारण की हमारी चर्चा से स्पष्ट है कि मौद्रिक भुगतान मात्र एक पक्ष है. मौद्रिक भुगतान के अलावा अन्य लाभ/लागत बराबर होने पर ही मौद्रिक सीमान्त राजस्व एवं मौद्रिक सीमान्त लागत की समानता ज़रूरी होती है, अन्यथा नहीं. इस का स्पष्ट अर्थ है कि आर्थिक क्रियाकलाप के अन्य प्रभाव भी महत्त्वपूर्ण होते हैं. अंत: हमारे जीवन में अर्थव्यवस्था निश्चित तौर पर महत्त्वपूर्ण है – क्योंकि अर्थव्यवस्था हमारे जीवन की भौतिक ज़रूरतों को पूरा करने की व्यवस्था का नाम ही है एवं अर्थशास्त्र इस व्यवस्था के अंतर्गत सम्माहित मानव सम्बन्धों का अध्ययन है- परन्तु अन्य पक्षों को भी नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता. इस लिए अर्थशास्त्र महत्त्वपूर्ण है परन्तु पर्याप्त नहीं है.

प्रश्न:

1. बाह्यता एवं सार्वजनिक वस्तुओं को परिभाषित करते हुए ऐसे उदाहरण दें जिन का ज़िक्र इस अध्याय में नहीं किया गया.
2. बह्यता की समस्या से कैसे निपटा जा सकता है?
3. निजी उद्योग द्वारा सार्वजनिक वस्तुओं की इष्टतम आपूर्ति संभव नहीं है. तर्कपूर्ण विवेचना करें.
4. निम्न वाक्यों में रिक्त स्थान भरें:
   क. अगर सामाजिक लागत निजी लागत से कम है, तो मुक्त बाज़ार व्यवस्था में उत्पादन का स्तर इष्टतम से.... होगा.
   ख. अगर सामाजिक लाभ निजी लाभ से कम हों तो ..... मुक्त बाज़ार व्यवस्था में उत्पादन का स्तर....(द्वारा) इष्टतम किया जा सकता है.
   ग. अगर निर्णय लेने वाला एवं निर्णय का भार उठाने वाले व्यक्ति अलग-अलग हों, तो ....समस्या उत्पन्न होती है.
   घ. अगर आर्थिक लेन-देन के दो पक्षों के बीच समान सूचना न हो, तो इसे ....कहते हैं.
   ङ. सराहनीय वस्तु का अर्थ है ....
   च. बाज़ार की विफलता की परिभाषा: ....
5. किन-किन कारणों से मुक्त बाज़ार अर्थव्यवस्था सामाजिक कल्याण के इष्टतम स्तर की प्राप्ति सुनिश्चित नहीं कर सकती.
6. बाज़ार में दखल के क्या-क्या स्वरूप हो सकते हैं? अगर इन से कुछ समस्या उत्पन्न हो सकती हैं, तो उन को भी इंगित करें.
7. अगर एक वस्तु का बाज़ार भाव दूसरी वस्तु से दो गुना है, तो क्या यह निष्कर्ष सही है कि इस वस्तु की उत्पादन लागत दूसरी वस्तु से दो गुनी है अथवा यह दो गुनी उपयोगी है? तर्क पूर्ण व्याख्या करें.
8. इकाई आधारित अर्थशास्त्र की विषय-वस्तु एवं इस की सीमाओं पर टिप्पणी करें.
9. इकाई आधारित अर्थशास्त्र के अध्ययन का आप अपने दैनिक जीवन में किस रूप में प्रयोग करेंगे?

अनुक्रमणिका/क्रमबद्ध विषय-सूची (Index)

किस के लिए है यह किताब ?

अर्थशास्त्र की पढ़ाई की शुरुआत स्कूल,बी.ए. अथवा एम.ए. किसी भी स्तर पर हो सकती है. इस लिएयह प्रारम्भिक पुस्तक स्कूल से ले कर कालेज एवं विश्वविद्यालय तक के अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी होगी. बी.ए. के लिए यह पर्याप्त होगी, स्कूल के लिए कुछ हिस्से छोड़े जा सकते हैं एवं एम.ए. में अतिरिक्त सामग्री की आवश्यकता होगी.

किस के लिए नहीं है यह किताब ?

यह किताब पका पकाया उत्तर रटने वालों के लिए नहीं है. यह किताब सोच विचार कर ख़ुद उत्तर ढूंढने वालों के लिए है. इस किताब में विषय से सम्बन्धित हर प्रश्न का उत्तर आप को लिखा नहीं मिलेगा परन्तु इस पुस्तक की सामग्री में उस का उत्तर छिपे होने की पूरी संभावना है. परीक्षा के लिए भी यह किताब उपयोगी साबित होगी और जीवन के लिए भी.

कैसे पढ़ें इस किताब को ?

अर्थशास्त्र की पढ़ाई भवन निर्माण की तरह है. अगर नींव कमज़ोर रह जाएगी, तो भवन ही कमज़ोर रह जाएगा. इस लिए अर्थशास्त्र को अच्छी तरह से समझने के लिए यह ज़रूरी है कि किसी अध्याय को छोड़ कर आगे बढ़ने की बजाय क्रमबद्ध तरीके से आगे बढ़ें (हालाँकि उन हिस्सों को छोड़ सकते हैं जो पाठ्यक्रम में न हों). ऐसा न करने वालों को अर्थशास्त्र मुश्किल लगेगा परन्तु पढ़-समझ कर क्रमबद्ध रूप से आगे बढ़ने वालों को अर्थशास्त्र आसान एवं रोचक लगेगा. अध्याय के अंत में दिए गए प्रश्नों के अलावा अध्याय के बीच में भी कुछ प्रश्न उठाये गये हैं या पाठक को कुछ करने को कहा गया है. इन को पढ़ कर आगे न बढ़ जाएँ. इन को पढ़ कर रुकें एवं करें. यह किताब आप के अपने सोचने-समझने का स्थान नहीं ले सकती. यह तो बस उस प्रक्रिया में आप की सहायक हो सकती है.

लेखक के बारे में

हरियाणा के एक आवासीय स्कूल से पढ़ कर प्रोफ़ेसर राजेन्द्र चौधरी ने अपनी शिक्षा पंजाब विश्वविद्यालय (चंडीगढ़),गोखले इंस्टिट्यूट ऑफ़ पॉलिटिक्स एंड इकोनॉमिक्स (पुणे) एवं जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय (नई दिल्ली) में जारी रखी. 1984 में दिल्ली विश्वविद्यालय के एक कालेज से अध्यापन शुरू कर लम्बा समय अर्थशास्त्र विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय,रोहतक (हरियाणा) में अध्यापन किया. शोध कार्य समावेशी, समता एवं न्याय-केन्द्रित सामाजिक बदलाव की दिशा की ओर प्रवृत रहा. इन मुद्दों पर शिक्षण, शोध एवं लेखन के साथ-साथ वंचित तबकों के बीच स्वयं सहायता समूह, साक्षरता अभियान, आत्म-निर्भर जैविक खेती इत्यादि के माध्यम से भी विकास की वैकल्पिक राह प्रशस्त करने के लिए प्रयास रत रहे हैं. अंततः 2014 में शिक्षण कार्य से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति ले ली परन्तु अन्य कार्य जारी हैं.

Intellectual Foundation(India)

INTELLECTUAL FOUNDATION (INDIA)
A Foundation of Education

ISBN 978-93-81818-84-8

9789381818848

₹ 250/-